मध्ययुगीन हिन्दी महाकाव्यो
मे नायक

मध्ययुगीन हिन्दी महाकाव्यों में नायक

(दिल्ली विश्वविद्यालय की पी० एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

लेखक

डा० कृष्णदत्त पालीवाल

साहित्य-प्रकाशन

नई सड़क, मालीवाड़ा दिल्ली-६

प्रकाशक साहित्य प्रकाशन
१४५८ मालीवाड़ा दिल्ली ६
मूल्य चालीस रुपया
संस्करण नवम्बर १९७२
मुद्रक : रामाकृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,
८१६ कटरानील, दिल्ली ६

समर्पित,

सहधर्मिणी,

रितु

को

जो सदैव कुछ न कुछ लिखने को प्रेरित करती रहती है।

कृष्णदत्त पालीवाल

भूमिका

मध्ययुगीन हिंदी साहित्य मे महाकाव्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। भक्तिकाल के उदय से ही महाकाव्य प्रणयन की ओर हिंदी-कवियों का ध्यान गया। सूफी कवि जायसी का सुप्रसिद्ध प्रेमाख्यान-काव्य 'पदमावत' इस परम्परा के प्रारम्भ का श्रेष्ठ निदर्शन है। निर्गुण धारा के कवियो ने मुक्तक शैली को प्रश्रय दिया, क्योंकि अपने आराध्य को सगुण कथावस्तु से सम्पृक्त करके प्रस्तुत करना न तो कवि का अभीष्ट था और न पाठक की चित्तवृत्ति निर्गुण-क्षेत्र म सगुणोपासना के लिए तत्पर थी। किन्तु जायसी ने ऐकेश्वरवाद म पूर्ण आस्था रखते हुए भी लोककथा के माध्यम स अपने महाकाव्य की सृष्टि की। उनके बाद सगुणोपासक रामभक्त और कृष्णभक्त कवियो ने तो अनेक उच्चकोटि के महाकाव्य लिखे, जिनमे 'रामचरित मानस' सर्वश्रेष्ठ और सर्वाधिक विख्यात है। इसी रामभक्ति का एक दूसरा पक्ष, जिसे शुद्ध भक्ति न कहकर राम कथा का लौकिक पक्ष कहा है, रामचन्द्रिका महाकाव्य मे दृष्टिगत होता है। महाकवि केशवदास ने अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के निमित्त राम कथा को जिस फलक पर अवस्थित किया है वह दरबारी रूप सज्जा के अधिक निकट है और उसमे राम की भक्ति का लक्ष्य न होकर रामकथा का वर्णन मात्र कवि का अभीष्ट है।

इसके साथ ही कृष्ण भक्ति की वेगवती धारा प्रवाहित हुई। इस धारा का प्रारम्भ कृष्णलीला गान से हुआ और शनै शनै वह कथात्मक होकर महाकाव्य की दिशा म मुड गई। ब्रजविलास कृष्णचन्द्रिका और लालसागर आदि रचनाएँ लीलापरक होते हुए भी कृष्ण चरित्र के विविध पक्षो का भी उदघाटन करती हैं। सम्भवत शास्त्र सम्मत महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण इन ग्रन्थो मे उपलब्ध न हो किन्तु कथात्मक होने के कारण तथा कृष्ण-चरित्र का वर्णन होने से इन्हे महाकाव्य ही कहा जायगा, क्योंकि इनमे नायक के चरित्र विकास पर कवि का ध्यान सतत रहा है।

रीतिकाल म भी कुछ कवियों का ध्यान महाकाव्य प्रणयन की ओर गया। वीरसिंहदेवचरित राजविलास, छत्रप्रकाश सुजान चरित्र और हम्मीर रासो इस काल की उल्लेख्य कृतियाँ हैं जिनम महाकाव्यात्मक दृष्टि का पूर्ण उन्मेष है। वस्तुत रीतिकाल मे मुक्तक शैली का ऐसा प्राधान्य हो गया था कि सामान्यत सभी कवि मुक्तकों के माध्यम से आत्माभिव्यंजन करके तुष्ट हो जाते थे। महाकाव्य के विस्तृत

आयाम को स्वीकार करने पर कथातत्व और चरित्र सृष्टि की अनिवार्यता का दायित्व व अपने ऊपर नहीं लेना चाहते थे। राणा प्रताप छत्रसाल, शिवाजी और छत्रपति जैसे नायकों के होते हुए भी इनके सम्बन्ध में स्फुट काव्य ही लिखा गया, महाकाव्य नहीं।

इन महाकाव्यों के अनुशीलन से जो तथ्य स्पष्टत उभर कर हमारे समक्ष आता है वह है इनमें वर्णित नायक का दीप्त चरित्र। इन सभी महाकाव्यों के नायक इतने धीरोदात्त वर्चस्वी तेजस्वी और प्रतापी हैं कि उनकी समता साधारण मानव से नहीं की जा सकती। असाधारण और उदात्त रूप में नायक को प्रस्तुत करने की परिपाटी इन कवियों को भी ग्राह्य थी और इसी कारण इन महाकाव्यों में *नायक स्वरूप अधिकांशत परम्परा सम्मत ही है।* *किन्तु आज के युग में नायक* और नायक के गुणों के सम्बन्ध में शास्त्रसम्मत रूढ धारणा को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया जाता। मध्ययुग में भी नायक विषय धारणा में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ था और नायक निरूपण में उस परिवर्तित धारणा को खोजा जा सकता है। यह धारणा युग-जीवन और युग-बोध के उपकरणों से सम्पुष्ट होकर काव्य में स्थान पाती है। नायक का कीर्तिगान करते समय भी ये कवि अपने युग के सम्पूर्ण परिवेश को प्रस्तुत करने का प्रयास करते रहे। अत नायक की अवधारणा को स्पष्ट करते समय तत्कालीन समाज और परिवेश को उद्घाटित करने का प्रयास अनुसन्धाता के लिए अनिवार्य हो जाता है। यदि नायक का व्यक्ति व उसके अपने घर परिवार तक ही सीमित है अथवा अपने निजी व्यक्तित्व की परिधि में ही समाया हुआ है तो वह व्यापक चेतना वाला नायक नहीं हो सकता। नायक की अवधारणा के विषय में आधुनिक युग में बहुत परिवर्तन हुए हैं किन्तु प्राचीन परम्परागत धारणा प्रायः सभी नायकों में समान रूप से लक्षित होती है। नायक के साथ प्रतिनायक का चरित्रोद्घाटन भी प्रबन्धकाव्यों में होता है। नायक की तुलना में प्रतिनायक के वाय गुण गति आदि के सम्बन्ध में विचार करते समय केवल खलनायक की धारणा पर ही प्रकाश नहीं पड़ता वरन् नायक के साथ संघर्ष करने का अतुल शक्ति रखने वाले प्रतिनायक का स्वरूप उद्घाटित होता है। मध्ययुगीन काव्यों में प्रतिनायक केवल खल चरित्र ही नहीं है वह एक गत्यात्मक पात्र है जो अपने गुण अवगुणों के साथ नायक को चुनौती देता हुआ प्रतीत होता है।

मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यों में राम और कृष्ण भी एक ही रूप में अंकित नहीं किए गए हैं। राम का ईश्वररूप तुलसी को मान्य था किन्तु केशव की *रामचन्द्रिका के राम तुलसी से सर्वथा भिन्न हैं। इसी प्रकार कृष्ण का महाभारत का*

रूप, गीता दर्शन के अनुसार योगी का रूप, और भागवत के अनुसार लीलावपुधारी कृष्ण का रूप एक ही नायक को विविध रूपो म हमारे सामने लाता है। वाल्मीकि और व्यास ने राम और कृष्ण को जिस रूप म हमारे सामने रखा था मध्ययुगीन कवियो न उन्हे यथावत स्वीकार न करके अपनी कल्पना और भक्ति भावना से विविध रूपो म अकित किया है।

ऐतिहासिक नायको के विषय मे अतिरजना तो सामान्य बात है किन्तु इस अतिरजना के साथ भी य कवि वास्तविकता या यथार्थ को सर्वथा भूले नही हैं ' इतिहास और घटनाओ के भीतर रमने वाले य कवि अपने नायको को पौरुष और पराक्रम का अवतार मानकर चले हैं। यही इनकी विशेषता है।

सक्षेप म, हिन्दी के मध्ययुगीन महाकाव्यो मे नायक का चित्रण जिस व्यापक परिवेश मे हुआ है उसे उदघाटित करने के लिए अनुसन्धानपरक वज्ञानिक दृष्टि की नितान्त आवश्यकता थी। महाकाव्यो मे चरित्र चित्रण पर समीक्षात्मक दृष्टि से आलोचना लिखने वाले लेखको ने भी इस तथ्य को दृष्टि मे नही रखा था। हर्ष का विषय है कि डा० पालीवाल ने इस अभाव को दूर करने के लिए अपने शोध का विषय नायक को बनाया और उन्होने महाकाव्यो के सभी सुप्रसिद्ध नायको की परीक्षा इस प्रबन्ध मे की है। पौराणिक और ऐतिहासिक दोनो प्रकार के नायक इनके शोध प्रबन्ध म आये हैं और उन्होंने परम्परा, इतिहास, कल्पना और तथ्यात्मक दृष्टि से उनका भली भाँति सन्धान किया है।

नायक विषयक अवधारणा के विषय मे डा० पालीवाल ने प्रथम अध्याय म जो सामग्री एकत्र की है वह नायक के स्वरूप, चरित्र, दायित्व, प्रभाव आदि को समझने म अत्यन्त सहायक है। सामान्यत नायक का जो स्वरूप काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो म स्वीकृत रहा है वह नायक की अवधारणा का समग्रत परिचायक नही है। धारणाएँ बदलती रहती हैं और उनके अनुसार नायक भी बदलते हैं। डा० पालीवाल ने इस तथ्य को ध्यान म रखकर ही नायक के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास प्रथम अध्याय म किया है। इसके अतिरिक्त जिन महाकाव्यो के नायको पर अनुसन्धान किया गया है, उनके कथ्य शिल्प, भाषा, अप्रस्तुत विधान का भी आनुषगिक रूप से इस प्रबन्ध मे उल्लेख हुआ है। कथानक और चरित्र चित्रण तो सीधे नायक स सम्पृक्त होते ही है। शेष विषयो पर इसी सन्दर्भ म लेखक ने विचार प्रस्तुत किए हैं।

इस शोध प्रबन्ध मे नायक के माध्यम से मध्ययुगीन महाकाव्यो का सूक्ष्म-विस्तृत अनुशीलन है जो प्रामाणिक एव वज्ञानिक दृष्टि सम्पन्न है। डा० पालीवाल

ने गहन अध्ययन और अध्यवसाय का परिचय दिया है। मैंने इस शोध-प्रबन्ध को आद्योपान्त पढा है और यथा स्थान सशोधनार्थ सुझाव भी दिये हैं। अत इसकी गुणवत्ता से मैं भलीभाँति परिचित हूँ। इस सुदर शोध कार्य के लिए डा० पालीवाल साधुवाद के पात्र हैं।

२ अक्टूबर १९७२

विजेन्द्र स्नातक
आचार्य तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का मध्ययुग अपनी विचार-सम्पदा तथा शिल्प-सौष्ठव के कारण अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस साहित्य मे उत्तरभारत की सस्कृति, धम और दशन का समवेत प्रभाव काव्य के मनोहरी रूप म प्रतिफलित हुआ है। इस युग के महाकाव्य वदिक युग से लेकर मध्ययुग तक प्राप्त परम्परा, इतिहास तथा सास्कृतिक बोध को सहज रूप म अभिव्यक्त करते हैं। मध्ययुग विष्णु के अवतार राम एव कृष्णमय होने के कारण आध्यात्मिक स्तर पर भी उल्लेख्य बन गया है। अनेक सम्प्रदायो के दाशनिक प्रपचो मे फसा मध्यकाल इन अवतारी नायको का आश्रय पाकर ही जन-मन का रजक बन सका है। इस युग ने ऐसे नायको को जन्म दिया है, जो तत्कालीन परिवेश के अनुकूल मध्ययुगीन चेतना को जागत करने के साथ अध पतन से हिन्दुत्व का उद्धार करने के लिए नवीन दिशा सकेत प्रदान कर सकते हैं। विद्वानो द्वारा मध्ययुगीन साहित्य पर अनेक दृष्टियो से विचार होने पर भी मध्ययुगीन काव्य के नायको को केन्द्र बनाकर अभी तक कोई अध्ययन प्रस्तुत नही किया गया। फलत इन नायको का सम्पूर्ण स्वरूप एव प्रदेय पाठक को प्राप्त नही हो पाया। ये नायक किन किन स्रोतो, प्रभावा तथा परिवतना से होकर यह स्वरूप प्राप्त कर सके हैं, यह अद्यावधि जिज्ञासा का विषय ही बना हुआ था।

नायक के माध्यम स ही कवि शाश्वत जीवन मूल्यो को समाज तक पहुँचाता है, साथ ही महाकाव्य मे सास्कृतिक परम्परा से प्राप्त विरासत ही नायक का प्राय निर्माण करती है। जीवन का अन्त इतिहास भी नायक के द्वारा ही प्रकट हो पाता है। यही कारण है कि आचार्यो ने अनेक गुणो से युक्त धीरोदात्त नायक को ही महाकाव्य का नायक स्वीकार किया क्योकि वही युग का मान्य नेता हो सकता है तथा युगो-युगो तक मानव को परम्परागत एव नवीन आदर्शों से उपयुक्त दिशा दे सकता है। इसी सन्दभ विशेष मे प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मध्ययुगीन महाकाव्या के नायको को समग्रता के साथ समझने का प्रथम विनम्र प्रयास है।

काव्य रूपों मे महाकाव्यो का महत्व और उत्कप सर्वोपरि है। मानवता के प्रगति-पथ म महाकाव्य मील के पत्थरो के समान होते हैं वे व्यजित करते हैं कि मानव किस युग मे कहाँ तक विकास कर सका है। वस्तुत महाकाव्य मे ही व्यक्ति-निष्ठ जीवन का प्रतिनिधि रूप, समष्टिगत कार्यों का उच्चावय सचरण एव जातीय गौरव की प्रतिष्ठा का रूप अभिव्यक्ति पाता है। किन्तु यह खटकने वाली बात है

कि काव्य शास्त्र में महाकाव्य सम्बन्धी प्रतिमानों के प्रायः अनिश्चित होने एवं आलोचकों की धारणाओं में अनेकरूपता होने के कारण बहुत से महत्वपूर्ण काव्यों को न तो महाकाव्य के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई है, और न ही उनका समुचित मूल्यांकन किया जा सका है। महाकाव्य के सुनिश्चित लक्षणों के अभाव में साहित्य के इतिहास लेखकों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। यही नहीं, एक ही काव्य-कृति को कोई महाकाव्य कहता है कोई खण्डकाव्य, पुराण-काव्य, एकार्थकाव्य प्रेमाख्यानक काव्य और कोई चरित्र काव्य। अतः यह आवश्यक है कि महाकाव्य की समीचीन परिभाषा प्रस्तुत की जाये तथा अनेक काव्यों के सम्बन्ध में जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं, उनका निराकरण किया जाए। यह कहा जा सकता है कि इतना बड़ा कार्य केवल मध्ययुगीन महाकाव्यों के आधार पर सम्भव नहीं हो सकता है। लेकिन यह सत्य है कि हिन्दी साहित्य का मध्ययुगीन साहित्य वह मेरुदण्ड है जिसके बिना हिन्दी साहित्य का विशाल वृक्ष गौरव-गरिमा के साथ खड़ा नहीं रह सकता।

मध्ययुगीन महाकाव्यों में पद्मावत, रामचरितमानस तथा रामचन्द्रिका का तो विशिष्ट अध्ययन किया गया है लेकिन शेष महाकाव्य-व्रजविलास कृष्णचन्द्रिका, वीरसिंहदेवचरित राजविलास, छत्रप्रकाश सुजानचरित्र तथा हम्मीररासो—पर विद्वानों ने प्रायः ध्यान ही नहीं दिया। अधिकांश विद्वानों ने तो पद्मावत तथा मानस को छोड़कर अन्य किसी कृति को मध्ययुग में महाकाव्य ही नहीं माना है। इस युग के पौराणिक तथा ऐतिहासिक महाकाव्यों के अध्ययन के लिए जिस उदार दृष्टि की आवश्यकता थी वह उन्हें प्राप्त नहीं हुई। मेरी दृष्टि इन महाकाव्यों के विषय में थोड़ा उदार रही है। उदार से मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि जो रचनाएं महाकाव्य नहीं हैं उन्हें भी महाकाव्य मान लिया जाय। परन्तु जिन रचनाओं में काव्य तथा शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण सम्भावनाएं निहित हैं उन्हें मैंने महाकाव्य मानने में संकोच नहीं किया है। इस प्रबन्ध में प्रथम बार पौराणिक महाकाव्य-व्रजविलास तथा कृष्णचन्द्रिका—की चर्चा विस्तार से की गई है।

मध्ययुग के साहित्य का अध्ययन करते हुए मुझे लगा कि मध्ययुग का पूर्वार्द्ध तो प्रबन्ध-युग है ही उत्तरार्द्ध भी (मुक्तकों का युग होने पर भी) प्रबन्ध की दृष्टि से नगण्य नहीं है। इस काल में भी कई सुन्दर प्रबन्ध काव्य उपलब्ध होते हैं। इन कृतियों का देखने हुए यह स्पष्ट है कि राजाओं के आश्रय में उनके मनोरंजन के साथ कवियों ने अपने सामाजिक दायित्व की उपेक्षा नहीं की है। कुछ कवियों ने अपने नायक के कीर्तिगान के माध्यम से तत्कालीन सम्पूर्ण परिवेशजन्य स्थिति को व्यक्त कर दिया है। केशव, सूदन तथा लाल आदि कवियों के नाम इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी के मध्ययुगीन महाकाव्यों में नायक के स्वतन्त्र व्यक्तित्व पर शोधपरक कार्य का अभाव है। साहित्य विमर्श के समय विद्वानों ने इस युग के महाकाव्यों पर प्रकाश डालते हुए नायक पर भी प्रसंगवश विचार किया है। वस्तुतः नायकों पर विस्तार से विचार करने का उन्हें अवसर प्राप्त नहीं हुआ। महाकाव्यों पर शोध प्रबन्ध के रूप में कार्य करने वाले विद्वान श्री डॉ० शम्भूनाथसिंह का 'हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' अपने ढंग का स्तुत्य कार्य है। उनकी दृष्टि महाकाव्यों की सम्पूर्णता से मूल्यांकन करने की रहा है। डॉ० शकुन्तला दुबे ने हिन्दी काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास' में महाकाव्यों पर विचार किया, लेकिन किसी सुनिश्चित दृष्टि के अभाव में उनके निष्कर्षों में पूर्णता लक्षित नहीं होती है। डॉ० श्यामनन्दन किशोर ने 'आधुनिक हिन्दी महाकाव्य का शिल्प विधान' शीर्षक प्रबन्ध में मात्र परम्परा का पालन किया है। हिन्दी विद्वानों तथा अनुसन्धाताओं ने महाकाव्यों पर पृथक् पृथक् विचार किया है। इन विद्वानों से प्राप्त सामग्री का उपयोग मैंने अपनी स्थापनाओं के सन्दर्भ में किया है। प्रबन्ध का नियोजन इस प्रकार से किया है कि प्राप्त सामग्री को नवीनता के साथ प्रस्तुत किया जा सके।

इस प्रबन्ध में चौदहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के दस महाकाव्यों की परीक्षा करते हुए, उनके नायकों का विवेचन किया गया है। नायकों में क्रमबद्ध अध्ययन के लिए यथासम्भव अपने समय से पूर्ववर्ती तथा परवर्ती महाकाव्यों से भी सहायता ली गयी है। विशेष रूप से भक्ति कवियों के महाकाव्यों पर विचार करते समय वैष्णव परम्परा अवतारवादी मान्यता, प्राचीन महाकाव्य पौराणिक तथा पांचरात्र ग्रन्थों को मुख्य आधार बनाया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध पांच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में मध्ययुग से तात्पर्य हिन्दी साहित्य के मध्ययुग का आरम्भ तथा सीमा निर्धारण करते हुए महाकाव्य तथा नायक के शास्त्रीय स्वरूप पर विचार किया गया है। लक्षण निर्धारण की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों

की तुलनात्मक समीक्षा के द्वारा महाकाव्य के सामान्य लक्षणों को निर्धारित करने का प्रयास है। नायक शब्द के प्रचलित अनेक अर्थों का संकेत करते हुए देशी विदेशी आचार्यों के मतों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। महाकाव्य की दृष्टि से नायक निर्धारण के प्रतिमान तथा वर्गीकरण के द्वारा उनका सैद्धान्तिक आधार दिया गया है जिससे कि मध्ययुगीन महाकाव्यों के नायकों को निश्चित कसौटी पर कसा जा सके तथा उनका सम्यक् विवेचन किया जा सके।

द्वितीय अध्याय में मध्ययुगीन सूफी काव्यों के नायकों के स्वरूप पर विचार किया गया है। इस अध्याय में सूफी नायकों का उद्भव स्रोत देशी विदेशी सूफी कवियों में प्राप्त नायकों की सामान्य तथा विशिष्ट प्रवृत्तियाँ तथा काव्य-रूढ़ियों पर प्रकाश डालते हुए सूफियों की नायक दृष्टि को स्थूल रूप से स्पष्ट करने का प्रयास है। हिन्दी के मध्ययुगीन सूफी काव्यों की सूची तथा काव्य रूप का सामान्य चर्चा करते हुए पदमावत को ही महाकाव्य स्वीकार किया है। पद्मावत के महाकाव्यत्व तथा नायकत्व पर पूर्व निर्धारित कसौटी से विचार है, साथ ही प्रतिनायक के स्वरूप पर विचार करते हुए इस आदर्श प्रेमी नायक पर लगाये गये आक्षेपों का उत्तर देते हुए उनका यथोचित समाधान किया है। सभी सूफी नायकों का स्वरूप लगभग एक जैसा ही है परन्तु जायसी ने सूफियों की नायक दृष्टि का पालन करते हुए भी भारतीय साधना तथा भारतीय ऐतिहासिक दृष्टि को ग्रहण किया है। अन्त में सूफी नायकों में तुलना करते हुए निष्कर्ष दे दिया गया है।

तृतीय तथा चतुर्थ अध्याय में राम तथा कृष्ण पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। सम्पूर्ण मध्ययुगीन सांस्कृतिक तथा राजनैतिक चेतना के आधार यह दो दिव्य नायक ही हैं तथा इनका यह स्वरूप अनेक युगों में ऋषियों ज्ञानियों, सन्तों, महन्तों गृहस्थों योगियों, कवियों तथा आचार्यों के द्वारा इस युग तक इस स्वरूप को प्राप्त हुआ है यह ध्यान में रखते हुए इनके उद्भव और विकास पर प्राचीन साहित्य में प्राप्त विभिन्न रूपों पर दृष्टि रखते हुए विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय में राम का उद्गम स्रोत ऐतिहासिक रूप वेदों महाकाव्यों पुराणों बौद्ध और जैन साहित्य अनेक रामायणों प्राचीन ललित साहित्य वैष्णव सम्प्रदायों तथा भक्ति आन्दोलन को ध्यान में रख कर तुलसीराम तक प्राप्त उनके स्वरूप की चर्चा है ताकि यह स्पष्टता से समझा जा सके कि तुलसी तथा केशव ने कितना उनका प्राचीन तथा नवीन रूप ग्रहण किया कितना तत्कालीन युगीन प्रभाव तथा स्वयं की मान्यताओं धारणाओं से निर्मित किया है। कैसे-कैसे राम लौकिक तथा अलौकिक भाव भूमियों को आत्मसात करते हुए समस्त भारतीयों के आराध्य बन गये। मध्ययुगीन राम काव्य परम्परा का सर्वेक्षण करते हुए उनमें प्राप्त दो महाकाव्य, मानस

तथा रामचन्द्रिका के महाकाव्यत्व तथा नायकत्व पर पूर्व निर्धारित प्रतिमानों से विचार किया गया है। अन्त में वाल्मीकि रामायण, मानस तथा रामचन्द्रिका के राम की तुलना करते हुए निष्कर्ष दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय में कृष्ण के नायकत्व के विचारार्थ कृष्ण का एतिहासिक उल्लेख, कृष्ण तथा क्राइस्ट का विवाद, वेदों, उपनिषदों, पुराणों, अवतारवादी तत्वों, परम्पराओं का निरूपण किया गया है। कृष्ण के ऐतिहासिक तथा साम्प्रदायिक क्रम के साथ-साथ मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवियों में अभिव्यक्त विविध उपास्य रूपों, अर्चावतारों तथा लीलात्मक रूपों का उद्घाटन है। वेदों के कृष्ण, वासुदेव कृष्ण, गोपाल कृष्ण, महाभारत कृष्ण, राधा-कृष्ण के विभिन्न रूपों के क्रमिक अध्ययन के पश्चात आचार्यों तथा अन्य कलाओं में प्राप्त कृष्ण के स्वरूप पर विचार किया गया है। मध्ययुगीन कृष्ण काव्यों की प्रबन्ध-परम्परा की चर्चा करते हुए हमने ब्रज विलास तथा कृष्णचन्द्रिका को ही महाकाव्य माना है। पूर्व निर्धारित कसौटी के आधार पर इन कृतियों के महाकाव्यत्व तथा नायकत्व का विवेचन है, अन्त में निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं।

इस प्रकार इस प्रबन्ध में मध्ययुगीन महाकाव्यों के नायकों का साहित्यिक तथा एतिहासिक दृष्टि से आकलन, विश्लेषण, विवेचन तथा निरूपण हुआ है।

यह शोध प्रबन्ध आदरणीय गुरुवर डा० विजयेन्द्र स्नातक तथा डा० दयाशंकर जी मिश्र के पाण्डित्यपूर्ण एवं स्नेहसिक्त निर्देशन में लिखा गया है। इन गुरुवरों की प्रेरणा, प्रोत्साहन से ही यह कार्य पूरा हो सका है। तदर्थ मैं उनके चरणों में श्रद्धा से नत हूँ।

मैं पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० नगेन्द्र जी का भी विशेष कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे इस महत्वपूर्ण विषय पर शोध-कार्य करने की अनुमति प्रदान करते हुए उत्साहवर्द्धन किया है साथ ही समय समय पर अपने सुझावों से मेरा पथ प्रशस्त किया है। इस प्रयत्न में स्वामी योगानन्द जी मेरे सहायक रहे हैं उनकी महान कृपा से ही इस पथ पर चल सका हूँ। आदरणीय डा० दशरथ शर्मा, डा० ओमप्रकाश डा० हरिवंश कोछड़ तथा पं० कृष्णशंकर जी शुक्ल का मैं विशेष ऋणी हूँ, जिन्होंने अनेक प्रकार से मेरी सहायता की है। अन्त में उन सभी विद्वानों तथा मित्रों का आभारी हूँ, जिनकी कृतियों तथा सम्मतियों से मैं लाभान्वित हुआ हूँ।

दिल्ली विश्वविद्यालय
३ जून, १९७०

कृष्णदत्त पालीवाल

विषय-सूची

का प्रतीक, रामलीला का प्रतीक, आध्यात्मिक प्रतीक पुराण प्रतीक या सांस्कृतिक प्रतीक दिव्य शक्ति से अलङ्कृत, विचारो का व्यापकता कार्यों की उदात्तता कथा का मूल भाव इसका आधार अन्य चरित्रो द्वारा महत्ता की स्वीकृति नायक तथा नायिका कृष्ण का नायक-कोटि का निर्णय कृष्णचन्द्रिका कवि परिचय महाकाव्यत्व कृष्णचन्द्रिका का काव्य रूप व्यापक परिधियुक्त सुगठित कथानक प्रतिप्राकृत तत्व उदात्त नायक, रसात्मकता, उद्देश्य की ज्योति अभिव्यंजना शिल्प म शक्ति कृष्णचन्द्रिका म कृष्ण का नायकत्व, कथा का सूत्रधार, परब्रह्म हरि, सामाजिक कृष्ण प्रतीक कृष्ण, अवतरण प्रतीक महत्वपूर्ण व्यक्ति दृढ आत्मशक्ति प्रतिनिधि चरित्र दिव्य शक्ति से अलङ्कृत, विचारो की व्यापकता तथा कार्यों की उदात्तता, कथा का मूलभाव या रस का आधार अन्य पात्रो द्वारा नायक के महत्व की स्वीकृति प्रतिनायक, नायक कोटि का निर्धारण तुलनात्मक दृष्टि।

प्रथम अध्याय

महाकाव्य का सैद्धान्तिक विवेचन

मध्ययुग या मध्यकाल

हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रायः सभी विद्वानों ने एकमत से चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी के बीच तक के काल को मध्ययुग या मध्यकाल का नाम दिया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत से 'मध्ययुग या मध्यकाल' शब्द भारतीय भाषाओं में नया ही है। इस देश के प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के किसी शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में कृत, त्रेता, द्वापर, और कलि नाम के चार युगों की चर्चा मिलती है। ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों में भी इन शब्दों का प्रयोग मिल जाता है। धार्मिक मनोवृत्ति की प्रबलता या क्षीणता ही इस प्रकार के युग विभाजन के विश्वास का आधार है।[1] धर्म की दृष्टि से हम लगातार पतनशील रहे हैं, जो त्रेता में थे, वह द्वापर में नहीं रहे, द्वापर में थे, वह कलियुग में नहीं रहे। यह विश्वास कि कलियुग पाप की पराकाष्ठा तथा अंतिम युग है, इस युग में भगवान विनाश करेंगे तथा पुनः हम कृत या त्रेता की तरफ मुड़ पड़ेंगे। आजकल शिक्षित लोग जब मध्ययुग या मध्यकाल की चर्चा करते हैं, तब उनका तात्पर्य भारतीय युग परम्परा के मध्ययुग (द्वापर त्रेता) से नहीं होता है। उनका अभिप्राय भारतीय इतिहास के मध्ययुग से होता है, जिसका आरम्भ हर्षवर्द्धन के काल से तथा अन्त औरंगजेब के निधन तक माना जाता है। साहित्य के सन्दर्भ में मध्यकाल के साहित्य बोध को जानने के लिए अनिवार्य है कि 'मध्यकाल' से तात्पर्य क्या है। "इस शब्द का एक स्पष्ट अर्थ आधुनिक युग का पूर्ववर्ती काल है और दूसरा अर्थ स्पष्ट है प्राचीन काल के बाद का समय।"[2]

व्यापक दृष्टि से देखने पर मध्ययुग शब्द का भी अपना इतिहास है। वस्तुतः यह शब्द अंग्रेजी के मिडिल एजेज के अनुकरण पर बना लिया गया है। यूरोपीय इतिहास में रोमन साम्राज्य के पतन के बाद से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक अभ्युदय के पूर्व तक के काल को मध्ययुग या मध्यकाल कहा जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चिमीय विचारकों ने साधारणतः सन् ४७६ ईसवी से लेकर १५५३ ईसवी तक के काल को मध्ययुग कहा है। हाल की जानकारियों से यह मालूम हुआ कि इस प्रकार के नामकरण का कोई विशेष उल्लेख योग्य कारण नहीं था। असल बात यह है कि

---

१ मध्ययुगीन धर्म-साधना पृ० ६

२ आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—मध्ययुगीन बोध का स्वरूप, पृ० १२ १३

मध्ययुग शब्द का अर्थ काल के अर्थ में उतना नहीं होता जितना एक खास प्रकार की पतनोन्मुख और जड़ हो गई मानसिकता के अर्थ में होता है।[1] यूरोप में मध्यकाल का मनुष्य विशालता से संकीर्णता की ओर चल पड़ता है तथा वह 'अन्धकार युग' (डार्क एजेज) में प्रवेश करता है। धार्मिक अनास्था तथा जीवन मूल्यों की अनिश्चितता के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि दृष्टि से सामना होता हुआ पन्द्रहवीं शताब्दी में (पोमर काल तक) दिशा प्राप्त करता है।

भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग यूरोप के इतिहास का मध्ययुग ठहरता है। भारतीय इतिहास में गुप्त साम्राज्य के साथ ही स्वर्ण-युग प्रवेश करता है। इससे पूर्व का काल एक अंधा युग है जिसमें ऐतिहासिक सामग्री, साहित्य, कला का उल्लेख नहीं मिलता है। गुप्त काल से दिशा-बोध प्रारम्भ होता है, तथा प्रत्येक क्षेत्र में मानव की उपलब्धियाँ महान होती जाती हैं। विक्रम की छठी शताब्दी तक यह प्रगति अनवरत मिलती है। समुद्रगुप्त, अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य तथा हर्षवर्द्धन के बाद का काल अराजकता का है। धार्मिक दृष्टि से तन्त्र मन्त्र चल पड़े हैं राजनीतिक धरातल पर देश की एकता नष्ट हो जाती है तथा देश तबाही की ओर दौड़ पड़ता है। भारतीय इतिहास का प्राचीनकाल हर्षवर्द्धन पर आकर टिक जाता है। यहीं से भारतीय इतिहास में मध्ययुग पूर्व मध्यकाल उत्तर मध्यकाल मुगल साम्राज्य के पतन तक रहता है। ब्रिटिश शासन के प्रवेश-काल से ही आधुनिक काल का इतिहास में आरम्भ हो जाता है।

विश्व इतिहास का मध्ययुग सातवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक माना जाता है।[2] किन्तु भारतवर्ष में सातवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी

---

१ वही, पृ० १७

२ 'विश्व के इतिहास का मध्ययुग सातवीं आठवीं शती से प्रारम्भ होता है। भारतीय इतिहास में भी मध्ययुग के लक्षण सातवीं शती के अन्त से ही मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं। इसलिए ऐतिहासिकों ने सुविधा के लिए ६५० १२०० ई० के काल को पूर्व मध्ययुग और १२०० १७०० ई० के काल को उत्तर मध्ययुग माना है। परन्तु मध्ययुग की कल्पना केवल तिथि क्रम के ऊपर अवलम्बित नहीं है उस युग की प्रमुख राजनीतिक सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक प्रवृत्तियों के कारण उसे मध्ययुग कहते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में काल विभाजन एक विचित्र प्रकार से किया जाता है। हिन्दी जैसी लोक भाषाओं का उदय स्वयं मध्ययुग की एक प्रक्रिया है क्योंकि भारत पर बर्बर आक्रमणों ने देश में अंधयुगीन अवस्था उत्पन्न कर दी और वैज्ञानिक तथा सामाजिक क्रान्ति के अभाव में प्राय १८५७ तक मध्ययुग का ही प्रभाव रहा। इस प्रकार हिन्दी का अपभ्रंश काल वीरगाथाकाल भक्तिकाल तथा रीतिकाल सभी मध्ययुग के अन्तर्गत आ जाते हैं, और हिन्दी के मोटे तौर पर दो ही काल हो सकते हैं—मध्ययुग और आधुनिक युग।'

—डा० रामावली पाण्डेय—हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में भारतीय मध्ययुग (आलोचना पत्रिका—१९५४, जनवरी) पृ० ९

के अन्त तक बारह सौ वर्षों का काल मध्यकाल माना जाता है।[1] इतिहास का पूर्व मध्ययुग बारहवीं शताब्दी तक तथा उत्तर मध्ययुग तरहवीं शताब्दी से आरम्भ होकर उन्नीसवीं शताब्दी तक चलता हैं। हिंदी साहित्य का मध्यकाल इतिहास के उत्तर मध्यकाल से (१२०० १८५७) आरम्भ होता है तथा उसका अन्त भी इसी काल म हो जाता है।

इतिहास का विभाजन

अपने बहुत व्यापक अर्थ म इतिहास मानव जीवन के विकास की क्रमबद्ध कहानी है, जिसमे निरन्तरता निहित है। इतिहास विभिन्न मनुष्यों के कर्मों की भिन्न गाथा कहता हुआ अपनी एकता, विभिन्नता म भी स्थापित करता है। विभिन्नता के अन्तस्तल म एकता निहित होने के कारण ही विकासवाद का सिद्धान्त क्रियाशील रहता है। उसके विकास की एकता कभी भी खण्डित नहीं पाती चाहे गति मे शिथिलता अवश्य आ जाये। इस एकता के होने पर भी सुविधा के लिए इतिहास का विभाजन करना पडता, है जबकि इतिहास अनवरत एकता की कडी है।[1] भारतीय इतिहास, प्राचीन भारत, मध्यकालीन भारत तथा आधुनिक भारत तीनो कालो म मोटे तौर से विभाजित किया जाता है। कुछ विद्वानों ने भारतीय इतिहास को हिन्दू-काल, मुस्लिम काल तथा ब्रिटिश काल म भी विभक्त किया है।[2] लेकिन यह विभाजन आज असत्य तथा अवैज्ञानिक सिद्ध हो गया है, क्योंकि प्राचीन काल म हिन्दुओं के साथ हूण, कुषाण, मगाल, शक आदि अनेक अनार्य जातियाँ मिल गई हैं, इन भिन्न जातियों ने देश म शासन भी किया, अपने धार्मिक देवी देवता लिए दिए भी, अत प्राचीन काल का हिन्दू काल कहना समीचीन है।

मध्यकाल को मुस्लिम-काल कहना भी न्यायसंगत नहीं है। भारतीय इतिहास म ऐसा कोई समय नहीं है जब केवल मुस्लिम साम्राज्य रहा हो। आवागमन के साधनों की कमी तथा विशाल देश की भौगोलिक सीमाओं के कारण भी देश मुस्लिम सुलतानों के एकछत्र झण्डे म नहीं आ सका। अलाउद्दीन ने उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत का बहुत हद तक अपनी सत्ता म कर लिया था किन्तु यह सुलतान भी हिन्दू राजाओं का समूल नष्ट नहीं कर सका। बुन्देलखण्ड तथा रणथम्भौर के राजाओं ने उससे लगातार युद्ध जारी रखा। दक्षिण का शक्तिशाली हिन्दू राज्य मुगलों के सभी बादशाहों से लगातार लोहा लेता है। मुगल बादशाह औरंगजेब की जिन्दगी तो उनसे युद्ध करते ही समाप्त हुई। मुगलों के समय म राजपूतों के पतन काल म मराठों ने मुगलों से टक्कर ली तथा अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण तक वे जूझते रहे।

---

१ भगवतशरण उपाध्याय—विश्व इतिहास की रूपरेखा पृ० ५

२ के० एम० पणिक्कर—भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण, पृ० ८

३ वही।

अत मुसलमानो का पूर्ण आधिपत्य कभी नही रहा।

'ब्रिटिश काल को आधुनिक काल कहना भी गलत है। भारत म ब्रिटिश भी एकछत्र सत्ता स्थापित नही कर सके। हिन्दुओ तथा मुसलमानो ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए उनसे युद्ध किया, उसका सबसे बडा विस्फोट १८५७ की क्रांति म दिखाई देता है।

मध्यकाल का आरम्भ

इतिहास म परिवर्तन कारण-काय परिणाम स बहुत धीमे होता है। अतएव एक काल के अवसान तथा दूसरे काल के आवागमन की कोई एक निश्चित तिथि निर्धारित कर देना बहुत कठिन है। यद्यपि अचानक या अनजाने ही मानव जाति के इतिहास मे ऐसी घटनाए घट जाती हैं यद्यपि कभी-कभी ये महत्वपूर्ण घटनाए निश्चित तिथि भी प्राप्त कर लेती हैं जिनका राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक जीवन पर अमिट प्रभाव पडता है। लेकिन मानव की परम्परा गत चली आती हुई युगो की मनोवृत्तियो धारणाओ तथा सस्थाओ म यह परिवर्तन बहुत धीमा आता है। अत प्राचीन काल का अन्त और मध्यकाल का आरम्भ किसी निश्चित तिथि पर नही हुआ, परन्तु कुछ निश्चित तिथियो म कुछ एसी महत्वपूर्ण घटनाए घटी है, जिनका हमारे इतिहास पर बहुत प्रभाव पडा है।

मध्यकाल के आरम्भ की ऐसी निश्चित तिथि तथा घटना उत्तरी भारत के महान प्रतापी हिन्दू सम्राट हषवद्धन की मत्यु तिथि (६४७ ई०) मानी जाती है। हष की मत्यु स उस महान व्यवस्था का लोप हो गया जिसने चार शताब्दियो तक भारत को हिन्दू राज्य बनाए रखा। हष के बाद प्रतापी सम्राटो का अकाल पड गया, राजनतिक अराजकता उत्पन्न हो गई, राजपूत खण्ड-खण्ड हो आपस म लडने लगे, प्रतिभाशाली ब्राह्मणो के मस्तिष्क का लोप हो गया। राजपूतो ने युद्ध व्यवसाय बना लिया। हष के बाद धार्मिकता भी व्यापकता स शून्य हो गयी भिन्न वर्गो तथा सम्प्रदायो म सघष बढने लगा। जाति प्रथा जटिल तथा स्त्रियो की दशा बिगडती गई।

इस्लाम का उत्कष एक बहुत प्रभावशाली घटना है, लेकिन यह घटना भी किसी तिथि को निर्धारित नही जा सकती। ७१२ ई० म सिन्ध पर मुहम्मद बिन कासिम का आक्रमण हुआ पर कोई स्थायी प्रभाव नही पडा। ग्यारहवी शताब्दी म महमूद गजनवी के आक्रमण स देश काप गया। उसने मन्दिरो को तोडा देश को बबरता स लूटा, रौंदता रहा। बारहवी शताब्दी म मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। वह स्थायी रूप स भारत का मुसलमान राज्य बनाना चाहता था। १२०६ ई० म गोरी स्वगस्थ हो गया तथा ऐबक गद्दी पर बठा। कुतुबुद्दीन ऐबक का राज्य सत्ता पर आरूढ होना बहुत महत्वपूर्ण घटना है। देश म मुसलमानो के पर जम गये तथा सभी क्षेत्रो म उनका प्रभाव बढने लगा।

मध्यकाल का अन्त

इतिहास का यह जटिल प्रश्न है कि मध्यकाल की अन्तिम सीमा रेखा कहा है। कुछ विद्वान मध्यकाल का अन्त सोलहवी शताब्दी के अन्त मे मानते हैं। लेकिन इसी समय कुछ एसी घटनाए घटी, जिनमे समस्त देश की जन चेतना मिली हैं। भक्ति आन्दोलन न सामूहिक जन चेतना को अपने मे मिलाते हुए देश के भावी इतिहास पर बहुत प्रभाव डाला। इस आन्दोलन मे मराठा तथा सिक्खो को दिशा दी, उन्होने मुसलमान तथा अग्रेजो से हिन्दुत्व की रक्षा के लिए युद्ध किया। सामाजिक क्षेत्र म सन्तो न बडा काम किया। स्वामी रामानुज, रामानन्द, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य, चैतन्य, कबीर, नामदेव गुरु नानक, तुकाराम दादू दयाल, तुलसी आदि सन्तो, महन्तो ने सुधार की आवाज उठाई, अछूत जो लगातार इस्लाम अपना रहे थे, उन्हे मुसलमान होने से बचालिया। भक्ति आन्दोलन ने हिन्दू मुसलमानो के बीच की खाई का पाट दिया तथा दोनो ने धार्मिक सहिष्णुता के साथ जीना शुरू किया।

सोलहवी शताब्दी म ही यूरोप निवासियो ने भारत के लिए सामुद्रिक मार्ग का अन्वेषण किया। वास्कोडिगामा इसी समय यहा आया। आधुनिक इतिहास व्यवसाय का इतिहास अग्रेज डच फ्रांसीसियो के आने से यही पर आरम्भ हुआ। मुगल साम्राज्य के पतन काल म इन जातियो न सत्ता के लिए युद्ध लडा तथा अन्त म ब्रिटिश राज्य की नींव ही जम गई।

सोलहवी शताब्दी मे ही (१५२६ ई०) बाबर ने पानीपत के मैदान मे इब्राहीम लोदी पर एतिहासिक विजय प्राप्त की। इस तिथि से ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे इस देश का इतिहास बदलने लगा। इसी से सोलहवी सदी ही नवयुग का प्रतीक लगती है। लेकिन भक्ति आन्दोलन सब कुछ नही था, मुगल बादशाहो की बढ़ती हुई शक्ति के समक्ष उसे झुकना पडा। विलासिता ने भक्ति को शीघ्र पछाड दिया। बाबर, हुमायू अकबर का काल धार्मिक सहिष्णुता मे व्यतीत हुआ, लेकिन जहागीर से औरगजेब तक धार्मिक कट्टरता चरम सीमा पर पहुँच गयी। मध्यकालीन व्यवस्था चलती रही जिसका अन्त (१७०७) म औरगजेब के मृत्यु के साथ हुआ। औरगजेब की मृत्यु स परिवर्तन के चिन्ह प्रकट हुए, लेकिन आधुनिक प्रवृत्तियो का विकास बहुत बाद म हुआ। १९५७ ई० के प्लासी युद्ध से भी बडा परिवर्तन आया तथा अग्रेजी सत्ता की नीव जम गई। अग्रेजो के आगमन से जीवन के सभी क्षेत्रो मे नवीन वातायन खुल पडे। सन १८५७ म एक बार फिर हिन्दू तथा मुसलमान पराजित हुए तथा अग्रेज शासन स्थिर तथा अजेय बन गया। अत मध्यकाल का आरम्भ हर्षवर्द्धन की मृत्यु तथा अन्त भारत म मुगल साम्राज्य का पूर्ण पतन और अग्रेजो की पूर्ण राजनीतिक स्थिरता के साथ होना है।

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल

भारतीय इतिहास का उत्तर मध्यकाल (१२०० १८५७) अपने भीतर हिन्दी साहित्य

के आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल का सुमाहित कर सका है। धर्म की दृष्टि से यह उत्तर मध्यकाल धार्मिक क्रियाओं में विकृतियों का काल है। इसे साहित्य में 'तान्त्रिक काल' भी कहा जा सकता है, क्योंकि तान्त्रिक भावना जिसमें शारीरिक व्यभिचार परक भोगवाद प्रबल था, यही काल है।[1] इसी काल में महायान, हीनयान तथा वज्रयान ने सहजयान को प्रादुर्भूत किया। शैव, शाक्त, वैष्णव सब में यह रहस्यमयी साधना चल पड़ी। लोगों पर शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव वैराग्य को जन्म देने लगा। सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से देश को एक बहुत बड़े संकट का सामना करना पड़ा। इस समय में भक्ति आन्दोलन ने देश में अमृत-वर्षा का कार्य किया तथा उसने जीवन के शाश्वत मूल्यों, मान्यताओं, स्थापनाओं धारणाओं के माध्यम से अमृत अमर जीवन मूल्यों को तराशने का प्रयास किया। इस भक्ति आन्दोलन में निर्गुण सगुण हिन्दू, मुसलमान, कुलीन अछूत, गृहस्थ सन्त सब मिल गये एवं अत्यन्त व्यापक भूमिका पर देश का गठन हुआ। देश अपनी प्राचीन विरासत पर गर्व कर उठा तथा नवीन सांस्कृतिक पुनरुद्धार की धारा बढ़ा पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा वेदान्त दर्शन का बोलबाला रहा।

सांस्कृतिक दृष्टि से भक्ति आन्दोलन का व्यापक प्रभाव तेरहवीं चौदहवीं शती से आरम्भ हुआ। रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य कबीर नानक, तुलसी, सूर, जायसी आदि सभी ने इस दिशा में प्रचार कार्य किया। इसी समय उत्तरी भारत में दक्षिणी भारत से भक्ति धारा का आविर्भाव हुआ। पं० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति आन्दोलन के प्रभाव को मानते हुए हिन्दी साहित्य का मध्यकाल (सं० १३७५ १६००) तक स्वीकार किया। उन्होंने साहित्य के मध्यकाल को प्रवृत्ति की दृष्टि से पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल सं० १३७५ १७००) तथा उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल सम्वत १७०० १६००) में विभाजित भी किया।[2] इस पूर्व मध्यकाल में निर्गुण सन्तों की धारा सूफी प्रेम मार्गी धारा, राम भक्ति मार्गी धारा तथा कृष्ण भक्ति मार्गी धारा के प्रभाव से विपुल तथा उदात्त कोटि के साहित्य का सृजन हुआ। जब पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी में भक्ति-आन्दोलन अपने चरम शिखर पर था, तब आचार्यों तथा कवियों ने इसका प्रबलता से मण्डन किया। किन्तु सोलहवीं शताब्दी में ही भक्ति की उष्मा चुक गई, वैराग्य तथा भगवान से आदमी ऊब गया। झोपड़िया से कवि भागने लगा तथा राजदरबारों में आकर इसने शरण ली। पतित विलासी राजाओं सामन्तों तथा रईसों ने इन्हें शरण देकर अपने मन बहलाव की कमी को पूरा किया। आध्यात्मिक आनन्द पर वासनात्मक विषयानन्द की विजय हुई तथा कवि का सम्पूर्ण भाव काम शृंगार पर न्योछावर होता रहा। 'आत्म प्रतिष्ठा' की काली छाया से युग का व्यक्ति पीड़ित था तथा केवल ऐहिक भोगवाद ही नारी के माध्यम से शेष रह गया

१ सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य-कोश पृ० ५६३ ६४ भाग १

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास (काल विभाग)

था।'[1] उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल के कुछ विरक्त भक्तों को अपवाद रूप में छोडकर सभी कवि किसी न किसी आश्रय दाता के यहा जम गय थे। अकबरी दरबार मे गग, नरहरि, बन्दीजन नवरत्न म रत्न रहीम, टोडरमल, बीरबल भी हिन्दी काव्य का सजन करते रहे।[2] केशव, भूषण, मान, सूदन, जोधराज आदि सभी कवि भी राजदरबारी ही रहे अत आत्मा का उदघोष इस काव्य मे नही है। जीवन-मूल्य भक्तिकाल के ही इस काल मे भी मान्य रहे यही कारण है कि भक्ति का आवरण डाल कर श्रृंगार चर्चा होनी रही। जीवन दृष्टि के सकुचित हो जाने से रामचरित मानस के स्थान पर 'ब्रज विलास' की ही रचना हो सकती थी।[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी द्वारा निर्धारित मध्यकाल की पूर्व तथा उत्तर सीमा आज सभी विद्वानो को मान्य है। यह आ० शुक्लजी की भाति मध्यकाल से हमारा तात्पर्य भक्तिकाल तथा रीतिकाल से ही है।

आचार्य शुक्ल की यह मान्यता है कि इतने बडे उलट फेर के पीछे हिन्दू जन समुदाय पर बहुत दिना तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?[4] किन्तु शुक्लजी की यह धारणा उस काल के इतिहास तथा साहित्य के आधार पर समीचीन नहा कही जा सकती। मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन राजनीतिक पराधीनता से प्रभावित न होकर शुद्ध वष्णव परम्परा म धार्मिक धारा के रूप मे आरम्भ हुआ। इस नवजागृत वष्णविक चेतना ने उत्तरी भारत की राजनीति तथा धर्म-नीति को प्रभावित किया। डा० राजबली पाण्डेय ने ठीक ही कहा है कि 'यद्यपि उत्तर भारत म हिन्दू राजवश तो तेरहवी शती के प्रारम्भ मे ही समाप्त हो गये थे तथापि ऐसे छोटे छोटे जमीदार बने रहे, जिनके पास सनिक शक्ति भी थी और वे बराबर मुस्लिम सत्ता से विद्रोह करते रहे। जहाँ तक जनता का प्रश्न है (विशेषकर उत्तर प्रदेश और बिहार म) धार्मिक दृष्टि से इस्लाम से उसने कभी हार न मानी। उसके बहुत से मन्दिर तोडे गय, किन्तु उसने बराबर नये मन्दिरो का निर्माण किया और अपनी धार्मिक चेतना बनाये रखी। राजनीतिक आदर्श और आशा भी कभी लुप्त नही हुई। राणा सग्रामसिंह और हेमचन्द्र (हेमू) के बाद भी जब अकबर का प्रबल प्रताप चारो ओर फल रहा था तब रानी दुर्गावती तथा राणा प्रताप आदि ने स्वतन्त्रता की आग बुझने नही दी। असफलताए हुई किन्तु निराशा ने भारतीय जनता को कभी आक्रान्त नही किया।'[5] नवजागत वष्णव धर्म की चेतना म लोकसग्रह का

---

१ डा० नगेन्द्र—रीतिकाव्य की भूमिका पृ० १३२
२ डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ६०
३ डा० नगेन्द्र—रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १६
४ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० ६३
५ आलोचना—पत्रिका, पृ० ११ १६५४ जनवरी अक।

भाव अधिक था, जिसके उन्नायक तथा संस्थापक रामानन्द तथा तुलसीदास कहे जा सकते हैं। वष्णव भक्तों ने भगवान के चरणों में अपने को टेक दिया, लेकिन मनुष्य के सामने (जमींदार हो या मुगल बादशाह) इन्होंने मस्तक 'सिर धुनि गिरा लागि पछिताना' समझकर कभी भी नहीं झुकाया। वीरगाथाकाल की राजवश तथा चारण प्रवृत्ति के प्रति उनमें आक्रोश का भाव प्रबल था। यही कारण है कि राम तथा कृष्ण भक्तों की लोक संग्रही भावना में निराशा का संकेत मात्र तक नहीं है। तुलसीदास, सूरदास कबीरदास आदि सभी दास कवियों का 'दास बोध' तो पतित जाति को अभ्युत्थान देने का महान प्रयास था। विष्णु की राम तथा कृष्ण रूप की कल्पना में निराशा उदासी या खिन्नता का नाम नहीं है। इस प्रकार इस भक्ति आंदोलन ने मुगलों से देश की धार्मिक पवित्रता नष्ट नहीं होने दी। इस पूर्व मध्यकाल में (तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक) धर्म ही प्रेरक शक्ति के रूप में विद्यमान रहा है।

उत्तर मध्ययुग में (सत्रहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक) राजनीतिक विघटन, सामाजिक अव्यवस्था और सांस्कृतिक ह्रास का क्रम चरम-सीमा को पहुँच गया। आध्यात्मिक एकता सामाजिक भावना और जीवन के सोद्देश्य के मूल्य अब रूढ़िग्रस्त तथा जड होने लगे। साथ ही निर्माण की शक्तियों में क्षीणता आ गई। मुगलों का ह्रास तथा नवाबों के उदय ने अति भोग तथा विलासिता को जन्म दिया। उसके प्रभाव में साहित्य भी अलग नहीं रह सका। भोग विलास का आधिक्य, धार्मिक शथिल्य तथा राजनीतिक सकोच दृष्टि ने ही रीतिकाल को जन्म दिया। निम्न स्तर का लोग धर्म तथा सामाजिक कर्त्तव्यों में लिपट कर जीते रहे लेकिन उच्च स्तर के व्यक्तियों में एक महान परिवर्तन अवतरित हुआ। वज्रयान तथा मन्त्रयान की साधनात्मक परिणति बहुत बुरी हुई। प्रत्येक अपनी शक्ति (वज्रयोगिनी) के साथ प्रादुर्भूत होने लगा। स्त्री सम्भोग को ही साधना का साधन बनाना पड़ा। सगुण भक्ति से ईश्वर का लोकसंग्रही और मर्यादावादी ऐश्वर्य जो प्राप्त हुआ था, वह ठुकराया जाने लगा। इस काल के घोर भावुक, कोमल तथा विलासी स्वभाव वाले लोगों को धनुर्धारी राम के बदले भागवत के रसिया बिहारी कृष्ण का रूप अधिक भाया। इसके लिए भी प्रेरणापूर्ण मध्ययुगीन साहित्य से मिली थी। 'भागवत पुराण इसका निर्भर था और जयदेव आदि कवि इसके उद्गाता। यह मधुर भाव और उससे प्रेरित साहित्य जहाँ सामन्तवादी और विलासी समाज से मिला, वहाँ उसने रीति काव्य तथा नायिका भेद का रूप ग्रहण कर लिया। गोपी भाव तन्मयता और मनचाहा के बदले मानवी विलासों और वासनाओं का माध्यम बन गया। इसका बहाव आधुनिक युग की सामाजिक तथा राजनीतिक क्रान्तियों से ही रुक सका।'[1]

अस्तु मन्तव्य यह है कि हिन्दी साहित्य के मध्ययुग का सामाजिक परम्परा के सन्दर्भ में सांस्कृतिक मूल्यांकन के साथ साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर तेरहवीं

1 आलोचना (पत्रिका) १९५४, जनवरी अंक पृ० २२

शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक स्वीकार करना चाहिए।

महाकाव्य का स्वरूप

महाकाव्य का महामानव के महनीय कार्यों के द्वारा युग-युग के मानवी को अपनी जीवन्त-ज्योति से प्रभावित करता है साथ ही महाकाव्य तथा युग जीवन का पारस्परिक सम्बन्ध इतना प्रगाढ है कि दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। युग के अखण्ड चित्र के साथ, मानव मूल्यो के प्रति जितनी सजगता महाकाव्य मे मिलती है, उतनी काव्य विधा के किसी भी अन्य रूप मे नही। जीवन का अन्तरग एव बहिरग यथार्थ एव आदर्श महाकाव्य मे प्रतिबिम्बित होता है। महाकवि की दृष्टि व्यष्टि तथा समष्टि दोनो का आत्मसात करती है इसीलिए महाकाव्य का आयाम विराट तथा जीवन फलक व्यापक होता है।

महाकाव्य को लक्षणबद्ध करने के लिए विद्वानो ने अनेकानेक प्रयास किए, किन्तु उसकी विराटता के कारण ये प्रयास, प्रयास मात्र ही सिद्ध होते रहे और वे किसी सुनिश्चित लक्षण के अन्तगत उसे समेट नही पाये हैं।[1] वास्तव म महाकाव्य को किसी सीमित मत म बद्ध करना कोई सहज काय भी नही।[2] इसका प्रधान कारण स्पष्ट है कि इसका सीधा सम्बन्ध युग-जीवन से है, विश्व, मानव तथा समाज से है। युग-जीवन मे नवीन भाव बोध तथा ज्ञान-बोध के आते ही प्राचीन जीवन मूल्य दब जाते हैं तथा नवीन जीवन मूल्य सामने आ खडे होते हैं।[3] रूढ अथवा जजरता मानदण्ड परिवर्तनकारी विकास म बाधक बन जाते हैं। अत उन्हे त्याज्य समझना भी उचित है। इसका एक स्पष्ट प्रमाण यह भी है कि भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानो ने समय समय पर महाकाव्य के जो प्रतिमान निर्धारित किए, व सुस्थिर नही रह सके। कभी वह कथानक पर लक्ष्मण रेखा खीचता रहा है। महाकाव्य म 'ऐसा होना चाहिए'

---

१ 'ससार मे जितने राष्ट्र और जितने कवि है, महाकाव्य की सचमुच ही उतनी परिभाषाए हैं और महाकाव्य रचना के उतने ही नियम हैं।''
—गोपीकृष्ण 'गोपेन'—विदेशों के महाकाव्य 'दी बुक आफ एपिक' (अनुवाद) प्रयाग १९४६, भूमिका भाग, पृ० १३

२ And we may remind ourselves and before all things, that the term Epic definite enough in meaning can bear no narrow interpretation
—Dixon English Epic and Heroic poetry, P 18

३ ''प्रधान तथा अनिवाय लक्षण ही स्थाई, शाश्वत और युगों युगों तक चलने वाले होते हैं, तथा गौण लक्षण प्रत्येक कवि तथा प्रत्येक युग मे परिवर्तित होते रहते हैं।'' —डा० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र' रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध काव्य, पृ० १५

इस दुराग्रह ने कवि की प्रतिभा को सीमित करके एक प्रकार से मार्ग रोक दिया था। इससे कवि की मुक्त तथा सहज आत्माभिव्यक्ति के लिए निरन्तर ही बाधा उपस्थित हुई है। लक्षण पालन का सर्वाधिक आग्रह संस्कृत आचार्यों में था।[1] इसी कारण इनकी परिभाषाओं में आत्माभिव्यक्ति तथा कवि उत्साह सहजता के लिए स्थान रहा है।

द्वितीय समस्या यह भी सामने आती है कि भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की अधिकांश परिभाषाएँ पुरातन महाकाव्यों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत की गई सी जान पड़ती हैं। उदाहरणार्थ एक वंश का एक राजा अथवा एक ही वंश के अनेक राजा भी महाकाव्य के नायक हो सकते हैं इस प्रकार की धारणा कालिदास के 'रघुवंश' से ग्रहण की हुई जान पड़ती है। कविराज की यह बात शायद उस समय तो उपयुक्त लगती रही होगी जिस समय इस प्रकार के महाकाव्य निर्मित किए गए थे। परन्तु आज के युग में इन मानदण्डों का पालन करना कठिन है। ये रूढ़ प्रतिमान 'मानस', पदमावत' 'साकेत' 'कामायनी' आदि महाकाव्यों पर लागू नहीं किए जा सकते है। कथानक वर्णन वर्णविषय तथा नायक विषयक प्राचीन मान्यताएं आज बदल रही हैं। आज महाकाव्य में देवता, राजा या सद्वंशीय क्षत्रिय ही को नायक नहीं बनाते हैं अपितु आज तो कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या समाज का क्यों न हो, नायक हो सकता है। अधुनातन कवि तो केवल सूक्ष्म मनो वृत्तियों के ही आधार पर महाकाव्यों की रचना करने लगे हैं, जैसे सुमित्रानन्दन पन्त जी का 'लोकायतन'।

अरस्तू द्वारा निर्धारित ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के लक्षण चाहे 'इलियड' या 'ओडेसी' पर ठीक उतरते हों परन्तु 'रिवोल्ट ग्राफ इस्लाम', 'पराडाइज लास्ट' आदि महाकाव्यों के लिए वे लक्षण मान्य नहीं हैं। परवर्ती, रोमांचिक, ऐतिहासिक शास्त्रीय तथा अलंकृत महाकाव्यों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। विद्वानों ने आधुनिक काल में आकर लक्षण सम्बन्धी इन रूढ़ियों का अनुभव किया इसीलिए केर, डिक्सन बावरा तथा एवरक्राम्बी आदि विद्वानों ने रचना के आकार

---

१ 'अधिकांश संस्कृत आचार्यों ने भी रामायण तथा महाभारत को पूर्णत आदर्श न मानकर अलंकृत महाकाव्यों को ही लक्ष्य ग्रन्थ माना। दण्डी हेमचन्द्र विश्वनाथ आदि के सामने कालिदास, अश्वघोष भारवि तथा माघ आदि के महाकाव्य ही प्रमुख थे। हिन्दी महाकाव्यों का अपना व्यक्तित्व भी है। अत संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्धारित लक्षण हिन्दी के सभी महाकाव्यों को अपनी सीमा में बद्ध नहीं कर सके। यदि कुछ परिभाषाओं को सर्वान्त मान लिया जाए, तो पृथ्वीराज रासो पदमावत कामायनी, कुरुक्षेत्र, एकलव्य आदि को ही नहीं रामचरित मानस जैसे स्वयंसिद्ध महाकाव्य को भी विशुद्ध महाकाव्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।' —डा० श्यामनन्दन किशोर— आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ० ३२

पर बल न देकर उसके सार्वभौमिक उद्देश्य पर बल दिया है। बड़े आश्चर्य मे डालने वाली बात लगती है, कि हम रामायण तथा महाभारत को तो सस्कृत-साहित्य मे 'एपिक' शब्द से अलकृत पाते हैं, किन्तु अन्य कृतियो का आचार्यों ने 'एपिक' से अभिहित नही किया। दूसरी ओर भामह, दण्डी, रुद्रट आदि ने रामायण तथा महाभारत का धर्म ग्रन्थ समझ कर छोड दिया तथा उनके महाकाव्यत्व की चर्चा तक नही की। कालिदास, अश्वघोष भारवी आदि के महाकाव्यो को ध्यान मे रखकर ही तत्सम्बन्धी लक्षण प्रस्तुत की हैं तथा इन्ही के आधार पर महाकाव्य की कसौटियो का निर्माण किया। परन्तु इन आचार्यों के घिसे पिटे प्रतिमान सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक नही हो सके। लक्षणो की पूर्ति मात्र से ही रचना महाकाव्य हो, यह कहना अनुचित है और प्रतिभा के मुक्त विकास मे बाधक भी। कठघरे मे महाकाव्य को सीमित करना अन्याय है। अत आकार को ही महाकाव्य का मानदण्ड नही मानना चाहिए। सक्षिप्त आकार मे भी मानवता को शाश्वत मूल्यो से युक्त रचना महाकाव्योचित औदात्य धारण कर सकती है, अत आठ या आठ से अधिक सर्गों की चर्चा ही व्यर्थ है।

इसीलिए इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि इन रूढ लक्षणो को उसी रूप मे स्वीकार न करके आज के वैज्ञानिक युग मे उन पर विचारोपरान्त तत्सम्बन्धी धारणा बनानी चाहिए। उदाहरणार्थ ऐतिहासिक महाकाव्य 'शाहनामा' फारसी ढग का अकेला महाकाव्य है। देश विदेश मे उसकी कीर्ति अक्षय है, परन्तु सस्कृत आचार्यों के लक्षणो पर कसने पर उसे महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। इसमे कृति अथवा कृतिकार का दोष नही अपितु लक्षण का ही अव्याप्ति दोष है। दूसरे सीमित शब्दावली के मात्र बन्धन से व्यापकता पर कसे घेरा डाला जा सकता है। तीसरे महान से महान कवि की प्रतिभा भी निर्दोषता से मुक्त नही होती, अनेक प्रयास करने पर भी रचना मे कुछ न कुछ दोष रह ही जाता है। अत महाकाव्य की एक सर्वमान्य कसौटी का निर्धारण करना उचित होगा।

महाकाव्य तथा 'एपिक' शब्द पर विचार

प्रबन्धक-काव्य के सर्वश्रेष्ठ रूप को हमारे यहा महाकाव्य कहा गया है तथा खण्ड चित्र वाले काव्य को आचार्यों ने खण्ड-काव्य की सज्ञा दी है। सामान्यतया महाकाव्य मे जीवन का सर्वांग चित्रण, युग-व्यापी सन्देश पूर्ण रसात्मकता होती है। महाकाव्य का लगभग पर्यायवाची शब्द पाश्चात्यकाव्य शास्त्र का 'एपिक' माना गया है। किन्तु 'एपिक' तथा महाकाव्य दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची हैं इस विषय मे विद्वानो का मतभेद है। उन्होने दोनो मे साम्य अधिक तथा वैषम्य कम स्वीकार किया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है—महाकाव्य शब्द का प्रयोग आजकल दो अर्थों मे होने लगा है, अंग्रेजी के 'एपिक' शब्द के अर्थ मे और प्राचीन अलकारिक आचार्यों द्वारा प्रयुक्त सगबद्ध

काव्य के रूप में। साधारणतया यूरोपीय पण्डितों ने भारतीय 'एपिक' कहकर सदा दो ही ग्रन्थों की चर्चा की है महाभारत की और रामायण की।[1] द्विवेदी जी ने 'एपिक' शब्द से पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि को स्पष्ट किया है तथा इस कथन से यह भी झलकता है कि 'एपिक' शब्द उदात्त-काव्य की उस गरिमा का पर्यायवाची बनकर प्रयुक्त किया गया। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान महान् कृति को महाकाव्य कहें या 'एपिक' दोनों में ही महानकाव्य या उदात्त काव्य की ध्वनि छिपी है। दोनों में प्राय समान तत्त्वों के साथ कार्य उद्देश्यगत विचारों में भी मौलिक भिन्नता नहीं है।

लक्षण

लक्षण का सबसे अनिवार्य गुण यह होना चाहिए कि वह सर्वथा भ्रान्तियों से रहित हो। डा० नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि 'लक्षण अतिव्याप्ति तथा अव्याप्ति दोषों से मुक्त होना चाहिए—उसमें कोई शब्द अनावश्यक नहीं होना चाहिए।'[2] उनके मत से वैकल्पिक तथा अवांछनीय बात की लक्षण में चर्चा ही व्यर्थ है। लक्षण में *तो मूल पार्थक्यकारी विशेषता रहती है रहनी चाहिए' भावात्मक तथा अभावात्मक* सहायक गुणों की सूची नहीं। साथ ही उसमें रागात्मक वृत्तियों की महत्ता को भी स्वीकार करना ही पड़ता है काव्य की सूक्ष्म भावनाओं अनुभूतियों, वृत्तियों तथा विकासयुक्त मोड़ों को शब्दों की स्थूलता में बाँधना कठिन है। फिर भी अनिवार्य उपलब्धियों को ध्यान में रखकर एक दृष्टिकोण बनाना ही पड़ता है। अतः सन्तुलित आधार ही लक्षण की प्राण शक्ति है।

महाकाव्य में लक्षण का बन्धन अनिवार्य होना ही नहीं चाहिए। रचना की भव्यता महानता उदात्तता तथा युग-व्यापी स्थिरता ही उसका लक्षण मानना चाहिए। महाकाव्य के सभी तत्त्व जिसमें समाहित हो जाए ऐसी परिभाषा को प्रस्तुत करना भी एक समस्या है।[4] इसीलिए परिभाषा देने के कार्य को विद्वानों ने गुरुगाम्भीर्य कहने के साथ ही अत्यधिक कठिन तथा कष्ट साध्य कार्य कहा है।[5] अधिकांश लक्षण

---

१ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा आलोचना (पत्रिका) अंक प्रथम, पृ० ६ १९५२, दिल्ली।

२ डा० नगेन्द्र—भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका पृ० ७ (द्वि० सं०)

३ वही पृ० ७

४ I have no great opininon of a definition the celebroted remedy for the cure of disorder—(uncertainty and confusion) Edmund Burke—Introduction of Sublime and Beautiful p 4

५ Definitions are for the most part alike unsatisfactory and treacherous but definitions of the potry are proeesbially so Encyclopaedia Brijannila Vol 18 page 106

ो लक्ष्य ग्रन्थों को देखकर ही निश्चित कर लिए जाते हैं और आने वाला लक्ष्य ग्रन्थ ाई न कोई प्राचीनता की कड़ी में भी नवीनता ले ही आता है। कभी कभी तो कृतिकार ौलिकता के प्रयोग में इतने आगे बढ़ जाता है कि समस्त रूढ़ लक्षण पीछे छूट जाते हैं। ह कथन 'एक ओर तो महाकाव्य लिखे गए और दूसरी ओर उनकी नवीन परिभाषाएं ी जाती रही। साहित्याचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करते समय अपने ामने किसी न किसी आदर्श महाकाव्य को रखा। ये लक्षण उस काल के महाकाव्यों े लिए जो मान्य रहे, पर बाद में परम्परामुक्त महाकाव्यों के लिए वे अयोग्य सिद्ध हुए।'[1] स्थिर मानदण्ड अपर्याप्त सिद्ध होते गए। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों के मतों पर विचार करके सन्तुलित एवं वैज्ञानिक परिभाषा प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाए जिसमें महाकाव्य के ठोस तथ्य उपस्थित हों जो देश काल के बन्धन से मुक्त शाश्वत तत्वों से युक्त हों। आगामी पृष्ठों में महाकाव्य से सम्बन्धित देश विदेश के विद्वानों के मतों को उपस्थित किया गया है। इन आचार्यों की परिभाषाओं के तुलनात्मक विवेचन द्वारा उनमें से उपलब्ध निष्कर्षों को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। लक्ष्य की सिद्धि के लिए इन दिशाओं से विवेचन प्रस्तुत करेंगे—

(१) संस्कृत आचार्यों के मतों का परीक्षण
(२) पाश्चात्य विचारकों के मतों का परीक्षण
(३) हिन्दी आचार्यों के मतों का परीक्षण
(४) तुलना एवं निष्कर्ष।

संस्कृत आचार्यों के मतों का परिक्षण

संस्कृत साहित्य में महाकाव्य की सुशृंखलित परम्परा को दृष्टिपथ में रखते हुए आचार्यों ने समय समय पर तत्सम्बन्धी अनुबन्ध निर्धारित कर महाकाव्य के स्वरूप को सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया है। संस्कृत में उपलब्ध काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भामह का काव्यालंकार प्राचीनतम ग्रन्थ है, जिसमें सर्वप्रथम महाकाव्य के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया है। कुछ विद्वान अग्निपुराणकार के मत में भामह से भी प्राचीन मानते हैं किन्तु आज तक इस कृति के समय का ही निर्णय ही नहीं हो पाया है। यह निश्चय ही भामह तथा दण्डी के बाद की कृति है, ऐसा अधिकांश विद्वानों का विश्वास है। भामह तथा दण्डी के पश्चात अग्निपुराणकार, रुद्रट भोजराज, हेमचन्द तथा विश्वनाथ प्रभृति आचार्यों ने महाकाव्य सम्बन्धी लक्षणों को प्रस्तुत किया है। आगे इन्हीं आचार्यों के मतों को प्रस्तुत करने के उपरान्त महाकाव्य के स्वरूप को निश्चित करने की चेष्टा की है।

---

१ डा० श्यामनन्दन किशोर—डी० लिट—आधुनिक महाकाव्य का शिल्प विधान, पृष्ठ ३२

भामह (पाँचवीं या छठी शताब्दी)

इस आचार्य के मत से महाकाव्य सगबद्ध, महान चरित्रों से युक्त, महत आकार का, ग्राम्य शब्दों से मुक्त, अर्थ गौरव तथा अलंकार से युक्त होना चाहिए। उसका कथानक सदाश्रित हो जिसमें मन्त्रणा तथा युद्धादि के वर्णन के अतिरिक्त नायक के अभ्युदय का वर्णन किया गया हो। महाकाव्य के कथानक को पंचसंधियों द्वारा सुगठित तथा ऋद्धिपूर्ण बनाया गया हो। उसमें समस्त रसों के साथ पुरुषार्थ चतुष्टय को स्थान देना चाहिए।[1] इस परिभाषा में निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट हैं—

(१) महाकाव्य का कथानक सगबद्ध हो।

(२) सुगठित तथा सदाश्रित कथा हो।

(३) उसमें महान चरित्रों से युक्त विजिगीषु नायक के अभ्युदय को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया हो।

(४) कथा में जीवन का वैविध्य प्रस्तुत किया गया हो।

(५) उसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जीवन के चारों पुरुषार्थों का स्थान मिला हो।

(६) अलंकारवादी होते हुए भी रस की अनिवार्यता को स्वीकार किया गया हो।

(७) महाकाव्य का आकार विशाल होना चाहिए।

दण्डी (सातवीं शताब्दी)

दण्डी ने भामह के काव्य सम्बन्धी सभी तथ्यों को समेट कर अपना लक्षण प्रस्तुत किया। 'महाकाव्य में सगबद्धता, आरम्भ में आशीर्वादात्मकता अथवा वस्तु निर्देशात्मकता हो। सदाश्रित वृत्त पर आधारित कथानक ऐतिहासिक अथवा लोक प्रख्यात वृत्त का हो। पुरुषार्थ चतुष्टय का स्थान मिला हो, नायक चतुर तथा उदात्त हो। उसमें नगर, सागर, पर्वत, चन्द्रोदय, उद्यान, जल-विहार, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, कुमारोदय, मन्त्रणा, प्रयाण, नायक अभ्युदय, अलंकृति, संक्षिप्तता, रसभाव की निरन्तरता, सन्तुलित सर्ग विधान, सन्धियों से गठित कथा, लोक रंजकता तथा स्थायी महत्व के अतिरिक्त कलात्मक वैचित्र्य का समावेश किया गया है।'[2] इस परिभाषा पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य प्रकाश में आते हैं—

(१) महाकाव्य सगबद्ध हो।

(२) उसका आरम्भ आशीर्वादात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक ढंग से किया गया हो।

(३) उसका कथानक ऐतिहासिक, पौराणिक अथवा लोक प्रख्यात वृत्त पर

---

१ भामह—काव्यालंकार १।१९, २१

२ दण्डी—काव्यादर्श, १।१४-१९

धारित हो।

(४) उसका उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि हो।

(५) नायक चतुर तथा उदात्त हो जिसके अभ्युदय का वर्णन किया गया हो।

(६) महाकाव्य म नगर पर्वत, चन्द्र एव सूर्योदय उद्यान, जल विहार आदि धुर एव राजसिक वर्णन होने चाहिए।

(७) वह सक्षिप्त होने के साथ साथ अलङ्कृत भी हो।

(८) रस की अखण्ड धारा उसम प्रवाहित हो।

(९) सर्ग विशालकाल न हो तथा कथा पच सन्धियो से गठित हो।

अग्निपुराणकार

दण्डी के पश्चात अग्निपुराणकार को लिया जा सकता है। इनका रचनाकाल विवादास्पद है।[1] इनके मत म महाकाव्य का सर्गों से विभाजन होता है। इतिवृत्त इतिहासोदभूत होन के साथ-साथ लोक विश्रुत हो। मन्त्रण, दूत प्रेषण आदि का विस्तार नही होना चाहिए। सक्षिप्त सर्गो के साथ सर्गान्त म छन्द परिवर्तन हो। सर्गों म अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी त्रिष्टुप, पुष्पिताग्रा वक्त्रादि सुन्दर छन्दो का मेल हो। साथ ही सज्जनो की अनादरवाली पद्धति त्याज्य है। नगर, पर्वत, ऋतु सूर्य, चन्द्र, आश्रम, पादप, उद्यान, जल कीडा, मधुपान आदि के वर्णन हो। उत्सव, दूती-वचन, प्रचण्ड, पवन के साथ कुलटाओ के आश्चर्य युक्त चरित्रो का भी वर्णन किया जा सकता है। उसके कथानक म समस्त भावो तथा वृत्तियो की पूर्णता हो। साथ ही रीति एव रस की भी। ऐसा काव्य महाकाव्य कहलाने का अधिकारी है। महाकाव्य का रचयिता महाकवि होता है और उसम वाणी की विदग्धता के साथ-साथ रस ही इसका जीवन है। उसम नायक का वत्तान्त जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय को लेकर वर्णित किया गया हो।[2] सक्षिप्त इन्होने ये तथ्य प्रस्तुत किए हैं—

(१) प्रख्यात कथानक के साथ प्रख्यात नायक हो।

(२) सक्षिप्त सर्ग तथा सर्गान्त म छन्द परिवर्तन हो।

(३) इसम नगर, चन्द्र, उद्यान आदि वर्णन-वैविध्य को प्रधानता मिली हो।

(४) कथानक म गठन तथा भाव एव वृत्तियो की पूर्णता हो।

(५) जीवन को समग्रता के साथ ग्रहण किया गया हो।

(६) वाणी की विदग्धता होन पर भी रस को प्राण-तत्व मानना चाहिए।

(७) उसका उद्देश्य महान हो।

रुद्रट (नवम् शताब्दी का आरम्भ

इन्होने 'काव्यालकार' म काव्य भेदो का निरूपण करते हुए महाकाव्य के

१ श्री रामलाल वर्मा अग्निपुराण का शास्त्रीय भाग।

२ अग्नि पुराण, अध्याय, ३३७, छन्द २४ ३४१

व्यापक फलक पर गम्भीरता से विचार किया।[1] भामह तथा दण्डी की बात का विस्तार एवं विकास किया। रुद्रट ने महाकाव्य से सम्बन्धित इतनी बातें मूल से कही हैं—

(१) उसने प्रबन्ध काव्य को कथा और आख्यायिका नामक दो भेदों में विभक्त किया तथा प्रबन्ध के अन्तर्गत महाकाव्य की प्रतिष्ठा स्थापित की।

(२) कथा के अनुत्पाद्य उत्पाद्य तथा महत् और लघु दो भेद किए। अनुत्पाद्य कथा का आधार इतिहास पुराणादि का प्रख्यात वृत्त होता है तथा उत्पाद्य कथा कवि कल्पित होती है।

(३) नायक की अवतारणा युक्ति-युक्ति कल्पना पर आधारित हो। नायक के वंश की प्रशंसा हो। नायक त्रिवर्ग में आसक्त, तीन शक्तियों से युक्त सर्वगुणसम्पन्न समस्त प्रजा का अनुरागी विजय की प्रबल लालसा से युक्त अपने साथ अपने मित्रों के लिए सिद्धि में लगनेवाला चर अथवा दूत के द्वारा शत्रु के कुल अथवा राज्य का वर्णन सुनकर प्रबल शब्दों में क्रोध तथा उत्तेजना प्रकट करने वाला होना चाहिए।

(४) नायक इतना दूरदर्शी हो कि व्यूह रचना द्वारा घोर युद्धों की योजना करके अत्यन्त विकट परिस्थितियों में भी विजय श्री का लाभ करे। नायक के प्रयाण में नागरिकों के मन की हलचल व्यक्त हो। प्रतिनायक भी नायक के समान ही गुणी हो तथा वह नायक के आक्रमण का प्रबलता से विरोध करे।

(५) महाकाव्यों में चतुर्वर्ग का वर्णन होना चाहिए। परन्तु लघु प्रबन्ध में चतुर्वर्ग में से किसी एक को ही स्थान दिया गया हो।

(६) महाकाव्य में सभी रसों को स्थान मिलना चाहिए।

(७) सेना के शिविरों का वर्णन युवकों की क्रीडाओं का यथातथ्य वर्णन रवि अस्त, सन्ध्या अन्धकार चन्द्रोदय रजनी, युवक, समाज, संगीत एवं प्रसंगानुसार शृंगार का वर्णन हो।

(८) कथानक में अनुकूल प्रकरण, काव्य संस्थानों की योजना तथा सन्धियों की सफल योजना हो।

भोजराज (ग्यारहवीं शताब्दी)

इन्होंने भामह तथा दण्डी की बात का प्रबल समर्थन किया है। भोजराज के मत से महाकाव्य न बहुत विस्तृत हो और न अति संक्षिप्त वह सन्तुलित आकार वाला हो। नायक अभ्युदय का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया हो। उसमें काल तथा

---

१ रुद्रट-काव्यालंकार १६ २ १६

स्थान का भी सफल रूप दिखलाई दे। शृंगार की चेष्टाओं की सफल अभिव्यक्ति के साथ जीवन पात्र-योजना पर बल दिया गया हो।[1] भोजराज ने पूर्वाचार्यों के मतों का पिष्टपेषण मात्र किया है। अतः परम्परा में इनका महत्व अधिक नहीं कहा जा सकता है।

हेमचन्द्र (बारहवीं शताब्दी)

प्राकृत के आचार्य हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' में महाकाव्य की परिभाषा की है।[2] इनके मत से संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत, अपभ्रंश तथा अन्य देशी भाषाओं में भी महाकाव्य की रचना हो सकती है। उन्होंने प्राकृत तथा अपभ्रंश के रावणवहो, हरिविजय, सेतुबन्ध आदि को दृष्टिपथ में रखकर अपना मत व्यक्त किया है। महाकाव्य में सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन को उन्होंने स्वीकार नहीं किया, छन्द की धारा का महत्व दिया। कथा गठन में पंच सन्धियों के साथ तीन बात और कही हैं (१) शब्द-वैचित्र्य, (२) अर्थ-वैचित्र्य, (३) उभय वैचित्र्य।

शब्द वैचित्र्य के अन्तर्गत सर्गबद्धता, बन्ध की व्यापकता, कवि का इष्ट, प्रारम्भ आदि की चर्चा की है। अर्थ वैचित्र्य में रसात्मक धारा की अखण्डता, नायक का उदात्त भाव, चतुर्वर्ग फल प्राप्ति के साथ नगरादि के वर्णन वैविध्य को स्थान दिया। उभय वैचित्र्य में लोक रंजकता तथा अवान्तर कथाओं की गठित योजना पर प्रकाश डाला है। महाकाव्य में रसानुरूप सन्दर्भ, अर्थानुकूल छन्द, अलंकृत वाक्यावली, देश काल के अनुरूप पात्र चेष्टा वर्णन तथा परलोक का परवर्ती हो।

विश्वनाथ (१४ शताब्दी पूर्वार्द्ध)

पूर्ववर्ती समस्त लक्षणकारों के मतों का ध्यान में रखकर विश्वनाथ ने अपना निरूपण प्रस्तुत किया है। लक्षण ग्रन्थों की परम्परा पर भी इनका ध्यान रहा होगा। महाकाव्य के लक्षण का विस्तार करते हुए इन्होंने कहा है कि

(१) महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए।

(२) महाकाव्य का नायक देवता अथवा सद्वंश का क्षत्रिय या एक वंश में उत्पन्न। अनेक राजा उनके नायक हो सकते हैं। नायक धीरोदात्तादि गुणों से विभूषित हो।

(३) उसमें शृंगार वीर शान्त में से कोई एक रस अंगी रस हो और सभी अंग रस सहायक बनकर आयें।

---

१ भोजराज सरस्वती कंठाभरणम ५ १२६ १३७।

२ हेमचन्द्र काव्यानुशासन, अध्याय ८, पृ० ४०१ ४०३

(४) कथा सदाश्रित, एतिहासिक तथा पचसन्धियो से कार्यावस्थाओ स गठित हो।

(५) उसम चतुवग म स किसी एक वग की सिद्धि का विधान हो।

(६) महाकाव्य का आरम्भ नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक अथवा वस्तु निर्देशात्मक ढग स किया जा सकता है।

(७) उसम दुष्टो की निन्दा तथा सज्जना की प्रशसा हो।

(८) सम्पूर्ण एक ही छन्दम रचित हो परन्तु सगान्त म छन्द परिवतन हो।

(९) सग आठ या आठ से अधिक हो परन्तु वे न तो बहुत छोटे ही हो और न बहुत विशालकाय हो।

(१०) सगान्त म कथा की भावी घटनाओ का सकेत देना चाहिए।

(११) सन्ध्या सूर्योदय, रजनी, प्रदोष दिवसान्त, प्रात, दोपहर, मगया, पवत वन सागर, सम्भोग विप्रयोग, मुनि, स्वग, रणप्रयाण मन्त्रण, पुत्रोत्पत्ति आदि सभी वर्णनीय घटनाओ की यथास्थान योजना होनी चाहिए।

(१२) महाकाव्य का नामकरण नायक अथवा कथा क आधार पर होना चाहिए।[1]

सस्कृत आचार्यों के मतो का तात्त्विक विवेचन

कथानक

(१) भामह दण्डी, अग्निपुराणकार तथा विश्वनाथ ने सगबद्धता को स्वीकार किया है। रुद्रट इस विषय पर मौन ह हेमचन्द्र शब्द-वैचित्र्य क अन्तगत सगबद्धता की चचा करत ह। इस प्रकार ये सभी आचाय महाकाव्य म सगबद्धता को स्वीकार करत है।

(२) महाकाव्य के कथानक म पचसधियो की चर्चा सभी न की। इसका अभिप्राय है कि कथा म सगठन होना चाहिए।

(३) भामह न महाकाव्य के विशाल आकार पर बल दिया है, परन्तु दण्डी ने विशाल आकार का विरोध करके सतुलित आकार को ठीक समझा तत्पश्चात विश्वनाथ तक महाकाव्य क नाति लघु, नातिदीघ आकार पर सभी सहमत रहे। अत उसका आकार सन्तुलित होना चाहिए।

(४) भामह ने महाकाव्य म सदाश्रित वस्तु की चर्चा की है। दण्डी ये सदाश्रित धन पर आधारित एतिहासिक अथवा लोक प्रख्यात कथा की

---

[1] कविराज विश्वनाथ-साहित्य-दपण, षष्ठ परिच्छेद ३१५ २५

उचित ठहराया। यही बात अग्निपुराणकार ने कही है। रुद्रट ने इस परम्परा में अनुत्पाद्य कथानक के साथ उत्पाद्य कथानक की भी चर्चा की तथा कथा के महत् और लघु दो भेद किए। उसने 'महत् कथा का महाकाव्य में स्थान देना उचित समझा है। हेमचन्द्र तथा विश्वनाथ ने भी कल्पित या एतिहासिक वृत्त की बात स्वीकार की है। इस प्रकार इनके मत से महाकाव्य का कथानक लोक विश्रुत होना चाहिए।

(५) सभी के मत से कथानक में जीवन की समग्रता तथा वैविध्य के लिए कथानक में वर्णन-वैविध्य होना चाहिए। इसीलिए सबने सन्ध्या, सूर्योदय आदि के वर्णनों की ओर संकेत दिया है।

(६) छन्द के बन्धन का सभी ने स्वीकार किया। हेमचन्द्र ने महाकाव्य में छन्द विशेष को ही महत्व दिया किन्तु विश्वनाथ में एक सर्ग में एक छन्द तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन पर बल दिया है।

(७) उसका आरम्भ आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तु निर्देशात्मक किसी ढंग से किया जा सकता है।

(८) अवान्तर कथाओं तथा लोकरंजकता की सभी ने चर्चा की है।

इस प्रकार महाकाव्य के कथानक के लिए कथा की प्राणवत्ता या महत्ता न प्रभाव क्षमता, सार्वभौमिकता वर्णन-वैचित्र्य को सभी ने स्थान दिया है। उसका ार गठित, सन्तुलित हो। कथा का चयन लोक प्रख्यात उदात्त-वृत्त हो कथा में न शक्ति को महत्व दिया।

यक

संस्कृत के आचार्यों ने नायक की महत्ता पर भी बल दिया। भामह ने महत' ी ने 'चतुरोदात्त', रुद्रट ने 'विजिगीषु' तथा विश्वनाथ ने 'धीरोदात्त गुणान्वित' उद्घोषणा की। इन आचार्यों ने नायक में ही अन्य पात्रों का समाहित कर लिया। न दण्डी तथा रुद्रट ने ही नायक के महत्व के लिए प्रबल प्रतिनायक की चर्चा की। भामह से लेकर विश्वनाथ तक किसी भी आचार्य ने नायिका का संकेत नहीं दिया। पर वे मानते थे कि धीरोदात्त नायक की पत्नी निश्चय ही महान गुणों वाली होगी। य हो नायिका के व्यक्तित्व का अस्तित्व भी उन्होंने नायक के व्यक्तित्व में ही समा ा कर लिया। संस्कृत आचार्यों ने महाकाव्य के नायक का प्रायः वर्ग विभाजन नहीं या है। सभी ने उन्नत नायक को ही महाकाव्य के लिए उचित ठहराया है। सभी इस ा पर भी सहमत हैं कि महाकाव्य महामानव की कीर्ति का परमोज्ज्वल निदर्शन है। ोलिए सत्त्व वीर' विशेषण के साथ चतुर, विजिगीषु तथा उन्नत नायक की चर्चा ी रही है।

रस

महाकाव्यों में रस की अनिवार्य स्थिति पर सभी आचार्य सहमत हैं। अलंकारवादी होते हुए भी भामह ने यह स्वीकार किया कि महाकाव्य में 'रस' को स्थान मिलना चाहिए। उनका 'रसश्च' शब्द इसी बात का प्रमाण है। दण्डी ने 'रस भाव निरंतरम्' कहकर रस की अनिवार्यता प्रबल शब्दों में स्वीकार की है। विश्वनाथ ने अंगी तथा अंग रस की अलग से चर्चा की है। उनके मत से शृंगार, वीर या शान्त रस अंगी तथा शेष अंग रसों का उसमें विधान होना चाहिए। इस तथ्य में रस वैविध्य का ही संकेत मिलता है। निष्कर्ष यह है कि रमणीयता तथा रसात्मकता को महाकाव्य में सभी ने स्वीकार किया है।

शैली

महाकाव्य की शैली पर आचार्यों ने अलग से विवेचन नहीं किया है, उन्होंने स्थान स्थान पर संकेत अवश्य दे दिए हैं। भामह का कहना है कि महाकाव्य में ग्राम्य शब्दों तथा अर्थों का प्रयोग सर्वथा वर्जित है। अर्थात् शैली की भव्यता तथा अलंकृति भी महाकाव्य का अपेक्षित गुण है। शायद वे मानते हैं कि गम्भीर विषय का प्रतिपादन गम्भीर शैली में ही किया जा सकता है एवं जो महाकवि होगा उसकी वाणी में प्रभविष्णुता की शक्ति होगी ही। यह मानकर ही इन आचार्यों ने भामह के पश्चात् महाकाव्य की शैली पर विचार नहीं किया। निष्कर्ष में यह कह सकते हैं कि संस्कृत आचार्यों ने महाकाव्य में भव्य शैली को अपनाया है।

छन्द

छन्द के विषय में भामह तथा रुद्रट मौन हैं। दण्डी ने महाकाव्य में श्रव्य तथा गायन को स्थान दिया है। दण्डी की इस बात का भोजराज तथा हेमचन्द्र ने भी समर्थन किया कि राग की धारा छन्द को सुष्ठु आकार देती है। उन्होंने इसी लिए सर्गान्त में छन्द परिवर्तन की बात को न मानकर भी एक छन्द की बात कही है। विश्वनाथ ने छन्द के महत्व पर सर्वाधिक बल दिया तथा एक सर्ग में एक छन्द तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन को स्थान दिया। इस प्रकार इन आचार्यों ने छन्दोमयी योजना को रागात्मक अन्विति के लिए स्वीकार किया है।

अलंकार

अलंकारवादी भामह तथा दण्डी दोनों ने काव्य में अलंकारों के सौन्दर्य पर बल दिया। इसी लिए महाकाव्य का लक्षण देते समय भामह ने सालंकार तथा दण्डी ने अलंकृत पर जोर दिया है। भामह का सालंकार शब्द केवल अलंकारों का ही वाचक नहीं अपितु समस्त कलात्मक सौन्दर्य का वाचक है। रुद्रट, भोजराज आदि

न प्रत्यक्ष रूप से अलंकारों के विषय में कुछ नहीं कहा। विश्वनाथ अलंकारों की चर्चा भी नहीं करते। उनकी दृष्टि रसवादी है। अतः रसात्मक सौंदर्य ही काव्य का वास्तविक अलंकरण है। भामह तथा दण्डी के कलात्मक सौंदर्य को विश्वनाथ ने 'रसात्मक सौंदर्य' में समाहित कर लिया। अतः इन आचार्यों के मत में काव्यात्मक सौंदर्य की अभिवृद्धि में अलंकारों का भी अपना स्थान है।

उद्देश्य

प्रायः समस्त आचार्यों ने महाकाव्य में उद्देश्य जीवनी शक्ति तथा उद्देश्य की महत्ता का अनुमोदित किया है। भामह ने 'चतुर्वर्गाभिधाने पि' में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, जीवन के पुरुषार्थ का स्थान दिया। परवर्ती सभी आचार्यों ने भामह के मत का समर्थन किया किन्तु कविराज विश्वनाथ ने इसमें थोड़ा सा परिवर्तन किया है। उन्होंने रुद्रट के त्रिवर्ग में युक्त नायक का महत्व तो दिया लेकिन कहा है कि जीवन के चार पुरुषार्थों में से किसी एक की प्राप्ति नायक को होनी चाहिए। पूर्ण विराम का अर्थ है जीवन की पूर्ण सिद्धि। महाकाव्य में उद्देश्य जितना ही शाश्वत, अखण्ड तथा महत्वपूर्ण होगा, उसकी स्थिरता तथा महत्ता भी उतनी ही अधिक मानी जायगी। अतः इन आचार्यों ने महाकाव्य का उद्देश्य जीवन की सार्थक सिद्धि स्वीकार किया है।

इन आचार्यों के मतों से इतने तथ्य महाकाव्य के विषय में स्पष्ट हो जाते हैं।

(१) महाकाव्य की कथा लोक प्रख्यात, गठित, जीवन वैविध्य से युक्त तथा महान हो।

(२) उसका नायक सद्गुणों से युक्त, जातीय जीवन का प्रेरणा देने वाला सद्वंश का उदात्त व्यक्ति ही होना चाहिए।

(३) रस की अनिवार्यता महाकाव्य में उद्घाटित की है।

(४) उसकी शैली गरिमामय एवं प्राणवान होनी चाहिए।

(५) छन्द का स्थान देकर गेयात्मकता को स्वीकार किया।

(६) अलंकारों को काव्यात्मक सौंदर्य में समाहित किया तथा अलग से उन्हें लाने का प्रयास न हो।

(७) महाकाव्य का उद्देश्य स्थिर, महान तथा शाश्वत प्रेरणादायक होना चाहिए।

पाश्चात्य विद्वानों की धारणा

पाश्चात्य विचारकों ने एपिक के स्वरूप पर गम्भीर विचार प्रस्तुत किए हैं। यूनानी विचारक अरस्तू ने ई० पू० चौथी शताब्दी में सर्वप्रथम महाकाव्य पर प्रकाश डाला है। अरस्तू के पश्चात् पुनर्जागरण काल में (सं० १४०० १६००) के

rno) वीदा (Vida) त्रिसिनो (Trissino), कास्तेल्वेत्रो (Castelovetro), वेब (Vebbe), टसो (Tasso) पुटनहेम (Putterhem) आदि के नाम उल्लेख्य हैं। इन्होंने अरस्तू का ही अनुसरण किया लेकिन महाकाव्य के प्रति इनका दृष्टिकोण सुधारवादी था। सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में ड्राइडन (Dryden), हाब्स (Hobbes), टैवेनण्ट ह्यूम लिबो एडीसन आदि विचारकों ने महाकाव्य के स्वरूप आकार और प्रकृति पर विचार किया। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में चिन्तन के विकास के साथ-साथ अनेक नये चिन्तक उत्पन्न हुए। इन आधुनिक विद्वानों में सी० एम० बावरा, ऐबरक्रोम्बी, वाल्टेयर टिलमन तथा केर आदि के नाम प्रमुख हैं। इन पाश्चात्य विद्वानों के एपिक महाकाव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए प्राचीन अर्वाचीन तथा आधुनिक मतों को प्रस्तुत करना उचित प्रतीत होता है।

अरस्तू (ई० पू० चौथी शताब्दी)

अरस्तू ने काव्य तथा कला को 'प्रकृति का अनुकरण' स्वीकार किया है। अपने अनुकरण सिद्धान्त के अन्तर्गत ही उसने त्रासदी कामदी तथा महाकाव्य की भी प्रसंग रूप से चर्चा की है। 'काव्यशास्त्र' नामक अपने ग्रन्थ के 'बाइसवें', तेइसवें तथा चौबीसवें भाग में महाकाव्य की उसने चर्चा की है। अरस्तू के मत से महाकाव्य उस कलाकृति को कहना चाहिए, जिसमें निम्नलिखित विशेषताएँ हों—

(१) महाकाव्य में एक अनुकरणात्मक कथा होती है, घटना योजना ट्रजेडी के समान होनी चाहिए। उसमें एक कार्य पूर्णता के साथ व्यक्त किया गया हो जिसका रूप समाख्यानक हो और जिसमें एक छन्द का प्रयोग किया गया हो।

(२) त्रासदी के कथानक के समान उसमें अन्विति हो तथा जीवन की एक महान घटना को स्थान दिया गया हो।[२]

(३) कथानक में गठन लाने के लिए उसके आदि मध्य और अन्त का विकास क्रमबद्ध हो अर्थात् सन्तुलित आकार के साथ प्रभाव ऐक्य उसमें होना चाहिए।

(४) सम्पूर्ण कथा एक इकाई में सुनियोजित हो, जिसमें कार्य व्यापार शृंखला का एक निश्चित क्रम रहता है।

(५) कथा प्रख्यात होनी चाहिए। महाकाव्यकार केवल इतिहास की कथा ही नहीं कहता अर्थात महाकाव्य इतिहास मात्र नहीं। महाकवि इतिहास में रमणीय कल्पना के योग से प्रभविष्णु कथानक को जन्म देता है।

१ डा० नगेन्द्र—अरस्तू का काव्यशास्त्र भूमिका भाग पृ० ५

२ प्रो० भगीरथ दीक्षित—समीक्षालोक—अरस्तू पृ० २२६

(६) महाकाव्य में उच्चकोटि या उदात्त पात्रों को ही स्थान मिलता है।[1] नायक उन्नत होने पर भी निर्दोष न हो।[2]

(७) एक व्यक्ति की सम्पूर्ण जीवन गाथा पर ही महाकाव्य लिखा जा सकता है। दूसरी ओर एक युग के घटनाचक्रों को एकत्रित करके भी महाकाव्य लिखा जा सकता है।[3]

(८) महाकाव्य में जीवन का समग्र चित्र होना चाहिए। जीवन के व्यापकत्व के कारण ही उसमें गरिमा का समावेश होगा।

(९) उसकी शैली भी समाख्यानक होनी चाहिए अर्थात् उदात्त कथानक के अनुरूप ही उदात्त शैली की भी महाकाव्य में अनिवार्य अपेक्षा रहती है।[4]

(१०) छंद की दृष्टि से उसमें हैक्सामीटर छन्द का प्रयोग लयात्मक अन्विति के लिए किया गया है।

होरेस (ई०पू० ६५ ई०पू०—८ ई०पू०)

होरेस ने अरस्तू के काव्य विषयक सिद्धान्तों पर विचार किया। उसने महा

---

१ 'महाकाव्य तथा त्रासदी में यह समानता है कि उसमें उच्चकोटि के पात्रों की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है। —पृ० ८, डा० नगेन्द्र—अरस्तू का काव्य शास्त्र।

2 'First Perfectly blameless character is deemed unfit to be a tragic hero

—S H Butcher—Aristotles Theory of Poetry and Fine arts, P, 30९

३ महाकाव्य में एक विशिष्ट क्षमता होती है अपनी सीमाओं के विस्तार करने की।' —डा० नगेन्द्र—अरस्तू का काव्य शास्त्र, पृ० ६३

4 'With respect to that species of Poetry which imitates by Narration and its hexameter verse it is obvious that the fable ought to be dramatically constructed like that of Tragedy that it should have for its subject one entire and Perfect action having a beginning a middle and an end, so that forming like an animal complete whole in a way afford its proper Pleasure Widely differing in its contruction from history which necessarily treats not of one action but of one person or to many during that time events the relation of which to each other is merely casual '

—Edited by T A Maxon—Aristotles Theory of Poetry and Fine Arts, P 46-47

काव्य पर अरस्तू की तरह अलग से विचार नहीं किया।[1] इन्होंने 'आर्स पाइटिका' नामक अपनी कृति में काव्य तथा नाटक के लिए महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत किया है। यह तथ्य महाकाव्य के लिए अनिवार्य सिद्ध हुए हैं।

(१) अरस्तू के अनुकरण को उसने अन्धानुकरण न मानकर सर्जनात्मक शक्ति कहा है। कवि अनुकरण के द्वारा प्राचीनता के गर्भ में से नवीन वस्तु को प्रस्तुत करे। अर्थात् काव्य (महाकाव्य) में प्राचीन विषय को नवीनता के साथ प्रस्तुत होना चाहिए।

(२) काव्य का उद्देश्य भी उसने आदर्श वस्तु (Ideal Plot) के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से मधुर शिक्षा देकर चरित्र को उदात्त बनाना (To teach to improve) स्वीकार किया है। मानव जाति के लिए काव्य की सेवाएं सामाजिक धार्मिक प्रवृत्ति की है।[2]

(३) उसने अरस्तू की तरह काव्य में एन्द्रिय ऐक्य (Organic Unity) को स्वीकार किया। इसीलिए काव्य में रचना संगति (Harmony of the Structure) का प्रबल समर्थन किया।[3]

(४) उसके मत से विषय-वस्तु तथा छन्द का अविच्छेद्य सम्बन्ध है। उसने युद्धात्मक कथाओं में हेक्सामीटर छन्द को ही स्वीकार किया।[4]

(५) रचना ऐक्य से सम्पूर्ण कृति की उपयुक्तता, उसके विभिन्न अवयवों का पारस्परिक सम्बन्ध तथा कृति में औचित्य का होना आवश्यक है। इसे ही हारेस ने साहित्यौचित्य (Literary propriety) का नाम दिया है। हारेस का यह औचित्य सिद्धान्त चरित्र तथा कथावस्तु पर विशेष लागू होता है।[5]

(६) महाकवि को अपनी अनुभूति के प्रति ईमानदार होना चाहिए तभी महान काव्य की सृजन शक्ति का विकास होगा।

(७) महाकाव्य सागर की तरह महानता रखता हो।

(८) जीवन्त घटनाओं के साथ प्राणवान नायक ही उसे महत्वपूर्ण बनाता है। उसमें नायक का सम्पूर्ण जीवन चित्र प्रस्तुत किया हो।[6]

(९) महाकाव्य में घटनाओं का विस्तृत चक्र नहीं होना चाहिए।

---

१ प्रो० भगीरथ मिश्र समीक्षालोक पृ०२६३
२ वही
३ वही।
४ वही पृ० २६४
५ वही, पृ० २६५
६ प्रो० भगीरथ दीक्षित—समीक्षालोक, पृ० २६८

लाजाइनस (ई०पू०२२० ७३ ई०पू०)

अरस्तू के पश्चात लाजाइनस ने आन दी सबलाइम नामक अपनी पुस्तक म काव्य के उदात्त तत्व का महत्व उदघाटित किया। काव्य की उदात्तता मानव जीवन के व्यापक फलक म है[1] और यही उत्कृष्टता (Sublimity) काव्य (महाकाव्य) का प्राण है। इसके निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

(१) काव्य के फलक विस्तृत (Spacious) घटनाओं की गत्यात्मक योजनाओं से युक्त हो। जैसे प्रशान्त बहन वाली सरिता का प्रवाह बना उत्कृष्ट होता है।[4]

(२) उसमें नायक के भव्यतर कार्य-व्यापारों का युक्त चित्रण होना चाहिए।[2]

(३) विचार की भव्यता उसका प्राण तत्व है। वस्तु विन्यास म भव्यता लान के लिए ऐंद्रिक ऐक्य (Organic Unity) होनी चाहिए। भावों की सघनता (Intensity of Emotions) तथा युग की आकांक्षाओं, सघर्षों की हलचल उसम व्यक्त हो।

(४) विषय की भव्यता के रक्षणार्थ शैली की भव्यता का होना आवश्यक है।

(५) युग की समस्त गरिमा अपने पूर्ण वैभव के साथ महाकाव्य म प्रकट होनी चाहिए। चमत्कार उत्पन्न करने वाली अलौकिक तथा अतिप्राकृत घटनाओं को भी स्थान दिया जा सकता है।

मिण्टूर्नो

मिण्टूर्नो ने अरस्तू के महाकाव्य सम्बन्धी लक्षणों की ही पुनरावृत्ति की है। अरस्तू का अन्धसमर्थक बनकर उन्होंने कार्य की एकता तथा अनुकरण की भव्यता पर बल दिया। इन्होंने महाकाव्य के विशाल या भारी भरकम आकार का विरोध किया है तथा महाकाव्य म एक वर्ष की ही घटनाओं को ही स्थान देना उचित समझा। महाकाव्य का उदात्त कार्यों का उदात्त शैली म कथात्मक स्वीकार किया है तथा नायक महान गुणों से अलकृत तथा निर्दोष व्यक्ति स्वीकार किया है।[5]

---

१ स० डा० नगेन्द्र—काव्य मे उदात्त-तत्व, प० २

२ प्रो० भगीरथ दीक्षित—समीक्षित—समीक्षालोक प० २४३

३ लाजाइनस-आन द सबलाइम, प० २३

4 'Like the noiseless lapse of a Mighty river is never the less sublime' —Longinus—on the Sublime, p 82

5 Minturno, however would restrict the canvas of the epic poet, permitting him only the events of a single year —Dixon—English Epic and Heroic poetry, p 3

मिण्टरनिटो

मिण्टरनिटो ने महाकाव्य के कथानक में 'निरन्तरता' को अत्यधिक महत्व दिया। उसने कहा, प्राचीन कथानक चरित्र, प्रकार तथा भाव महाकाव्य के लिए उपयुक्त हैं।[1]

टसो

टसो ने 'न्यायपरायणता तथा स्वभाव की एकता' को भी महाकाव्य में महत्व प्रतिपादित किया। उसने मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए कहा है कि महाकाव्य का विषय न तो अत्यन्त अजरित तथा प्राचीन ही हो और न उसे अत्यन्त नवीन ही होना चाहिए। उसने महाकाव्य के विशाल आकार का विरोध किया तथा कहा कि विशाल आकार से ही रचना महाकाव्य नहीं हो जाती उसमें महाकाव्योचित शक्ति भी होनी चाहिए। महान काव्य का नायक भी गुणों की राशि हो तथा वह जीवन पथ से निर्लिप्त रहना चाहिए।

लवस्मु

टसो के साथ ही लवस्मु ने महाकाव्य के स्वरूप में एक नवीन वृद्धि की। उसके मत से महाकाव्य का प्राचीन कथानक महान घटना पर आधारित हो जिसमें जीवन के व्यापक सत्य (Universal truth) का प्रकटीकरण हो। महाकाव्य की कथा में अन्तर्गत ही महान् नायकों का समाहित रहना चाहिए। महान् चरित्र महाकाव्य में महान उद्देश्य (weight thesis) को पूर्ण रूप से प्रकट कर सकता है। सदाचारिता तथा स्वच्छन्दता के साथ अनिवार्य शिक्षा भी वह महाकाव्य में अनिवार्य मानता है।

पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में नाम क्रम जिराल्दी, यासो, पुत्तेनम आदि

---

1 The hero must be a pious and moral if not necessarily faultless character

—George Saintsbury—the History of Criticism part II p 90

2 Saintsbury—the History of Criticism part II, p 90

3 The main style of narrative poetry, he returns to epic or heroic poetry and discussed it on the old lines of flat characters manners passions of affectioness '

—Ibid. p 54

4 ' Nature of Harmony quality of rhym '

—Ibid. p 56

ने भी महाकाव्य के स्वरूप पर विचार किया है। वीडा तथा निमिनी अरस्तू का आधार ग्रहण करके भी थोडे ऊँचे उठे। उन्होने कहा कि महाकाव्य निश्चय ही त्रासदी से उत्तम रचना है। महाकाव्य की भव्यता के आगे त्रासदी के गुण फीके पड़ जाते हैं। इसी परम्परा में लार्ड केम्स ने महाकाव्य में 'सहजना' (familarity) को विशेष महत्व दिया।[1] लुकन ने केम्स की बात का समर्थन किया तथा चिर नवीन उद्देश्य को महाकाव्य का प्राण माना। लुकन के मत से महाकाव्य के चरित्र काल्पनिक न होकर ऐतिहासिक हो तथा उनके महत्वपूर्ण कार्य जनसाधारण के मस्तिष्क में सदैव ताजे रहें। जिराल्डी ने तो नायक का सम्पूर्ण जीवनवृत्त ही महाकाव्य में स्वीकार किया। कैस्टल वेट्रो (१७ ०) ने जिराल्डी की बात का विरोध करते हुए कहा है कि महाकाव्य में एक ही व्यक्ति का जीवन वृत्तान्त न हो, अपितु समस्त राष्ट्र के कार्य-व्यापार को उसमें स्थान देना चाहिए। उसने यह भी कहा कि दिव्य-देवताओं की अवतारणा ही महाकाव्य में आवश्यक नहीं, मानव के कार्य भी पृथ्वी से लेकर स्वर्ग तक फैल सकते हैं। विडा ने (१५२०) में महाकाव्य में विषय की उदात्तता (Nobility of subject) की चर्चा की। महाकाव्य में अत्यधिक संघर्ष हो और उस संघर्ष में विजयी नायक ही सफल आदर्शों की स्थापना करे। वीडा की इस सूझ का व्यापल्ल तथा गिबन आदि ने समर्थन किया।

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दी में ड्राइडन, हॉब्स, डवेनण्ट, ह्यूम, गिबन, एडीसन आदि विद्वानों ने महाकाव्य के स्वरूप आकार तथा प्रवृत्ति को लेकर विचार किया। ड्राइडन तथा सिडनी दोनों ही लाजाइनस से अत्यधिक प्रभावित थे। इस प्रभाव के कारण ही 'उदात्त' को काव्य का सर्वस्व मानते हुए उन्होंने कहा है, 'महाकाव्य में जीवन के सौंदर्य का व्यापक उद्घाटन होना चाहिए। काव्य (महाकाव्य) मानव प्रकृति का मानस चित्र बनकर प्रस्तुत हो।[3]

---

1 Kames is in agreement, "Familarity' he tells us" "ought morespecially to be avoided in an epic poem, the peculiar character of which is dingity and elevation modern manners make no figure in such person
—Dixon—English Epic and Heroic poetry, p 2

2 Ibid, p 4 5,6 7 8

3 poetry is just and lively image of human nature, representing its passions and humours and the changes of fortune to which it is subject for delight and instruction of mankind
—Dryden—Essay on dramatic poisy—p 30

डब्ल्यू० पी० केर

केर के विचार में महाकाव्य में कल्पनात्मक तथा बौद्धिक तत्त्व एक विशिष्ट प्रक्रिया का स्वरूप धारण करते हैं। इन्होंने महाकाव्य की विषय वस्तु में प्रेम, इतिहास, सुख दुःख आदि विविध—वैविध्य का समावेश किया है।[1] महाकाव्य सर्वाधिक उदात्त गम्भीर तथा स्थिर काव्य रूप है।[2] साथ ही महाकाव्य में चरित्र की कल्पना बहुत ही स्थिर तथा व्यापक रूप में साथ की जाती है पर अनेक स्थितियों तथा समस्याओं के कारण वस्तु-वैविध्य स्वयमेव आ जाता है। उसमें जीवन के समस्त कार्य-व्यापार प्राणवान कथानक का रूपाकार पा जाते हैं। महाकाव्य में अभिनीत कुछ रचनाओं में नाटकीय गुण का प्रभाव होता है नवीन घटनाओं तथा दृश्यों के होने पर भी नायक विशेष प्रभावशाली न होकर महत्त्वहीन होता है। फिर भी कथानक की गरिमा के कारण उसे महाकाव्य कहा जाता है।[3]

डिक्सन

केर के ही मत का समर्थन डिक्सन ने किया। डिक्सन ने अपनी कृति 'इंग्लिश एपिक एण्ड हीरोइक पोयट्री' के प्रथम प्रकरण में महाकाव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए उसे युग विशेष की देन स्वीकार किया है। महाकाव्य की विशेषता भी युग सापेक्ष्य है। यह युग के गौरव का स्मारक तथा चित्रण काव्य रूप है। इस प्रकार की कविता में व्यक्तिगत कम तथा समष्टिगत अधिक होता है।[4] महाकाव्य का नायक एक राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है नायक की पराजय से देश के गौरव को क्षति पहुँचती है।[5] उसने महाकाव्य में कार्य तथा चरित्र दोनों को ही महत्वपूर्ण

---

1 Epic poetry is one of the complex and conprehensive kinds of literature, in which most of other kinds mav be included-romance history comedy tragical comical historical, past ora and are terms not sufficiently various to denote the variety of the Illiad and the Odessy
—Ibid P 16

2 Epic is the most solemn, stately and frigid of all kinds of composition
—Ibib 39

3 W p Ker—Epic Romance p 17

4 Dixon—English epics and heroic poetry p 13

5 'For in such a poen the enterest is rather national than individual The hero represents a cause which triumph with his truth where honour would suffer from his defeat
—Ibid P 21

बतलाया।[1] चाहे वह घटना सरल हो अथवा जटिल, चाहे वह इलियट्‌ की तरह एक स्थान पर घटित हो अथवा ओडसी की तरह उसका नायक संसार भर में भटकता फिरे, चाहे उसमें एक नायक हो या अनन्त नायक, चाहे वे सौभाग्यशाली हों अथवा अभाग्यशाली, एचिलीस की तरह भयंकर क्रोधी हो या एनियास की तरह पवित्र आत्मा वाले, चाहे वे राजा हों या सेनापति या उनमें कुछ न हों,[2] चाहे वे स्वर्ग के हों अथवा नरक के, इससे कुछ नहीं होता है। आदर्श महाकाव्य में गठन युक्त ढांचा, महान् कार्य, महान चरित्र तथा शैलीगत गरिमा का गुण होना चाहिए। महाकाव्यों में उसने निम्नलिखित तथ्यों की आवश्यक रूप से चर्चा की है—

(१) विषय की महानता (Nobility of subject)

(२) महाकाव्योचित औदात्य (Epic grandeur)

(३) विजयी तथा गुणी नायक (Victorious hero)

(४) उद्देश्य की एकनिष्ठता (Unity of theme)

(५) उदात्तता (Dignity)

(६) कार्य की एकात्मक शक्ति (Unity of action)

(७) कथानक की गरिमा के अनुकूल शैली (Grand style)

एबरक्राम्बी

इनकी दृढ धारणा है कि महाकाव्य प्रचलित परम्परा का समृद्ध विकास है। महाकवि युगानुकूल परम्परा की विशृंखलित कड़ियों को जोड़ देता है नवीन शक्ति उत्पन्न कर देता है। उसने यह भी कहा कि आकार की विशालता के कारण ही रचना को महाकाव्य कहना अनुचित है।[3] रचना चाहे लघु हो अथवा विशाल, उसमें प्राणवत्ता के साथ-साथ महाकाव्योचित गरिमा अवश्य होनी चाहिए। शैली के ही

---

1 Epic like drama ' is dependent upon action and character upon the story and persons these two upon either of which it Might be important to lay the major stress, are the pillars of epic '

—Ibid , p 21

2 ' Let the action be simple or complex let it lie in one single place as in the odessy, let there be one single hero or a great may, happy or unfortunate, furious as Achilles or pious as Aseneas, let them be kings or generals "

—Ibid , p 9

3 Laselles Abercrombie—The Epic, page 41-42

अन्तर्गत कवि की कल्पना विचारधारा तथा अभिव्यक्ति का स्थान है।[1] महाकाव्य महत्वपूर्ण कार्यों का लोक है, उसका उद्देश्य बहुत ही पुष्ट तथा प्रतिकात्मक होता है। महाकवि उद्देश्य की एकता के लिए ही बिखरी हुई सामग्री का भव्य रूप देता है।[2] सामग्री के चयन मात्र से ही कृति महत्वपूर्ण नहीं बन जाती, वास्तव में कृति की महानता तो समग्र जीवन के चित्रण में ही है।[3]

सी० एम० बावरा

इन्होंने महाकाव्य की एक नवीन परिभाषा प्रस्तुत की है। महामानव की महानता ही महाकाव्य का वास्तविक गौरव से अनकूल करती है। 'जनसामान्य के विचार से महाकाव्य में कथात्मक काव्य रूप होता है इसका आयाम बहुत होता है, जिसमें चरित्रों की गत्यात्मक जावनगाथा होती है। इस जीवनगाथा में विशेषकर भया यह प्रसंग युद्धादि का अपनाया जाता है। इसमें इस प्रकार का विशेष ध्यान दे उपलब्ध होता है क्योंकि इसकी घटनाएं और व्यक्ति हमारे मन में मानव की गरिमा, मानव की उपलब्धियां तथा भव्यता की ओर विश्वास दृढ़ करता है।[4] इस प्रकार इन्होंने महाकाव्य में विषय वस्तु नायक तथा शैली तीनों की ही उदात्तता का होना अनिवार्य माना है।[5]

---

1 Ibid page 19

2 Ibid page 21

3 'When Epic po try is called great it is not only on account of the range of its matter though that is important, for we could not call poetry great which did not face the whole fact of man s life in this world

—Abercrombie The Idea of Great poetry, p 147

4 An Epic Poem is by common consent a narrative of same l n th and deals with events which have a certain grandure and importance and come from life of action especially of violent action such as w r it gives a especial pleasure be c m s events and person enhanse our beli f in the worth of h man a hievem n and in the dignity and nobility of man

—C M Bowra From Vergil to Milton p 9

5 H poe ry is essentially narrative and is nearly always remarkab fo its ob ective character It creats its own world of ima ina n in which m n act on eas ly understood pr m ... ce' bra es great doing because of their g ea ness —C M Bowra—H roic poetry P 4

पाश्चात्य विद्वानों के मतों का तात्विक विवेचन

कथानक

(१) अरस्तू से लेकर सी० एम० बावरा तक सभी इस मत को मानते हैं कि महाकाव्य में प्रख्यात कथा को स्थान मिलना चाहिए। मध्ययुगीन आचार्यों ने, जिनमें लवरस्तु, जिराल्डो, विडा आदि का नाम प्रमुख है, इस मत में थोड़ा और परिवर्तन किया है कि महाकाव्य में ऐतिहासिक, पौराणिक ही नहीं काल्पनिक तथा प्रतीकात्मक कथानक को भी अपनाया जा सकता है। लांजाइनस ने उदात्त-वर्ण्य को उचित समझा था, उसने ऐतिहासिक तथा काल्पनिक कथा के विवाद से दूर होकर इस प्रकार मत व्यक्त किया था, होरेस ने अरस्तू की बात को ठीक समझा तथा सुधार भी किया कि प्राचीन कथानक को भी नवीनता के साथ प्रस्तुत करना चाहिए। लूकन ने ठीक ही कहा है कि कथानक चाहे प्राचीन हो या नवीन जीवन की जिज्ञासा जागृत करे। इन आचार्यों के मत से महाकाव्य में महान् कथा को ही स्थान देना चाहिए।

(२) अरस्तू ने कथानक में औचित्य को अत्यधिक महत्व दिया और पीछे के प्रायः सभी विद्वानों ने इस तथ्य का समर्थन किया।

(३) इन आचार्यों के मत से एपिक में कार्यान्विति के साथ मर्मस्पर्शी घटनाओं का चयन हो। इसकी घटनाएँ न अत्यधिक संकुचित ही हों और न अधिक विस्तृत ही। घटनाओं में सहजता तथा निरन्तरता का गुण होना चाहिए।

(४) अरस्तू ने कथानक में विषय ऐक्य को अनिवार्य माना है किन्तु परवर्ती आलोचक कैस्टलवेट्रो ने अरस्तू का विरोध किया। उसने कहा कि विषय ऐक्य के पालन का कोई नियम महाकाव्य में होना ही नहीं चाहिए। आधुनिक काल के विद्वानों ने पुनः विषय-ऐक्य तथा घटनात्मक अन्विति को महत्व दिया। अतः महाकाव्य में विषय ऐक्य एवं घटनाओं की अटूट शृंखला होनी चाहिए।

(५) इन सभी आचार्यों के मत से महाकाव्य का वस्तु चाहे लघु हो या विराट उसमें जीवन का अन्तरंग तथा बहिरंग उभर आया हो।

(६) घटनाओं के विस्तार के लिए अतिप्राकृत तत्वों को भी अपनाया जा सकता है।

अतः पाश्चात्य विचारक कथानक में लोक प्रख्यात अंश, उदात्तता, मर्मस्पर्शिता निरन्तरता, सुगठन औचित्य तथा कथा की विशाल पृष्ठभूमि को स्वीकार करते हैं। कथानक में नवीनता लाने के लिए अतिप्राकृत तत्वों को भी अपनाया जा सकता है।

नायक

पाश्चात्य विद्वानों के मत से नायक महान्, उदात्त, पराक्रमी तथा गुणों का

राशि होना चाहिए। अरस्तू के मत से महाकाव्य का नायक अत्यंत वैभवशाली कुलीन तथा यशस्वी होना चाहिए। साथ ही महाकाव्य में उच्च कोटि के उदात्त पात्रों को ही स्थान मिलना चाहिए। लांजाइनस तथा होरेस ने भी अरस्तू की ही बात का अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन किया है। टसो ने अरस्तू के इस कथन का विरोध किया कि महामानव भी सर्वथा निर्दोष नहीं होना चाहिए क्योंकि यथार्थ जीवन में निर्दोष की कल्पना ही सहज नहीं है। टसो ने कहा कि नायक के माध्यम से एक पूर्ण मानव की कल्पना करनी चाहिए। नायक के कार्य महत्प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत हों तथा समस्त संसार में इसका लोकादर्श प्रतिष्ठित हो जाए। जीवन के शाश्वत मूल्यों का वह रक्षक हो। टसो की इस बात का समर्थन मिंसनो विडा, मिण्टूर्नो, जिराल्डी, ड्राइडन, एबरक्राम्बी आदि सभी विद्वानों ने किया। सभी इस तथ्य से सहमत हैं कि महाकाव्य में नायक की गरिमा ही कृति के महत्व को बढ़ाती है। नायक केवल राजपरिवार से ही न होकर जनसामान्य से भी हो सकता है लेकिन तादात्म्य (एम्पैथी) की सहज शक्ति उसमें अवश्य होनी चाहिए। निष्कर्ष रूप से उदात्त नायक को ही महाकाव्य के उपयुक्त माना गया है। वह इस शक्ति से भी युक्त हो कि युग युगान्तर का मानव उसके महत्कार्यों से प्रेरणा प्राप्त करे।

महाकाव्य का उद्देश्य

अरस्तू के मतानुसार महाकाव्य का प्रयोजन और प्रभाव त्रासदी के प्रयोजन तथा प्रभाव के समान होना चाहिए। करुणा तथा त्रास के भावों द्वारा विरेचन करके मन की शुद्धि तथा आनन्द ही इसका प्रयोजन है। लांजाइनस के मत से उदात्त काव्य का उद्देश्य चरित्र को भव्यतर बनाना है। होरेस ने भी पूर्ववर्ती इन्हीं तथ्यों का समर्थन किया कि महाकाव्य में गरिमा का चरित्र मधुर शिक्षा देकर जीवन को उदात्त बनाने का काम करता है। होरेस परवर्ती सभी विद्वान महाकाव्य का उद्देश्य युग की सार्वभौमिक आकांक्षाओं कार्यों तथा प्रवृत्तियों को प्रकाश में लाना ही मानते रहे। ड्राइडन महाकाव्य को 'जन मानस चित्र' युग का पथ प्रदर्शक कहकर भी उसे जनसामान्य से लेकर विशिष्ट तक के आनन्द की वस्तु समझता है। एबरक्राम्बी ने महाकाव्य का उद्देश्य युगानुकूल पुष्ट तथा प्रामाणिक स्वीकार किया है। सी० एम० बावरा का कहना है कि महामानव की महान उपलब्धियों को प्रस्तुत करने के लिए महाकाव्य की रचना होती है। इस प्रकार इन विद्वानों के मत से महाकाव्य का उद्देश्य युग-युग के मानव का मार्ग दिखाना है तथा जीवन के शाश्वत मूल्यों की दृढ़ता से स्थापना करना है। महाकाव्य में युग-युग की समस्याएं आशा आकांक्षाओं के साथ जीवन की पूर्णता का समावेश होना चाहिए।

महाकाव्य का अभिव्यंजना शिल्प

अरस्तू ने महाकाव्य के लिए समाख्यानक शैली को स्वीकार किया है जिसमें

क्षुद्रता का अभाव तथा औचित्य की सिद्धि हो। अर्थात महाकाव्य की शैली सामान्य शैली से भिन्न, असामान्य या उदात्त शैली हो। भावानुकूल गरिमा तथा प्रसन्न पदावली का प्रयोग हो। अरस्तू की ही भांति लॉजाइनस ने उदात्त शैली को महाकाव्य में उचित ठहराया है। हारमन ने भी उदात्त शब्द भाव, भाषा, शैली पर बल देकर उदात्त शैली का ही पक्ष लिया है। इसी सम्बन्ध में जिराल्डी ने एक महत्वपूर्ण बात कही है कि महाकाव्य के कवि के पास शब्दों का अथाह सागर होना चाहिए, शब्दों का प्रवाह अप्रतिहत वेग से आगे बढ़ता हुआ दिखलाई दे। इस तथ्य का समर्थन त्रिसनो, विडा तथा मिण्टूर्नी ने किया। केर डिक्सन, एबरक्राम्बी तथा बावरा ने शैली में 'विषयोचित गरिमा' को स्वीकार किया है। शैली में महाकाव्योचित औदात्य का अनिवार्य गुण होना चाहिए क्योंकि वह प्रबल तथा वरिष्ठ अभिव्यक्ति की ही प्राणवान अनुभूतियों की रक्षक होकर महाकाव्य में आती है। अतः महाकाव्य की शैली में विषय की गरिमा को रक्षित रखने की शक्ति होनी चाहिए।

अरस्तू का मत है कि महाकाव्य के लिए सबसे उपयुक्त छन्द वीर छन्द (हेक्सामीटर) है। यह छन्द कृति में एक प्रकार की भव्यता का सचार करता है एवं लयात्मक अन्विति को काव्य में जन्म देता है। परन्तु अरस्तू के इस विश्वास का पुनर्जागरण काल में प्रबलता से खण्डन किया गया। टसो ने कहा कि महाकाव्य को छन्द की सीमा में बाधना निरर्थक प्रयास है। आधुनिक विद्वानों ने छन्द को भाव का बन्धन या कठघरा कहकर छोड़ दिया तथा छन्द बन्ध से मुक्त काव्य की कल्पना करके भावात्मक प्रवाह को आदर दिया। अतः आचार्यों के मत से छन्द का भावात्मक एवं लयात्मक प्रवाह ही महाकाव्य के लिए उपयुक्त माना गया है।

संक्षिप्त रूप से पाश्चात्य विद्वानों की धारणा को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(१) विषय की व्यापकता तथा भव्यता।
(२) सुगठित कथानक।
(३) उदात्त नायक।
(४) महाकाव्योचित व्यक्तित्व से युक्त पात्र।
(५) सत्या से युक्त विराट उद्देश्य।
(६) भाव की प्रकृष्ट गरिमा तथा कार्य की अन्विति।
(७) कथा के अनुकूल भव्य शैली तथा उपयुक्त छन्द विधान।

हिन्दी आचार्यों तथा अन्य विद्वानों के मत

हिन्दी के अनेक विद्वानों एवं शोध प्रबन्धकारों ने भी अपनी रचनाओं में यत्र तत्र अपनी महाकाव्य सम्बन्धी मान्यताएं प्रस्तुत की हैं। प्रभाव को आधार मान कर इन्हें दो वर्गों में विभाजित करना उचित प्रतीत होता है—

(१) संस्कृत आचार्यों के लक्षणों से प्रभावित आचार्य

इन आचार्यों ने संस्कृत की दाय परम्परा का निर्वाह किया है। इनकी मूल दृष्टि संस्कृत के महाकाव्यों तथा मान्य आचार्यों के लक्षणों पर रही है। इन आचार्यों में आचार्य प्रवर रामचन्द्र शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बाबू गुलाबराय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा रामदहिन मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। पाश्चात्य लक्षणकारों से इन आचार्यों ने बहुत कम प्रभाव ग्रहण किया है।

(२) पाश्चात्य लक्षणकारों से प्रभावित आचार्य

इन आचार्यों ने देश विदेश के विद्वानों के दृष्टिकोण का समन्वय उपस्थित किया है। इनकी मूल दृष्टि शाश्वत तथ्यों की ओर रही है। इस वर्ग के प्रतिनिधियों में डा० भगीरथ मिश्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और आचार्य नगेन्द्र जी के नाम प्रमुख हैं।

प्रथम वर्ग

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य शुक्ल जी सम्भवत श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य को ही महाकाव्य मानते हैं। इसका प्रमाण इस बात से भी मिलता है कि 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका में उन्होंने पद्मावत को सर्वत्र प्रबन्ध काव्य के नाम से ही सम्बोधित किया है। प्रबन्ध को महाकाव्य का पर्याय मानते हुए उन्होंने लिखा है कि प्रबन्ध काव्य मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध शृंखला के और स्वाभाविक क्रम के ठीक ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले—प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता है। उसके लिए घटनाचक्र के अन्तर्गत ऐसी वस्तुओं और व्यापारों का प्रतिबिम्बवत चित्रण होना चाहिए, जो श्रोता के हृदय में रसात्मक तरंगें उठाने में समर्थ हों।[1] प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत ही महाकाव्य तथा खण्डकाव्य का स्थान है, कथात्मक प्रवृत्ति तथा सम्बन्ध का निर्वाह तो दोनों में आवश्यक है, किन्तु दोनों की भेदक रेखा भी स्पष्ट है कि महाकाव्य में जीवन का अखण्ड चित्र होता है तथा खण्डकाव्य में खण्ड जीवन की झलक। जीवन के अखण्ड चित्र को ही शुक्लजी ने मानव जीवन के पूर्ण दृश्य[2] की संज्ञा का नाम दिया है। उनके मत से कथानक सहज गति से आगे विस्तार पाने के साथ साथ अपनी रमणीयता के कारण हृदय को स्पर्श करने की अनिवार्य शक्ति रखता है। इसलिए रसात्मकता[3] को शुक्लजी ने विशेष स्थान दिया तथा उस

१　आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ० ६८ ६९

२　वही पृ० ७०

३　आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ० ७२

प्रबंध की आत्मा स्वीकार किया है। जीवन का वविध्य, भाव वविध्य से सम्बंधित है और भाव वविध्य म रस वैविध्य का स्वय ही समावेश वे मानते हैं। शुक्लजी के मत मे महाकाय के तीन अनिवाय तथ्य इस प्रकार हैं—

(१) मानव जीवन का अखण्ड चित्र
(२) कथान्विति के साथ कक्षा म सहज गत्यात्मक गुण
(३) हृदय को स्पश करन मे समथ रस व्यजना

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

उन्होन भारतीय आचार्यो के लक्षणा की व्यापक समीक्षा करन के उपरान्त अपने मत का स्थापना की है। उनका निश्चित मत है कि 'महाकाव्य की कथा प्रख्यात ही हानी चाहिए, कल्पित नही। प्रख्यात वत्त की योजना का कारण यही है कि रस सचार या साधारणीकरण क्रिया मे सहायता प्राप्त हा। जिस चरित्र नायक की कथा ली जाए, उसके साथ तादात्म्य स्थापित होन मे कोइ बाधा उपस्थित न हा।'[1] महाकाय म प्रख्यात कथा तादात्म्य के सहज गुण स युक्त नायक तथा प्रभावान्विति को इन्होने विशेष महत्त्व दिया। अपना निष्कष, उन्होने, इस प्रकार प्रस्तुत किया है—(१) सानुबन्ध कथा (२) वस्तु वणन, (३) भाव-व्यजना, (४) सवाद।[2]

गुलाबराय

इन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य महाकाव्या तथा आचार्यों के लक्षणा पर प्रकाश डालने के उपरान्त भारतीय दृष्टि को प्रधानता देते हुए उसे विषयपरक माना है। 'सक्षेप म हम कह सकते हैं कि महाकाय वह विषय प्रधान काव्य है, जिसम कि बडे आकार म जाति म प्रतिष्ठित लाक प्रिय नायक के उदात्तकार्यों द्वारा जातीय भावनाओ आदर्शों और आकाक्षाओ का उद्घाटन किया जाता है।[3] इस प्रकार धारान्वित नायक की आदश कल्पना का ही बाबू जी न समथन किया है। उन्होने महाकाव्य के नायक की दो कोटिया स्वीकार की हैं—

(१) ऐतिहासिक नायक।
(२) काल्पनिक नायक।

महाकाव्य म इतिहास प्रसिद्ध नायक होने से तादात्म्य सहज ही स्थापित हो जाता है साथ ही लोकप्रिय नायक हाने से लोक रजनकता का भी समावेश होता

---

१ आचाय विश्वनाथप्रसाद मिश्र—वाङ्मय विमश, पृ० २२
२ वही, पृ० ३०
३ बाबू गुलाबराय—काव्य के रूप, पृ० ५९

है। काव्य में भावन व्यापार या साधारणीकरण की सम्भावना अधिक हो जाती है।[1] भारतीय वाङमय में भी उदात्त की कल्पना का अभाव नहीं है। भारतीय शब्द विराट उदात्त की समग्र धारणा को व्यक्त करने में अधिक समर्थ है।[2] गीता में प्रदर्शित भगवान के विराट रूप (११।६।८४) से अधिक प्रबल उदात्त का उदाहरण दुर्लभ हो होगा।

रामदहिन मिश्र

बाबू गुलाबराय की भांति इन्होंने संस्कृत लक्षणकारों का ही समर्थन किया है। इनके मत से किसी देवता सद्वंशोदभव नृपति या किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का वृत्तान्त लेकर अनेक सर्गों में जो काव्य लिखा जाता है वह महाकाव्य है। इन वृत्तान्तों का आधार इतिहास आदि होते हैं। इनमें से कोई एक रस प्रधान होता है और अन्य रस गौण।[3] इनमें विविध प्रकार का प्राकृतिक वर्णन रहता है, अनेक छन्दों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार विश्वनाथ के लक्षण की पुनरावृत्ति इन्होंने की है।

द्वितीय वर्ग

डा० भगीरथ मिश्र

मिश्र जी ने भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के लक्षणों का आत्मपरक अध्ययन प्रस्तुत किया है। महाकाव्य को परिभाषा के पाश में बद्ध करने का तो प्रयास नहीं किया, लेकिन महाकाव्य के चार अनिवार्य तत्वों का संकेत किया। (१) कथानक (२) महान चरित्र (३) सन्देश, (४) शैली।[4]

व्याख्यापरक दृष्टि से महाकाव्य के चार भेदों को स्वीकार किया (१) कथा प्रधान, (२) चरित्र प्रधान (३) भाव प्रधान (४) अलङ्कृति प्रधान।[5]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

वाजपेयी जी ने महाकाव्य को महान संस्कृति की उपलब्धि स्वीकार किया है। महाकाव्य की रचना जातीय संस्कृति के किसी महाप्रवाह सभ्यता के उद्भव संगम, प्रलय किसी महच्चरित्र के विराट् उत्कर्ष अथवा आत्म-तत्व के किसी चिर

---

१ बाबू गुलाबराय—सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० २०४
२ बाबू गुलाबराय—काव्य के रूप पृ० ८६
३ रामदहिन मिश्र—काव्य दर्पण, पृ० २४९
४ डा० भगीरथ मिश्र—काव्यशास्त्र, पृ० ६५
५ वही, पृ०६६

अनुभूत रहस्य को प्रदर्शित करने के लिए की जाती है।[1] महाकाव्य में महामानव के महत्कार्य ही विराट रूप लेकर प्रगट होते हैं।[2] महाकाव्य में तीन तथ्य वे अनिवार्य मानते है—

(१) रचना का प्रबन्धात्मक या सर्गबद्ध होना।

(२) शैली का गाम्भीर्य।

(३) वर्णित विषय की व्यापकता और महत्त्व।

जीवन का मधुर तथा विराट रूप जिस कृति में उभरा हो, उसे ही वे महाकाव्य कहते हैं।

आचार्य नगेन्द्र

इन्होंने 'वर्णित विषय की व्यापकता' पर सर्वाधिक महत्त्व दिया। उनकी दृष्टि महाकाव्य के अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही अंगों पर रही है। अन्य विद्वानों की तरह उन्होंने अनावश्यक तत्त्वों को लक्षणों में स्थान नहीं दिया। इसीलिए महाकाव्य के उन्हीं तत्त्वों को लेकर चलूँगा जो देश काल सापेक्ष्य नहीं हैं, जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की रचना महाकाव्य बन सकती है और जिनके सद्भाव में परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता। ये मूल तत्त्व हैं[3]—

(१) उदात्त कथानक

(२) उदात्त कार्य या उद्देश्य

(३) उदात्त चरित्र

(४) उदात्त भाव

(५) उदात्त शैली

इस मत से यह स्पष्ट है कि यहां पर 'उदात्त'[4] को अत्यधिक व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। भारतीय काव्य शास्त्र में 'धीर' नायक के साथ 'उदात्त' शब्द भी

---

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दी, पृ० ४४

२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य, पृ० ५३

३ आचार्य नगेन्द्र—कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, पृ० १५

४ "किन्तु इस इस विषय में कोई भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए कि औदात्य और माधुर्य में किसी प्रकार का प्रकट या प्रच्छन्न विरोध है। इसी भ्रांति का निवारण करने के लिए मैं आधुनिक आलोचक ब्रडले के औदात्य सम्बन्धी प्रसिद्ध लेख की ओर इंगित करूँगा, जिसमें उन्होंने उदात्त को सौन्दर्य शास्त्र का शब्द मानते हुए उसे व्यापक अर्थ में सौन्दर्य का ही एक रूप माना है। उनके अनुसार स्थूलतः सुन्दर के पांच भेद किए जा सकते हैं—उदात्त, भव्य, मधुर, मनोरम

गरिमा, शाभा, भव्यता का प्रतीक या पर्याय बन गया है। जाता के शाश्वत मूल्य ही उसके आधार स्तम्भ हैं, युग जीवन की गरिमा की उसे शाभा प्रदान करता है, अत उदात्त नायक ही महाकाव्य म होना चाहिए।

आचाय नगेन्द्र जी के इस उदात्त सिद्धात का समथन विश्व कवि रवि द्रनाथ के ये विचार भी करते हैं कि इसी प्रकार मन म जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार जमाता है, मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व मनश्चक्षुआ के सामने अधिष्ठित हाता है तब उसके उन्नत भावा से उद्दीप्त होकर कवि भाषा का मन्दिर निर्माण करते हैं। उस मन्दिर की भित्ति पृथ्वी के गम्भीर अ तर्देश म रहती है और उसका शिखर मघा को भेद कर आकाश म उठता है। इस मन्दिर म जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है उसके देव भाव से मुग्ध होकर, नाना दिग्देशो से आ, आ कर लोग उस प्रणाम करते हैं। इसी को कहते हैं महाकाव्य।[1] इस प्रकार महामानव के महत्काय और महदनुष्ठान को महत्व देकर उदात्त को अपनाया है।

हिन्दी शोध प्रबन्धकारो के मत

'महाकाव्य' पर अनुसन्धान करने वाले विद्वाना के निष्कष भी दृष्टव्य हैं।

डा० शम्भूनाथ सिंह

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वाना का धारणा पर व्यापक विचार करने के पश्चात इन्होने अपनी स्थापना की है। इनके व्याख्या विश्लेषण से यह झलकता है कि अद्यतन समस्त परिभाषाओं का निचोड लेखक प्रस्तुत करना चाहता है, किन्तु उसकी परिभाषा तथ्यो के चक्कर म भारी भरकम हो गयी है। उनके मत से महाकाव्य के सामान्य लक्षणा से अधिक आवश्यक यह है कि उसम एसी अनवरुद्ध जीवनी शक्ति हो, जो युग युग म गगा की धारा की तरह सामाजिक परिवतनो, राजनीतिक उलट फेर और सास्कृतिक विकास का विषम भूमि के बीच से समाज के हृदय प्रदेश म महाकाव्य की धारा का अजस्र रूप म प्रवाहमान रखे।[2] उन्होन अपनी परिभाषा म निम्नलिखित तथ्या को अनिवाय घोषित किया—

(१) महदुद्देश्य महत्प्रेरणा और महती काव्य प्रतिभा

और ललित। अत सौन्दय शास्त्र की दृष्टि से ललित तथा उदात्त म कोई विरोध नहीं, मधुर की स्थिति तो उदात्त के और भी निकट है।,

—वही, पृ० १६

१ —विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर—मेघनाद वध, भूमिका, प० १३७

२ —डा० शम्भूनाथसिंह—हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास, पृ० १२०

(२) गुरुत्व, गाम्भीय और महत्व
(३) महत्काय और युग जीवन का समग्र चित्र
(४) सुसगठित तथा जीवन्त कथानक
(५) महत्वपूण नायक
(६) गरिमामयी उदात्त शली
(७) तीव्र प्रभावान्विति और गम्भीर रस-व्यजना

डा० प्रतिपालसिंह

इनके अनुसार महाकाव्य मे निम्नलिखित तथ्यो की आवश्यकता होती है—
(१) इतिहास, विज्ञान और दशन द्वारा पूण मानवता की सष्टि
(२) मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितयो का सम्यक विवेचन
(३) प्रकृति और मानवता का पूण चित्रण और मानव जीवन से उसका पूण सामजस्य।

इस परिभाषा म अतिव्याप्ति का दोष माना जाता है, यह मत महान काव्य स भी बाहर उपन्यास नाटक तथा सब कुछ समेटने का प्रयास सा है।

डा० गोविन्दराम शर्मा

इन्होने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य' मे भारतीय तथा पाश्चात्य दष्टि स महाकाव्य का स्वरूप विश्लेषण करते हुए निम्नलिखित तथ्यो को मान्यता दी है—
(१) प्रकथनात्मक तथा कथा सूत्रता
(२) विषय की व्यापकता तथा वणन की विशदता
(३) नायक की महत्ता
(४) छन्दबद्धता तथा उदात्त भाषा शैली
(५) रसात्मकता
(६) जीवन का यथासाध्य सर्वांगीण चित्रण
(७) जातीय भावनाओ और सस्कृति की सुन्दर अभिव्यक्ति।[1]

इस परिभाषा म महाकाव्य के तत्वो की एक विस्तत सूची प्रस्तुत की गयी है। इस परिभाषा म व्याख्या विश्लेषण पद्धति से महाकाव्य के आन्तरिक तत्वो पर सन्तोषजनक प्रभाव पडा है। डा० शर्मा की महाकाव्य सम्बन्धी धारणाए मान्य नही हुइ इस परिभाषा म सूत्रबद्धता का अभाव तथा सूची परिगणन की प्रवत्ति का दोष है। इतिहास, विज्ञान और दशन के समन्वय से मनुष्य पूण मानव बनता है अत

१ डा० गोविन्दराम शर्मा—हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृ० ४३

कलाकार का प्रथम कर्तव्य यह हो जाता है कि वह पूर्ण मानवता की सृष्टि करे। जो कलाकार मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों, ममता, प्रेम, उल्लास एवं धर्म आदि का सम्यक् विवेचन करता है वही श्रेष्ठ कलाकार होगा और उसकी कृति महाकाव्य कहलाने की अधिकारिणी होगी।

डा० श्यामनन्दनकिशोर

उन्होंने डा० शम्भूनाथसिंह की परिभाषा पर विचारोपरान्त कहा है कि महाकाव्य मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित एवं महान कवि की ऐसी छन्दोबद्ध कृति है जिसमें मानव जीवन की किसी ज्वलन्त समस्या का व्यापक प्रतिपादन किसी महान उद्देश्य की पूर्ति या जातीय संस्कृति के महाप्रवाह की उद्भावना, उदात्त वर्णन शैली व्यंजक भाषा पूर्ण रसात्मकता और उच्च कोटि के शिल्प विधान द्वारा किया जाता है एवं जिसका नायक किसी भी जाति या वंश का होकर भी अनेक गुणों से कवि के आदर्शों को मूर्तिमान करने वाला होता है।[1] इस परिभाषा में इतने तथ्य स्पष्ट हैं—

(१) जीवन की मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित ज्वलन्त समस्या पर प्रकाश डाला गया हो।
(२) उदात्त उद्देश्य
(३) उदात्त शैली
(४) रसात्मकता
(५) आदर्श नायक
(६) भारतीय जीवन की प्राणवान धारा

हिन्दी के विद्वानों के मतों की तुलना तथा निष्कर्ष

कथानक

आचार्य शुक्ल जी के मत से कथानक चाहे प्रख्यात हो या काल्पनिक उसका आयाम विराट हो जीवन के वैविध्य को प्रस्तुत करने की उसमें शक्ति हो, कथावस्तु में हृदय को स्पर्श करने की शक्ति हो। कथा में गत्यात्मक गुण तथा कथान्विति होना चाहिए। बाबू गुलाबराय तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी शुक्ल जी की भांति सानुबन्ध कथा को स्थान देना उचित समझा है। डा० भगीरथ मिश्र ने 'महान कथानक' को अनिवार्य माना है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी रचना की प्रबन्धात्मक

---

१ डा० श्यामनन्दनकिशोर—डी० लिट—आधुनिक हिन्दी महाकाव्य का शिल्प विधान, पृ० ६०

या संगबद्ध होना तथा विषय की व्यापकता को महाकाव्य में अनिवार्य मानते हैं। डा० नगेन्द्र इन सभी के निष्कर्ष को उदात्त कथानक का नाम देते हैं। डा० गोविन्द राम शर्मा प्रबन्धनात्मकता तथा कथासूत्रता एवं विषय की व्यापकता के साथ वर्णन की विशदता को आवश्यक मानते हैं। इसी को डा० शम्भु नाथ सिंह 'सुसंगठित तथा प्राणवान कथानक' कह देते हैं। डा० श्यामनन्दन किशोर महाकाव्य की कथा को जीवन की मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित मानते हैं। अतः इन आचार्यों के मत से कथानक जीवन के व्यापक रूप को समेटता हो तथा गठित होने के साथ साथ गरिमायुक्त भी होना चाहिए।

नायक

आचार्य शुक्ल जी ने प्रबन्धकाव्य में धीरोदात्त नायक को उचित ठहराया है। शुक्ल जी की इस मान्यता का पीछे के सभी विद्वानों ने समर्थन किया। डा० गोविन्दराम शर्मा के विचार से उसका नायक महत्वपूर्ण व्यक्ति होना चाहिए। डा० शम्भुनाथ सिंह भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों का सम्यक परीक्षण करने के पश्चात 'महत्वपूर्ण या जीवन्त नायक' को उचित समझते हैं। बाबू गुलाबराय भगीरथ मिश्र तथा डा० नगेन्द्र महाकाव्य के नायक को उदात्त नायक मानते हैं। अतः इन विद्वानों की धारणा संस्कृत आचार्यों की धारणा से ही मेल खाती है कि महाकाव्य का नायक महत्वपूर्ण व्यक्ति होना चाहिए। इन विद्वानों के नायक सम्बन्धी मत में कोई विरोध नहीं है।

रस

आचार्य शुक्लजी ने प्रबन्ध काव्य में अखण्ड रसात्मक शक्ति' को स्वीकार किया है। महाकाव्य के अन्तर्गत 'हृदय में रसात्मक तरंगें उठाने की शक्ति होनी चाहिए। बाबू गुलाबराय तथा आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इसी 'रसात्मकता को प्रभावान्विति' का नाम देते हैं। रामदहिन मिश्र महाकाव्य में एक रस अंगी तथा अन्य अंग रसों की चर्चा करते हुए शुक्ल जी की भांति रस वैविध्य को ही स्वीकार करते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इस विषय में मौन हैं। आचार्य नगेन्द्र महाकाव्य में 'उदात्त भाव या रस की प्राणवत्ता के ही आधार पर उचित ठहराते हैं। डा० गोविन्द राम शर्मा 'रसात्मकता' डा० शम्भूनाथ तथा डा० श्यामनन्दन किशोर तीव्र प्रभावान्विति तथा गम्भीर रस व्यंजना' को महाकाव्य में अनिवार्य मानते हैं। उपर्युक्त विद्वानों के मतों का निरीक्षण करने पर एक तथ्य मिल जाता है कि महाकाव्य में रसात्मक शक्ति का होना अनिवार्य है।

उद्देश्य

आचार्य शुक्ल जी ने प्रबन्ध या महाकाव्य में 'जीवन के भावपूर्ण चित्र' को प्रस्तुत करना उचित समझा है। बाबू गुलाबराय, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, भगीरथ मिश्र जी ने शुक्लजी ही की भाँति महाकाव्य में जातीय जीवन की अभिव्यक्ति को स्थान दिया है। नन्ददुलार वाजपेयी महाकाव्य का उद्देश्य जातीय संस्कृति के महाप्रवाह तथा सभ्यता के उद्गम को मानते हैं। इसे ही डा० नगेन्द्र 'उदात्त उद्देश्य' का नाम देते हैं। डा० गोविन्दराम शर्मा इस 'उदात्त उद्देश्य' को जीवन का यथा साध्य सर्वांगीण चित्रण और जातीय भावनाओं और संस्कृति की सुन्दर अभिव्यक्ति के अन्तर्गत तथा डा० शम्भूनाथसिंह महदुद्देश्य महत्प्रेरणा, महत्कार्य तथा युगजीवन के समग्र चित्र का नाम देते हैं। अतः हिन्दी के समस्त विद्वानों का इस विषय में धारणा है कि महाकाव्य का उद्देश्य महान् होना चाहिए।

अभिव्यंजना शिल्प

आचार्य शुक्ल विश्वनाथप्रसाद मिश्र बाबू गुलाबराय आदि विद्वानों ने महाकाव्य के अभिव्यंजना शिल्प पर अलग से प्रकाश नहीं डाला है। शायद वे महाकवि को महान अभिव्यक्ति से युक्त मानकर चले है, इसलिए वे महाकाव्य की अभिव्यक्ति का संकेत नहीं करते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य नगेन्द्र महाकाव्य में 'उदात्त शैली' को अपनाना अनिवार्य मानते हैं। इस उदात्त शैली' को ही डा० गोविन्द राम शर्मा सुन्दर अभिव्यक्ति डा० शम्भूनाथसिंह तथा डा० प्रतिपालसिंह 'गरिमामयी उदात्त शैली' तथा डा० श्यामनन्दनकिशोर 'उदात्त शैली' कहते है। इन विद्वानों के मतों में कहीं भी विरोध नहीं है। अतः महाकाव्य के उदात्त अभिव्यंजना शिल्प को इन विद्वानों ने स्वीकार किया है।

हिन्दी विद्वानों के महाकाव्य सम्बन्धी निष्कर्षों को सूत्र रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(१) व्यापक तथा गठित कथानक
(२) महत्त्वपूर्ण नायक
(३) रसात्मक शक्ति की अनिवार्यता
(४) महान् या उदात्त उद्देश्य
(५) समर्थ अभिव्यंजना शिल्प

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों की तुलना

दृष्टिकोण का विवेचन

भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों के महाकाव्य सम्बन्धी लक्षण लक्ष्यग्रन्थों के ही आधार पर बनते तथा परिष्कृत होते रहे हैं तथा युगानुरूप आचार्य लक्षण

म परिवर्तन तथा परिवर्द्धन करते रहे हैं। भामह, दण्डी, रुद्रट, हेमचन्द्र, तथा विश्वनाथ प्रभृति आचार्यों की दृष्टि मे कालिदास, माघ, भारवि आदि के महाकाव्य अवश्य रहे होंगे। भामह से लेकर हेमचन्द्र तक महाकाव्य म व्यक्ति के 'नायकत्व' की चर्चा है, किन्तु विश्वनाथ ने 'रघुवंश' के अनेक राजाओं को नायक देखकर महाकाव्य के लक्षणों मे एक वंश का एक या एक वंश के अनेक राजा भी उसके नायक हो सकते हैं इस मत को प्रतिष्ठा दी। इस प्रकार आचार्यों ने महाकवियो का अनुकरण भी किया तथा मान्य निष्कर्षों को प्रतिष्ठा देने का भी प्रयत्न किया।

पाश्चात्य देशो म भी ठीक यही हुआ है। इन विद्वानो ने भी होमर, इलियड ओडेसा आदि को ही अपनी दृष्टि पथ म रखा है। उदाहरणार्थ अरस्तू ने महाकाव्य का सद्धांतिक विवेचन या प्रतिपादन करते हुए 'होमर' तथा ओडेसी से एक नही, अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए है। मध्ययुग म विचार धारा तथा लक्ष्य ग्रन्थो मे परिवर्तन के कारण वहा भी महाकाव्य के लक्षणो मे परिवर्तन करना पडा है। आधुनिक काल म आकर केर डिक्सन, बावरा ने नवीन काव्यो को देखकर प्राचीन लक्षणो म आवश्यकतावश क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। वहा कथानक, नायक, उद्देश्य, शैली पर बहुत कुछ नया सोचा गया किन्तु यह परम्परा का बिखराव नही, उसका ही समृद्ध विकास है।

दोनो देशो म विचारक शरीरतत्व तथा आत्म-तत्व अथवा यो कहिए महाकाव्य के अन्तरंग तथा बहिरंग की छानबीन करते रहे हैं। यही कारण है कि कुछ आत्मवादी आचार्य हैं कुछ शरीरवादी। हिन्दी के आचार्यों ने संस्कृत तथा पाश्चात्य दोनो की दृष्टि स आदर देकर अपनी समन्वयवादी दृष्टि का परिचय दिया हैं। इनम आचार्य विश्वनाथप्रसाद, बाबू गुलाबराय, डा० भगीरथ मिश्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी तथा डा० नगेन्द्र का नाम अग्रगण्य है। हिन्दी में शोधकार्य करने वाले विद्वान भी महाकाव्य के आत्म-तत्व तथा शरीरतत्व के मध्य सामंजस्य स्थापित करते हुए सार्वभौमिक तथा ठोस तथ्यों को निकालने में भगीरथ प्रयास करते रहे। चिन्तन की मुक्त गति तथा युग की विकासोन्मुखी प्रवृत्तिया न हो इन विद्वानो को किसी एक निष्कर्ष पर पहुचने दिया है। मानव के महत्कार्य, महान उपलब्धियो म इनका विश्वास है। अत यहा भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की तुलनात्मक समीक्षा करके महाकाव्य के तत्वो पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। यथा—

कथानक

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान इस विषय मे प्राय सहमत हैं कि महाकाव्य मे जनप्रिय, प्रख्यात अथवा लोक विश्रुत कथाओ को स्थान देना चाहिए। कथानक का फलक विराट् हो तथा कथा म प्रवाहात्मकता, प्रभविष्णुता तथा कार्यान्विति हो।

भारतीय आचार्यों ने जो बात पच सधियो पचकार्यावस्थाओ के द्वारा कही है, ठीक वही बात वे ऑर्गेनिक ऐक्य (आरगनिक यूनिटि) के द्वारा कहते हैं। महाकाव्य में कथानक के अन्तर्गत जीवन के व्यापक सत्यों को समेटने की बात दोनों करते हैं। घटनाओं की संतुलित योजना को दोनों ही आदर देते हैं। महाकाव्य में महत्काय पर दोनों ही देशों के विचारक बल देते रहे हैं। विषय की व्यापकता तथा घटनाओं के उन्मुक्त तथा संतुलित विकास पर दोनों के मत में कोई विरोध नहीं। हाँ समय की अवधि का अन्तर अवश्य पड़ा है पाश्चात्य महाकाव्यों में समय की एकता (यूनिटी आफ टाइम) बड़ी सीमित है जबकि हमारे यहाँ उसका प्रतिबन्ध नहीं है। उदाहरण में रामायण, महाभारत आदि को लिया जा सकता है।

पाश्चात्य विचारकों ने महाकाव्य में अलौकिक तथा अति प्राकृत तत्त्वों का भी समावेश किया है। इस समावेश का कारण भी उन्होंने कथानक का समुचित विकास बताया है। लेकिन हमारे यहाँ भी इस प्रकार के प्रयोग अनावश्यक नहीं समझे गये है आवश्यकतानुकूल कवि इनका प्रयोग कर भी सकता है एवं नहीं भी। अति प्राकृत तत्त्वों का बहिष्कार हमारे महाकाव्यकार ने कभी नहीं किया, लेकिन औचित्य तथा आदर्श पर उनकी दृष्टि अवश्य रही है। कथानक रूढ़ियों में हमारे महाकवि अति प्राकृत तत्त्वों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जिससे रचना नैपुण्य तथा भाव की रमणीयता आती है। तुलनात्मक दृष्टि से देशी तथा विदेशी आचार्य महाकाव्य के कथानक के विषय की व्यापकता, भव्यता प्रभावात्मकता प्रणवता तथा लोक प्रख्यात कथा को आदर देते हैं।

नायक

भारतीय तथा पाश्चात्य मतों पर दृष्टिपात करने पर सामान्यत नायक विषयक दृष्टिकोण में भी विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता है। संस्कृत, हिन्दी तथा पाश्चात्य सभी विद्वान एकमत हैं कि नायक ही कथा का नियन्ता होता है। वह युग अथवा समय विशेष का प्रतिनिधि होना चाहिए। दण्डी, रुद्रट ने 'विजिगीषु तथा चतुरोदात्त नायक' तथा विश्वनाथ ने धीरोदात्त गुणान्वित' की बात की बात की है। पाश्चात्य विचारक टसो जिराल्डी ने भी महाकाव्य में नायक को पूर्ण गुणी (पर्फेक्ट वचुअस) नायक की चर्चा की है। हाँ अरस्तू ने 'पूर्ण मानव' का अवश्य विरोध किया था उसके मत से नायक सर्वथा निर्दोष नहीं होना चाहिए। सर्वथा निर्दोष तो महामानव भी नहीं होता है। कहीं न कहीं उसमे दोष अवश्य रह जाते हैं। अत अनेक उदात्त गुणों के होने हुए भी वह निर्दोष नहीं होना चाहिए। किन्तु अरस्तू की बात का विरोध हुआ तथा दोष हीन व्यक्ति को नायक बनाने की परम्परा यहाँ प्राय मान्य रही। आधुनिक काल में यहाँ पर 'नायक मृत्यु' का भय है कथा में उद्देश्य की सिद्धि। हिन्दी के अधुनातन महाकाव्य 'लोकायतन' में भी नायक

ा लोप है। इस प्रकार दोनों के मतों में वैषम्य कम तथा साम्य अधिक है। रतीय धारादाता नायक कल्पना वहां के सांस्कृतिक जीवन से टकराती है किन्तु न तथ्य पर दोनों एकमत हैं कि उस लोक-कल्याण में प्रवृत्त उदात्त गुणों से युक्त ाज की भावनाओं, परम्पराओं तथा आदर्शों का रक्षक होना चाहिए। इसीलिए ायक को भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टि के समन्वय से डा० नगेन्द्र ने उदात्त नायक ीकार किया है। साथ ही नायक के साथ ही कथा के अन्य पात्रों को गौण स्वीकार किया है।

स

महाकाव्य में रस की कल्पना को लेकर दोनों देशों के बीच विवाद उठाया ा सकता है। यह सत्य ही है कि भारतीय आनन्दवादी कल्पना ने ही रस सिद्धान्त ा जन्म दिया है। अलंकारवादी आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा ानकर भी रस की महत्ता को उद्घाटित किया। दण्डी ने 'रसभाव निरन्तर' को वशेष स्थान दिया। परवर्ती आचार्य अंगी तथा अंग रस की चर्चा भी करते रहे ैं। विश्वनाथ ने शृंगार, वीर, शान्त में से किसी एक को अंगी रस तथा शेष रसों ो अंग रसों में समाहित किया। जीवन की समग्रता में रस की अखण्ड शक्ति का ान किया गया। अतः सभी भारतीय आचार्य महाकाव्य में रस की सत्ता को आदर ेते हैं।

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में रस का प्रत्यक्ष वर्णन तो नहीं, हां भावों का विवेचन अवश्य है। उदात्त हास्य आदि भावों की सत्ता में वे विश्वास रखते हैं। अन्त भाव-वैविध्य को उन्होंने आदर दिया है। एक मूल भाव तथा अनेक भावनाओं का वेग उन्हें मान्य है। यह भाव वैविध्य भारतीय आचार्य के शब्दों में भावात्मक अनुभूति का ही प्रभेद है। शास्त्रीय शब्दावली में रस ही है क्योंकि अनुभूति का रागात्मक रूप ही रस है। अरस्तू-काल के काव्यों में युद्धादि के वर्णनों के कारण वीर भाव का प्राधान्य है। फिर भी भारतीय आचार्य का पक्ष को देखते हुए वे बहुत पीछे हैं। भाव की सत्ता को मानना ही रस की मान्यता की स्वीकृति देना है। अतः दोनों दृष्टियों में भेद होते हुए भी सार भेद नहीं है। रस को दोनों ही अनिवार्य मानते हैं।

जीवन या उद्देश्य

महाकाव्य में जीवन की समग्रता को ग्रहण करना दोनों देशों के विद्वानों को मान्य है। भारतीय आचार्य पुरुषार्थ चतुष्टय को महाकाव्य का उद्देश्य मानता रहा है जिसमें जीवन की समग्र सिद्धि या अखण्डता का भाव ही निहित है। पाश्चात्य विद्वान भी समग्र जातीय दृष्टि का समर्थन अरस्तू से लेकर

भारतीय आचार्यों ने जो बात पंच संधियों, पंचकार्यावस्थाओं के द्वारा कही है ठीक वही बात वे ऐन्द्रिक ऐक्य (आरगनिक यूनिटि) के द्वारा कहते हैं। महाकाव्य में कथानक के अंतर्गत जीवन के व्यापक सत्यों को समेटने की बात दोनों करते हैं। घटनाओं की संतुलित योजना को दोनों ही आदर देते हैं। महाकाव्य में महत्ता पर दोनों ही देशों के विचारक बल देते रहे हैं। विषय की व्यापकता तथा घटनाओं के उन्मुक्त तथा संतुलित विकास पर दोनों के मत में कोई विरोध नहीं। हाँ समय की अवधि का अंतर अवश्य पड़ा है। पाश्चात्य महाकाव्यों में समय की एकता (यूनिटी आफ टाइम) बड़ी सीमित है जबकि हमारे यहाँ उसका प्रतिबंध नहीं है। उदाहरण में रामायण, महाभारत आदि को लिया जा सकता है।

पाश्चात्य विचारकों ने महाकाव्य में अलौकिक तथा अति प्राकृत तत्त्वों का भी समावेश किया है। इस समावेश का कारण भी उन्होंने कथानक का समुचित विकास बताया है। लेकिन हमारे यहाँ भी इस प्रकार के प्रयोग अनावश्यक नहीं समझे गये हैं। आवश्यकतानुकूल कवि उनका प्रयोग कर भी सकता है एवं नहीं भी। अति प्राकृत तत्त्वों का बहिष्कार हमारे महाकाव्यकार ने कभी नहीं किया लेकिन 'औचित्य' तथा 'आदर्श' पर उनकी दृष्टि अवश्य रही है। कथानक रूढ़ियों में हमारे महाकवि अति प्राकृत तत्त्वों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जिससे रचना नैपुण्य तथा भाव की रमणीयता आती है। तुलनात्मक दृष्टि से देशी तथा विदेशी आचार्य महाकाव्य के कथानक के विषय की व्यापकता, भव्यता, प्रभावात्मकता, प्रणवना तथा नोव प्रख्यात कथा को आदर देते हैं।

नायक

भारतीय तथा पाश्चात्य मतों पर दृष्टिपात करने पर सामान्यतः नायक विषयक दृष्टिकोण में भी विशेष अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है। संस्कृत, हिन्दी तथा पाश्चात्य सभी विद्वान एकमत हैं कि नायक ही कथा का नियंता होता है। वह युग अथवा समाज विशेष का प्रतिनिधि होना चाहिए। दण्डी, रुद्रट ने 'विजिगीषु' तथा 'चतुरोदात्त नायक' तथा विश्वनाथ ने 'धीरोदात्त गुणान्वित' का [illegible] की बात की है। पाश्चात्य विचारक टसो, जिराल्डी ने भी महाकाव्य के नायक को पूर्ण गुणी (परफेक्ट वर्चुअस) नायक की चर्चा की है। हाँ अरस्तू ने 'पूर्ण मानव' का अवश्य विरोध किया था। उनके मत में नायक सर्वथा निर्दोष नहीं होना चाहिए। सर्वथा निर्दोष तो महामानव भी नहीं होता है। कहीं न कहीं उसमें दोष अवश्य रह जाते हैं। अतः अनेक उच्च गुणों के होते हुए भी वह निर्दोष नहीं होना चाहिए। किन्तु अरस्तू की बात का विरोध हुआ तथा दोष युक्त व्यक्ति को नायक बनाने का [illegible] मंद हुआ। आधुनिक काल में यहाँ पर 'नायक मृत्यु' का भय है कथा में उसकी सिद्धि। हिन्दी के अधुनातन महाकाव्य [illegible] में भी नायक

का लोप है। इस प्रकार दोनों के मतों में वैषम्य कम तथा साम्य अधिक है। भारतीय धीरोदात्त नायक कल्पना वहां के सांस्कृतिक जीवन से टकराती है, किन्तु इस तथ्य पर दोनों एकमत है कि उसे लोक कल्याण में प्रवृत्त, उदात्त गुणों से युक्त लोक की भावनाओं, परम्पराओं तथा आदर्शों का रक्षक होना चाहिए। इसीलिए नायक को भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टि के समन्वय से डा० नगेन्द्र ने उदात्त नायक स्वीकार किया है। साथ ही नायक के साथ ही कथा के अन्य पात्रों को गौण स्वीकार किया है।

रस

महाकाव्य में रस की कल्पना को लेकर दोनों देशों के बीच विवाद उठाया जा सकता है। यह सत्य ही है कि भारतीय आनन्दवादी कल्पना ने ही रस सिद्धान्त को जन्म दिया है। अलंकारवादी आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा मानकर भी रस का महत्ता को उद्घोषित किया। दण्डी ने 'रसभाव निरन्तर' को विशेष स्थान दिया। परवर्ती आचार्य अंगी तथा अंग रस की चर्चा भी करते रहे हैं। विश्वनाथ ने शृंगार, वीर शान्त में से किसी एक को अंगी रस तथा शेष रसों को अंग रसों में समाहित किया। जीवन की समग्रता में रस की अखण्ड शक्ति का मेल किया गया। अतः सभी भारतीय आचार्य महाकाव्य में रस की सत्ता को आदर देते हैं।

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में रस का प्रत्यक्ष वर्णन तो नहीं, हां भावों का विवेचन अवश्य है। उदात्त, हास्य आदि भावों की सत्ता में वे विश्वास रखते हैं। अतः भाव-वैविध्य को उन्होंने आदर दिया है। एक मूल भाव तथा अनेक भक्तों का वर्ग उन्हें मान्य है। यह भाव वैविध्य भारतीय आचार्य के शब्दों में भावात्मक अनुभूति का ही प्रभेद है। शास्त्रीय शब्दावली में रस हो है क्योंकि अनुभूति का रागात्मक रूप ही रस है। अरस्तू-काल के काव्यों में युद्धादि के वर्णनों के कारण वीर भाव का प्राधान्य है। फिर भी भारतीय आचार्य की पकड़ को देखते हुए वे बहुत पीछे हैं। भाव की सत्ता को मानना ही रस की मान्यता की स्वीकृति देना है। अतः दोनों दृष्टियों में भेद होते हुए भी सार भेद नहीं है। रस को दोनों ही अनिवार्य मानते हैं।

जीवन या उद्देश्य

महाकाव्य में जीवन की समानता को ग्रहण करना दोनों देशों के विद्वानों को मान्य है। भारतीय आचार्य पुरुषार्थ चतुष्टय को महाकाव्य का उद्देश्य मानता रहा है जिसमें जीवन की समग्र सिद्धि या पूर्णता का भाव
पाश्चात्य विद्वान भी समग्र जातीय दृष्टि का समर्थन अरस्तू

भारतीय आचार्यों ने जो बात पंच संधियां पंचकार्यावस्थाओं के द्वारा कहा है, ठीक वही बात वे एरिक ऐक्य (आरगनिक यूनिटि) के द्वारा कहते हैं। महाकाव्य में कथानक के अन्तर्गत जीवन के व्यापक पक्षों को समेटने की बात दोनों करते हैं। घटनाओं की संतुलित योजना को दोनों ही आदर देते हैं। महाकाव्य में महत्कार्य पर दोनों ही देशों के विचारक बल देते रहे हैं। विषय की व्यापकता तथा घटनाओं के उन्मुक्त तथा संतुलित विकास पर दोनों के मत में कोई विरोध नहीं। हां समय की अवधि का अन्तर अवश्य पड़ा है पाश्चात्य महाकाव्यों में समय की एकता (यूनिटी आफ टाइम) बड़ी सीमित है जबकि हमारे यहाँ उसका प्रतिबन्ध नहीं है। उदाहरण में रामायण महाभारत आदि को लिया जा सकता है।

पाश्चात्य विचारकों ने महाकाव्य में अलौकिक तथा अति प्राकृत तत्वों का भी समावेश किया है। इस समावेश का कारण भी उन्होंने कथानक का समुचित विकास बताया है। लेकिन हमारे यहाँ भी इस प्रकार के प्रयोग अनावश्यक नहीं समझे गये हैं आवश्यकतानुकूल कवि इनका प्रयोग कर भी सकता है एवं नहीं भी। अति प्राकृत तत्वों का बहिष्कार हमारे महाकाव्यकार ने कभी नहीं किया लेकिन 'औचित्य तथा आदर्श पर उनकी दृष्टि अवश्य रही है। कथानक रूढ़ियों में हमारे महाकवि अति प्राकृत तत्वों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते हैं जिससे रचना नैपुण्य तथा भाव की रमणीयता आती है। तुलनात्मक दृष्टि से देशी तथा विदेशी आचार्य महाकाव्य के कथानक के विषय की व्यापकता भव्यता प्रभावात्मकता, प्रणवता तथा लोक प्रख्यात कथा को आदर देते हैं।

नायक

भारतीय तथा पाश्चात्य मतों पर दृष्टिपात करने पर सामान्यत नायक विषयक दृष्टिकोण में भी विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता है। संस्कृत, हिन्दी तथा पाश्चात्य सभी विद्वान एकमत हैं कि नायक ही कथा का नियन्ता होता है। वह युग अथवा समय विशेष का प्रतिनिधि होना चाहिए। दण्डी, रुद्रट ने 'विजिगीषु, तथा चतुरोदात्त नायक' तथा विश्वनाथ ने धीरोदात्त गुणान्वित की बात की बात की है। पाश्चात्य विचारक टैसो जिराल्डी ने भी महाकाव्य के नायक को पूर्ण गुणी (पर्फेक्ट वचुअस) नायक की चर्चा की है। हाँ अरस्तू ने पूर्ण मानव का अवश्य विरोध किया था उसके मत में नायक सर्वथा निर्दोष नहीं होना चाहिए। सर्वथा निर्दोष तो महामानव भी नहीं होता है। कहीं न कहीं उसमें दोष अवश्य रह जाते हैं। अतः अनेक उदात्त गुणों के होते हुए भी वह निर्दोष नहीं होना चाहिए। किन्तु अरस्तू की बात का विरोध हुआ तथा दोष हीन व्यक्ति को नायक बनाने की परम्परा वहाँ प्राय मान्य रही। आधुनिक काल में वहां पर 'नायक मृत्यु' का भय है कथा में उद्देश्य की सिद्धि। हिन्दी के अधुनातन महाकाव्य 'लोकायतन' में भी नायक

का लोप है। इस प्रकार दोनों के मतों में वैषम्य कम तथा साम्य अधिक है। भारतीय धीरोदात्त नायक कल्पना वहाँ के सांस्कृतिक जीवन से टकराती है किन्तु इस तथ्य पर दोनों एकमत हैं कि उसे लोक-कल्याण में प्रवृत्त, उदात्त गुणों से युक्त लोक की भावनाओं, परम्पराओं तथा आदर्शों का रक्षक होना चाहिए। इसीलिए नायक को भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टि के समन्वय से डा० नगेन्द्र ने उदात्त नायक स्वीकार किया है। साथ ही नायक के साथ ही कथा के अन्य पात्रों को गौण स्वीकार किया है।

रस

महाकाव्य में रस की कल्पना को लेकर दोनों देशों के बीच विवाद उठाया जा सकता है। यह सत्य ही है कि भारतीय आनन्दवादी कल्पना ने ही रस सिद्धान्त को जन्म दिया है। अलंकारवादी आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा मानकर भी रस की महत्ता को उद्घाटित किया। दण्डी ने 'रसभाव निरन्तर' को विशेष स्थान दिया। परवर्ती आचार्य अंगी तथा अंग रस की चर्चा भी करते रहे हैं। विश्वनाथ ने शृंगार, वीर, शान्त में से किसी एक को अंगी रस तथा शेष रसों को अंग रसों में समाहित किया। जीवन की समग्रता में रस की अखण्ड शक्ति का मूल किया गया। अतः सभी भारतीय आचार्य महाकाव्य में रस की सत्ता का आदर देते हैं।

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में रस का प्रत्यक्ष वर्णन तो नहीं है भावों का विवेचन अवश्य है। उदात्त, हास्य आदि भावों की सत्ता में वे विश्वास रखते हैं। अतः भाव-वैविध्य को उन्होंने आदर दिया है। एक मूल भाव तथा अनेक भक्ता का वेग उन्हें मान्य है। यह भाव वैविध्य भारतीय आचार्य के शब्दों में भावात्मक अनुभूति का ही प्रभेद है। शास्त्रीय शब्दावली में रस ही है क्योंकि अनुभूति का रागात्मक रूप ही रस है। अरस्तू-काल के काव्यों में युद्धादि के वर्णनों के कारण वीर भाव का प्राधान्य है। फिर भी भारतीय आचार्य की पकड़ को देखते हुए वे बहुत पीछे हैं। भाव की सत्ता को मानना ही रस की मान्यता को स्वीकृति देना है। अतः दोनों दृष्टियों में भेद होते हुए भी सार भेद नहीं है। रस को दोनों ही अनिवार्य मानते हैं।

जीवन या उद्देश्य

महाकाव्य में जीवन की समानता को ग्रहण करना दोनों देशों के विद्वानों को मान्य है। भारतीय आचार्य पुरुषार्थ चतुष्टय को महाकाव्य का उद्देश्य मानता रहा है जिसमें जीवन की समग्र सिद्धि या अखण्डता का भाव ही निहित है। पाश्चात्य विद्वान भी समग्र जातीय दृष्टि का समर्थन अरस्तू से लेकर एम्बरक्राम्बी

भारतीय आचार्यों ने जो बात पञ्च सन्धियों, पञ्च कार्यावस्थाओं के द्वारा कही है ठीक वही बात वे एन्द्रिक ऐक्य (आरगैनिक यूनिटि) के द्वारा कहते हैं। महाकाव्य में कथानक के अन्तर्गत जीवन के व्यापक सत्यों को समेटने की बात दोनों करते हैं। घटनाओं की सन्तुलित योजना का दोनों ही आदर देते हैं। महाकाव्य में महत्कार्य पर दोनों ही देशों के विचारक बल देते रहे हैं। विषय की व्यापकता तथा घटनाओं के उन्मुक्त तथा सन्तुलित विकास पर दोनों के मत में कोई विरोध नहीं। हाँ समय की अवधि का अन्तर अवश्य पड़ा है पाश्चात्य महाकाव्यों में समय का एकता (यूनिटी आफ टाइम) बड़ी सीमित है जबकि हमारे यहाँ उसका प्रतिबन्ध नहीं है। उदाहरण में रामायण महाभारत आदि को लिया जा सकता है।

पाश्चात्य विचारकों ने महाकाव्य में अलौकिक तथा अति प्राकृत तत्वों का भी समावेश किया है। इस समावेश का कारण भी उन्होंने कथानक का समुचित विकास बताया है। लेकिन हमारे यहाँ भी इस प्रकार के प्रयोग अनावश्यक नहीं समझे गये हैं आवश्यकतानुकूल कवि इनका प्रयोग कर भी सकता है एवं नहीं भी। अति प्राकृत तत्वों का बहिष्कार हमारे महाकाव्यकार ने कभी नहीं किया, लेकिन औचित्य तथा आनन्द पर उनकी दृष्टि अवश्य रही है। कथानक रूढ़ियों में हमारे महाकवि अति प्राकृत तत्वों को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जिससे रचना नैपुण्य तथा भाव का रमणीयता आती है। तुलनात्मक दृष्टि से देशी तथा विदेशी आचार्य महाकाव्य के कथानक के विषय की व्यापकता, भव्यता प्रभावात्मकता प्राणवत्ता तथा लोक प्रख्यात कथा को आदर देते हैं।

नायक

भारतीय तथा पाश्चात्य मतों पर दृष्टिपात करने पर सामान्यतः नायक विषयक दृष्टिकोण में भी विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता है। संस्कृत, हिन्दी तथा पाश्चात्य सभी विद्वान एकमत हैं कि नायक ही कथा का नियन्ता होता है। वह युग अथवा समय विशेष का प्रतिनिधि होना चाहिए। दण्डी रुद्रट ने 'विजिगीषु, तथा चतुरोदात्त नायक' तथा विश्वनाथ ने 'धीरोदात्त गुणान्वित' की बात की बात की है। पाश्चात्य विचारक टैसो जिराल्डी ने भी महाकाव्य के नायक को पूर्ण गुणी (पर्फेक्ट वर्चुअस) नायक की चर्चा की है। हाँ अरस्तू ने 'पूर्ण मानव' का अवश्य विरोध किया था उसके मत से नायक सर्वथा निर्दोष नहीं होना चाहिए। सर्वथा निर्दोष तो महामानव भी नहीं होता है। कहीं न कहीं उसमें दोष अवश्य रह जाते हैं। अतः अनेक उदात्त गुणों के होते हुए भी वह निर्दोष नहीं होना चाहिए। किन्तु अरस्तू की बात का विरोध हुआ तथा दोष हीन व्यक्ति को नायक बनाने की परम्परा वहाँ प्रायः मान्य रहा। आधुनिक काल में वहाँ पर 'नायक मृत्यु' का अर्थ है कथा में उद्देश्य की सिद्धि। हिन्दी के अधुनातन महाकाव्य लोकायतन में भी नायक

को लोप है। इस प्रकार दोनों के मतों में वैषम्य कम तथा साम्य अधिक है। भारतीय धारानीत नायक कल्पना वहाँ के सांस्कृतिक जीवन से टकराती है, किन्तु इस तथ्य पर दोनों एकमत हैं कि उसे लोक-कल्याण में प्रवृत, उदात्त गुणों से युक्त लोक की भावनाओं, परम्पराओं तथा आदर्शों का रक्षक होना चाहिए। इसीलिए नायक की भारतीय तथा पाश्चात्य दृष्टि के समन्वय से डा० नगेन्द्र ने उदात्त नायक स्वीकार किया है। साथ ही नायक के साथ ही कथा के अन्य पात्रों को गौण स्वीकार किया है।

रस

महाकाव्य में रस की कल्पना को लेकर दोनों देशों के बीच विवाद उठाया जा सकता है। यह सत्य ही है कि भारतीय आनन्दवादी कल्पना ने ही रस सिद्धान्त को जन्म दिया है। अलंकारवादी आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा मानकर भी रस की महत्ता को उद्घोषित किया। दण्डी ने 'रसभाव निरंतर' को विशेष स्थान दिया। परवर्ती आचार्य अंगी तथा अंग रस की चर्चा भी करते रहे हैं। विश्वनाथ ने शृंगार, वीर, शान्त में से किसी एक को अंगी रस तथा शेष रसों को अंग रसों में समाहित किया। जीवन की समग्रता में रस की अखण्ड शक्ति का मनन किया गया। अतः सभी भारतीय आचार्य महाकाव्य में रस की सत्ता का आदर करते हैं।

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में रस का प्रत्यक्ष वर्णन तो नहीं, हाँ भावों का विवेचन अवश्य है। उदात्त, हास्य आदि भावों की सत्ता में वे विश्वास रखते हैं। अतः भाव-वैविध्य का उन्होंने आदर किया है। एक मूल भाव तथा अनेक भावों की एकता उन्हें मान्य है। यह भाव वैविध्य भारतीय आचार्य के शब्दों में भावात्मक अनुभूति का ही प्रश्न है। शास्त्रीय शब्दावली में रस ही है क्योंकि अनुभूति का रागात्मक रूप ही रस है। अरस्तू-काल के काव्यों में युद्धादि के वर्णनों के कारण वीर भाव का प्राधान्य है। फिर भी भारतीय आचार्य का पक्ष को देखते हुए वे बहुत पीछे हैं। भाव की सत्ता को मानना ही रस की मान्यता को स्वीकृति देना है। अतः दोनों दृष्टियों में भेद होते हुए भी मार्ग भेद नहीं है। रस को दोनों ही अनिवार्य मानते हैं।

जीवन या उद्देश्य

महाकाव्य में जीवन की समग्रता को ग्रहण करना दोनों देशों के विद्वानों को मान्य है। भारतीय आचार्य पुरुषार्थ चतुष्टय को महाकाव्य का उद्देश्य मानता रहा है जिसमें जीवन की समग्र सिद्धि या अखण्डता का भाव ही निहित है। पाश्चात्य विद्वान भी समग्र जातीय दृष्टि का समर्थन अरस्तू से लेकर एबरक्राम्बी

तक करते रहे है। मानव का विशदीकरण तथा उदात्तीकरण उन्हें भी मान्य है। चाहे वह विरेचन के द्वारा, हो चाहे मुक्त अभिव्यक्ति के द्वारा। भारतीय आचार्यों ने सन्ध्या, रात प्रभात दिन, दोपहर, नदी, पर्वत के वर्णनों में जीवन वैविध्य के चित्रण को ही महत्वपूर्ण बतलाया है। अतः दोनों के मत से महाकाव्य मानस चित्त तथा युग की भावनाओं का उदघाटक है। दोनों ही देशों के विचारकों ने संस्कृतियों में विराट धाराओं के संगम को महाकाव्य कहा है। वह विराट राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना को अपने में आत्मसात किए रहता है अतः महाकाव्य के उद्देश्य में ऐसी अखण्ड एवं असीम शक्ति होनी चाहिए जिससे युग के चिरन्तन सत्य, भाव, अनुभूतियाँ युग-युग के मानव को प्रेरणा देती रहें तथा जीवन की महत उपलब्धियों को रक्षित रखने की अपूर्व क्षमता भी उसके उद्देश्य में हो। आचार्य विश्वनाथप्रसाद तथा डा० नगेन्द्र उसे ही 'उदात्त उद्देश्य' के अन्तर्गत समाहित कर लेते है।

अभिव्यंजना शिल्प

महाकाव्य के अभिव्यंजना शिल्प की दृष्टि से भी विचारकों में कोई मतभेद नहीं है। दोनों ही प्रायः यह मानकर चलते रहे हैं कि जो महाकवि होगा उसका भाषा पर अधिकार होगा ही। वर्णन शक्ति की विलक्षण सामर्थ्य तथा नागर शब्दों को चुनाव उसे आना ही चाहिए। भामह ने महाकाव्य में ग्राम्यत्व शब्दों का एकान्त बहिष्कार उचित समझा है। इस मत से भी यही ध्वनित होता है भाषा तथा शैली की प्रौढ़ता का ध्यान सहजता के साथ रहना आवश्यक है। उधर अरस्तू ने भाषा की परिपक्वता तथा उदात्तता पर अत्यधिक बल दिया तथा शैली में नद के प्रवाह की शक्ति को अपनाने की चर्चा की है। इस प्रकार शैली की महाकाव्यात्मक गरिमा के विषय में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों की दृष्टियों में साम्य है। आधुनिक आलोचकों ने भी महाकाव्य की शैली में उदात्तता का आदर दिया है। हिन्दी आचार्यों ने भी शैली की भव्यता तथा गरिमा को महाकाव्य में अनिवार्य माना है। अतः सभी निर्विरोध रूप से इस विषय पर एक मत हैं कि महाकाव्य में अभिव्यंजना शिल्प की गरिमा होनी ही चाहिए।

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की धारणाओं का सर्वेक्षण करने के उपरान्त महाकाव्य के सामान्य स्वरूप विधायक तत्व इस प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं—

(१) व्यापक परिधि-युक्त सुगठित कथानक
(२) उदात्त-नायक
(३) रसात्मकता
(४) उद्देश्य की व्याप्ति
(५) अभिव्यंजना में शक्ति।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि महाकाव्य उस रचना को कहगे, जिसमे मानव के महनीय कार्यों एव आदर्शो को व्यापक परिधि मे युक्त सुगठित कथानक म, कलात्मक उत्कर्ष के साथ प्रतिष्ठित किया जाता है। कवि उसम युग धम तथा युग-नेता को एसा व्यक्तित्व प्रदान करता है कि जातीय गौरव की रक्षा के साथ वे मानवता का पथ प्रशस्त कर सकें। मानवता के प्रगति-पथ मे महाकाव्य मील के पत्थरो के समान हाते हैं। वे व्यजित करते हैं कि मानव किस युग मे कहाँ तक विकास कर सका है।

नायक का सैद्धान्तिक विवेचन

व्युत्पत्ति की दृष्टि से नायक शब्द (णी—ण्वुल—अक) णी धातु म ण्वुल प्रत्यय के योग से बना है जिसका अथ 'आग ले जान वाला' या चयन करने वाला हाता है। स्थूल रूप म अनेक व्यक्तियो म जो अग्रणी होता है, उसे नायक कहते हैं। उनमें भी जा विपत्ति और अभ्युदय में श्रेष्ठता बनाय रखता हो, वही नायक कहलाता है। लाक मे यह नायक या नता शब्द अनेक अर्थों में प्रचलित है, जिसका सकेत यहा दना आवश्यक प्रतीत हाता है।

'नायक' शब्द के विभिन्न अथ

सामान्य रूप मे किसी जाति, धम अथवा सम्प्रदाय के अग्रणीय या अगुआ को नायक कह दिया जाता है। काव्य के सन्दभ म कथा के प्रधान चालक या सूत्रधार क लिए 'नायक या नेता शब्द' प्रयुक्त किया जाता है। कभी कभी नायक शब्द श्रेष्ठ पुरुष आदश पुरुष के लिए भी प्रयुक्त हाता है। यह कहन पर कि 'राम हमारी सस्कृति के नायक हैं। यहा पर नायक शब्द सस्कृति के अग्रणीय या पथ प्रदशक आदर्श व्यक्ति के लिए है। अधिकाश आचार्यों न भी अग्रसर व्यक्ति को ही नायक' कहा है। नायक शब्द क प्रचलित अथ इस प्रकार मान जाते हैं—

(१) ले जानेवाला या पहुचान वाला।

(२) राह दिखान वाला।

(३) किसी समुदाय या जनता को विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति का माग निर्देश करन वाला प्रभावशाली व्यक्ति या अधिकारी नायक कहा जाता है।

(४) वह सेनापति जिसके अधीन दस और सेनापति हो। बीस हाथियो और घाडो के दल का अध्यक्ष।

(५) प्रभु या अधीश्वर।

(६) हार की प्रधान मणि।[1]
(७) श्रेष्ठ पुरुष।
(८) शृंगार का आलम्बन रूप—यौवन आदि से सम्पन्न व्यक्ति। (चार प्रभेद—धीरोदात्त धीरललित धीरोद्धत धीरप्रशान्त)। प्रत्येक के चार भेद—दक्षिणनायक अनुकूल नायक धृष्ट नायक, शठनायक। उत्तम मध्यम तथा अधम प्रकृति के नायक।
(९) एक वर्णवृत्त या एक प्रकार का राग।
(१०) शाक्य मुनि का एक नाम विशेषण।
(११) संगीत विद्या में निपुण मनुष्य या कलावन्त।
(१२) एक रोग का नाम
(१३) सरदार स्वामी, सेनापति वह पुरुष जिसके चरित्र को लेकर नाटक या काव्य की रचना की जाए।[2]

लोक में नायक शब्द उपर्लिखित विभिन्न अर्थों में प्रचलित है, लेकिन साहित्य शास्त्र के अन्तर्गत यह शब्द नाटक अथवा काव्य के अधिकारी पात्र के लिए प्रयुक्त किया जाता है। कथा में काव्य के आरम्भ में जो प्रतिज्ञा करता है तथा फलागम की स्थिति में जो काव्य के प्रधान फल का भोक्ता बनता है उसे नायक कहते हैं। स्थूल रूप में प्रधान घटनाओं का सूत्रधार या नियन्ता नायक कहलाता है। अतः यहां हम भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों के मतों को प्रस्तुत करते हुए नायक पर विचार करेंगे।

संस्कृत आचार्यों के नायक-निरूपण का आधार

इन आचार्यों का जीवन के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण रहा है एवं इस आदर्श की अभिव्यक्ति का माध्यम उन्होंने नायक को ही बनाया है। यही कारण है कि मानव का कल्याणोन्मुखी शक्तियों का उद्घाटन आन्तर किया तथा दृश्य एवं श्रव्य काव्य में उदात्त मानव की सद्वृत्ति को ही प्रतिष्ठित किया। उन्होंने काव्य के नेता या नायक को सांस्कृतिक धार्मिक राजनैतिक नैतिक या सामाजिक जीवन का आधार स्वीकार किया है। नायक के कार्य व्यापार इतनी गरिमा रखते हों कि उन कार्यों से समाज नवीन प्रेरणा प्राप्त कर सके। समाज के भिन्न-भिन्न व्यक्ति नायक के आदर्श को स्वीकार कर जीवन को नवीन पथ ग्रहण करें। अतः सामाजिक मर्यादा को ही इन्होंने नायक पर विचार करते हुए सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

---

१ सं० कालिकाप्रसाद—वृहत् हिन्दी कोश पृ० ६९०
२ सं० पण्डित रामचन्द्र—मानव आदर्श हिन्दी शब्द कोश, पृ० २८०

संस्कृत में नायक निरूपण की परम्परा

नेता या नायक पर सर्वप्रथम शास्त्रीय विचार करने वाले आचार्यों में 'नाट्य-शास्त्र' के प्रणेता भरतमुनि अग्रणीय हैं। उन्हें ही इस परम्परा का नायक मानना चाहिए। इस आद्याचार्य के पश्चात भामह, दण्डी, रुद्रट, धनंजय, भोजराज, रामचन्द्र-गुणचन्द्र, हेमचन्द्र, सागरनन्दी, वाग्भट्ट द्वितीय तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों ने विचार किया। अतः भरतमुनि से लेकर विश्वनाथ तक 'नायक निरूपण' का विकास देखने के लिए सम्पूर्ण परम्परा का अध्ययन करना अनिवार्य है। यह भी स्मरणीय है कि भरत के समय में प्रयुक्त 'नाट्य' शब्द आज के 'नाटक' शब्द की तरह संकुचित अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता था। वह समस्त काव्य का वाचक था, जिसके अन्तर्गत काव्य का समस्त विधाओं का विलय था। हमारे अन्य आचार्यों ने भी महाकाव्य के लिए नायक-भेद तथा अलग उसके गुण निरूपण में कोई सार्थकता नहीं समझी। उन्होंने 'नाटक' पर विचार करते हुए नायक पर गम्भीरता से प्रकाश डाला। अतः महाकाव्य के नायक का स्वरूप निर्धारण करने के लिए हम नाट्यान्तर्गत नायक निरूपण की परम्परा का संक्षेप में समीक्षात्मक अध्ययन को प्रस्तुत करेंगे।

भरतमुनि (३०० २०० ई० पू०)

इन्होंने सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र के चौबीसवें 'सामान्याभिनय' पच्चीसवें 'वाह्योपचार' तथा 'प्रकृति भेद' नामक अध्यायों में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया। यहाँ पर उनकी मूल दृष्टि में 'अभिनेता के सिद्धान्त' ही थे। परन्तु नर-नारी की सनातन भावना (रति भावना) को ध्यान में रखकर भी नायक भेद पर विचार किया। भरतमुनि ने नेता या नायक का व्यापक अर्थ में इस प्रकार ग्रहण किया—

(१) नायक को मूल पात्र या कथाफल के अधिकारी पात्र के अर्थ में ग्रहण किया।

(२) नेता का सामान्य ग्रहण करने के साथ साथ उसे अनेक पात्रों के अर्थ में ग्रहण किया। अर्थात नेता के व्यक्तित्व में ही अन्य सहायक पात्रों के व्यक्तित्व का विलय माना है।

(३) शृंगार रस के प्रधान आलम्बन के रूप में भी ग्रहण किया।

नायक भेद—भरत ने प्रायः तीन आधारों से नायक भेद प्रस्तुत किया—

(१) शील के आधार पर नायक भेद।

(२) मानव 'प्रकृति' के आधार पर नायक भेद।

(३) रति-सम्बन्ध के आधार पर नायक भेद।

(१) शील के आधार पर विभाजन इस आधार का केन्द्र समाज है। नायक में 'शील' को ध्यान में रख कर गुण शक्ति तथा वय, परिवेश से उसका विभाजन किया—

(क) धीरोदात्त
(ख) धीरोद्धत
(ग) धीरललित
(घ) धीरप्रशान्त ।[1]

अपने विभाजन के स्पष्टीकरण में इन्होंने कहा कि कीर्तिमान, दिव्य गुणों से युक्त विजयी नायक धीरोदात्त नायक कहलाता है। प्रचण्ड, हठी दृढ प्रतिज्ञ धीरोद्धत होता है। शृंगारिक प्रवृत्तियों वाला कला प्रेमी धीरललित कहलाता है। शान्त वृत्तियों वाला ब्राह्मण धीरप्रशान्त नायक कहलाता है। भरत ने 'प्रधान नायक बुधा'[2] अर्थात नायक के काय व्यापारों की प्रधानता तथा आकर्षण केन्द्र के तथ्य पर बल दिया।

(२) मानव प्रकृति के आधार पर नायक निरूपण —इस आधार पर उन्होंने तीन भेद किए है—

(क) उत्तम प्रकृति का नायक।
(ख) मध्यम प्रकृति का नायक।
(ग) अधम प्रकृति का नायक।[3]

उत्तम प्रकृति का नायक सत्वगुण प्रधान होना चाहिए। मध्यम प्रकृति के नायक में न्यायादिव्य गुणों का प्रदर्शन होता है। इसमें तमोगुण प्रधान होता है। अधम कोटि का नायक सामान्य कोटि का होता है।

(३) रति सम्बन्ध के आधार पर नायक निरूपण —भरत ने संसार में जो भी उज्ज्वल या पवित्र है उसे शृंगार स्वीकार किया है। 'रति सम्बन्ध' को ध्यान में रखकर भरत ने पुरुष के पाँच भेद स्वीकार किए—(१) उत्तम, (२) मध्यम, (३) अधम (४) चतुर (५) सम्प्रवद्ध।

नायक के आवेश में नायिका विभिन्न सम्बोधनों से सम्बोधित करती है—यथा
प्रेमावश में (१) स्वामी (२) कान्त (३) नन्दन (४) नाथ, (५) प्रिय आदि।
क्रोधावेश में (१) दुराचारी (२) शठ (३) दुश्शील, (४) काम, (५) विरूपक (६) निलज्ज (७) निष्ठुर नायक।

१ भरतमुनि—नाट्यशास्त्र, २४।१७
२ वही २४।१८ १६
३ वही ३४।२ ३५।४८
४ भरतमुनि—नाट्यशास्त्र २४। २६२ २६३

नायक में गुण निरूपण

भरत के मत से नायक बलवान सत्यवादी जितेन्द्रिय महोत्साह से युक्त कृतज्ञ, प्रियवाक्, मृदु लोकपाल, व्रतधारी कर्ममार्ग विशारद उत्थानयुत, वृद्धसेवी, शास्त्रविद, दूसरे के भाव जानने में प्रवीण, शूर स्थावर गम्भीर, विचारक, नाना शिल्पविद्, नीतिशास्त्र-कुशल, अनुरागवान कुलीन, स्निग्ध, अप्रमादी लोभरहित, विनीत धार्मिक मन्त्रणा के गुणों से युक्त शालीन उदात्त, त्यागी, अर्थशास्त्र कुशल प्रजापालन में अनुरक्त, कुलोद्भव, कर्त्तव्यरत, व्यवहारकुशल समदर्शी तथा जितक्रोधी होना चाहिए।[1]

भामह (पाँचवीं या छठी शताब्दी)

भामह ने भरत की भाँति नायक पर अलग से विचार नहीं किया है। उसने महाकाव्य के लक्षणों को प्रस्तुत करते समय नायक की चर्चा की है। इन्होंने भरत की भाँति नायक के वर्गीकरण को भी प्रस्तुत नहीं किया। भामह के मत से महाकाव्य का नायक चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—का स्वामी होना चाहिए।[2] जीवन के चारों पुरुषार्थों की सिद्धि को ही उसने नायकोचित गरिमा माना है।

दण्डी (सातवीं शताब्दी)

दण्डी ने भामह का ही अनुकरण किया। इन्होंने भी नायक के भेदों की चर्चा तक नहीं की। नायक में गुण निरूपण की पद्धति का भी इनमें अभाव है। महाकाव्य के नायक की चर्चा करते हुए उसे चतुर तथा उदात्त दो विशेषणों से अलंकृत किया तथा 'चतुरोदात्त नायक'[3] को महान् कृति में स्थान देना उचित समझा।

रुद्रट (नवम शताब्दी का प्रारम्भ)

इस आचार्य ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' के अन्तर्गत 'महाकाव्य' तथा अन्य प्रसंगों की चर्चा करते हुए 'नायक' पर प्रकाश डाला है —

नायक भेद —रुद्रट ने तीन प्रकार के नायक स्वीकार किए —

(१) उत्तम नायक (२) मध्यम नायक (३) अधम नायक। इन्होंने भरत-सम्मत धीरोदात्त आदि चार प्रभेदों की चर्चा तक नहीं की। इन्होंने 'रति' को आधार मानकर नायकों की चार कोटियाँ निर्धारित की हैं —

---

१ वही २४।७६-८८

२ भामह—काव्यालंकार १।२१

३ दण्डी—काव्यादर्श १।१५

(१) अनुकूल नायक (२) दक्षिण नायक (३) शठ नायक (४) धृष्ट नायक।

नायक में गुण निरूपण —रुद्रट ने उपर्युक्त तीन शक्ति सम्पन्न राजा के गुणों से प्रारम्भ करते हुए उत्साह तथा त्रिवर्गोत्पत्ति गुणों को नायक में अत्यधिक स्थान दिया। रुद्रट ने त्रिवर्ग—धर्म अर्थ काम की प्राप्ति को नायक के लिए आवश्यक माना है। उनके अनुसार काव्य के नायक में तीन प्रकार की शक्तियाँ होनी चाहिये —

(१) प्रभु शक्ति
(२) मन्त्र शक्ति
(३) सम्पूर्ण उत्साह शक्ति।[1]

धनंजय (दसवीं शताब्दी)

इन्होंने दशरूपक नामक ग्रन्थ में भरतमुनि के पश्चात् सम्यक्रूपेण विचार किया। भरत की नायक निरूपण की परम्परा में प्राण फूंक दिए। भरत मुनि के पश्चात् धनंजय को इस परम्परा का दूसरा स्तम्भ कहना चाहिए। इन्होंने रुद्रट की भांति प्रथम प्रतिनायक की भी चर्चा की है। उनके मत से प्रथम प्रतिनायक पर नायक की विजय उसके महत्व का उत्पादक है।

नायक भेद —इन्होंने शील के आधार पर नायक के चार भेद स्वीकार किए —

(१) धीरोदात्त (२) धीरोद्धत (३) धीरललित (४) धीरप्रशान्त।[2] 'रति' को आधार मानकर इन्होंने परम्परा से चले आते चार भेदों को स्वीकार किया— अनुकूल दक्षिण शठ तथा धृष्ट नायक। धनंजय ने गुणों के आधार पर भी तीन तरह के नायक स्वीकार किए —

(१) दिव्य (२) दिव्यादिव्य (३) अदिव्य।

गुण निरूपण —इन्होंने स्पष्ट कहा है कि श्रेष्ठ दिव्य गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को ही नायक बनाना चाहिए। उसे विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, रक्तलोक, शुचि, वाग्मी, रूढ़वंश, स्थिर, युवा, बुद्धिमान, उत्साहवान, स्मृतिवान प्रज्ञावान, कलासमन्वित, शूर, दृढ़ प्रतिज्ञ, तेजस्वी, शास्त्र चक्षु और धार्मिक होना चाहिए।

नायक में उपर्युक्त गुणों का स्थान देकर उन्होंने नायक के आठ सात्विक

---

१ रुद्रट— काव्यालंकार १२।७८

२ धनंजय — दशरूपक—द्वितीय प्रकरण।

गुणों पर भी विचार किया है —

(१) शोभा
(२) विलास
(३) माधुर्य
(४) गाम्भीर्य
(५) स्थैर्य
(६) तेज
(७) ललित
(८) औदार्य ।[1]

उसने नायक में पौरुष के प्रताप को अत्यधिक महत्व दिया । उसने आठ सात्विक गुणों का विशद विवेचन भी प्रस्तुत किया । नीच के साथ घृणा, अपने से अधिक गुणवाले के साथ स्पर्धा तथा शौर्य-क्षमता को शोभा कहा है । उसने विलास नामक सात्विक गुण का तात्पर्य धैर्ययुक्त मुस्कान से लिया है । 'माधुर्य' से उनका तात्पर्य मधुर विकार से है जिसमें व्यक्तित्व का मधुर-पक्ष छिपा है । जिस प्रभाव से विकार स्पष्ट लक्षित न हो उसे गाम्भीर्य कहते हैं । गाम्भीर्य तथा स्थैर्य व्यक्तित्व के कान्तिशील गुण हैं । नायक एक सहृदय व्यक्ति भी हो वह रूखा हृदयहीन वीर ही न हो । प्रेम की चंचल लोल लहरियाँ भी उसमें मचल रही हों । इसी से उसने 'ललित' नामक सात्विक गुण को स्थान दिया है । नायक विनयशील उदार, रक्षक, स्वाभिमानी तथा चतुर हो, इसी को औदार्य गुण कहा है । धनंजय के मत से यह आठ सात्विक गुण धीरोदात्त नायक के व्यक्तित्व के अनिवार्य गुण हैं,[2] उनमें से किसी एक के भी न होने से व्यक्तित्व की हानि होती है ।

भोजराज (११ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध)

इन्होंने अपने 'सरस्वती कण्ठाभरण' तथा 'शृंगार प्रकाश' में 'नायक निरूपण' पर विचार किया है । इन्होंने परम्परा को एक नवीन मोड़ दिया तथा धर्म एवं स्वभाव के आधार पर नायकों का वर्गीकरण किया । इनके वर्गीकरण का मूल आधार है—

(१) धर्म शृंगार का नायक
(२) अर्थ शृंगार का नायक

---

१ शोभा विलासो, माधुर्य गाम्भीर्य धैर्य तेजसी ।
ललितौदार्य मित्यष्टौ सत्वाजा पौरुषा गुणाः ॥—वही १० । १५७

२ दशरूपक—द्वितीय प्रकरण

(३) काम शृंगार का नायक।

(४) मोक्ष शृंगार का नायक।[1]

गुणों के आधार पर —(१) उत्तम कोटि का नायक, (२) मध्यम कोटि का नायक, (३) अधम कोटि का नायक।

प्रकृति के आधार पर —(१) सात्विक प्रकृति का नायक (२) राजसी प्रकृति का नायक (३) तामसी प्रकृति का नायक।

कथावस्तु के आधार पर नायकों का वर्गीकरण —(१) उपनायक (२) नायकाभास (३) उभयाभास (४) तिर्यगाभास।[2]

इस प्रकार के अन्यान्य भेद भी किए हैं। भोज ने यह भी कहा है कि 'एवमन्येपि विशेषा भेत्ता सभेदतामिय ॥' अर्थात् विद्वान लोग मिश्र मिश्रण से अन्य अनेक भेदों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। भोज ने एक कामिनी तथा अनेक कामिनियों के आधार पर साधारण तथा असाधारण नायक नामक दो प्रभेद भी स्वीकार किए हैं। परन्तु भोज का यह विभाजन परवर्ती संस्कृत आचार्यों को मान्य नहीं हुआ।

रामचन्द्र गुणचन्द्र (१२वीं शताब्दी का मध्यकाल)

भोजराज के पश्चात् उन्होंने नाट्यदर्पण में नायक पर विस्तार से विचार किया। इनकी मूल दृष्टि नाटकीय तत्वों पर ही केन्द्रित थी। इन्होंने परम्परा की स्वीकृति अवश्य प्रदान की तथा भरत एवं धनंजय की बात का प्रकारान्तर शब्दों में समर्थन भी किया है। यथा—

उद्धतोदात्त ललित शान्ता धीर विशेषणाः।
स्वभावाश्चत्वारो नेतृणां नाम मध्यमोत्तमाः॥

शील के आधार पर चार भेद स्वीकार किए गए हैं—(१) धीरोदात्त (२) धीरोद्धत (३) धीरललित, (४) धीर प्रशान्त।

प्रकृति के आधार पर (१) उत्तम (२) मध्यम (३) अधम।

इनका विभाजन इस प्रकार दी है—

1 भोजराज—सरस्वती कण्ठाभरण ५। १०१ १०८
2 भोजराज—सरस्वती कण्ठाभरण ५।१०७ १०९
भोजराज—शृंगार प्रकाश पृ० ३३
4 रामचन्द्र-गुणचन्द्र—नाट्य दर्पण, प्रथम अध्याय श्लोक ६

(१) धीरोद्धत नायक, अस्थिर चित्त, प्रचण्ड, शौर्यादि के मद से युक्त अहंकारी तथा आत्म प्रशंसा करने वाला होता है।
(२) धीरोदात्त नायक अत्यन्त गम्भीर, न्यायप्रिय, सत्वादि गुणों से युक्त क्षमादान देने वाला तथा स्थिर स्वभाव का होता है।
(३) धीरललित नायक कला प्रेमी शृंगारिक वृत्ति का सुखी तथा मधुर स्वभाव का होता है। अर्थात् शृंगारमूलक भोग-राग में उसका मन रमता है।
(४) धीरप्रशान्त नायक अहंकारविहीन, कृपालु, विनयशील होता है।[1]

रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने प्रधान नायक, पताका नायक प्रकरी नायक को अलग अलग स्थान दिया। शृंगार के आधार पर नायक भेद पर उनकी दृष्टि नहीं गई। अन्य आचार्यों की भांति सात्विक गुणों को छोड़कर अन्य गुणों को गिनाने का उन्होंने प्रयास नहीं किया। धनजय की भांति नायक के सात्विक गुणों में तेज विलास माधुर्य शोभा, स्थैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य तथा ललित—आठ गुणों की स्वीकृति दी है।[2] नायक के महत्व को स्पष्ट करने के लिए इन्होंने प्रतिनायक की भी चर्चा की है। उन्होंने 'लोभी धीरोद्धत पापी व्यसनी प्रतिनायक' कहा है। इन्होंने प्रतिनायक में राशि राशि अवगुणों तथा नायक में राशि राशि गुणों की परिकल्पना की है।

हेमचन्द्र (१२वी शताब्दी)

इनके मत से समस्त कथा का प्रधान नायक है। वह समस्त कथा चक्र का चलाने वाला तथा अनेक गुणों से युक्त होना चाहिए। साथ ही जो इतिवृत्त को फल तक ले जाता है, इनके मत से—

(१) नायक समग्र गुणों युक्त व्यक्ति हो।
(२) इतिवृत्त का मूलाधार नायक हो।

---

१ (i) शरण्योदर्पिणस्त्यागी लोकशास्त्र विचक्षणः।
गाम्भीर्य धैर्य-शौण्डीर्य-न्यायाद्याद्गुणवान् पुमान्॥ ना० द० चतुर्थ वि० १५६
(ii) देवा धीरोद्धता धीरोदात्ता सन्त्यन्ये मन्त्रिणः।
धीरशान्ता वणिग-विप्रा राजानस्तुचतुर्विधाः॥ ७
धीरोद्धतश्चण्डो दर्पी दम्भी, विकत्थन।
धीरोदात्तो विगम्भीरो न्यायी सत्वी क्षमीस्थिरः॥ ८
शृंगारो धीर ललित कलासक्त सुखीमृदुः।
धीरशान्तो हृङ्कार कृपार्तविनयी नयी॥ ६ वही प्रथम विवेक
२ तेजो विलासो माधुर्य, शोभा स्थैर्य गम्भीरता।
औदार्य, ललित अष्टौ गुणा नेतिरि सत्वजाः॥ वही, चतुर्थ वि० १६१

नायक भेद[1] में इन्होंने परम्परा का निर्वाह ही किया, कोई नवीन तथ्य प्रस्तुत नहीं किया। साथ ही सात्विक गुणों की भी चर्चा भरत तथा धनंजय की तरह ही की है।[2] कथा प्रबन्ध के प्रधान को नायक कहा है।[3]

सागरनन्दी (११वीं शताब्दी का मध्यकाल)

इस आचार्य ने 'नाटक लक्षण रत्नकोश' में नायक पर नूतन विचार व्यक्त किए हैं। इनकी मूल दृष्टि 'प्रख्यातोन्नत नायक' पर केन्द्रित रही है। 'राजर्षिवंश' की ललक इनमें नहीं है। पौरुष का उद्दाम वेग तथा मर्यादा की पावनता ही नायक का प्रतिनायक धर्म है।

इनके मत से नायक उस व्यक्ति को कहना चाहिए जो बीज, बिन्दु आदि से लेकर अन्त तक कथा की गति देता है[4], साथ ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से वह किसी एक पुरुषार्थ की सिद्धि करे। नायक की मूल वृत्ति का प्रतिफलन फलागम में होता है। अतः कथा के बाद कलेवर में सर्वाधिक व्याप्ति का गुण नायक ही लाता है।

नायक भेद :—पूर्व परम्परा की भांति इन्होंने शील का आधार मानकर ही धीरोदात्त ललित उद्धत तथा प्रशान्त' नायकों की चार कोटियाँ स्वीकार की हैं।

नायक गुण :—इन्होंने महान नायक में अन्य गुणों के साथ आठ सात्विक गुणों की भी चर्चा की है—

शोभा विलासो माधुर्य स्थैर्य गाम्भीर्यमेव च।

---

१ (i) गूढगर्वास्थिरोधीर क्षमावान विकत्थनो महासत्वो दृढव्रतो धीरोदात्त ॥

(ii) कलासक्त-सुखी शृङगारी मृदुर्निश्चिन्तो धीरललित ॥

(iii) विनयोपशमवान धीरशान्त ॥

(iv) शूरोमत्सरीमायी विकत्थन छद्मवान रौद्रो वलिप्तो धीरोद्धत ॥

—हेमचन्द्र—काव्यानुशासन, ४१०, ४११, ४१२

२ शोभाविलास ललितमाधुर्य स्थैर्यगाम्भीर्यो औदार्यतेजास्पष्टो सत्वजास्तद्गुणा ॥

—वही।

३ समग्रगुणा कथाव्यापी नायक ॥ कथा प्रबन्धस्तव्यापी। नयति व्याप्नो इतिवृत्त फल चेति नायक ॥

—हेमचन्द्र काव्यानुशासन ४०६

४ सागरनन्दी—नाटक लक्षण रत्नकोश, पृ० २

ललितौदाय तेजाम सत्व भेदास्तु पौरुषा ।[1]

शोभा —नायक म युद्ध शक्ति, शूरता, काय दक्षता, गुणानुराग, लोक के प्रति कल्याण भावना, सत्यवादिता आदि गुण प्रदीप्त होकर शोभा को प्रदीप्त करते हैं।

विलास —धीर दृष्टि से युक्त, वृषभ की तरह गति, करनी मे रमणीयता बात करते समय सहज प्रसन्न मुद्रा मनोहर आकृति, सम्पत्ति इन सभी का सामजस्य विलास कहलाता है।

माधुय —इन गुणो के अन्तगत प्रियता, अनुद्वेग को स्थान दिया गया है।

स्थय —नायक धम, अथ, काम के विषय म स्थिर शक्ति वाला हो। वह अपने मन पर अटल तथा पुरुषाथयुक्त व्यक्ति हो।

गाम्भीय —हष क्रोधादि म अविचल भाव की समर्पित शक्ति का नाम गाम्भीय है।

ललित —मधुर वेश वाला, शृगार म रुचियुक्त, महान गुणो से सत्सग म रुचि रखनेवाला व्यक्ति ललित भाव से युक्त कहलाता है।

औदाय —अपने तथा पराये का भेद भाव भूल कर व्यष्टि तथा समष्टि के साथ प्रेम स्थापित करने की शक्ति का नाम औदाय कहलाता है।

तेज[2] —दूसरे द्वारा किये गए अपमान को सहने म असमथ, पौरुष पर विश्वास रखने वाला, अप्रतिहत शोभा से युक्त तेजगुण होता है।

इन सात्विक गुणो को अखण्ड आत्म शक्ति के अन्तगत समेटा जा सकता है।

वाग्भटट द्वितीय (१४ वी शताब्दी)

इनके नायक निरूपण को देखकर लगता है कि सामाजिक तथा सास्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान म रख कर ही उन्होने नायक के गुणो की एक विस्तृत सूची दी है। सास्कृतिक दृष्टि की ही पूर्णता का परिणाम है कि एक मानव म जितने भी उत्तम गुणो की परिकल्पना की जा सकती है उन गुणो को समाहित किया है।

नायक भेद —इनकी मूल दृष्टि रस पर केंद्रित रही है। सामाजिक व भाव प्रवत्यात्मक रूप का आधार इन्ह अधिक पुष्ट लगा। यही कारण है कि इनका नायक

---

१ 'नायक इति बीज बिन्दु।दिसवलितस्य नाटकस्य नाट्यमन्त नयतीति नायक। स एव धम कामाथ फल भाग्भवति ।।

—वही पृ० ११

२ सागरनन्दी—नाटक लक्षण रत्नकोश, पृ० ४६

भेद स्थायी भाव या नायक की संस्कार वृत्ति पर किया है। धीरोदात्त में वीर धीरोद्धत में रौद्र, धीर ललित में शृंगार तथा धीरप्रशान्त में शृंगार रस की प्रधानता दी। शृंगारमूलक दृष्टिकोण को अपनाकर भी उक्त नायक भेद किए—(१) अनुकूल नायक (२) दक्षिण नायक (३) शठ नायक (४) धृष्ट नायक।[1]

एक स्त्री से स्थिर प्रेम रखने वाला नायक अनुकूल नायक कहलाता है। इसके प्रेम में एकनिष्ठता होती है। इसके विपरीत अपनी प्रियतमा के कहने पर भी जो अप्रिय कार्य करता है वह शठ नायक कहलाता है। पाप करने पर भी जो कभी चिंता नहीं करता वह नायक धृष्ट की कोटि में आता है। अपनी पूर्व पत्नी के प्रति भी जो अनुराग को नहीं छोड़ता तथा अन्य स्त्रियों से भी प्रेम सम्बन्ध रखता है ऐसा दक्षिण नायक कहलाता है।[2]

गुण निरूपण—इनके मत से नायक बुद्धिमान उत्साही, स्मृतिवान, प्रज्ञावान, औदार्य गाम्भीर्य धैर्य स्थैर्य माधुर्य कला निपुण विनीत कुलीन, रोग रहित, अभिमानरहित, स्वतन्त्र व्यक्तित्ववान प्रियभाषी, लोक कल्याण में प्रवृत्त वाग्मी, उच्चकुलीन, तेजस्वी दृढ़ निश्चयी शास्त्रज्ञ तत्वज्ञानी, शृंगार में प्रवृत्त तथा सौन्दर्य के प्रति आसक्तिपूर्ण दृष्टि युक्त होना चाहिए।[3] महाकाव्य का नायक पुरुषार्थ चतुष्टय से युक्त प्रसिद्ध चतुर तथा उदात्त होना चाहिए।

विश्वनाथ (१४वीं शताब्दी पूर्वार्ध)

नाटक तथा महाकाव्य के नायकों की दृष्टि से रचकर विश्वनाथ ने शास्त्रीय

---

१ तत्र धीरोदात्त धीरोद्धत धीरललित धीरप्रशान्ता वीर रौद्र शृंगार रस प्रधानेचत्वारोनायकाः। तत्र धीरोदात्ता रामादयः। धीरोद्धता भीमसेनादयः। धीरललित वत्सादयः। धीरप्रशान्ता जीमूतवाहनाद्यः॥

—वाग्भट्ट द्वितीय—काव्यानुशासन पृ० ६१

२ (।) तत्रस्थिरप्रेमा एकस्यारतो नुकूलः।
(।।) प्रियं माचरन्नपि विप्रियं म कुरुते स शठः।
(।।।) कृतदोषो पि निःशङ्को धृष्टः।
(।v) अन्यचित्तो पि पूर्वस्यां सौरयमय प्रमादिन त्यजति स दक्षिणः।
—वही पृ० ६१ प्र० अ०

३ वही पृ० ६२

४ चतुर्वर्ग फलोपनम चतुरोदात्तनायकम प्रसिद्ध नायक चरितम वर्णनोपेत महाकाव्यम। —वाग्भट्ट द्वितीय—काव्यानुशासन पृ० १७ प्रथम अ०

वर्ती की। उन्होंने परम्परा को स्थायित्व प्रदान किया। इनकी धारणा इतनी सन्तुलित, पुष्ट तथा सुविचारित सिद्ध हुई कि परवर्ती सभी विद्वानों ने इनके मत का समर्थन किया। हिन्दी काव्य शास्त्र में विश्वनाथ के नायक निरूपण को अधिकाधिक समर्थन प्राप्त हुआ।

नायक भेद—नायक पर विचार करते समय इनकी मूल दृष्टि शील पर स्थिर रही है। शील के आधार पर ही इन्होंने परम्परागत विभाजन को धीरोदात्त उद्धत ललित, प्रशान्त इन चारों भेदों को स्वीकार किया। इन चारों के गुणों में पूर्वाचार्यों की कथित पद्धति को ही अपनाया गया है।

"शृंगार" को आधार मानकर इन्होंने धीरोदात्तादि नायकों के चार भेद किए—(१) अनुकूल नायक, (२) दक्षिण नायक (३) शठ नायक, (४) धृष्ट नायक।

परम्परा में चले आते हुए यह लक्षण शृंगारपरक काव्य तथा नाटक में अपनाये जाते रहे। रुद्रट से लेकर भानुदत्त की रस तरंगिणी तक तथा अन्य ग्रन्थों में अपरिवर्तनीय रूप से यह भेद स्वीकार कर लिए गए। भानुदत्त ने पति, उपपति, वैशिक के भेदों के साथ क्रिया चतुर, वचन चतुर तथा मानी नायक आदि भेदों को भी स्वीकार किया।

गुण निरूपण

विश्वनाथ ने नायक को आश्रय का रक्षक मानकर स्पष्ट कहा है कि नायक में त्याग भावना हो।[१] वह महान कार्य में लीन, उच्चकुलीन, बुद्धि के सहज प्रकाश से दीप्त, सौंदर्ययुक्त यौवन वाला अनन्य उत्साह आदि गुणों से मण्डित हो। कार्य में संलग्न, लोकप्रिय, तेजस्वी चतुर तथा शीलवान हो।[२] विश्वनाथ ने नायक में आठ सात्विक गुणों की भी चर्चा की है—

(१) शोभा (२) विलास (३) माधुर्य, (४) गाम्भीर्य, (५) धैर्य (६) तेज (७) ललित (८) औदार्य।

शोभा—इस सात्विक गुण से विश्वनाथ का अभिप्राय पराक्रम, कार्यनिपुणता सदाचरण उद्दाम शक्ति उत्साह, समस्त लोक के प्रति अनुराग, नीच

---

१ विश्वनाथ—साहित्यदर्पण तृ० परिच्छेद पृ० १४१
२ विश्वनाथ—साहित्य दर्पण तृ० परिच्छेद, पृ० १४१
३ वही, पृ० १४३
४ वही पृ० १४३

निम्नवृत्ति से विरक्ति, बड़ों से स्पर्धा का भाव जिसमें विद्यमान होता है, उसे शोभा कहते हैं।

विलास—इस गुण के कारण नायक की दृष्टि में प्रभाव शक्ति, चाल में विचित्र मस्ती तथा वचनों में मृदु स्मिति पायी जाती है।

माधुर्य—नायक में मन क्षोभ के रहने पर भी मन का धैर्य रहने का माधुर्य का नाम दिया है।

गाम्भीर्य—भय, शोक, क्रोध, हर्ष आदि की स्थिति में भी अचल या स्थिर वृत्ति से रहता है तब उस नायक का गाम्भीर्य या गौरव गुण कहा है।

धैर्य—विघ्नों के आने पर भी अपने 'कर्तव्यपथ' से अविचल भाव का नाम धैर्य है।

तेज—अन्य के द्वारा किए गए अपमान को प्राण देने पर भी सहन न करने का नाम तेज कहा गया है।

ललित—बोलचाल, वेशभूषा, प्रेम लीला आदि से युक्त नायक के गुण को ललित कहा गया है।

औदार्य—इस गुण के कारण वाणी की स्निग्धता के साथ शत्रु तथा मित्र के प्रति समदर्शिता की भावना का आगमन होता है।[1]

इस प्रकार इनके मत से नायक के सात्विक गुण नायक के आन्तरिक विकास को प्रस्तुत करते हैं। विश्वनाथ ने बाह्य तथा आन्तरिक गुणों को ध्यान में रखकर ही धीरोदात्त नायक की धारणा को निर्धारित किया है।

संस्कृत आचार्यों की नायक सम्बन्धी धारणाओं का तुलनात्मक विवेचन

नायकों का वर्गीकरण

संस्कृत आचार्यों की नायक निरूपण की परम्परा पर दृष्टिपात से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय आचार्यों की नायक कल्पना के निर्माण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक आधारों का अधिक योग है। संस्कृत के सभी आचार्यों ने नायक में दोषों का सर्वथा अभाव माना है एवं उदात्त चरित्र का व्यक्ति ही काव्य या नाटक का नायक हो सकता है। संस्कृत आचार्यों ने नाटकों के लिए जो कोटियाँ निर्धारित

१ विश्वनाथ—साहित्यदर्पण, पृ० १५४

की, वे ही प्राय महाकाव्य के नायक पर भी ठीक उतरती हैं। भरतमुनि न सामाजिक शील का आधार बनाकर सवप्रथम नायका की चार कोटिया निर्धारित की हैं—धीरोदात्त धीरोद्धत, धीरोशात तथा धीरललित। इस नाटकीय विभाजन का परम्परा के रूप म स्थान प्राप्त हुआ। अग्निपुराणकार रुद्रट, दशरूपककार तथा भोज न भरत का यह वर्गीकरण स्वीकार किया। भोजराज न 'शृगार प्रकाश' म भरत के धीरोदात्त का धम शृगार का नायक, धीरोद्धत को अथ शृगार का नायक धीर ललित का काम शृगार का नायक तथ धीरप्रशात को मोक्ष शृगार का नायक माना है। हेमचन्द्र, रामचन्द्र-गुणचन्द्र, वाग्भटट द्वितीय तथा विश्वनाथ ने भरत के इस विभाजन को ही अपनाया है। वे आरम्भ स लकर अन्त तक समान विशेषताओं की ही चर्चा करत रहे। इन आचार्यों के मत से इस वर्गीकरण के नायको का स्वरूप इस प्रकार है—

धीरोदात्त

इसम गम्भीरता, दृढता तज को सभी ने स्वीकार किया। विश्वनाथ न 'धीरोदात्त गुणन्वित' का निरूपण इस प्रकार किया—

> अविकत्थ क्षमावानऽति गम्भीरा महासत्व ।
> स्थयान्निगूढमाना धीरोदात्ता दृढव्रत कथित ॥

सभी आचाय इस मत से सहमत हैं कि अ य नायको की अपेक्षा इस कोटि के नायक म गरिमा अत्यधिक होती है।

धीरोद्धत

इन आचार्यों के मत से इस नायक मे दप तथा प्रचण्डता की प्रधानता होती है यह चचल, मायावी क्रोधी तथा आत्म प्रशसक होता है।

धीरललित

भरत, धनजय तथा विश्वनाथ सभी के मत से यह कोमल स्वभाव का कलाओं म प्रेम रखने वाला शृगार प्रिय होता है।

धीरप्रशात

सभी क विचार म यह प्रशान्त मन स्थिति का होता है, ब्राह्मण अन्य वश्यादि नायक ही इस कोटि म आत हैं।

इस प्रकार इन आचार्यों की सम्पूर्ण परम्परा न भरत के आधार पर किए गए इस विभाजन को स्वीकार किया है।

भरत ने नायक वर्गीकरण का रूप परम्परा से प्रधानत की दृष्टि से नायक प्रतिनायक उपनायक तथा अनुनायक का विभाजन प्रस्तुत किया। भरत प्रकृति के आधार पर नायक भेद राजस तामस तथा सात्त्विक नायक से भी प्रस्तुत किया। उद्दात्त एव स्त्री तथा श्रोता के आधार पर भी साधारण तथा असाधारण नायक भेद प्रस्तुत किए। परन्तु भरत के इस विभाजन का बाद के आचार्यों ने स्वीकार किया। मानव की प्रकृति का ध्यान में रखकर भरत ने उत्तम मध्यम तथा अधम नायकों की तीन कोटियाँ निर्धारित की थी जिसका समर्थन धनजय के अतिरिक्त किसी ने नहीं किया। अत इस विभाजन का विशेष महत्व मिला ही नहीं।

शृगार या रति का आधार मानकर भी प्राय सभी आचार्यों ने नायकों का विभाजन किया है। इन्होंने इनकी भी चार कोटियाँ निर्धारित की हैं— (१) अनुकूल नायक (२) दक्षिण नायक (३) शठ नायक (४) धृष्ट नायक। अन्य न प्रमाण तथा आधावश की स्थिति का ध्यान में रखकर नायिका की सम्भावना के आधार पर भी नायक भेद किया है जिसकी परवर्ती किसी आचार्य ने महाकाव्य के सन्दर्भ में चर्चा तक नहीं की है। भरत धनजय, वाग्भट्ट द्वितीय तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों ने रति के आधार पर काव्य में इन चार कोटि के नायकों की ही चर्चा की है।

नायक में गुण निरूपण

इन आचार्यों ने शील तथा रति के आधारों को अपना कर अपना वर्गीकरण प्रस्तुत किया तथा दोनों के गुणों का पृथक पृथक निरूपण किया—शील प्रधान नायकों में गुण निरूपण करते हुए भरत से विश्वनाथ तक ने बडी रोचक सूची दी है। भरत मुनि ने नायक में शक्ति सम्पन्नता बुद्धिमत्ता सत्यप्रियता जितेन्द्रियता कार्य दक्षता प्रगल्भता, धैर्य उत्साह दूरदर्शिता प्रियभाषी शास्त्रज्ञता प्रवीणता कुलीनता, धार्मिकता उदात्तता गम्भीरता त्यागवृत्ति बहुश्रुत समदर्शिता आदि गुणों को स्थान दिया। भरत के पश्चात रुद्रट ने प्रभु शक्ति मन्त्र शक्ति आदि का ध्यान में रख कर विजिगीषु नायक में भरत सम्मत गुणों को समेट लिया। धनजय ने नायक में गुण निरूपण दृष्टि से भी पूर्ववर्ती आचार्यों को अपनाया। परिणामत इन्होंने भी भरत सम्मत विशेषताओं को दुहराया है। सागरनन्दी रामचन्द्र गुणचन्द्र वाग्भट्ट द्वितीय ने इसी परम्परा को स्वीकार किया। उन्होंने परम्परा में नायक के लिए अक्षय कीर्ति तथा अक्षय शक्ति नामक दो विशेषण और जोड़ दिए। नायक निरूपण में गुणों की परम्परा को आचार्य विश्वनाथ ने स्थिरता एव महत्ता प्रदान की। इन्होंने परम्परा के प्रचलित सभी गुणों को स्वीकार कर लिया।

इन आचार्यों ने नायक म आठ सात्विक गुणो की चर्चा की है—शोभा विलास माधुर्य गाम्भीर्य, धैर्य तेज ललित तथा औदार्य। सभी के मत म यह नायक के आन्तरिक व्यक्तित्व का प्रकाशन करते है। अत 'धीर' विशेषण से युक्त नायक म इन गुणो को स्थान मिलना ही चाहिए।

रति प्रधान नायको म प्रवृत्ति के आधार पर गुणो की चर्चा की गई है। अनुकूल नायक प्रियतमा मे अनुरक्ति तथा अन्य स्त्रियो से विरक्ति का गुण सभी ने स्वीकार किया है। दक्षिण नायक का गुण है कि वह सभी नायिकाओ मे समान व्यवहार करता है। शठ नायक का गुण है कि वह नायिकाओ के साथ कपट करने म प्रवीण होता है। धृष्ट नायक म निलज्जता को सभी ने स्वीकार किया है। इस प्रकार इन नायको के गुण निरूपण म परम्परा के सभी आचार्य एकमत है।

समस्त संस्कृत आचार्यों के मतो का सर्वेक्षण करने पर एक तत्व अनिवार्यत मिलता है—नायक की नाटक या काव्य मे अक्षुण्ण गरिमा। जीवन के कर्म पक्ष म उनकी आस्था थी। साथ ही सद के प्रति आत्मा के सहज झुकाव तथा तादात्म्य का भाव भी इनके मूल म है। यही कारण है कि आचार्यों की दृष्टि म मौलिक भेद नही। अत इन आचार्यों के मत से नायक म निम्नलिखित विशेषताए होनी चाहिए—(१) चारित्रिक भव्यता (२) असीम एव अजय उत्साह शक्ति (३) युग का मायनता (४) कुलीनता तथा प्रभाव शक्ति (५) अखण्ड आत्मशक्ति (६) अखण्ड धैर्य (७) यौवन का उद्दाम वेग (८) अनेक कलाओ मे पारगत (९) लोक धर्म का रक्षक (१०) लोक श्रद्धा की पात्रता।

निष्कर्ष म हम कह सकते है कि इन आचार्यों ने निर्दोषता को नायक म महत्व दिया है। इन्होने कार्यों की भव्यता तथा स्थायी गरिमा पर भी विशेष झुकाव दिखलाया है।

पाश्चात्य विद्वानो का नायक सम्बन्धी दृष्टिकोण

पाश्चात्य विद्वानो ने महाकाव्य तथा नाटक पर विचार करते हुए नायक पर प्रकाश डाला है। उनका नायक आदर्शवाद के कठघरे म बन्द नही वह जीवन के हर्ष विषाद जय पराजय को भोगता हुआ भौतिक धरातल पर स्थित है। इसका प्रमुख कारण भारतीय तथा पाश्चात्य संस्कृति का अन्तर है। भारतीय विचारधारा आदर्शवादी है और पाश्चात्य विचारधारा यथार्थवादी। हमारा नायक अनेक गुणो म युक्त तथा मर्यादाओं का उपासक होता है। पाश्चात्य विद्वानो का यह दृढ विचार है कि जीवन म उत्थान-पतन का क्रम शाश्वत है, इसीलिए नायक की कल्पना करते

हुए भी उन्होने इस तथ्य पर बल दिया है। वे महामानव की महानता म विश्वास रखते है और इस महानता म पूरा युग बोध छिपा रहता है किन्तु व महान से महान व्यक्ति मे भी कुछ कमियाँ दिखाते है जिसस कि यथाथ का रक्षण हो सके और नायक कल्पना की ही वस्तु न बन जाय तथा प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करे कि वह हमारे जीवन का ही हमसे कुछ ऊपर उठा हुआ व्यक्ति है। उसम महानता भी है और लघुता भी।

सवप्रथम ग्रीक के आचाय अरस्तू न त्रासदी तथा कामदी की चर्चा करत हुए नायक पर विचार किया है। पाश्चात्य जगत म अरस्तू से लेकर वनार्डशा तक उनके यहाँ नायक सम्बन्धी दृष्टिकोण म परिवतन दृष्टिगोचर होता है। जिस व पुनर्जागरण काल कहत हैं उसम भी टसो, कस्टलवेनो जिराल्डी, पुटेनट्टेम आदि अरस्तू की ही परम्परा म सुधार करत रह। आधुनिक काल म बौद्धिकतावाद का प्रचार और प्रसार हुआ फलत कला म नवीन स नवीन तकनीकी प्रयोग हुए। डिक्सन केर, बावरा आदि न नायक म युग की गरिमा का रक्षित करने की चर्चा की। अत पाश्चात्य जगत की लम्बी परम्परा पर सक्षिप्त रूप से प्रकाश डाल लना आवश्यक है जिससे हम कुछ मान्य तथ्य उपलब्ध कर सकें।

अरस्तू की नायक सम्बन्धी धारणा (३८४ ३२२ ई० पू०)

अरस्तु ने नाटक का महाकाव्य स अन्यतर रचना मानकर नाटक क त्रासदी तथा कामदी दो प्रभद किए। उसने कामदी का ही जीवन की गम्भीर आकृति स्वीकार किया तथा त्रासदी के नायक को ही गम्भीर व्यक्ति। उसने त्रासद नाटक (ट्रजडी) तथा महाकाव्य (एपिक) दाना म ही नायक की महानता उच्चकुलीनता तथा उदात्तता पर विशप जार दिया। उसन महाकाव्य क पात्रा स भी त्रासदी के पात्रा को अधिक गम्भीर अनुकृति कहा है। लेकिन जीवन क यथाथ रूप को लकर ही उसन स्वीकार किया है कि त्रासदी नायक चाह कितना ही उदात्त क्यो न हो उसम कोई न कोई दुबलता (हैमर्शिया) अवश्य रहती है।[1] बूचर न अरस्तू की बात का पुष्ट करत हुए ठीक ही कहा है कि दाप रहित मानता नाटकीय रजकता लान म बहुत कम समथ हो पाती है।[2]

नायक भेद

अरस्तू न नायका क तीन वग किए है—(१) यथाथ नायक (२) आदश

---

१ एस० एच० बूचर—अरिस्टोटल्स थियोरी आफ पोयटी एण्ड फाइन आर्ट्स, पृ० ३१०

२ वही पृ० ३११

नायक (३) परम्परागत तथा रूढ चरित्र के नायक।

यथार्थ नायक से अरस्तू का तात्पर्य यथार्थ जीवन के नायक या पात्रों से है। जीवन की वास्तविक जटिलताओं से जूझते हुए जो सामान्य मानव की तरह उत्थान पतन के चक्र में पड़े रहते हैं वे ही यथार्थ कोटि के पात्र हैं। ऐतिहासिक या पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर जिनको कवि या नाटककार प्रस्तुत करता है, उन्हें पौराणिक पात्र या आदर्श चरित्र कहते है। तीसरे प्रकार के पात्रों में वे कल्पित व्यक्ति आते हैं जिनको कलाकार युगानुरूप ढाल कर जन्म देता है। काल या परिस्थिति का ध्यान में रख कर उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रायः इस प्रकार के नायक अपनाये जाते हैं। इनमें निजंधरी तथा अलौकिक घटनाओं का समावेश रहता है।

नायक के चरित्रांकन की सीमा

त्रासदी तथा महाकाव्य में गम्भीर चरित्र का नायक होता है, लेकिन यह गम्भीर व्यक्ति सर्वथा निर्दोष नहीं होना चाहिए। यदि आदर्श व्यक्ति का पतन दिखाया जायगा तो उसका दुर्भाग्य (एब्सर्डिटी) हमारे नैतिक संस्कारों को झकझोर देगा तथा न्यायबुद्धि की आस्था को ठेस लगेगी। निर्दोष व्यक्ति के पतन से करुणा तथा भय की भावना न उत्पन्न होकर नैतिक आधार का सहानुभूतिमूलक आत्म तत्त्व विलाप कर चीख उठेगा। अरस्तू का कहना है कि साथ ही उसमें किसी दुष्ट पात्र के विपत्ति में उत्कर्ष का चित्रण भी नहीं होना चाहिए।[1]

नायक के आवश्यक उपबन्ध

नायक असाधारण भाग्यसम्पन्न राजपरिवार अथवा कुलीन परिवार के व्यक्ति को बनाना चाहिए। महाकाव्य के नायक को लेकर अरस्तू ने विस्तृत चर्चा नहीं की। सिर्फ इतना ही कहा है कि महाकाव्य तथा त्रासदी में यह समानता है कि उनमें उच्चतर कोटि के व्यक्तियों की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है।[2]

अरस्तू ने नायक के चार आवश्यक उपबन्ध माने हैं—

(१) भद्र (Goodness)—बूचर के मत से अरस्तू ने सर्वाधिक महत्त्व चरित्र की एकता तथा भद्रता को दिया। यदि चरित्र भद्र होगा तो उद्देश्य स्वतः भद्र हो जायगा।[3]

(२) औचित्य (Propriety)—उचित अनुचित का विवेक नायक में जागना

१ स० डा० नगेन्द्र—अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ० ३१

२ वही पृ० १८

३ एस० एच० बूचर—अरिस्टोटल्स थियोरी आफ पोएट्री एण्ड फाइन आर्ट्स, पृ० ५५

हो। समाज के करणीय कार्य का औचित्य उसमें प्राप्त हो।

(३) जीवन के अनुकूल चरित्र (True to Life)—जीवन के सत्य चरित्र में उपस्थित हो। अरस्तू ने दर्शी के अन्तर्गत भद्र तथा औचित्य को भी माना है।

(४) एकरूपता (Consistency)—चरित्र में अनेकरूपता होते हुए भी एकरूपता का गुण हो।

होरेस—(६५ ई० पू०—८ ई० पू०)

होरेस का कहना है कि 'नायक का जो चित्र जनसाधारण के मस्तिष्क में है, उससे भिन्न चरित्र नहीं बनना चाहिए। होरेस ने नायक भेद की तो चर्चा नहीं की, लेकिन चरित्र में सार्वभौमिकता पर बल दिया।[1] उसने महाकाव्य को राजाओं, नेताओं का अनुकृत रूप कहा तथा महान् नायक के कार्यों के कारण ही कृति की भव्यता (dignity) को स्वीकार किया।[2] उसके मत से महान नायक का व्यक्तित्व समाज पर छा जाता है तथा युग उस व्यक्ति का अनुकरण करता है। इस प्रकार उसने आदर्श नायक (Ideal hero) को उचित ठहराया।

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में इटलियन लेखक जिराल्डी शिंटो (Giraldicinto) ने महाकाव्य के नायक पर विस्तृत विचार किया। उसने महाकाव्य के नायक में उदात्त गुणों की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। चरित्र के आधार पर उसने महाकाव्य के तीन भेद किए—

(१) एक व्यक्ति के एक चरित्र की अनुकृति।
(२) एक व्यक्ति के अनेक चरित्रों की अनुकृति।
(३) अनेक व्यक्तियों के अनेक चरित्रों की अनुकृति।

टसो—(१५६४ १७७८) ने अरस्तू के नायक सम्बन्धी मत पर प्रहार किया। उसने त्रासदी में करुणा तथा भय के भावों को अनावश्यक स्वीकार किया। उसने त्रासदी के नायक में अन्तर किया। टैसो के मत से त्रासदी के नायक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह युग का महान नेता या महान व्यक्ति हो हो, जबकि महाकाव्य के नायक के लिए यह आवश्यक है। महाकाव्य का नायक काफी हद तक निर्दोष, उदात्त गुणों से युक्त तथा सदभावनाओं से युक्त होना चाहिए।[3]

---

१ स० बाबू गुलाबराय—डा० नगेन्द्र—सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, प० १४२

2 "Hero would be the spirit of man the human who is drawn up and exalted from the clouded levels of conscious existence into the clearer region of the universal history
—Hegal—Philosophy of Fine arts—Vol IV p 157

3 I T Myers—A study of Epic development, p 19

एमीक्रूसो—(Amycruso) ने नायक के महामानवत्व की महत्ता प्रतिपादित का है। उसने नायक म महामानव के तत्त्वा (Superhuman elements) को अनिवाय माना। उसके मत से नायक गुणा की दिव्यता से निर्दोष भी हा तो काई बडी बाधा नहा है। नायक म उत्साह, प्रेम भय तथा लाक रक्षण की प्रवृत्ति हानी चाहिए।[1]

वाल्टेयर (१६६४ १७७८) न नायका क दा भेद किए—(१) कठोर प्रकृति क नायक, (२) कामल प्रकृति के नायक।

इसके मत स दोना प्रकार के नायको म मानवता का प्रभावित करने की शक्ति होनी चाहिए।[2]

शडविक न नायक मे युग दृष्टि को विशेष महत्त्व दिया।[3] उमका व्यक्तित्व युग की हलचल का दपण होना चाहिए। नायक के साहस का भा शडविक युग दृष्टि मे अपनाता है। उसन अखण्ड तथा अजेय युद्धात्मक शक्ति का नायक म आवश्यक माना है।

कारलायल—(१७६५ १८८१) ने नायक पर गम्भीरता म विचार किया। उसन परम्परा रक्षक तथा परम्परा प्रेमी दो विशेषण नायक म अनिवाय माने है। इन गुणा की विस्तत चर्चा उसन 'हीरो एण्ड हीरो वर्शिप' नामक अपनी कृति मे की है। उसने कहा, 'मरा नायक से तात्पय एक वफादार व्यक्ति से है, बहादुरा तथा पवित्र महानता से ही नायको का जम होता है।[4]

एमरसन ने इस परम्परा मे एक नवीन तथ्य नायक मूल्य (Hero s Rate) नाम से जाड दिया।[5] उसन नायक म स्वायत्त शक्ति (Trained in self control) तथा भव्य आत्मा की चर्चा की है तथा वीरोचित जीवन का ही नायक का औदात्य मानते हुए भी उस परम्परा से पिटा पात्र कहा है।[6]

---

1 Amycruse—The Golden Road in English Literature—England s Epic—Chpt XXI

2 I T Myers—The Study of Epic Development p 30

3 N K Sinthanta—The Heroic Age of India p 64

4 Carlyle—Hero and Hero worship the Hero as priest

5 The hero is not fed on sweets
Daily his own heart he eats
Chambers of the great are jails
And Head winds right for Royal sails
R W Emerson—Heroism

6 ' Every hero becomes a bone atlast '
—EMerson—Representative men—uses of great man p

हो। समाज के करणीय कार्य का औचित्य उसमें निहित हो।

(३) जीवन के अनुकूल चरित्र (True to Life)—जीवन के सत्य चरित्र में उपस्थित हो। अरस्तू ने इसी के अन्तर्गत भद्र तथा औचित्य को भी माना है।

(४) एकरूपता (Consistency)—चरित्र में अनेकरूपता होते हुए भी एकरूपता का गुण हो।

हौरेस—(६५ ई० पू०—८ ई० पू०)

हौरेस का कहना है कि नायक का जो चित्र जनसाधारण के मस्तिष्क में है, उससे भिन्न चरित्र नहीं बनना चाहिए। हौरेस ने नायक भेद की तो चर्चा नहीं की, लेकिन चरित्र में सार्वभौमिकता पर बल दिया।[1] उसने महाकाव्य को राजाओं, नेताओं का अनुकृत रूप कहा तथा महान् नायक के कार्यों के कारण ही कृति की भव्यता (dignity) को स्वीकार किया।[2] उसके मत से महान् नायक का व्यक्तित्व समाज पर छा जाता है तथा युग ऐसे व्यक्ति का अनुकरण करता है। इस प्रकार उसने आदर्श नायक (Ideal hero) को उचित ठहराया।

सोलहवीं शताब्दी के मध्य में इटलियन लेखक जिराल्डी शिंटो (Giraldicinto) ने महाकाव्य के नायक पर विस्तृत विचार किया। उसने महाकाव्य के नायक में उदात्त गुणों की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। चरित्र के आधार पर उसने महाकाव्य के तीन भेद किए—

(१) एक व्यक्ति के एक चरित्र की अनुकृति।

(२) एक व्यक्ति के अनेक चरित्रों की अनुकृति।

(३) अनेक व्यक्तियों के अनेक चरित्रों की अनुकृति।

टसो—(१५६४ १७७८) ने अरस्तू के नायक सम्बन्धी मत पर प्रहार किया। उसने त्रासदी में करुणा तथा भय के भावों को अनावश्यक स्वीकार किया। उसने त्रासदी के नायक में अन्तर किया। टसो के मत से त्रासदी के नायक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह युग का महान नेता या महान व्यक्ति ही हो जबकि महाकाव्य के नायक के लिए यह आवश्यक है। महाकाव्य का नायक काफी हद तक निर्दोष, उदात्त गुणों से युक्त तथा सद्भावनाओं से युक्त होना चाहिए।[3]

---

१ सं० बाबू गुलाबराय—डा० नगेन्द्र—सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० १४२

2 'Hero would be the spirit of man the human who is drawn up and exalted from the clouded levels of conscious existence into the clearer region of the universal history

—Hegal—Philosophy of Fine arts—Vol IV p 157

3 I T Myers—A study of Epic development, p 19

एमीक्रूसो—(Amycruso) ने नायक के महामानवत्व की महत्ता प्रतिपादित की है। उसने नायक में महामानव के तत्त्वों (Superhuman elements) को अनिवार्य माना। उसके मत से नायक गुणों की दिव्यता से निर्दोष भी हो तो कोई बड़ी बाधा नहीं है। नायक में उत्साह, प्रेम, धर्म तथा लोक-रक्षण की प्रवृत्ति होनी चाहिए।[1]

वाल्टेयर (१६६४ १७७८) ने नायकों के दो भेद किए—(१) कठोर प्रकृति के नायक, (२) कोमल प्रकृति के नायक।

इसके मत से दोनों प्रकार के नायकों में मानवता को प्रभावित करने की शक्ति होनी चाहिए।[2]

शडविक ने नायक में युग दृष्टि को विशेष महत्त्व दिया।[3] उसका व्यक्तित्व युग की हलचल का दर्पण होना चाहिए। नायक के साहस को भी शडविक युग दृष्टि में अपनाता है। उसने अखण्ड तथा अजय युद्धात्मक शक्ति को नायक में आवश्यक माना है।

कारलायल—(१७९५ १८८१) ने नायक पर गम्भीरता से विचार किया। उसने परम्परा रक्षक तथा परम्परा प्रेमी दो विशेषण नायक में अनिवार्य माने हैं। इन गुणों की विस्तृत चर्चा उसने 'हीरो एण्ड हीरो वर्शिप' नामक अपनी कृति में की है। उसने कहा, 'मेरा नायक से तात्पर्य एक वफादार व्यक्ति से है, बहादुरों तथा पवित्र महानता से ही नायकों का जन्म होता है।'[4]

एमरसन ने इस परम्परा में एक नवीन तथ्य नायक मूल्य (Hero s Rate) नाम से जोड़ दिया।[5] उसने नायक में स्वायत्त शक्ति (Trained in self control) तथा भव्य आत्मा की चर्चा की है तथा वीरोचित जीवन को ही नायक का औदार्य मानते हुए भी उसे परम्परा से पिटा पात्र कहा है।[6]

1 Amycruse—The Golden Road in English Literature—England s Epic—Chpt XXI

2 I T Myers—The Study of Epic Development p 30

3 N K Sinthanti—The Heroic Age of India p 64

4 Carlyle—Hero and Hero worship the Hero as priest

5 The hero is not fed on sweets
Daily his own heart he eats,
Chambers of the great are jails
And Head winds right for Royal sails
R W Emerson—Heroism

6 'Every hero becomes a bone atlast'
—EMerson—Representative men—

हो। समाज के करुणाय काय का औचित्य उस भान हो।

(३) जीवन के अनुकूल चरित्र (True to Life)—जीवन के सत्य चरित्र म उपस्थित हो। अरस्तू न इसी के अन्तगत भद्र तथा औचित्य का भी माना है।

(४) एकरूपता (Consistency)—चरित्र म अनेकरूपता होते हुए भी एकरूपता का गुण हो।

होरेस—(६५ ई० पू०—८ ई० पू०)

होरेस का कहना है कि 'नायक का जो चित्र जनसाधारण के मस्तिष्क म है, उससे भिन्न चरित्र नही बनना चाहिए। होरेस न नायक भेद की तो चर्चा नही का लेकिन चरित्र म सार्वभौमिकता पर बल दिया।[1] उसन महाकाव्य को राजाओ, नेताओ का अनुकृत रूप कहा तथा महान् नायक के कार्यों के कारण ही कृति की भव्यता (dignity) को स्वीकार किया।[2] उसके मत स महान नायक का व्यक्तित्व समाज पर छा जाता है तथा युग एस व्यक्ति का अनुकरण करता है। इस प्रकार उसने आदर्श नायक (Ideal hero) को उचित ठहराया।

सोलहवी शताब्दी के मध्य म इटलियन लेखक जिराल्डो शिंटो (Giraldicinto) ने महाकाव्य के नायक पर विस्तृत विचार किया। उसन महाकाव्य के नायक म उदात्त गुणो की आवश्यकता का प्रतिपादन किया। चरित्र के आधार पर उसन महाकाव्य के तीन भेद किए—

(१) एक व्यक्ति के एक चरित्र का अनुकृति।

(२) एक व्यक्ति के अनेक चरित्रो की अनुकृति।

(३) अनेक व्यक्तियो के अनेक चरित्रो का अनुकृति।

टसो—(१५६४ १७७८) न अरस्तू के नायक सम्बन्धी मत पर प्रहार किया। उसने त्रासदी म करुणा तथा भय के भावो को अनावश्यक स्वीकार किया। उसन त्रासदी के नायक म अन्तर किया। टसो के मत से त्रासदी के नायक के लिए यह आवश्यक नही है कि वह युग का महान नेता या महान व्यक्ति ही हो जबकि महाकाव्य के नायक के लिए यह आवश्यक है। महाकाव्य का नायक काफी हद तक निर्दोष, उदात्त गुणो से युक्त तथा सदभावनाओ से युक्त होना चाहिए।[3]

---

१ स० बाबू गुलाबराय—डा० नगेन्द्र—सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ, प० १४२

2 "Hero would be the spirit of man the human who is drawn up and exalted from the clouded levels of conscious existence into the clearer region of the universal history '
—Hegal—Philosophy of Fine arts—Vol IV p 157

3 I T Myers—A study of Epic development, p 19

नवीन जीवन-दृष्टि देता है तथा कविता की वाणी के लिए कीर्ति गीत बन जाता है।

इनसाइक्लोपीडिया में अदम्य उत्साह (disembodied spirit) को नायक के लिए आवश्यक माना गया है।[1] उसे वहाँ गुणों में देवताओं का निकटवर्ती दिव्य मूर्ति भी स्वीकार किया गया। 'हीरो' एक ग्रीक शब्द है जो शिष्ट पुरुष का पर्याय माना जाता है। नायक में उदात्तता, महानता, शिष्टता, सामाजिक मर्यादा, असद का विरोध आदि गुण होने ही चाहिएँ। नायक को अनवरत संघर्ष करने के पश्चात सफलता प्राप्त हो अथवा असफलता, इस की चिन्ता न करके उसने कोमल तथा कठोर प्रकृति के नायकों की चर्चा की है। हीगल तथा होरेस ने नायक भेद न करके केवल उदात्त-नायक की चर्चा की है। एमरसन का आदर्श नायक तथा बायरन का दिव्य नायक एक दूसरे का पर्यायवाची हैं। अतः इनके मत से तीन तरह के नायक काव्य में स्थान पा सकते हैं—

(१) आदर्श नायक या दिव्य नायक
(२) ऐतिहासिक या पौराणिक नायक
(३) प्रेरणात्मक काल्पनिक नायक

नायक में गुण-विवेचन

अरस्तू ने नायक में गम्भीरता, भद्रता, कुलीनता, कार्य-क्षमता तथा व्यवहार-कुशलता को स्थान दिया है। होरेस ने अरस्तू की बात का समर्थन किया। नायक में 'उदात्त गुण' और जोड़ दिया। अरस्तू ने नायक में चरित्र की कोई भूल भी आवश्यक मानी थी, जिसका विरोध टसो, इमरसन, जिराल्डी, शेफ्टबिड, कारलायल आदि सभी ने किया।

जिराल्डी ने होरेस की तरह उदात्त गुणों को नायक में आवश्यक माना। टसो ने नायक में महामानव के समस्त गुणों को स्थान दिया। रूसो ने दोषरहित व्यक्ति को नायक माना तथा उत्साह, साहस, धैर्य, प्रेम एवं गुणों की दिव्यता को उसमें आवश्यक कहा। वाल्टेयर ने नायक के गुणों को सूचीबद्ध तो नहीं किया लेकिन उसने उसे मानवता का प्रतिनिधि चरित्र गुणों के दृष्टिकोण से ही माना है। शडविक का मत भी वाल्टेयर से साम्य रखता है कि गुणों के कारण नायक में व्यक्तित्व की अपराजेय शक्ति होनी चाहिए। कारलायल ने परम्परा रक्षक तथा परम्परा प्रेमी दो गुणों की नायक में अलग से चर्चा की है। एमरसन ने स्वायत्त-शक्ति तथा भव्य आत्मा की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। बायरन ने स्वायत्त-शक्ति को स्वीकार करके भी उसमें देश भक्ति की प्रबल भावना को आवश्यक ठहराया, साथ ही गुणों में महान सन्त के गुणों से नायक की तुलना की है। नायक में गुणों

1 Encyclopaedia Britannica Vol II p 508

बायरन—(१७८८ १८२४) के मत से नायक को सच्चा देश भक्त होना चाहिए। नायक को उसने समाज का सर्वाधिक प्रमुख एवं उत्तरदायित्व युक्त व्यक्ति कहा है। इसीलिए अन्याय पर न्याय (नायक) की विजय को (Subject for an Angel's Song) परियों या देवताओं के गीत का विषय कहा है।[1] नायक में महासत्त्व की तरह सर्वहितकारी कामना होनी चाहिए। समृद्धि की सालों में महान आत्मावाले नायक अवतरित होते हैं तथा समाज के पथ को प्रशस्त करते हैं।

डिक्सन (बीसवीं सदी)—इन्होंने नायक परम्परा पर दृष्टि डालते हुए यह कहा है कि त्रासदी के नायक तथा महाकाव्य के नायक में मूल का भेद है। इसीलिए उसने अरस्तू की बात का विरोध किया तथा नायक को निर्दोष व्यक्ति स्वीकार किया। डिक्सन ने नायक में गुणों की सूची तो नहीं गिनवाई, लेकिन यह स्पष्ट कहा कि नायक सर्वगुणसम्पन्न होना चाहिए।[2] युद्ध का प्रसंग हो अथवा प्रेम का, नायक की विजय होनी ही चाहिए। एबरक्राम्बी ने भी डिक्सन की तरह ही नायक पर विचार व्यक्त किए। अतः उस पर अलग से विचार करना उचित नहीं होगा।

सी० एम० बावरा के मत से जो नायक युद्ध के मैदान में अपनी वीरता के चरम शिखर पर पहुंच कर मृत्यु का वरण करता है वह जीवित नायक से भी अधिक प्रशंसनीय है। अंतिम समय तक वह साहस एवं आत्म शक्ति को लेकर प्रयत्नवान रहा। अतः उससे इससे अधिक उन्माद भी नहीं करनी चाहिए। अपने शौर्य तथा पराक्रम के द्वारा वह जातीय जीवन को गरिमायुक्त बनाता है।[3] उसने नायक में अजेय आत्म शक्ति को अत्यधिक महत्त्व दिया। महान नायकों को उसने जीवन का अग्रदूत कहा है।[4] नायक का आदर्श कार्य कलाप अगणित मनुष्यों को

---

1 Byron—The Usland Canto II St 9

2 Dixon—English Epic and Heroic poetry, p 3

3 He gives dignity to the human race by showing of what feats it is capable he extends the bounds of experience for others and enhances their appreciation of life by the example of his abundant vitality However much ordinary men feel them selves to fall short of such an ideal they non the less respect it because it opens up possibilities of adventure and exitment and glory which appeal even to the most modest and most humble The admiration for great doings lies top in the human heart and comforts and chears even when it does not stin to emulation

—C m Bowra—Heroic Poetry, p 4

नवीन जावन दृष्टि दता है तथा कवियो की वाणी के लिए कीर्ति-गीत बन जाता है।

इनसाइक्लोपीडिया म अदम्य उत्साह (disembodied spirit) को नायक के लिए आवश्यक माना गया है।[1] उसे वहा गुणा म देवताओ का निकटवर्ती दिव्य मूर्ति भी स्वीकार किया गया। 'हीरो' एक ग्रीक शब्द है जो शिष्ट पुरुष का पर्याय माना जाता है। नायक म उदात्तता, महानता, शिष्टता, सामाजिक मर्यादा, असद् का विरोध आदि गुण होने ही चाहिएँ। नायक को अनवरत सघष करने के पश्चात् सफलता प्राप्त हो अथवा असफलता इस की चिंता न करके उसन कामर तथा कठोर प्रकृति के नायको की चचा की है। हीगल तथा हारम ने नायक भेद न करके केवल उदात्त-नायक की चचा की है। एमरसन का आदश नायक तथा बायरन का दिव्य नायक एक दूसरे का पयायवाची हैं। अत इनके मत मे तीन तरह के नायक काव्य म स्थान पा सकते हैं—

(१) आदश नायक या दिव्य नायक
(२) ऐतिहासिक या पौराणिक नायक
(३) प्रेरणात्मक काल्पनिक नायक

नायक में गुण विवेचन

अरस्तू ने नायक म गम्भीरता भद्रता, कुलीनता, कार्य-क्षमता तथा व्यवहार-कुशलता को स्थान दिया है। होरेस ने अरस्तू की बात का समथन किया। नायक म 'उदात्त गुण' और जोड दिया। अरस्तू न नायक में चरित्र का कोई भूल भी आवश्यक मानी थी, जिसका विरोध टसो डमरसन जिराल्डी केन्वि, बारनायन आदि सभी ने किया।

जिराल्डी ने होरेस की तरह उदात्त गुणो को नायक में आवश्यक माना। टसो ने नायक म महामानव के समस्त गुणों को स्थान दिया। एमाडूसा न दोषरहित व्यक्ति को नायक माना तथा उत्साह साहस धय प्रेम एव गुणो की दिव्यता को उसम आवश्यक कहा। वाल्टेयर ने नायक के गुणों का सूचाबद्ध तो नहीं किया लेकिन उसने उसे मानवता का प्रतिनिधि चरित्र गुणो के दृष्टिकोण म ही माना है। शडविक का मत भी वाल्टयर से साम्य रखता है कि गुणों के कारण नायक में व्यक्तित्व की अपराजेय शक्ति होनी चाहिए। बारनायन न परम्परा रक्षक तथा परम्परा प्रेमी दो गुणो की नायक म अलग स चचा की है। एमसन न स्वायत्त-शक्ति तथा भव्य आत्मा की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। बायरन न स्वायत्त-शक्ति को स्वीकार करके भी उसम दस भक्ति का प्रवल भावना का आवश्यक ठहराया, साथ ही गुणो म महान सन्त क गुणो स नायक की तुलना की है। नायक में गुणों

---

1 Encyclopaedia Britannica Vol II p 508

निकलने का प्रयास करना सभी महाकाव्यों का लक्ष्य होता था।[1] मध्यकाल के अनेक कवि अपने काव्य को किसी विराट् या उदार सत्ता के प्रति निवेदित करते हैं तथा जिस नायक की काव्य भूमि पर स्थापना करते हैं वे या तो नरनायक राम हैं, या कृष्ण। इनके नायक भी 'क्रूर असुर अभिमानियों को मारने के लिए तथा धर्म की स्थापना के लिए जन्म लेते हैं। ये गुणागार जनसुखदायक प्रणतपाल सभी कुछ हैं। ये ईश्वर होते हुए भी मानव हैं यहीं पर साहित्य में पूर्ण मानव की प्रतिष्ठा है। प्रत्यक्ष रूप से तुलसीदास पर भरत, तथा विश्वनाथ की नायक विषयक आदर्श कल्पना का भी प्रभाव स्वीकार किया जाना चाहिए। तुलसी ने अपने नायक में एक आदर्श नायक के सभी गुणों को एकत्रित कर दिया है। यहाँ कहना अनौचित्य पूर्ण है कि तुलसी की नायक-कल्पना धीरोदात्त नायक से भी ऊपर की कोटि में आती है। शुक्लजी के शब्दों में 'मानस की धर्मभूमि में क्षात्र धर्म' की पूर्ण प्रतिष्ठा की गई है। रावण पर राम की विजय अधर्म पर धर्म की विजय है। मंगल की यह ज्योति अमंगल का नाश करती हुई फूटती है। तुलसीदास ने नायक की कसौटी तो निर्धारित की है परन्तु मानस में नायक के गुणों का मुक्तगान किया है जिनमें दो विशेषताएँ हैं—

(१) नायक की असीम आत्म शक्ति

(२) कल्याणाभिनिवेशी दृष्टि का आधिक्य

रीतिकाल में कवियों ने शृंगारपरक नायकों को अपनाया तथा शृंगार के प्राधान्य के कारण अनुकूल दक्षिण, शठ तथा धृष्ट नायकों का प्राबल्य उनके काव्य में है।[3] मतिराम ने इन नायकों का लक्षण निरूपण संस्कृत के आधार पर ही किया। कुछ कवियों ने शील के आधार पर धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीर प्रशान्त नायकों को भी स्वीकार किया, जिनमें केशव चिन्तामणि, गोरेलाल आदि के नाम प्रमुख हैं।

आधुनिक काल में जागरण का स्वर मुखर हुआ। अतः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने काव्य नायक में लोक मंगलकारी दृष्टि से दो गुणों की स्थापना की—

(१) करुणा

(२) रंजन[4]

काव्य में लोकमंगल की स्थापना के पीछे रवीन्द्रनाथ का यह मत भी छिपा हुआ है कि 'मन में जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है सहसा जब एक पुरुष

---

१ डा० श्रीकृष्णलाल—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ४४-४५

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि—प्रथम भाग, पृ० १६०

मतिराम—ललित ललाम।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि—प्रथम भाग, पृ० १६०

कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार सा जमाता है, मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्मत्त भावों से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मंदिर निर्माण करता है, उसी को महाकाव्य कहते हैं।"[1] अर्थात महाकाव्य का नायक महान चरित्र से युक्त महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होना चाहिए। आचार्य शुक्ल ने पृथ्वीराज रासो, राम चरित मानस, पदमावत, हम्मीर रासो तथा छत्र प्रकाश आदि प्रबन्धकाव्यों को आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों की कोटि में रखा है। राम के लोकादर्श को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। परिणामतः आदर्श नायक की परिकल्पनाएं उन्होंने 'जनसुखदायक' राम के ही आदर्श में मानी। महत्त्व की दृष्टि से शुक्ल जी ने प्रबन्ध काव्य के नायक की जीवन साधना को ही परिणाम स्वीकार किया।

बाबू श्यामसुन्दरदास ने नायक में सामाजिक भावना का प्राधान्य एवं सहृदय के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व को एकतान कर देने की शक्ति को आदर दिया है।[2] अतः उनकी दृष्टि में नायक का लोकहितकारी रूप ही प्रमुख है।

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने महाकाव्य के नायक को महान गुणों से अलंकृत स्वीकार किया है। उनकी धारणा पर विश्वनाथ का प्रभाव है। नायक का सामाजिक एवं सांस्कृतिक योगदान परम्परा के लिए अनुकरणीय बन जाए, ऐसी उनकी मान्यता है।[3]

डा० भगीरथ मिश्र ने तुलसी के काव्यादर्श की चर्चा करते हुए नायक में ऐसी शक्ति होना स्वीकार किया है जो "विश्व की मानवता का जीवन पथ"[4] निर्दिष्ट कर सके। वह उदात्त गुणों से युक्त व्यक्ति हो, जो जातीय जीवन में प्रेरणात्मक ज्योति विकीर्ण करता रहे।

डा० नगेन्द्र ने नायक में तादात्म्य की शक्ति को अत्यधिक महत्त्व दिया। उनके शब्दों में—'तत्त्व रूप में प्रबन्ध-काव्य का सम्पूर्ण विस्तार नायक की जीवन साधना का ही प्रसार रूप होता है, जिस प्रकार जीवन साधना के दो पक्ष हैं, कर्म और भाव, इसी प्रकार कथानक के भी दो पक्ष हैं घटना तथा भाव और इन दोनों का संचालन करती है नायक के चरित्र की मूल वृत्ति। यही मूल वृत्ति कर्म-पक्ष में चरम घटना और फलागम का निर्धारण करती है और भाव पक्ष में मूल भाव या

१ रवीन्द्रनाथ—मेघनाद वध की भूमिका, पृ० १५७-५८
२ बाबू श्यामसुन्दरदास—साहित्यालोचन, पृ० २३०
३ आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—वाङ्मय विमर्श, पृ० १५६
४ डा० भगीरथ मिश्र हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृ० ३४८

प्रयोगी रस का।[1] इस कथन से स्पष्ट है कि अलौकिक में नायक का मूल वृत्ति ही काम करती है।

रामधारीसिंह 'दिनकर' के मत से प्रत्येक युग अपने आदर्शों के लिए या अमर जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए युगाधार युगनायक को सामने लाता है। दिनकर जी का यह कहना कि 'प्रत्येक महापुरुष अपने समय का परिणाम होता है। काल के हृदय में जो अनुभूतियाँ एकत्र होती हैं, उन्हीं की अभिव्यक्ति के लिए काल कवि सन्त तथा सुधारक को जन्म देता है।'[2] यह तथ्य भी इस कथन से स्पष्ट है कि नायक का युग भूमि पर अपना अस्तित्व है। उदाहरणार्थ मध्ययुगीन प्रबन्धकारों ने अपने नायक की अक्षय-कीर्ति का गान इसीलिए किया है कि वे युग-सत्य तथा मानव मूल्यों की स्थापना में आजीवन लगे रहते हैं।

विवेचन

हिन्दी वर्ग के विद्वानों ने संस्कृत आचार्यों की नायक भेद तथा नायक में गुण निरूपण की परम्परा को नहीं अपनाया है। इन आचार्यों ने नायक के मूल गुण को पकड़ने की कोशिश की है। नायक में लोक-कल्याण की प्रवृत्ति होनी चाहिए इस तथ्य को लगभग सभी ने स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल ने नायक में लोक रक्षक तथा लोक मर्यादा के पालन की वृत्ति पर बल दिया है। शुक्ल जी के ही मत का समर्थन बाबू श्यामसुन्दरदास विश्वनाथप्रसाद मिश्र तथा भगीरथ मिश्र आदि विद्वानों ने किया। इस परम्परा में डा० नगेन्द्र ने नायक के साथ तादात्म्य शक्ति के गुण को लेकर मौलिक विचार प्रस्तुत किए। वह घटनाओं का प्रधान विधायक होता है। अतः उसकी आन्तरिक शक्ति का उद्घाटन कृति में होना ही चाहिए। दिनकर जी ने नायक में जातीय जीवन को प्रेरणा देने की शक्ति को आदर दिया। इस प्रकार हिन्दी के आचार्यों ने बहुजन हिताय के आधार पर नायक में प्रेरणात्मक पक्ष को प्रधानता दी। इन्होंने शील तथा शृंगार के विभाजन को स्वीकार किया है जिसमें धीरोदात्तादि तथा अनुकूलादि नायकों को स्थान मिल गया है। इनके मत से नायक का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) लोक रक्षण की प्रवृत्ति
(२) प्रेरणात्मक व्यक्तित्व
(३) युग सत्य का वाहक
(४) लोक मर्यादा का पालक
(५) समाज का अग्रणीय व्यक्ति

---

१ डा० नगेन्द्र—रस सिद्धान्त, पृ० २८७
२ रामधारीसिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ० ५३०

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों की तुलना

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के नायक सम्बन्धी दृष्टिकोण में साम्य अधिक एवं वैषम्य कम है। हमारी परम्परा में धीरोदात्त नायक की गरिमा का गान है, जिसमें पूर्ण मानव की कल्पना को स्थान मिला है। पाश्चात्य विद्वान महामानव की महानता में तो भारतीय आचार्यों की तरह विश्वास रखते हैं लेकिन वे यथार्थ की रक्षा के लिए उस महान व्यक्ति में कुछ कमियाँ या दुर्बलताएँ दिखाते हैं। हमारा नायक गुणों के कारण अतिरंजित हो देवता बन जाता है तथा उनका नायक अतिरंजित गुणों से दूर श्रेष्ठ मानव। यही कारण है कि 'पैराडाइज लॉस्ट' तथा बियोवुल्फ' आदि के नायक उन अर्थों में धीरोदात्त नहीं हैं जिन अर्थों में भारतीय परम्परा के नायक राम और कृष्ण हैं। अतः अरस्तू तथा भरत की दृष्टि का भेद स्पष्ट है। किन्तु यह भारतीय आचार्य की आदर्श निरूपिणी तथा यवनाचार्य की वस्तु निरूपिणी दृष्टि का ही मौलिक भेद है। वैसे व्यवहार में भरत के न तो किसी भी प्रमुख नाटक का नायक ही सर्वथा निर्दोष है—(राम और कृष्ण भी मानव दुर्बलताओं से मुक्त नहीं—हो ही नहीं सकते थे।) भेद इतना है कि उन दुर्बलताओं का अन्त में उन्नयन कर दिया गया है।[1] इस प्रकार आदर्श के प्रति अटूट श्रद्धा के कारण ही खल प्रकृति का नायक (धीरोदात्त) रावण भी सीता के प्रति अनाचार करने में असमर्थ है। यह कवियों की मर्यादाबद्ध दृष्टि का ही परिणाम है। आदर्श के प्रति आग्रह के कारण ही यह चरित्र 'टाइप' बनकर रह गये। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों ने नायक को महामानव मानकर भी सर्वथा निर्दोष भारतीय आचार्य की भाँति नहीं स्वीकार किया। अतः पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में यथार्थ का ठोस आधार है जो आज के बुद्धिवादी व्यक्ति को अधिक सन्तुष्ट करता है। नायक सम्बन्धी दृष्टिकोण का परिवर्तन हिन्दी आचार्यों ने अनुभव किया तथा 'प्रकृति' को वे नायक में औचित्ययुक्त नहीं मानते। 'कामायनी' के मनु को उन अर्थों में धीरोदात्त नहीं कह सकते जिन अर्थों में 'मानस' के राम को। मनु के व्यक्तित्व में स्वाभाविक विकास एवं उन्नयन है।

भारतीय आचार्यों की भाँति पाश्चात्य आचार्यों ने नायक विभाजन नहीं किया है। भारतीय आचार्यों ने सामाजिक आधार का ग्रहण करते हुए उनके अनेक प्रभेद उपस्थित किए हैं। पाश्चात्य आचार्यों ने पौराणिक, काल्पनिक तथा यथार्थ तीन कोटियाँ ही स्वीकार की हैं। दोनों के नायक-वर्गीकरण में भेद होते हुए भी इतना साम्य है कि महाकाव्य का नायक उदात्त होना चाहिए। अतः नायक की चारित्रिक गरिमा को दोनों ने आदर दिया है। समन्वयवादी वर्ग के हिन्दी आचार्यों

1 सं० डा० नगेन्द्र—अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ० १३४

ने जिनम डा० नगेन्द्र प्रमुख है, उन्होंने उदात्त नायक को ही स्वीकार किया है। इस उदात्त नायक मे पाश्चात्य आचार्यों का आदर्श नायक तथा भारतीय आचार्यों का धीरोदात्तादि नायका का स्थान है।

नायक म गुणा की चर्चा दोना देशा के विद्वाना ने की है। भारतीय आचार्यों ने ता गुणों की इतनी लम्बी सूची दी है, जिनम सभी सद्गुणो को समाहित कर लिया है। पाश्चात्य विद्वाना न नायक म श्रेष्ठ गुणा का स्थान देना तो उचित समझा ह लकिन भरत धनजय तथा विश्वनाथ की तरह गुण सूची नही दा है। नायक म चारित्रिक भव्यता कुलीनता जातीय जीवन का रक्षण अदम्य उत्साह, दिव्य गुणा की झाँकी विचारा की व्यापकता असीम गारम शक्ति, कथा का मूलाधार बनन की शक्ति यौवन का उद्दाम आवेग अ य चरित्रा द्वारा उसके महत्व की स्वीकृति का दोनो ने आदर दिया है। हिन्दी आचार्यों न प्रेरणात्मक व्यक्तित्व, युग सत्य का वाहक लाक मर्यादा का रक्षक आदि निष्कर्ष भी इन दोनो दृष्टियो को ध्यान मे रख कर ही उपस्थित किए हैं। इस प्रकार भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वाना के अनुसार नायक सम्बन्धी निम्नलिखित तथ्य प्रकाश म आ जाते हैं जिनकी महाकाव्य के नायक मे अपेक्षा होती है।

(१) कथा का सूत्रधार

सस्कृत पाश्चात्य तथा हिन्दी वग के सभी आचाय इस मत से सहमत हैं कि नायक जितना ही जीव त तथा जीवट वाला होगा, कथा का सत्ता महत्ता उतनी ही अधिक बढ जायगी। दाना क मत से नायक की कम वत्ति का प्रसार सम्पूण कथा है जिसम नायक की जीवन साधना का सौन्दय बोध छिपा है। सस्कृत आचार्यों क मत से सम्पूण घटनाआ के साथ नायक का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध हाना चाहिए। कथा के आधिकारिक तथा प्रासगिक भाग उसस अवश्य प्रभावित रहने चाहिएँ। इसी तथ्य का पाश्चात्य विद्वान प्रभावशाली कथा के द्वारा निर्दिष्ट करत हैं कि नायक जीवन्त होना चाहिए।

(२) महत्वपूण व्यक्ति

भारतीय आचार्यों न धारोदात्त गुणान्वित तथा पाश्चात्य आचार्यों न आदश नायक (Ideal hero) तथा समन्वयवादी हिन्दी आचार्यों न उदात्त-नायक को इसी कारण स ग्रहण करने को कह दिया है कि नायक का युगान महत्व होना चाहिए। उसक गुण काल तथा समय का सीमा म बध कर फाक न पड़ें अपितु सदव प्रेरणात्मक शक्ति स युक्त रह। सस्कृत आचार्यों का कहना है कि सामान्य व्यक्ति का नायक बनान स महाकाव्य की युग-व्यापी गरिमा को ठेस लगगा। अत वह चाह परम्परा का पौराणिक काल्पनिक तथा यथाथ नायक हा या भरत का धीरोदात्त, धीर

प्रणात, धीरललित, वह अपने उदात्त कार्यों के कारण युग युग के मानव को प्रेरणा प्रदान करता रहे। पाश्चात्य विद्वानों के मत से महाकाव्य कार्य का उदात्त या भव्य रूप है जिसका जन्म महत्ता के उदय के साथ होता है, अत नायक की कार्य शृंखला में युग दृष्टि का होना आवश्यक है। अत दोनों देशों के विद्वान् इस तथ्य पर एकमत हैं कि नायक बहुत महत्त्व का व्यक्ति होना चाहिए।

(३) आत्म शक्ति की दृढ़ता

भरत, धनंजय तथा विश्वनाथ आदि के मत से नायक की आत्म शक्ति अखण्ड होनी चाहिए। इसी कारण भामह ने अडिग आत्म शक्ति, दण्डी ने चतुरोदात्त, रुद्रट ने विजिगीषु, विश्वनाथ ने धीरोदात्त की चर्चा की है। 'धीर' शब्द के साथ उदात्त का मूल नायक की आत्म शक्ति की ही सूचना के लिए है। अरस्तू ने भी युद्ध शक्ति, होरस ने उदात्त तत्व तथा परवर्ती सभी आचार्यों ने जिनमें केर, डिक्सन तथा बावरा का नाम उल्लेख्य है नायक में आत्म शक्ति की अपराजेयता को विशेष महत्त्व दिया है। हिन्दी के आचार्यों ने भी नायक में अटूट जीवट की बात इसी तथ्य के समर्थन में कही है। चाहे नायक भटकता फिरे चाहे सुख में फूले, संघर्ष हो या युद्ध उसकी शक्ति अटूट बनी रहे।

(४) प्रतिनिधि चरित्र

भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों आचार्य इस मत से सहमत हैं कि नायक में जीवन के अनेक रूप झाँकते हुए दिखाई देने चाहिए। जीवन का अन्तरंग एवं बहिरंग उसमें प्रगट हो। उदाहरणार्थ राम का नाम आज आदर्श तथा प्रेरणा का पर्याय बन गया है। जायसी का नायक प्रेम की रंगस्थली का प्रतिनिधि है 'सूरसागर' के कृष्ण आनन्दरूप। संस्कृत आचार्यों ने नायक में 'पुरुषार्थ चतुष्टय' की सिद्धि को तथा पाश्चात्य आचार्यों ने जातीय गौरव का रक्षक तथा हिन्दी आचार्यों ने समाज का अग्रणीय व्यक्ति उसे इसी कारण कहा है कि उसमें जीवन के प्रतिनिधित्व की शक्ति तथा क्षमता होनी चाहिए। संस्कृति की प्राणवान धारा उसके भीतर बह रही हो। सामाजिक परम्पराओं तथा मर्यादाओं का उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव हो।

(५) दिव्य शक्ति से अलंकृत

भरत, धनंजय आदि ने नायकों की तीन कोटियाँ मानी हैं—दिव्य, अदिव्य तथा दिव्यादिव्य। दिव्य कोटि का नायक पाश्चात्य आचार्यों के उदात्त कोटि का ही नायक है। इसमें असाधारणत्व अधिक पाया जाता है। जीवन की विषमतर परिस्थितियों में भी यह अपने तेज का क्षय नहीं करता है, परिणामत ऐसे नायक असाधारण कृत्यों के कारण जाति के पूजनीय तथा अनुकरणीय व्यक्ति बन जाते हैं।

सामान्य से अधिक शक्तियों के विकास के कारण लोग इन पर अलौकिक शक्ति या दिव्य शक्ति का आरोप कर देता है। महान से महान योद्धाओं के मध्य राम का धनुभंग करना ऐसी ही अद्भुत घटना है। विपत्ति से रक्षणार्थ कृष्ण का गोवर्द्धन पर्वत उठा लेना, गौतम का अगुलिमाल तथा अजातशत्रु को वश में कर लेना आदि दिव्य शक्ति के ही उदाहरण है। अत दोनों क्षेत्रों के आचार्य नायक को दिव्य शक्ति से युक्त मानने के पक्ष में हैं।

विचारों की व्यापकता

संस्कृत आचार्यों ने नायक में सद्वृत्ति के विकास को अत्यधिक महत्त्व दिया है। पाश्चात्य आचार्यों की दृष्टि भी विचारों की व्यापकता को नायक में आवश्यक मानती है। इन आचार्यों के मत से 'आत्म सुख' ही नायक में न समा गया हो, वह लोक जीवन का अग्रणीय व्यक्ति हो जो व्यष्टि तथा समष्टि में भेद भाव न करे। हिन्दी आचार्यों ने भी इस प्रेरणात्मक व्यक्तित्व विचारों की व्यापकता के ही कारण कहा है। उन्होंने राम को इसी कोटि में रखा है। अत इन सभी आचार्यों के मत से नायक के विचार संकुचित न होकर व्यापक होने चाहिएँ।

कार्यों की उदात्तता

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान दोनों इस मत से सहमत हैं कि नायक के कार्यों का गौरव ही महाकाव्य के गान का विषय है। महाकाव्य के नायक का उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि या जीवन सिद्धि माना जाता रहा है। पाश्चात्य विद्वान भी नायक के उदात्त कार्यों को महाकाव्य में आवश्यक मानते हैं। नायक अपने कार्यों से हमारे ऊपर निश्चित प्रभाव की छाप नहीं छोड़ेगा तो युग उसका अनुसरण नहीं करेगा। नायक के दुर्बल होने से कृति की प्राणवत्ता तथा भव्यता में बाधा पड़ेगी। उदात्त कार्यों के कारण ही सामाजिक उससे तादात्म्य ग्रहण करना चाहता तथा वह लोक सहानुभूति का भाजन बनेगा। अत नायक में तादात्म्य शक्ति के लिए कार्यों की उदात्तता होनी ही चाहिए।

कथा के मूल भाव या रस का आधार

इस तथ्य पर सर्वाधिक बल भारतीय आचार्यों ने दिया है। महाकाव्य का नायक घटनाओं का प्राणवान सूत्रधार होता है, यह तथ्य हम ऊपर कह चुके हैं। अत कथा के मूल भाव या बीज का पोषक वही है। कृति के भाव—भाव का आधार ही कृति के अंगी रस का निर्धारण करता है। संस्कृत आचार्यों ने रामायण का मूल भाव 'करुण' मानकर ही उसको अंगीरस करुण कहा है। हिन्दी के आचार्य उसका मूल भाव 'भगवद् भक्ति' मानते हैं। अत उनकी दृष्टि में इसका अंगीरस है

भिन्न रम। नायक के जीवन के समस्त कार्य व्यापार मिलकर मूल भाव का रूप प्रस्तुत कर पाते हैं। संस्कृत आचार्यों की मान्यता है कि महाकाव्य में कोई एक रस अंगी तथा शेष अंग रस आने चाहिएँ। पाश्चात्य आचार्यों ने रस की चर्चा नहीं उठायी है। वे कथा की प्रभाव शक्ति को ही महत्त्व देते हैं और यह प्रभाव शक्ति रस से दूर नहीं है, लगभग समानार्थी है अतः नायक ही कथा के मूल भाव या रस का आधार होता है।

महाकाव्य के अन्य पात्रों द्वारा उसके महत्त्व की स्वीकृति

लगभग सभी आचार्य इस तथ्य से सहमत हैं कि नायक के महत्त्व को अन्य चरित्र भी स्वीकार करते हैं। इसीलिए नायक में नीतिमान, प्रभावान, कला कुशल आदि अनेक विशेषण संस्कृत आचार्यों ने जोड़ दिए थे जिससे कि यह पात्र उसके महत्त्व से अभिभूत दिखाई दें। पाश्चात्य जगत में नायक के गुणों से अभिभूत चाहे हम न हों परन्तु उसके साथ पाठक की सहानुभूति आवश्यक है। हमारे नायकों से विदेशी नायक भिन्न होते हैं।

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों से प्राप्त नायक सम्बन्धी निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

(१) कथा का सूत्रधार
(२) महत्त्वपूर्ण व्यक्ति
(३) आत्म शक्ति की दृढ़ता
(४) प्रतिनिधि चरित्र
(५) दिव्य शक्ति से अनुकूल
(६) विचारों की व्यापकता
(७) कार्यों की उदात्तता
(८) कथा के मूल भाव या रस का आधार
(९) महाकाव्य के अन्य पात्रों द्वारा उसके महत्त्व की स्वीकृति

अगले विवेचन में इन्हीं आधारों को ध्यान में रखकर, नायक की महत्ता का महाकाव्यों के अन्तर्गत विचार करेंगे।

प्रतिनायक

देश विदेश के आचार्य इस मत से सहमत हैं कि नायक का प्रतिद्वन्द्वी प्रतिनायक होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में धीरोद्धत नायक को ही प्रतिनायक का पर्याय माना जाता है। 'लोभी, धीरोद्धत, पापी, व्यसनी प्रतिनायक ॥(सूत्र २५०)।

नाट्य दर्पण में मुख्य नायक के विरोधी को प्रतिनायक कहा गया है।[1] युधिष्ठिर, रावण, कंस तथा दुर्योधन आदि को इसी कोटि में रखा जाता है। धीरोद्धत या प्रतिनायक उसे कहते हैं जो द्वेषी, छली, मायावी, प्रचण्ड, चपल असहनशील अहंकारी, शूर और स्वयं अपनी प्रशंसा करने वाला होता है। मन्त्र बल से कभी-कभी कुछ का कुछ कर दिखाने की माया रखता है। उसे अपने बल तथा वैभव का दर्प बहुत होता है।

उपनायक नायक से कुछ कम गुण वाला, नायक के दुःख सुख में दुःख-सुख का अनुभव करने वाला तथा नायक प्रिय होता है। जैसे रामायण में सुग्रीव तथा लक्ष्मण। उपनायक भी नायक के साथ प्रतिनायक का शत्रु बन जाता है। हमारे यहाँ नायक सतवृत्तियों का प्रतीक तथा प्रतिनायक असद वृत्तियों का प्रतीक माना जाता है। उदाहरणार्थ राम तथा रावण एसे ही दो प्रतीक हैं।

हमारे नायकों से विदेशी नायक थोड़े भिन्न होते हैं, लेकिन प्रतिनायक (विलन) का स्वरूप हमारे यहाँ से बहुत साम्य रखता है। वहाँ भी खलनायक में पाप वृत्तियों की पराकाष्ठा दिखाई जाती है। वहाँ नायक के प्रति पाठक की सहानुभूति, श्रद्धा तथा खलनायक के प्रति घृणा अवश्य जगनी चाहिए। ट्रेजडी के नायक में वहाँ सबसे बड़ा तत्व सहानुभूति ही है। इयागो द्वारा ऑथलो का पतन भी हमारी सहानुभूति का केन्द्र है। यदि वहाँ नायक तथा प्रतिनायक की शक्तियाँ किसी एक में ही केन्द्रित हो जाती हैं तो वह प्रोटेगानिस्ट कहलाता है। वहाँ महत्वपूर्ण व्यक्ति के पतन से हम ठेस लगते हुए भी जीवन के यथार्थ का परिचय मिलता है। इस प्रकार प्रतिनायक नाटक अथवा महाकाव्य दोनों में ही पापी वृत्तियों का दुष्ट व्यक्ति होता है।

प्रतिनायक जितना महान होगा नायक का महत्त्व उतना ही उभरेगा। प्रतिनायक भी शक्ति में नायक से न्यून नहीं होता है। अपार शक्तिशाली होते हुए भी अपनी असद वृत्तियों के कारण उसका पतन होता है। हिन्दी महाकाव्यों में प्राचीन परम्परा से प्राप्त रावण, कंस आदि प्रतिनायकों को ही ग्रहीत किया गया है। इधर ऐतिहासिक महाकाव्यों में भी जहाँ औरंगजेब या अलाउद्दीन को प्रतिनायक दिखाया गया है जैसे राजविलास या हम्मीर रासो में, वहाँ भी संस्कृत आचार्यों के धीरोद्धत नायक का ही रूप उनमें उभारा गया है। अतः प्रतिनायक की कल्पना दुनिया भर में दुष्टता के प्रतीक रूप में ही की जाती है।

नायक भेद

भारतीय आचार्यों ने स्वभाव जाति गुण कर्म तथा धर्म आदि अनेक आधारों को ग्रहण करते हुए नायकों का विभाजन किया है। इन आचार्यों का यह विभाजन मूलतः नाटकों को ध्यान में रख कर किया गया है। नाटक के नायक

---

१ सं० डा० नगेन्द्र—नाट्य दर्पण, चतुर्थोविवेक पृ० ३७५

नायिका की चर्चा परिचर्चा में ही उन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद प्रभेद की पद्धति को अपनाते हुए सैकड़ों प्रकार के नायक नायिकाओं को स्वीकार किया है। नायक-नायिकाओं का यह वर्गीकरण हिन्दी के मुक्तक काव्य के व्यावहारिक धरातल पर बहुत मिलता है। हिन्दी का रीतिकाल इस तथ्य की पुष्टि करता है कि नायक नायिका निरूपण के प्रथा का विशाल भण्डार उन्हें संस्कृत आचार्यों से ही प्राप्त हुआ था।

महाकाव्य के नायक को इन भारतीय आचार्यों ने तीन या स्वभाव के अनुसार ही धीरोदात्त धीरोद्धत आदि रूपों में वर्गीकृत किया। सभी इस मत से सहमत हैं कि महाकाव्य का नायक 'धीरोदात्त गुणान्वित' ही होना चाहिए। धीरोद्धत, धीर प्रशान्त तथा धीरललित महाकाव्य के नायक नहीं हो सकते हैं। धीरोदात्त नायक शरीर, हृदय और मस्तिष्क के समस्त गुणों से सम्पन्न तेजस्वी पराक्रमी, चारित्र्यवान और वैभवशाली हो। संस्कृत में नायक शब्द नाटक अथवा महाकाव्य के सम्बन्ध में उपलक्षण मात्र है नायक के सहयोगी प्रमुख पात्रों में सभी गुण न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान होने ही चाहिए।

पाश्चात्य जगत में भारतीय आचार्यों की भांति नाटक अथवा महाकाव्य को लेकर नायक भेद की परम्परा नहीं है। अरस्तू ने त्रासदी के नायक को ... महाकाव्य में तीन प्रकार के चरित्रों का होना घोषित किया है, आदर्श, यथार्थ और परम्परागत चरित्र। आदर्श महापुरुष मात्र आदर्शों की कल्पना पर आधारित होते हैं, यथार्थ से उनका सम्बन्ध प्रायः नहीं ही बैठ पाता है। भारतीय आचार्यों ने ऐसे ही आदर्श चरित्रों की कल्पना की है, जो समष्टि के लिए ही जीवन का दान देते हैं। पाश्चात्य विद्वानों में भी भारतीय आचार्यों की भांति उनके विद्वान भी नायक को आदर्श चरित्र का रूप देने के पक्ष में हैं। परन्तु उनके यहाँ यथार्थ चरित्र वाले व्यक्तियों को ही महाकाव्य का नायक बनाना अधिक श्रेष्ठ समझा जाता है। परम्परागत या रूढ़ चरित्र ऐसे होते हैं जिन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं माना जा सकता, किन्तु लगातार समाज उन्हें मानता चला आ रहा है। ये चरित्र कोरे काल्पनिक तथा निजन्धरी विश्वासों के होते हैं, इनमें चमत्कार अधिक होता है देवता राक्षस, गन्धर्व आदि इनमें ही आते हैं। कभी-कभी मानव को भी पुराकथाओं से जोड़कर अलौकिकता से युक्त बना दिया जाता है। महाकाव्य में अनेक प्रकार के चरित्र होने पर भी नायक उसी को कहते हैं जो अनेक महत्वपूर्ण कार्य करता है तथा सहानुभूति का लगातार केन्द्र रहता है, देवता राजा या कुलीन होने से ही नायक महान नहीं बन जाता, कवि उसे अपनी कल्पना शक्ति से महान रूप देता है। प्रधान घटना का धारक बनकर वह कथा का मेरुदण्ड बन जाता है। महत्त्वपूर्ण उद्देश्य की सिद्धि के लिए वह समस्त मानवता का प्रतिनिधित्व करता है। दोनों देशों के मतों का समन्वय करने पर चार प्रकार के नायकों की कोटियाँ निर्धारित की जा सकती हैं। यथा—

(१) *देव कोटि का नायक*—इस कोटि के नायकों में पराडाइज लास्ट का नायक ईसा तथा अनेक काव्यों के नायक मनु तथा शंकर इत्यादि आते हैं।

(२) मनुष्य कोटि का नायक—इस प्रकार के नायकों में यथार्थ तत्त्व की अधिकता होती है। इनमें आइमी, डिवाइन कमेडी, पृथ्वीराज रासो, वीरसिंह देव चरित आदि के नायक आते हैं।

(३) अवतारी नायक—इस प्रकार के नायकों में धर्म, दर्शन तथा संस्कृति का बहुत प्रभाव होता है। यह अतिप्राकृत तथा अलौकिक चमत्कारों से युक्त होते हैं। यह पुराण परम्परा में होने के कारण निजन्धरी कथाओं से प्रायः निर्मित होते हैं। इस तरह के नायकों में राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि हैं।

(४) राक्षस कोटि का नायक—इस प्रकार के नायकों में असत् वृत्तियों का ही प्राधान्य होता है जैसे मेघनाद-वध का नायक रावण।

कथानक की दृष्टि से भी नायकों का वर्गीकरण किया जा सकता है—

(१) ऐतिहासिक नायक—इस प्रकार के नायकों में जातीय वीरता का प्रतिनिधित्व पाया जाता है। ये प्रायः मानव रूप में आकर इतिहास बदलते हैं तथा युग धर्म में नवीन क्रान्ति लाते हैं। इस प्रकार के नायकों में पृथ्वीराज चौहान, राणा प्रताप, राजसिंह, छत्रपति शिवाजी, छत्रसाल आदि अनेक नायकों का स्थान है। इतिहास में अनेक ख्यात वृत्तों के आधार पर ही इनका स्वरूप उभर गया है।

(२) पौराणिक नायक—इन नायकों का विकास परम्परागत या रूढ़ होता है। इनमें प्रकट तथा विकसन मिलता रहता है। निजन्धरी कथाओं तथा अतिप्राकृत तत्त्वों से इनका इतना विस्तार किया जाता है कि इनका वास्तविक स्वरूप छिप जाता है। अनेक युगों में इनका विकास हो पाता है। अनेक प्रकार की अवस्थाओं से गुजरते हुए यह लगातार नवीन स्वरूप को प्राप्त करते रहते हैं। इन नायकों को ही सांस्कृतिक नायकों का पर्याय समझना चाहिए क्योंकि विस्तार में ये ही समस्त संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं। प्रमाण में राम तथा कृष्ण को लिया जा सकता है।

रस की दृष्टि से भी नायकों का वर्गीकरण किया जा सकता है क्योंकि समस्त साधारणीकरण का व्यापार नायक पर ही आधारित होता है। यह नायक ही कवि कल्पना की शक्ति का मूर्तिवत् रूप होता है। प्रकृति के आधार पर इनके तीन भेद हो सकते हैं—(१) शृंगारी नायक, (२) शान्त नायक (३) वीर नायक।

इन समस्त नायक भेदों में दृष्टि की स्पष्टता के लिए ऐतिहासिक तथा पौराणिक नायकों का भेद ही अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है क्योंकि संस्कृति तथा इतिहास के सन्दर्भ में उन्हें स्पष्ट समझा जा सकता है। नायक रसानुभूति का माध्यम होता है ही, अतः सर्वश्रेष्ठ नायक राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शक्ति का

माध्यम भी होता है। धीरोदात्त गुण तो महाकाव्य के सभी नायकों में न्यूनाधिक मिलते हैं। किन्तु इतिहास तथा पुराण की दृष्टि से उन्हें स्पष्ट समझा, समझाया जा सकता है।

नायक का व्यक्तित्व ऐसा हो, जिसमें हर स्थिति में प्रभावित करने की शक्ति हो, जो केवल एक विचारधारा के लोगों को ही नहीं बरन किसी भी विचारधारा को प्रेरणा दे सके जिसकी ओर व्यक्ति विशेष जाति विशेष या समुदाय विशेष ही आकर्षित न हो, सभी का वह आकर्षण केन्द्र हो। सभी उसका अनुकरण तथा अनुसरण कर सकें। यदि किसी को उससे विरोध भी हो तो वह नायक के प्रभावशाली व्यक्तित्व से पराजित हो जाए क्योंकि नायक की पूर्ण महत्ता तो दुष्ट की सत्ता नष्ट होने पर ही उभरती है।

द्वितीय अध्याय

हिन्दी के सूफी कवियो की नायक दृष्टि

आविर्भाव और विचारधारा

सूफीमत का जन्म इसलामी परम्परा स हुआ। हजरत मुहम्मद साहब (सं० ६२८-६८८) के निधन के पश्चात उनका उत्तराधिकार इस्लाम क खलीफाओ को मिला। इन खलीफाओ न अरब शाम, ईरान, तुर्किस्तान आदि अनेक देशो म अपना मत का प्रचार बडे ही उत्साह स किया। इस्लाम धम की शामी विचारधारा उन दिनो अपन चरम पर थी, जिसका सम्बन्ध सूफियो स गहरा है। सूफी मत के उद्भव पर नव अफलातूनी मत नास्तिक मानी, भारतीय आय दशन कुरान के सिद्धान्त तथा सूफी साधको के मुक्त चिंतन का प्रभाव है।[1] भारत तथा ईरान के सास्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध प्राचीन काल से ही दृढ थ। अत विचारधारा का आदान प्रदान स्वाभाविक ही है। इन सूफियो पर भारतीय दशन एव साधना का भी प्रभाव अधिक दिखाई देता है।[2] सूफियो न इन अनेक विचार धाराओ क प्रभाव को ग्रहण करते हुए भी अपनी अलग दृष्टि का निर्माण किया, जिसम 'इश्कमय ससार' को महत्व दिया है। सामान्य भोग स विरक्त इन साधको को हक की 'हकीकत' ज्ञात करन की लगन लग गयी थी। इन्होन अपन उपदेशो तथा काव्यो क माध्यम से अपने दृष्टि कोण का उदारता के साथ जनता म रखा। 'सूफी प्रेम प्रकाश को लेकर चल थ, अत इनके ऊपर प्रेम पन्थ ही सवत्र छाया हुआ है।

इन सूफियो का प्रथम ध्यय अपन मत का प्रचार-प्रसार था। सूफी मत के प्रचार म उमर खय्याम (म० स० ११५०) सनाई (म० स० ११८८) निजामी (मृ० स० १२६०), अत्तार (म० स० १२८७) रूमी (म० स० १३३०) सादी (म० स० १३४६) शबसतरी (म० स० १३७७), हाफिज (म० स० १४४७) एव जामी (म० स० १५४६) आदि ने अत्यधिक मूल्यवान काय किया। मसनवी आदर्शो

---

१ डा० सरला शुक्ला—जायसी क परवर्त्ती सूफी कवि और काव्य पृ० २

२ डा० पीताम्बरदत्त बडथवाल—हिन्दी काव्य मे निगुण सम्प्रदाय, पृ० १७

३ सूफी मत के जन्म के समय इसलाम की उदात्तता मद्धिम पड रही थी उसका तेज विश्राम कर रहा था।

—रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ० २५३

को इन कवियों ने अमर कर दिया। भारत में सूफी मत बारहवीं सदी के सूफी अल हुजिरी के आगमन के साथ हुआ। सूफी सम्प्रदाय में से चिश्ती, सुहारावर्दी, कादरी तथा नक्शबंदी चार सम्प्रदाय यहा विशेष प्रसिद्ध हुए, जिनमें जायसी आदि भारतीय साहित्य के कवियों ने चिश्ती मत का विशेष प्रभाव ग्रहण किया है।

बाहर से आये सूफी साधक अपने 'प्रेम सिद्धांत' को जनता तक पहुँचाना चाहते थे, अत उन्होंने जैसे अरबी फारसी की प्रेम कथाओं (लैला मजनू, शीरी फरहाद) को अपना कर अपने सिद्धान्त को फैलाया था, वैसे ही हिन्दुओं की प्रेम कथाओं को अपने काव्य का आधार बनाया। ये कवि लौकिक प्रेम कथा के माध्यम से लोकोत्तर या अलौकिक प्रेम का विधान करते हैं। कथाओं में नायक को साधक के रूप में परमात्मा का प्रेमी तथा नायिका को परम ज्योति के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

कथा का समस्त प्रेम व्यापार नायक के प्रेमी रूप को लेकर ही चलता है। नायक में अपने सूफी सिद्धान्तों का प्राय पूरा विधान किया है। सूफी साधक तथा कवि अपने जीवन में जैसी 'इश्कमजाजी तथा 'इश्कहकीकी' की साधना कर रहे थे तथा 'खुदी को मिटाकर 'खुदा में एकमेक' हो जाने का इरादा बनाए हुए थे, उसका पूरा विधान इन्होंने अपने नायक में किया है। इस प्रकार समस्त सूफी काव्य में, उनका नायक सूफी साधना का प्रतीक है जो 'इश्क' में ही जीवन को अर्पित कर देता है।

सूफी कवियों ने नायक को प्रेम के दिव्य-साधक रूप में अपनाया है। जैसे सूफी साधक अनेक साधनाओं के पश्चात अपनी अन्तिम मंजिल परमात्मा तक पहुँचता है ऐसे ही सूफी कवियों का नायक अनेक 'मुकामात' सोपानों को पार करता हुआ अपने अभीष्ट को प्राप्त होता है। भारतीय सूफी काव्य पर मसनवी तथा भारतीय दोनों ही प्रभाव पड़े हैं। साथ ही मुल्लादाउद के 'चंदायन' से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के प्रेम-काव्यों पर मसनवी प्रभाव स्पष्ट झलकता है। 'पद्मावत' में नायक निरूपण पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि मसनवी में नायक विषयक प्रचलित धारणाओं का स्पष्टीकरण करें तथा बाद में भारतीय धारणाओं तथा सिद्धान्तों के प्रभाव का निर्देश किया जाए। यहा पर मसनवी परम्परा के सूफी साधकों तथा कवियों की नायक विषयक धारणाओं को प्रस्तुत करना अनिवार्य ही प्रतीत होता है।

नायक का सूफी रूप

इनका नायक तरुण युवा तथा सुन्दर होता है। वह किसी पक्षी दूती चित्र दर्शन आदि के माध्यम से 'इश्क' जग जाने पर अपने जीवन को 'इच्छित' प्रेमिका पर वार देता है। प्रेमिका (परम ज्योति रूप) को प्राप्त करने के लिए वह

'दीवाना' हो जाता है।[१] इसी समय वह 'गुफी' या मोम के जीवन का त्याग कर 'सूफी सालिक' या साधक बन जाता है।[२] नायक के 'सूफी' रूप को 'सूफी शब्द' के आधार पर भी स्पष्ट किया जा सकता है। विद्वानों में 'सूफी शब्द' की व्युत्पत्ति पर बड़ा विवाद है। सूफी शब्द को 'सफा' से बना हुआ मानकर विद्वान पवित्रता का अर्थ लेते हैं तथा पवित्र आचरण करने वाले व्यक्ति को 'सूफी' मानते हैं।[३] इनके मत से परमात्मा के प्रति आसक्ति रखता हुआ निश्चल मन वाला व्यक्ति सूफी कहलाता है। यह मत सूफी' शब्द से हृदय की स्वच्छता का अर्थ लेता है। कुछ विद्वान सूफी शब्द को सोफिया का रूपान्तर मानते हैं तथा परम ज्ञानी' के लिए उस शब्द का प्रयोग मानते हैं। विद्वानों का एक वर्ग सूफी शब्द को सूफ से बना मानते हैं तथा तदनुसार भोग विलास को त्याग कर सादा भला, आध्यात्मिक साधना में समर्पित मोटे वस्त्रों को पहनने वाले साधक को सूफी मानते हैं।[४] इनमें अन्तिम मत अधिक सन्तुलित तथा तर्क संगत प्रतीत होता है। इसका कारण यह है कि सूफी साधक वैभव विलास, भोग को त्यागकर आध्यात्मिक इश्क में लगन लगाते थे तथा संसार के चमकीले बाह्य आवरण उनकी दृष्टि में फीके पड़ जाते थे। 'दिव्य प्रेम दृष्टि' के उदित होते ही वे परम ज्योति की ओर उन्मुख हो जाते थे। जायसी ने अपने नायक को सूफी साधक की भांति 'कन्था' धारण किया हुआ वर्णित किया है तथा समस्त वैभव भोग को त्याग कर वह सूफी साधक की भांति हो जाता है।[५] फारसी के नायक मजनू का रूप भी सूफी साधक का ही रूप है। इस प्रकार अपने स्वरूप में ये नायक 'सूफी' हैं। अतः व्युत्पत्ति के मूल से ही सूफी' शब्द अपने आडम्बर रहित प्रेमी साधक के रूप की घोषणा स्पष्टता से करता है।

मसनवी पद्धति के नायक प्रायः अविवाहित ही होते हैं तथा प्रेमिका द्वारा किसी अन्य से विवाह हो जाने के उपरान्त भी अपना लगाव कम नहीं करते हैं। कभी कभी तो आजीवन अविवाहित रह कर मर भी जाते हैं तथा उनके मरणोपरान्त

---

१ आर० ए० निकलसन स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टीसिज्म, पृ० १६१

२ डिक्शनरी आव इस्लाम प० ६०६

३ Most Sufis favour the theory that it is derived from 'Sofa' (Purity) and that the sufi is one of the elect who have become purified from all worldly defilments
—Encyclopedia of religion and ethics Vol XII P 10

४ रामपूजन तिवारी—सूफीमत साधना और साहित्य, प० ३

५ स० डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड)—सूफी प्रेमाख्यानक साहित्य, प० २४३

उनके माशूका' में इश्क' की आग का 'इजहार' होता है। मजनू आजीवन अविवाहित रहा, लैला के माता पिता ने उसकी शादी किसी अन्य से कर दी थी, लेकिन उसने अपने प्रेम को लगातार तीव्र रूप में रखा है। मरणोपरान्त लैला उसके लिए बहुत अधिक विलाप करती है तथा प्राण त्याग देती है। इसके विपरीत भारतीय सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों के नायक प्रायः विवाहित होते हैं। किसी दूती या पक्षी आदि से किसी राजकुमारी का रूप-वर्णन सुनते ही उनका रूप-लोभ उमड़ पड़ता है, तथा वे अपनी प्रथम पत्नी को छोड़ कर दूसरी राजकुमारी के लिए घर-बार, राज पाट त्याग कर निकल पड़ते हैं। रत्नसेन, मनोहर, सुजान आदि सभी इस कोटि के उदाहरण हैं।

मसनवी पद्धति के नायक सनातन कोटि के प्रेमी होते हुए भी रूप-लोभी नहीं हैं। इनकी नायिकाएं प्रायः बाह्य रूप में सुंदर नहीं होतीं, उनका नख शिख भारतीय नायिकाओं की भांति 'रूप निधि' का न होकर सामान्य ही होता है। लैला का कालापन तो जगत विख्यात है। वह ऐसी नहीं थी कि उसे देखते ही सौन्दर्य का रूप-सागर हिलोरें लेने लगे। इसके विपरीत भारतीय सूफी काव्यों की सभी नायिकाओं को 'रूप मणि' बना कर प्रस्तुत किया गया गया है। नायिकाओं के इस वर्णन में इन सूफी कवियों ने भारतीय पद्धति का अनुकरण किया है। भारतीय परम्परा नारी की सौन्दर्य-कल्पना में आकाश पाताल के कुलाबे छू लेती है। संस्कृत काव्य में वर्णित नायिकाएं अपने सौन्दर्य की अनुपम छटा से श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पुष्प के सौन्दर्य को भी लज्जित करती हैं, तथा कवि उनके रूप का वर्णन करते थकता नहीं है। कभी-कभी तो नायिका के रूप वर्णन में सरस्वती भी उसका साथ नहीं दे पाती तथा उसके अनुकूल कवि को कोई भी उपमा उपयुक्त नहीं लगती, सभी उपमाएं झूठी तथा निरर्थक लगती हैं। विद्यापति की राधा विधाता की ऐसी अनुपम सृष्टि है कि दुनिया में उसकी समता का कोई भी उदाहरण ही नहीं है। तुलसीदास की 'सीता' भी अलौकिक शोभा में अद्भुत है जिन्हें देख कर कभी न डिगने वाले रघुवंशी राम भी अधीर हो जाते हैं। उन्हें सीता के समक्ष चन्द्रमा भी फीका लगता है। सूर की राधा अपनी छबीली छवि में छवि सागर कृष्ण को भी वचन कर देती है। रीतिकालीन नायिकाओं के रूप सौन्दर्य के वर्णन में कवियों ने कोई भी कसर नहीं छोड़ी है। बिहारी की नायिकाएं तो 'शोभा के भार से सूधे पाव' ही धरने में असमर्थ हो जाती हैं। आधुनिक काल में नायिकाओं का यह रूप-वर्णन प्रिय प्रवास तथा 'कामायनी' में स्पष्ट है। प्रिय प्रवास की राधा रूपोद्यान प्रफुल्लित प्राय कलिका होने पर भी नाना प्रकार से चित्रित की गई है तथा कामायनी या श्रद्धा का रूप तो हिन्दी संसार की अनुपम निधि है। श्रद्धा के सौन्दर्य-वर्णन में प्रसाद जी ने 'प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द' कह कर न जाने कितने रूपों में उसे चित्रित किया है। इस

प्रकार भारतीय परम्परा नायिकाओं में अनन्त सौन्दर्य का रूप प्रस्तुत करती है। आचार्यों द्वारा वर्णित पद्मिनी कमलिनी आदि नायिकाओं का प्रभाव इन सूफी कवियों पर भी है। ये सभी नायिकाएं चाहे मृगावती हों या पुहुपावती, पदमावती हो या मधुमालती, इन्द्रावती हो या जुगरा दमयन्ती हो चित्ररेखा सभी पद्मिनी नायिकाएं हैं। 'पद्मावत' में हीरामन तोता राजा से पद्मावती के सौन्दर्य की ऐसी चर्चा करता है कि राजा उसे प्राप्त करने के लिए उतावला हो जाता है। इस प्रकार विदेशी सूफी नायिकाओं से ये नायिकाएं रूप-सौन्दर्य में सर्वथा विपरीत हैं तथा भारतीय नायक का सौंदर्य के प्रति रुझान भी स्पष्ट है। यद्यपि मसनवी के नायक भी नायिका में परम ज्योति का रूप पाते हैं तथा भारतीय नायक भी प्रेमिका में परम प्रकाश की पावन कल्पना करते हैं।

सूफियों के सभी नायक प्रायः सामान्य वंश या परिवार से आते हैं, उनकी जाति का या तो पता नहीं होता या होता भी है तो वे नीचे की श्रेणी में ही आते हैं। साथ ही साथ पारिवारिक रूप से भी वे समृद्ध नहीं होते अर्थाभाव उन्हें प्रेरित करता है। फरिहाद की प्रसिद्ध कहानी द्वारा उन्होंने इस तथ्य का संकेत दिया है। वह प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए पर्वत खोद कर दूध की सरिता निकालना चाहता है लेकिन अकेला ही। कोई साथी नहीं कोई साधन नहीं। अकेला ही जी जान होमता रहता है। इसके विपरीत भारतीय प्रेमाख्यानक काव्यों के सभी नायक उच्चकुलीन राजकुमार हैं, प्रेम उनका व्यसन है। क्षत्रियत्व का अखण्ड तेज उनमें विद्यमान है। राजा का अपार वैभव अन्तःपुर का मादक विलास, समृद्ध परिवार का सुख, सब कुछ होने पर भी वे योगी हो जाते हैं। भारतीय सूफियों की नायक कल्पना पर यहाँ पर भी भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। संस्कृत आचार्यों ने नायक में उच्च कुलीनता, वीरता आदि अनेक गुणों की कल्पना की है।[1] उनकी कल्पना में नायक कम से कम राजा हो। इस भारतीय आचार्य परम्परा का भी प्रभाव इन नायकों पर है। रत्नसेन मनोहर, सुजान नल आदि सभी नायक उच्चकुलीन, सम्पन्न राजकुमार हैं। वे फारसी परम्परा के नायकों से भिन्न भारतीय प्रभाव ग्रहण किए हुए हैं।

मसनवी पद्धति के नायक प्रेम के लिए प्रेम नहीं करते हैं, उनका प्रेम वासना का खिलवाड़ नहीं है उनके प्रेम में शारीरिक भूख से प्रबल आत्म मिलन की समस्या है। एकनिष्ठता तथा लगातार प्रेम के विकास की दृष्टि से ये नायक शायद दुनिया के इतिहास में अकेले ही हैं। अपने 'इश्क' में ये बड़े ही ईमानदार हैं। एक सूफी साधक के मन में—'इश्क के बिना जिन्दगी वबाल है। इश्क का दिल दे देना कमाल है। इश्क

[1] विश्वनाथ—साहित्य दर्पण—महाकाव्य का लक्षण-नायक निरूपण

बनाना है इश्क जलाना है, दुनिया म जो कुछ है, इश्क का जलना है। आग इश्क की गर्मी है, हवा इश्क की बचनी है, पानी इश्क की रफ्तार है खाक इश्क की कियामत है, मौत इश्क की बहोशी है जिंदगी इश्क की हाशियारी है रात इश्क की नाद है, दिन इश्क का जगना है।"[1] सूफियो का यह प्रभाव भारतीय प्रेमाख्यान नायको पर भी है तथा आज भी नायको का प्रेम मूर्त से अमूर्त की ओर जाता है वे या ही अमूर्त तान नहीं छाडते। 'प्रेम के नाम पर इन नायको की लगन इनका रूप सरस अनूप है।'[2]

फारसी परम्परा के इन नायको की प्रेम साधना का सौदर्य मुसीबतो के पहाड आन पर दीप्तिमान हो उठता है। 'प्रेम-पथ' के कठिन से कठिन पथ के य पथी है। विरागी साधक इतने पक्के हैं कि इन्हे शूल भी फूल हैं। मसूर 'अनहलक' कहता हुआ जान द देता है पर गिनता नही। मजनू लला के नाम पर मौत को जिन्दगी समझे बठा है, फरिहाद पवतो को काटने म हिचकता नही, नरक की ऐसी कोई यातना नही है जिससे उन्हे डर लगता है। मध्ययुगीन प्रेमाख्यान काव्यो के नायक भी ऐसे ही हैं। जायसी का नायक सात समुद्र पार कर लेता है शूली मिलने पर भी डरता नही है। उसके भीतर सच्चा 'मरजिया भाव है। जायसी द्वारा वर्णित सात समुद्र प्रेमी साधक (सालिक) की साधना के सात सोपान है। सूफी मान्यता के अनुसार परमात्मा का प्राप्त करने के लिए सात सोपनो का पार करना पडता है।[3]—

(१) ईश्वर की खोज आरम्भ करत ही, अपार कठिनाइयो परीक्षाओ तथा विपत्तियो का सामना करना पडता है। उदाहरणार्थ रत्नसेन की सिंघल यात्रा क अपार कष्टो का वर्णन जायसी न किया है। राजा की शिव पावती परीक्षा लेते हैं। वह पद्मावती के साथ लौटते समय भी समुद्र की विपत्ति म फस जाता है।

(२) द्वितीय स्थिति म प्रेमाग्नि का प्रज्वलित रूप लेकर कूदता है। रत्नसेन पद्मावती के रूप म इतना जलता है कि जीने म असमर्थ हो जाता है।[4]

---

१ चन्द्रबली पाण्डे—तसव्वुफ अथवा सूफी मत से उद्धत, पृ० ११६

२ वही पृ० ११

३ अत्तार—द परशियन मिस्टिक्स, पृ० २६

४ परासो प्रेम समुद्र अपारा । लहरहि लहर होइ बिसकारा ।
बिरह भौंर होइ भावरि देई । खिनखिन जीव हिलोरहि लेई ।
खिनहि उसास बूडि जिउ जाई । खिनहि उठै निसर बौराई ।
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता । खिनहि चेत खिन होई अचेता ।
कठिन मरन तें प्रेम बिवस्था । ना जिउ जियै न दसव अवस्था ॥
जनु लेनिहार न लेहि जिउ हरहि तरासहि ताहि ।
एतन बोल आव मुख कर तराहि तराहि ॥'
—स० रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ८८ (प्रेम खण्ड)

(३) प्रेमाग्नि में प्रवेश प्राप्त पाता है तथा प्रेम ही उसके लिए सबकुछ हो जाता है। रत्नसेन पद्मावती की प्रेमाग्नि में जीवन का प्रेम गौरव समझता है[1] तथा उसी में चित्त को तय कर लेता है।

(४) प्रेम के चतुर्थ सोपान पर संसार से विरक्ति हो जाती है। रत्नसेन के प्रेम में भी यह अवस्था देखी जा सकती है। वह राज पाट घर बार छोड़ कर जोगी हो जाता है तथा संसार से उसे विरक्ति हो जाती है।[2] जटाधारी योगी की तरह घर से निकल पड़ता है।

(५) पाँचवें सोपान में साधक सायुज्य की घाटी में पहुँच जाता है तथा 'मैं' और 'तू' का भाव मिटा देता है। रत्नसेन में साधना की यह स्थिति भी स्पष्ट वर्णित है जब वह पद्मावती तथा अपने को भेद नहीं कर पाता है। उसके रक्त की बूँद बूँद में पदमावती समा गई है।[3]

(६) इस सोपान पर 'हक' की 'हकीकत' का ज्ञान हो जाता है, सा साक्षात्कार तथा परमात्मा की स्थिति। उदाहरणार्थ रत्नसेन तथा पद्मावती का मिलन लिया जा सकता है। पद्मावती पूर्ण शृंगार के साथ रत्नसेन के साथ आनन्द मग्न हो रति क्रीडा करती है।[4] यह स्थिति पूर्ण आनन्द की स्थिति न होने पर भी आनन्द की सन्निकट स्थिति है।

---

१ सुनिसो बात राजा मन जागा। पलक न मार प्रेम चित्त लागा।
नैनन्ह ढरहिं मोती और मूँगा। जस गुर खाइ रहा होइ गूँगा॥
—वही पृ० ५१

२ तजा राज, राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहेउ वियोगी॥
तन बिसंभर मन बाउर लटा। अरुझा पेम परी सिर जटा॥
वही जोगी खण्ड पृ० ५३

३ रक्त क बूंद कया जस अहही। पदमावति पदमावति कहही॥
रहै त बूंद बूंद माह ठाऊ। पर त सोई लेई लेइ नाऊ।
रोंव रोंव तन तासों ओधा। सूतहि सूत बेधि जिउ साधा॥
हाड़हि हाड़ सबद सो होइ। नस नस माह उठ धुनि सोई।
जगा विरह जहाँ का गूद मास के हान?
हौं पुनि साचा होइ रहा ओहि के रूप समान॥
—जायसी ग्रन्थावली रत्नसेन सूली खण्ड पृ० १३३

४ जो तुम चाहौं सो करो ना जानौं भल मन्द।
जो भाव सो होइ मोहि तुम्ह। चहौं अनन्द॥
—वही पदमावत। रत्नसेन भेंट खण्ड पृ० १४१

(७) अन्तिम सोपान आत्म-लय की अवस्था है। जायसी ने 'पदमावत' की समाप्ति पर इस अवस्था का विशद वर्णन किया है।[१]

इस प्रकार साधक के इन सात सोपानों को साधक की सात मानसिक स्थितियों का ही रूप मानना चाहिए।

सूफी साधक (नायक) सृष्टि में सौन्दर्य देखकर प्रियतमा या परमतत्व का ही प्रतिबिम्ब उसमें पाता है। वह 'फना' से 'बका' की ओर बढ़ता है तथा परम सत्ता में लीन हो जाना चाहता है। सूफी साधकों द्वारा निर्धारित चार अवस्थाओं से नायक को गुजरना पड़ता है—

(१) शरीअत—इस अवस्था में आत्मा 'रसूल' द्वारा दिये गये उपदेशों का पालन करती है।

(२) तरीकत—बाह्य जगत से दूर रह कर आत्म शुद्धि द्वारा ईश्वर का चिंतन करता है।

(३) हकीकत—चिन्तन के बाद यह ज्ञान की अवस्था है।

(४) मारफत—यह आत्मा तथा परमात्मा की मिलन अवस्था है। शरीअत तरीकत, हकीकत तथा मारफत को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कर्म काण्ड उपासना-काण्ड ज्ञान काण्ड, तथा सिद्धावस्था का नाम दिया है। पदमावत में 'चार बसेरे सौंय है'[२] द्वारा इन्हीं अवस्थाओं का संकेत दिया गया है। 'प्रेम रस' के लेखक शेख रहीम[३] ने भी इन चार अवस्थाओं का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस प्रकार इन सूफी कवियों तथा साधकों ने नायक में सूफी साधना के सिद्धान्तों का आरोपण किया है। इसका कारण स्पष्ट है कि ये साधक अपनी कविता के द्वारा जनता में अपने प्रेम सिद्धान्तों की स्थापना करना चाहते थे। अतः इन्होंने अपनी साधना के समस्त रूप नायक के ऊपर आधारित कर दिए हैं। इनके नायक की साधना में सूफी साधक की कठोर साधना स्पष्ट झलकती है।

सूफी नायकों का प्रेम प्राय सामाजिक या मर्यादा भावना से रहित होता है। साथ

---

१ पदमावति पुनि पहिरि पटोरी। चली साथ पिउ के होइ जोरी॥
—वही सती खण्ड पृ० २११

२ जायसी ग्रंथावली—भूमिका भाग, पृ० १४२

३ फेरी तरीकत साधि के देख हकीकत आप।
होय मारफत जो तुम्हें वास होय मिलाप॥
—शेख रहीम—प्रेमरस ५ १२

हो स्पष्ट लक्षित होता है पर इस प्रकार का वर्णन नहीं होता। हिन्दी के सूफी नायकों का प्रेम फारसी मसनवियों के प्रेम से सर्वथा भिन्न है। इस प्रेम में, मसनवियों जैसी [illegible] तथा [illegible] नहीं दिखाई पड़ती है। हिन्दी सूफियों के प्रेम में [illegible] न कुमारी कन्याओं से प्रेम करता है, विवाह करते हैं। विवाह से पूर्व शारीरिक [illegible] के लिए वे कभी भी नायिका के पास आगे नहीं बढ़ते। सदैव नायक माता पिता द्वारा सामाजिक विधि से [illegible] ही [illegible] व सम्भोग में प्रवृत्त होता है। इनका प्रेम विशुद्ध सामाजिक है। 'मधुमालती' में नायक का प्रेम [illegible] प्रेम कभी भी वासना का प्रेम है। इनका प्रेम वासना के उद्दाम आवेग में नैतिकता की सीमा का अतिक्रमण कभी नहीं करता है, सर्वत्र प्रेम का भव्य उत्तम तथा पावन भूमि पर चित्रित दिखाया गया है। हिन्दी के सूफी नायकों ने प्रायः [illegible] नीति धार्मिक विधानों का ध्यान रखा है। [illegible] तथा [illegible] विवाह [illegible] काव्यों में [illegible] भी भारतीय आदर्शों का पालन नायक ने करवाया है।

इस्लाम की फारसी परम्परा के नायक तथा हिन्दी सूफी काव्यों के नायकों में एक मौलिक अन्तर यह भी है कि जहाँ फारसी मसनवियों के नायक के प्रेम का उद्गम भावना नायक पक्ष में ही अधिक दिखाई देता है नायक नायिका के लिए सब कुछ त्याग देता है, स्वर्ग तथा नरक दोनों को एक मानता है नायिका का विरह उसे सदा, सताया करता है। इसके विपरीत नायिका सामान्य ही रहती है। नायक के मरणोपरान्त नायिका रुदन दिखाया जाता है। हिन्दी के सूफी काव्यों में ऐसा नहीं है। प्रेम का वेग नायक तथा नायिका दोनों में ही उदित होता है दोनों ही अधीर रहते हैं। मधुमालती, पद्मावत, मिरगावत, ज्ञानदीप, हंस जवाहिर, इन्द्रावती, पद्मावती, प्रेम चिनगारी, नूरजहाँ, भाषा प्रेम रस आदि सभी में नायक-नायिका दोनों का ही विरह समान धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। कभी कभी तो विरह का आरम्भ भी नायिका में ही दिखाया गया है जैसा 'चित्रावली' की नायिका का प्रेम उसका स्पष्ट प्रमाण है।

नायकों में प्रेमारम्भ भी असामान्य तथा अस्वाभाविक रूप से प्रस्तुत किया जाता है। सूफी मान्यताओं के अनुसार गुरु द्वारा ईश्वरीय सौन्दर्य का वर्णन सुनकर साधक में प्रेम बीज अंकुरित हो जाता है। नायक साधक का प्रतीक तथा नायिका ईश्वरीय ज्योति का प्रतीक बन जाती है। पक्षी प्रायः गुरु बन जाता है। जायसी ने हीरामन तोते से ही रत्नसेन को पद्मावती का सौन्दर्य-वर्णन सुनवाया है तथा 'प्रेम की पीर' को जाग्रत किया है। गुरु द्वारा साधक में प्रेम ज्योति को उद्दीप्त करने में भारतीय उपनिषदों के गुरुवाद का प्रभाव झलकता है। मध्यकाल में कबीर, सूर तुलसी सभी

के ऊपर गुरुवाद का प्रभाव बहुत गहरा है। सभी गुरु को परमात्मा से मिलन का साधन मानते हैं, जो साधक को दृष्टि देता है। फारसी में भी गुरु या पीर का बड़ा आदर है। गुरु साधक की साधना का पथ निर्देश करता है।

नायक में पक्षी द्वारा रूप वर्णन सुनकर, चित्र देखकर स्वप्न दर्शन अथवा प्रत्यक्ष-दर्शन से प्रेम का बांध टूट जाता है, नायक बेहोश हो जाता है तथा होश आने पर सब कुछ त्याग कर योगी हो जाता है प्रेम में फकीर बन जाता है। यह आकस्मिक प्रेम मनोवैज्ञानिक नहीं है। यह धीरे धीरे नहीं बढ़ता, आकस्मिक बाढ़ सा सामने आता है।

कुछ नायक इसके अपवाद भी है। उनका प्रेम साथ-साथ रहने से ही बढ़ा है। 'लैला मजनू' का प्रेम विद्यालय से आरम्भ होता है। चन्द्रकला तथा प्रेमसेन का प्रेम भी पाठशाला से ही आरम्भ होता है। 'मधुमालती' में भी ऐसा ही है। ज्ञान दीप में देवयानी तथा ज्ञानदीप का प्रेम भी दिन प्रतिदिन के मिलन का मधुर रूप है।

नायक का प्रेम पथ कण्टकाकीर्ण दिखाना अभारतीय तथा भारतीय दोनों कवियों की विशेषता है। लोक कथाओं के रूप इनमें हैं। अतः काव्य रूढ़ियों का पालन नायक के प्रेम पथ में अधिक किया जाता है। पक्षी द्वारा कहानी कहना, नायक का जोगी हो जाना अनेक विघ्न आना, अतिप्राकृत तथा अलौकिक शक्तियों द्वारा सहायता करना आदि। वास्तव में ये काव्य रूढ़ियां संस्कृत, पालि, प्राकृत साहित्य की देन हैं।[१] इन सभी काव्यरूढ़ियों के भीतर ही यह नायक अपने व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। नायक प्रेम-पथिक बनकर पहाड़ सी मुसीबत को भी झेलता है। बीहड़ जंगलों सागरों राक्षसों तथा हिंसक जीवों के मध्य भी निर्भय होकर विचरता है। मार्ग में उसे प्रलोभन भी दिखाए जाते हैं किन्तु वह डिगता नहीं है। सूफी-साधना में भी 'सालिक' को विघ्न बाधाओं का उसकी प्रेम-परीक्षा के लिए अनिवार्य माना गया है। कष्ट की कसौटी में सालिक कंचन बनता है, इस विश्वास का रूप समस्त सूफी साधकों में देखा जाता है।

नायक तथा गुरु

सूफी नायक अपने पीर या गुरु द्वारा निर्देशित किए जाते हैं। गुरु ही इनमें 'प्रेम की आग को जन्म देता है।[२] 'पदमावत' में हीरामन गुरु का प्रतीक है, जो

---

१ डा० सत्येन्द्र—मध्ययुगीन साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन, पृ० १७२

२ 'पीर और मुर्शिद (शिष्य) के सम्बन्ध के बिना सूफियों में साधना का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

—रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २६०

रत्नसेन को 'प्रेम पथ' पर अग्रसर करता है। गुरु उपासना की परम्परा भारतीय साहित्य में प्राचीन है। वैदिक काल, रामायण काल, उपनिषद काल तो गुरु महात्म्य से भरा पड़ा है। हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में गुरु महिमा का अपार वर्णन है। नाथ-पंथियों ने साधना में गुरु को अनिवार्य माना है। निर्गुण ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर ने गुरु को 'गोविन्द' से बड़ा घोषित किया है। कृष्ण भक्ति शाखा के सभी कवि गुरु महिमा का गान तन्मय होकर करते हैं। राम भक्ति के कवि तुलसी ने तो 'मानस' में सर्वप्रथम 'बंदौ गुरुपद पदुम परागा'[1] से ही अपने अमर-काव्य का श्री गणेश किया है। भक्ति-काल के समस्त वातावरण में गुरु के प्रति अपार तथा असीम श्रद्धा भाव व्यक्त है। भारतीय गुरु-साधना का प्रभाव सम्भव है सूफियों पर भी पड़ा हो। भारत में रहने वाला सूफी हुजिरी गुरु महिमा की अनिवार्यता मानता है।[2] सूफी साधना के ज्ञान के लिए 'पीर' की शरण ग्रहण करनी पड़ती है, नहीं तो वह 'इश्क' में साफल्य प्राप्त ही नहीं कर सकता है।[3] साधक शेख के माध्यम से 'पीर' तक जाता है, 'पीर' उसे ज्ञान देता है तथा रसूल सुन्ना या मुहम्मद तक पहुँचाता है। ये सभी सूफी नायक गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त कर अपने इष्ट के प्रति प्रवृत्त हैं।

नायक का प्रेम योग

सूफी काव्यों के 'प्रेम-पंथी' नायक अपने प्रेम सिद्धान्त के प्रति अपार निष्ठावान हैं। वह प्रेम में भक्तियोग, कर्म-योग, ज्ञानयोग तीनों को एकत्र कर लेता है। उसकी दृष्टि में भ्रम नहीं रहता तथा वह अपने 'प्रेम शक्ति' में अधिक विश्वास रखता है। प्रेम-युद्ध के ये सभी सफल योद्धा हैं साथ ही जब भी इन्होंने प्रेम-युद्ध किया है, कभी ये पीछे नहीं हटे हैं। मन मानसिक दृढ़ता का पक्ष इनमें प्रबलतम है। मानव के मन को जीतने के लिए यह पूर्ण समर्पण के साथ आगे बढ़ते हैं तथा जिसके प्रति समर्पित हैं उसे छोड़ कर किसी अन्य की चर्चा भी इन्हें पसन्द नहीं है। अतः इनके प्रेम का आधार निश्छल तथा एकनिष्ठ प्रेम ही है तलवार की शक्ति नहीं। भारतीय परम्परा में नायक नायिका के लिए तलवार उठाता है, युद्ध से रक्त की सरिताएँ बहा देता है वह जोगी या अस्त्रहीन नहीं बनता है बल से विजय प्राप्त करता है। 'पृथ्वीराज रासो' 'बीसलदेव रासो' आदि काव्यों के नायक ऐसे ही हैं। और

---

१ रामचरित मानस—बालकाण्ड पृ० ६

२ डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय पृ० १८

३ 'गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥

—जायसी-ग्रन्थावली पृ०

सूफी नायक कभी भी प्रेमिका के लिए रत्नपाल का सहारा नहीं लेते, सदैव प्रेम के द्वारा प्रेम प्राप्त करता है।

प्रेम की मुक्त अभिव्यक्ति म इन सब का नया होता है। प्रेम को छिप छिप कर उपायों स नहीं चलाते स्पष्ट प्रकट करते हैं। 'प्रेम की आग उत्पन्न हो जाने पर अपना समय सोचने विचारने म नहीं लगाते। संस्कृत के नायकों म प्रेम पहिले प्रच्छन्न होता है तथा बाद म प्रकट जैसे दुष्यन्त तथा शकुन्तला का प्रेम। शकुन्तला से प्रेम करने से पहिले राजा, कुल, जाति मर्यादा आदि अनेक तथ्यों का विचार करता है तब आगे बढ़ता है। इसके विपरित सूफी नायक प्रेम उत्पन्न हो जाने पर बिना सोचे, विचारे, निकल पड़ते हैं। वह 'प्रेम पथ' म विचलित नहीं होते, साधन बनाते नहीं, स्वयं जुट जाते हैं। प्रेम-दृष्टि की एकनिष्ठता से द्रवित होकर अलौकिक शक्तियां इनकी स्वयं सहायता करती है। जैसे रत्नसेन के निश्छल सिद्ध-योगी रूप को देखकर शिव-पार्वती सभी देवता सहायता करते हैं तथा शिव सिद्धगुटिका प्रदान करते हैं तथा कभी कभी तो उन्हें भाट भी बनना पड जाता है। फारसी के काव्यों म इस पद्धति के अनेक सकेत मिलते हैं[1], जिनका अलग से विवेचन करना यहां विषयान्तर ही प्रस्तुत करेगा। लेकिन इतना स्पष्ट है कि प्रेम का शाश्वत रूप दिव्य शक्तियों की सहायता से सिद्धि की ओर बढ़ना है तथा नायक को सफलता मिलती है।

प्रेमी होते हुए भी यह नायक भारतीय काम शास्त्र म वर्णित शृंगार के नायक अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धूर्त नायकों[2] की भांति नहीं है। प्रवृत्ति से कृष्ण मार्गी कवियों के नायकों से भिन्नता रखते हैं। वे कभी भी रसाधिपति, रसिकेश्वर, रस सागर कृष्ण की भांति सामान्य गोपियों नायिकाओं से छेड़छाड़ नहीं करते। सूरदास ने 'सूर सागर' के आरम्भ में ही राधा द्वारा कृष्ण की दधि चोरी का उल्लेख प्रस्तुत किया है।[3] सूफी नायक इसे खेल जानता ही नहीं। वह लूट नहीं करते, बांसुरी नहीं बजाते, माखन जाल म फांस कर सबको बांधते नहीं। 'बतरस' घाल कर सबको रिझाते खिलाते नहीं। एकान्त में छेड़छाड़ नहीं करते, ग्वालियों का निराश उन्हें आता ही नहीं है। वे प्रेम के मार्ग में कृष्ण की तरह अधीर तथा रस लूटने नहीं लग जाते प्रेम पथ म पर्वत से धैर्यशाली तथा वृत्ति से अचंचल रहते हैं। वे रस-लोभी नहीं हैं,

१ डा० कमलकुलश्रेष्ठ—भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० २२६
२ डिक्शनरी आव इस्लाम पृ ६०६
३ कामशास्त्र—वात्सायन पृ० ४०३
४ सूरसागर पृ० १६०

अतः मधुकरी वृत्ति का इन नायकों में सर्वथा अभाव पाया जाता है। इसका कारण है कि इनका प्रेम लौकिक प्रेमिका से वासनात्मक न होकर दिव्य होता है तथा प्रेमिकाएँ पर-ज्योति का रूप होती हैं जहाँ ये वासना का कालुष्य छोड़ कर जाते हैं। दूसरे भारतीय सूफी काव्यों के नायक सभी राजा हैं, राजसी शान उनमें है, अमर्यादित वे नहीं हैं। रत्नसेन, नल, मनोहर, सुजान सभी इस तरह के हैं। परीक्षा के लिए पार्वती द्वारा अप्सरा का रूप धारण करने पर भी रत्नसेन डिगता नहीं है तथा पार्वती या अप्सरा की उपेक्षा करके अपने इष्ट के प्रति अनुराग ही व्यक्त करता है।[1] 'मानस' में भी पार्वती सीता का रूप धारण करती है तथा राम के समक्ष असफल हो जाती है। यह प्रसंग मानस में पदमावत से ही नायक के प्रेम में एकनिष्ठता दिखाने के लिए तुलसी ने ग्रहण किया जान पड़ता है।

सूफी नायक 'सौन्दर्य' के ही साधक हैं। इस सौन्दर्य में विश्व राग मिला हुआ है। सृष्टि के कण कण में उसका सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। वह एक ब्रह्म ही सौन्दर्यमय है, यह एकेश्वरवादी भावना ही इसमें प्रधान है। रानियों का सौन्दर्य लोक तारा

---

१ पार्वती मन उपजा चाऊ। देखौं कुँवर केर सत भाऊ।
ओहि एहि बीच कि पेमहि पूजा। तन मन एक कि मारग दूजा॥
भइ सुरूप जानहु अपछरा। बिहँसि कुँवर कर आँचर धरा॥
सुनहु कुँवर मोसौं एक बाता। जस मोहि रंग न औरहि राता॥
औ विधि रूप दीन्ह है तोका। उठा सो सबद जाइ सिव लोका॥
तब हौं तोपहँ इन्द्र पठाई। गइ पदमिनि तैं अछरी पाई॥
अब तजु जरनु मरनु तप जोगू। मोसौं मानु जनम भरि भोगू॥
हौं अछरी कबिलास क जेहि सरि पूज न कोई।
मोहि तजि सँवरि जो ओहि मरसि कौन लाभ तेहि होई? २॥
भलेहि रंग अछरी तोर राता। मोहि दूसरे सौं भाव न बाता॥
\+ \+ \+
ओहि न मोरि किछु आसा हौं ओहि आस करेउँ।
तेहि निरास पीतम कहँ जिउ न देउँ का देउँ॥
—जायसी ग्रंथावली—पार्वती-महेश खण्ड पृ० ६१

२ इन्होंने कल्पना की कि अंतिम सत्य का रूप पूर्ण सौन्दर्य का रूप है। यह सत्य स्वयं तो प्रच्छन्न है किन्तु सृष्टि रूपी दर्पण में उसका जो बिम्ब पड़ता है वही उसकी अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति प्रेम को जाग्रत करती है। प्रेम है सौन्दर्य को पहचानने की शक्ति, प्रेम है सौन्दर्य पर न्यौछावर होने की योग्यता।
—रामधारीसिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय, पृ० २५

कामसूत्र तथा कामशास्त्र का विषय ही 'काम' का विवेचन है। 'काम' पारिभाषिक रूप से नर-नारी के परस्पर आकर्षण का व्यंजक शब्द है। आकर्षण का कामजन्य रूप रति या अनुराग में निबद्ध है। काम अपने व्यापक स्वरूप में चराचर का प्रेम भाव है। सूफियों ने इसी काम के स्थान पर 'इश्क' शब्द का प्रयोग किया है। आजकल काम तथा 'इश्क' दोनों शब्दों का अर्थ-संकोच हो गया है तथा ये मात्र वासनात्मक अर्थ की ही अभिव्यक्ति करते हैं। काम शब्द सामान्य 'प्रेम' के रूप में आ गया है। वस्तुतः सूफियों ने नायक में जिस 'इश्क' या 'काम' की चर्चा की है, वह 'इश्क' परम-सत्ता या विराट्-ज्योति के लिए है। अतः 'इश्क' का नायक से सम्बन्ध व्यापक धरातल या शाश्वत भूमि का है, सामान्य नहीं।

वेदों में 'काम' जीवन की अक्षय शक्ति का वाची है तथा जीवन की इच्छा-शक्ति का अर्थ देता है। काम तथा प्रेम दोनों ही समान वहाँ पर जाते हैं जहाँ वे शाश्वत काम का अर्थ ध्वनित करते हैं। उपनिषदों तथा पुराणों में 'काम' का प्रबल विस्तार है। काम के अर्थ का पतन बहुत बाद में हुआ। 'कामदेव' की उपासना भारत में प्राचीनकाल से है, यह उपासना भी सौन्दर्य के प्रति आदर भाव ही है। भारतवर्ष में काम का काव्य शास्त्रीय दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक विवेचन प्राप्त होता है उससे लगता है 'काम' या 'प्रेम' की यह भावना भी विदेशों में यहीं से ही पहुँची है। श्रीमद्भागवत की प्रेम कथाएँ—कृष्ण तथा गोपियों को देख कर लगता है यही सूफीकाव्य की आधारभूमि है। फारस तथा अरब के साथ भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध प्राचीन हैं। अतः प्रेम-चर्चा भी वहाँ पहुँची होगी। सूफी मत के प्रसिद्ध विद्वान इब्नअरबी ने बारहवीं शताब्दी में 'काम' प्रेम की या 'इश्क' की व्यापक धरातल पर चर्चा की है। राबिया का 'इश्क' तो जगत प्रसिद्ध है,[1] वह तो प्रत्येक चमक में 'हक' के दर्शन पाती थी। फारस में आशिक माशूका का गम्भीर चर्चा, उनके 'नखरों' का वर्णन, साकी 'शराब' की कहानियाँ, 'शमा परवाना'[2] के चित्र बहुत हैं तथा सभी में 'इश्क' ही है। फारसी-सूफी तथा हिन्दी प्रेमाख्यानक दोनों ही काव्यों के नायक का आधार 'काम', 'इश्क' या 'प्रेम' ही है। प्रेम शब्द की व्याख्या अनन्त है तथा विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ अपर्याप्त हैं। प्रेम अनन्त स्थितियों का व्यापक

---

१ Encyclopedia of Religion and Ethics Vol XII P 3

२ "The very essence of sufism is poetry Hastings and the eastern mystics are never tired of expatiating on the 'Ishq or 'Love to God' which is the one distinguishing feature of sufi mysticism

—Dictionary of Islam—Hughes, P 617

रूप है तथा मानसिक प्रक्रिया भी। 'भक्ति सूत्र' म 'अनिवायनीयम् प्रेमस्वरूपम्'[1] कह कर प्रेम की अनिवर्णीयता का स्पष्ट उदघाटित किया गया है। परमात्मा का 'प्रेम रूप'[2] मानने की बात तो अब स्थिर सी हो गयी है। जीवन म प्रेम का स्थान सर्वाधिक है।

मध्यकाल म 'प्रेम-साधना' का स्वर प्रमुख है। दक्षिण के भक्त कवि प्रेम धारा मे निमज्जित थे। कृष्ण भक्तिधारा के सभी सम्प्रदाय राधावल्लभ सम्प्रदाय, वल्लभाचाय का पुष्टि माग आदि सभी प्रेम-द्वारा भगवान की उपासना कर रहे थे। जयदेव विद्यापति तथा मीरा का प्रेम' तन्मयता का उदाहरण है। कबीर न भी 'राम की बहुरिया बन कर भगवान से नवधा भक्ति के सम्बन्ध स्थापित किए। वष्णवा की प्रेम-साधना म देश रस विभोर था,[3] उसी समय सूफी-साधक इस देश म 'इश्क मजाजी के द्वारा इश्क हकीकी का सन्देश देने यहाँ आये। आचाय शुक्ल न हिन्दुओं तथा मुल्लाओ के इस विचार-सगम का ही 'एकत्व' की ओर उन्मुख करने वाला सिद्धान्त माना है। उन्होने चार प्रकार के प्रेम' रूपो का सकेत दिया है। चौथे प्रकार का प्रेम गुण-श्रवण—चित्र दशन, साक्षात दशन आदि से होता है। सूफी-काव्यो म इस प्रकार का प्रेम ही व्यक्त है। परम ज्योति रूप नायिका को प्राप्त करने के लिए, कन्था' धारण कर उनके सभी नायक भोगी रूप से हट कर योगी बन जाते हैं। गुण-श्रवण के अन्तगत पदमावत, चित्र-दशन के अन्तगत 'चित्रावली, स्वप्न-दशन के अन्तगत कनकावती, इन्द्रावती तथा साक्षात-दशन के अन्तगत, मधुमालती, मधुकरमालति आदि रचनाए आदि हैं।

प्रेम चिनगारी' के उदय होते ही साधक प्रेम प्रेम की रट लगाने लगता है। 'फारसी मसनवियो का प्रेम एकान्तिक, लोक बाह्य और आदर्शात्मक (आइडियालिस्टिक) होता है। वह ससार की वास्तविक परिस्थिति के बीच नही दिखाया जाता ससार की और सब बातो से अलग एक स्वतन्त्र सत्ता के रूप म दिखाया जाता है। इसम जो घटनाए होती हैं वे केवल प्रेम माग की होती हैं, ससार के और व्यवहारो स उत्पन्न नही। साहस, दृढता और वीरता भी यदि कही दिखाई पडती है तो प्रेमा-

---

१ नारद भक्ति सूत्र २

२ Love is God and God is love
Love! What a Volume is a word
—(Unknown)

३ जायसी ग्रन्थावली (भूमिका भाग), पृ० १

४ वही, पृ० २६

-माद के रूप में, लोक-कर्तव्य के रूप में नहीं।' भारतीय लोक व्यवहारिक पद्धति का इनमें प्रभाव होता है। सूफियों की आध्यात्मिक भूमि, प्रेम को ही धर्म व कर्म सभी कुछ मानकर चलती है।' सूफीकाव्य में एक ही ध्वनि है प्रेम। प्रेम की इस प्रबलता के कारण ही उनके नायक नायिका प्रेम के प्रतीक मान जाते हैं। प्रेमी (नायक) सौन्दर्य सृष्टि (नायिका) में उसे ही पाता है। नायक के लिए परम-ज्योति के रूप को साकी, शराब तथा मधुशाला बना दिया गया है।

जायसी ने प्रेम का प्रेम पहार कठिन विधि गन्ता का वर्णन अनेक प्रकार से किया है।' प्रेमी प्रेम-पन्थ के कष्टों की चिंता ही नहीं करता।' प्रेम-मार्ग काबा एवं कलाश है। इस प्रकार इनके नायक का प्रेमी रूप अद्भुत है।

नायक पर नाथ पंथी प्रभाव

सूफी नायकों पर हठयोगी प्रभाव अत्यधिक दृष्टिगोचर होता है। भगवान शिव हठयोग-साधना के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। यह हठयोग-साधना आनंदमार्ग की प्रमुख साधना मानी जाती है। योगी कुण्डलिनि शक्ति जाग्रत कर उसे मूलाधार से सहस्रार चक्र तक पहुँचा कर परम शिव से आत्मा को संयुक्त कर देता है। योगी कुण्डलिनी द्वारा चक्रभेदन के पूर्व ही अष्टछाप की उपासना से शरीर को दिव्य एवं अप्राकृतिक बना लेते हैं।

सूफी प्रेमी नायक अपनी साधना में हठयोगी बनकर अपनी दृढ़ता का प्रतीक बन जाता है। नाथ पन्थ का प्रभाव मुसलमान तथा हिन्दुओं के ऊपर व्यापकता से मध्यकाल में पड़ा है। सूफियों ने अपने नायक को भोगी होने से पहले ही योगी रूप में प्रस्तुत किया है। नायक भौतिकता के माया जनित बन्धनों को तोड़ कर अपना मन दिव्य शक्ति में लगा देता है वह राज पाट माता पिता, पत्नी, सम्बन्धी सब कुछ

---

१ परशुराम चतुर्वेदी—मध्ययुगीन प्रेम साधना पृ० १७

२ सुए कहा मन बूझहु राजा। करब पिरीत कठिन है काजा।
+ + +
ओहि पंथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी, जती, तपा संन्यासी॥
—प्रेम खंड—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५१

३ सप्त पतार खोजि कै, काढ़ौ वेद गरंथ।
सात सरग चढ़ि धावौं, पदमावति जेहि पंथ॥
—वही, पृ० ६३ (बोहित खंड)

४ सं० हजारीप्रसाद द्विवेदी—गोरखबानी, पृ० ३६ पद १७

छोड कर चल देता है । मासारिकता से पूर्ण विरक्ति तथा एक दिव्य रूप के प्रति परम आसक्ति का इनम उदय होता है । यह आसक्ति उन्हें नाथ योगी का रूप दे देती है । हठयोग-साधना का इन नायकों पर प्रभाव इसलिए अधिक पडा, क्योकि यहाँ साधना का रूप हठयोग तन्त्र तथा रसायन के रूप मे विद्यमान था । सूफियो ने हठयोग को उपयुक्त समय कर अपना लिया तथा वे 'पिण्ड' म 'ब्रह्माण्ड' की चर्चा म रम गये । 'कन्था' पहन कर अपने नायक को नाथ-योगी रूप म उन्होने प्राय प्रस्तुत किया है । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने नाथ योगियो के वेश की चर्चा करते हुए लिखा है कि "मेखला, सिंगी सेली, गूदरी खप्पर, कर्णमुद्रा, बघम्बर झोला आदि चिह्न ये लोग धारण करते हैं । पहले ही बताया गया है कि कान फाड कर कुण्डल धारण करने के कारण ये लोग कनफटा कहे जाते हैं । यह कर्ण-कुण्डल निस्सन्देह योगी लोगो का बहुत पुराना चिह्न है। सुधारक मनोवृत्ति के लोग मानते हैं कि श्रीनाथ जी ने यह प्रथा इसलिए चलाई होगी कि कान चिरवाने की पीडा के भय से अनधिकारी लोग इस सम्प्रदाय म प्रवेश ही नही कर सकेंगे ।'[1] इस प्रकार सूफी नायक का नाथ-योगी बन जाना भी विपत्तियो से न डरने का प्रतीकात्मक रूप ही है। मधुमालती का नायक मनोहर, मधुमालती को प्राप्त करने के लिए नाथ-पन्थी योगी की भाँति निकल पडता है—

> कथा मेखली जरकटा, जटा, बढाई केस ।
> बज्र कछौटी बाधि के वस्यो गोरख वेष ।।[2]

इसी प्रकार उसमान ने 'चित्रावली' के नायक सुजान को भी नाथ पन्थी योगी के रूप म प्रस्तुत किया है—

> करहु कान जनि एकहु, कहै कोऊ जो लक्ख ।
> पहिरि लेहु पग पावरी, बालहु सिरि गोरक्ख ।।[3]

'पद्मावत' भी रत्नसेन 'गुरु सुआ' से काह्न जोग कथनि के कथ' यह उक्ति सुनकर योगी हो जाता है—

> तजा राज राजा भा जागी । और किंगरी कर कहेउ बियोगी ।।
> तन बिसभर मन बाउर जटा । अरुझा प्रेम परीसिर जटा ।।
> चन्द्र बदन औ चन्दन-देहा । भसम चढाइ कीन्ह तन खेहा ।।
> मखल सिंधी, चक्र, धधारी । जोग बार, सद राछ, अधारी ।।

---

१ हजारीप्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय पृ० १४ १५

२ मझन कृत मधुमालती (स० डा० माताप्रसाद गुप्त) ।

३ उसमान—चित्रावली, पृ० ८६

कंथा पहिरि दण्ड कर गहा। सिद्ध होद कहँ गिरस कहा॥
मुद्रा स्रवन, कंठ जपमाला। कर उपदान, काँध बघ छाला॥
पावरि पाव दीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस करि राता॥
चला भुगुति माग कहँ, साधि कया तप जोग।
सिद्ध होइ पद्मावती, जेहि कर हिये वियोग॥[1]

इन्द्रावती, कनकावती कथाकलावती ज्ञान दीप हंसजवाहिर आदि प्रेमाख्यानक काव्यों में नायक के जोगी वेश की चर्चा अवश्य है, केवल यूसुफजुलेखा तथा प्रेमदर्पण काव्य ही इसके अपवाद हैं। इस अपवाद का कारण भी स्पष्ट है कि ये ग्रन्थ 'कुरान' के प्रभाव में अधिक हैं। लेकिन गृह त्याग कर निकल पड़ने की चर्चा यहाँ भी आती है। इस प्रकार ये सभी नायक 'प्रेम पन्थ' में सिद्धि प्राप्त करने के लिए 'साधना पथ' का आधार ग्रहण करते हैं।

मन्त्र सिद्धि गोटिका तथा तान्त्रिक रूप

इन सूफी कवियों ने वेश भूषा से ही अपने साधक को योगी नहीं बनाया, अपितु नाथ पन्थ की समस्त क्रियाओं का भी आत्मसात किया है। जायसी पर डा० मुंशी राम शर्मा ने नाथ साधना का पूर्ण प्रभाव स्वीकार किया है।[2] घर-बार छोड़कर योगी बन जाने वाले गोपीचन्द और भर्तृहरि का नाम भी उन्होंने स्मरण किया है—

जो भल होत राज और भोगू। गोपीचन्द नस साधत जोगू॥
जानहु आहि, गोपीचन्द जोगी। कसा भरथरि आहि वियोगी॥

दोहा १६३

जायसी गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ का भी स्मरण बड़ी श्रद्धा के साथ करते हैं—

गोरख सिद्धि दीन्हि तो हिताथू। तारे गुरु मछिंदर नाथू॥

दोहा १६०

सम्पूर्ण पदमावत में 'जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सो भेंट' इस परम्परा को अपनाया गया है। ये सभी जोगी' गोटिका मन्त्रसिद्धि तथा तान्त्रिकता का भी सहारा लेते हैं। रत्नसेन ने शिवजी से सिद्धगोटिका प्राप्त की है। कहा जाता है कि जायसी स्वयं भी सिद्ध योगी थे तथा इच्छानुसार वे बाघ आदि का रूप धारण कर लेते थे। वन में मुक्त विचरण करते हैं। ऐसे सिद्ध ने अपने नायक को साधना में

---

१ जायसी—ग्रन्थावली—जोगी खण्ड, पृ० ५३
२ भक्ति का विकास, पृ० २११

रत दिखाया, तो आश्चर्य क्या। चित्रावली" का नायक आँखों में लुक्अजन लगा कर झोली लेकर, गोटिका दबाकर, डंडा लेकर चल देता है तथा वह दिव्य शक्ति सम्पन्न होकर सबको देख सकता है, साथ ही उसे कोई नहीं देख सकता। इस प्रकार तन्त्रक्रियाएं तथा मन्त्रसिद्धियों का वर्णन भी बहुत मिलता है। कुंवरावत' में एक तपस्वी नायक को एक मन्त्र तथा लकुटिया देता है। जन्त्र से सिद्धियां तथा लकुटी से समुद्र पार किया जा सकता था।

एक लकुटिया और दिया कहा कि लियो सुजान।
समुन्दुर डार बाहित भई सब है काज की खान॥[2]

'ज्ञानदीप' के नायक ने भी लुक्अजन तथा गुटिका को अपनी सिद्धि का सहारा बनाया है। इन कवियों ने बीन बजाना जैसे कथा लीलावती में, गुरु से माला लेना जैसे अनुराग बाँसुरी में, गेरुए वस्त्र पहनाना जोम कथरा सारंगी, शरीर पर भस्म मलना, खड़ाऊं पहनकर घर से बैरागी होकर निकल पड़ना, हाथ में किंगरी लेना, शरीर में मेखला भस्म श्रृंगी धंधारी, चक्र रुद्राक्ष धारण करना, जटा बनाना, कथा पहनना, गोरखनाथ का निरन्तर स्मरण करना आदि कई विशेषताएं सूफी काव्यों में मिलती हैं।

साधना

हठयोगी साधना पर भी नाथ पन्थ का प्रभाव ही अधिक है। यह साधना बहुत ही जटिल तथा दुष्कर है। उसमें मास रोककर योगी को उलटे सिर के बल चलना पड़ता है। वैसे हठयोग-साधना साधारण रूप से, 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' के मत में 'ह' अर्थात सूर्य तथा 'ठ' अर्थात चन्द्र। इस प्रकार सूर्य तथा चन्द्र के योग का नाम हठयोग है।[3] सूर्य से इड़ा नाड़ी तथा चन्द्र से पिंगला नाड़ी का अर्थ प्रायः लिया जाता है। इस प्रकार इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना हठयोग के आधार रूप हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने गुह्य समाज में बोधि प्राप्ति' के साथ इसका पुराना सम्बन्ध स्पष्ट किया है।[4] गोरखनाथ ने योग धारा में नवीन क्रान्ति

---

१ उसमान—चित्रावली, पृ० ८५ ८६
२ अलीमुराद—कुंवरावत।
३ हकारेण तु सूर्य स्यात्सकारेणेन्दुरुच्यते।
सूर्य चन्द्रमसोरक्य हठ इत्यभिधीयते॥ पृ० १३३
—सं० पण्डित महादेव शास्त्री—योग उपनिषद।
४ नाथ सम्प्रदाय, पृ० १२३

की है। डा० रागय राघव ने शकराचाय के साथ ही गोरखनाथ को महत्त्व दिया है। "शकर ने जिस प्रकार समन्वय करने का प्रयत्न किया और इस समन्वय म बौद्ध मत की दाशनिकता को आत्मसात करके खोखला कर दिया, उसी प्रकार गोरखनाथ ने अपने युग के पूववर्तियो के सब मता को पहिले अच्छी तरह छान लिया और रस निकाल कर बाकी को फोक की भाँति छूछा करके फेंक दिया। विद्वाना ने नाथ-सम्प्रदाय की महत्त्वपूण शक्ति का उल्लेख अवश्य किया है किन्तु उन्होंने यह नहीं स्पष्ट किया कि भारत म गोरखनाथ का उतना ही बडा काम था जितना कि शकर का।[1] गोरखनाथ ने कापालिक, शाक्त और चीनाचार लोकायन सौर, गणापत्य सबको अपने म मिला लिया। उन्होने शव प्रत्यभिज्ञा के दशन के अनुसार कायायोग को परिष्कृत किया तथा दाशनिकता के सिद्धान्तो म शकर के निकट आ गये। हठयोगी परम्परा के अनेक ग्रथों को गोरख ने समन्वित रूप दिया। गोरखनाथ हठयोग-साधना को जाति-पाँति के बधन से उठाकर व्यक्ति के स्तर पर लाये। राजा हो या रक इस साधना मे मिला लिया गया। हिंदू तथा मुसलमान दोनो ही इस प्रबल साधना स प्रभावित हुए।

सूफिया पर नाथ पन्थ की हठयोगी साधना के प्रभाव का एक कारण यह भी है कि हठयोगी सिद्धान्त मे रूढ न होकर व्यक्ति विकास तथा परक तत्व का माग सीधा करता है।[1] गोरख का जिस समय इस देश म उदय हुआ उस समय भारतीय धम-साधना की स्थिति डावाडोल हो गई थी। शकर के अद्वतवाद का प्रभाव तो था, लेकिन कम हो चला था। उसी समय गोरखनाथ ने देश को अपनी सिद्ध-साधना पद्धति म बाधने का प्रयास किया। उस समय मुसलमान भारत म प्रवेश कर रहे थे और दूसरी ओर बौद्ध साधना, तत्र मन्त्र आदि मे फसती जा रही था। साथ ही बौद्धो, शाक्ता और शवो का एक बडा भारी समुदाय ऐसा था जो ब्राह्मण तथा वेद के प्राधान्य को मानने के लिए तयार नहीं था। गोरखनाथ ने पिण्ड म ब्रह्माण्ड[3] की उदघोषणा की तथा अनेक नानी साधक उनके झण्डे के नीचे आ गये।

सूफिया पर हठयोग, रसायन तथा तन्त्र का प्रभाव आचाय शुक्ल जी के शब्दो

---

१ डा० रागेय राघव—गोरखनाथ और उनका युग प० १५१

२ "नाथ पन्थियों की दृष्टि मे योग के द्वारा स्वाथ और परमाथ का सामजस्य स्थापित किया जा सकता है। भोग तथा त्याग का सामजस्य इसी मे है। इस प्रकार गीता के मध्यम माग का उपदेश ही इस पन्थ को ग्राह्य है।"
—स० डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य, प्रथम खड प० १०८

३ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—नाथ सिद्धों की बानियाँ, पृ० ११

म इसलिए भी अधिक पडा, 'जिम समय सूफी यहा आए उससमय उन्ह रहस्य की प्रवत्ति हठयोगियो, रसायनियो और तान्त्रिको म दिखाई दी। हठयोग की तो अधिकाश बातो का समावेश उन्होने अपनी साधना-पद्धति म कर लिया।'[1] इधर रामानन्द के शिष्य कबीर न भी साधक की साधना के लिए हठयोग की चर्चा की है। ब्रह्मरन्ध्र म ध्यान केन्द्रित करने, निराकार की उपासना, अनहद नाद, शून्य महल आदि की चर्चा कबीर ने डट कर की है।

नाथ पन्थियो म साधक कही जोगी, कही अवधूत तथा कही कही रावल कहा जाता है। इनम सम्प्रदाय की दृष्टि से रूप भिन्नता थी। अत मध्यकाल के अधिकाश कवियो ने 'जोगी' रूप का ही अपनाया है। सगुण प्रेम की पुजारिन मीरा ने 'हठयोग' साधना को अपनाया है, उन पर भी नाथ पन्थ का प्रभाव स्पष्ट है—

घूताराजोगी एकर सू हसि बोल ॥
जगत बदीत करी मनमोहन कहा बजावत ढोल।
अग भभूति गले मगछाला तू जन गुन्थिया खोल ॥
मदन सरोज वदन की शाभा ऊभी जोऊ कपोल।
मेली नाद वभूत न बटवा अजू मुनी मुख खोल ॥[2]

कबीर के काव्य म तो इन योगियो का विशद वर्णन मिलता है। सूर ने उद्धव के माध्यम से योग-साधना पर सगुण की प्रतिष्ठा की है तथा गोपियो द्वारा योग योग हम नाही कहकर योग का खण्डन कराया है। तुलसीदास ने भी 'गोरख जगायो जोग भगति भगायो भोग'[3] कह कर हठयोग का खण्डन किया। लेकिन सूफी कवियो ने हठयोगी साधना को अपनाया तथा उनम जोगी और अवधूत दोनो ही साधक के रूप म मिलते हैं। जायसी ने 'पदमावत' म गोरख पन्थी सिद्ध 'गोरख गोरख' की रटन रटते थे, रुद्राक्ष की माला कुण्डल, किंगरी कमण्डल, व्याघ्र चम खडाऊ, मेखला, सिंगी चक्र, धधारी चक्र और खप्पर लेकर घर से निकल पडते थे, वे (नायक) साधक गेरुए वस्त्र पहनते थे तथा 'जोग का कथनी म नही करनी' म विश्वास करते थे। साधक को अपार शारीरिक कष्ट मिलने के उपरान्त सिद्धि होना उनकी साधना का लक्ष्य है। नायक नाथ-योगी वेश भूषा धारण कर निकलता था तथा जब तक सिद्धि नही प्राप्त कर लेता, लगातार साधना के पथ पर चलता रहता था। इस पथ पर प्राण देने' का भय भी इन्ह नही होता है। इस प्रकार सूफियो के ये नायक साधना की दृष्टि से परे

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली की भूमिका पृ० १६३
२ स० परशुराम चतुर्वेदी—मीराबाई की पदावली पृ० ८४
३ कवितावली—उत्तर काण्ड पद ८४

नाथ पन्थी साधक की भाँति हैं। साथ ही उनकी साधना में उत्कृष्ट उपमान स्वरूप गोरखनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोपीनाथ, भर्तृहरि आदि का नाम लिया जाता है।

इन सूफी साधकों में वाम मार्ग का विरोध मिलता है—

कहा शब्द तुम दाहिन लेऊ।
बायें पन्थ पाउ जिन देऊ॥[1]

इसी प्रकार जायसी ने भी वाम मार्ग का विरोध किया है। दक्षिण मार्ग अपना कर उन्होंने साधना में दृढ़ आसन[2] को भी अपनाया है। आसन के पश्चात् प्राणायाम की साधना भी इन नायकों में प्राप्त होती है। प्राणवायु का निरोध करके ये साधक कुण्डलिनी[3] को उद्बुद्ध करते हैं। जागरित कुण्डली षट्चक्रों का भेदन करती हुई अंतिम चक्र सहस्रार में शिव से मिलती है। मन यहाँ अचंचल हो जाता है तथा साधक को अनहद नाद सुनाई पड़ने लगता है। अनहद नाद दस प्रकार के कहे गये हैं। 'युसुफ जुलेखा' में 'सुने वचन सब कोउ, अनहद दस प्रकार' का संकेत स्पष्ट है। निसार ने युसुफ जुलेखा में साधक (नायक) की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीयावस्था का भी संकेत किया गया है।

सिद्धों का प्रभाव

नाथों के अतिरिक्त सिद्धों का भी प्रभाव इन नायकों पर पाया जाता है। सिद्ध प्राचीन जर्जरित रूढ़ियों, पाखण्डों तथा अन्ध विश्वासों के प्रबल विरोध को लेकर उपस्थित हुए थे। सिद्ध 'सहज जीवन' तथा 'सहज साधना' का आधार लेकर आये थे तथा अन्य सम्प्रदायों में फैली झूठी कर्मकाण्डी पद्धति का उग्र खण्डन कर रहे थे। इन सिद्धों ने आत्मावलम्बन से युक्त अस्तित्ववादी विचारधारा को आदर

---

१ कासिमशाह—हंसजवाहिर, पृ० १४५

२ शिव संहिता में पद्मासन, वीरासन, मयूरासन आदि चौरासी प्रकार के आसनों की चर्चा है।

—सं० महादेव शास्त्री—योग उपनिषद पृ० १५६

३ कुण्डलिनी शरीर के मध्य स्थान में, चक्र के आकार वाली सकड़ों नाड़ियों की आश्रय, आन्त्र पेष्टनिका (आँतों से घिरी हुई) नाम की एक नाड़ी है। उसका आकार वीणा के अग्र भाग की गोलाई जल भंवर या ओंकाराद्ध तथा कुण्डल चक्र के समान है। वह देव असुर मनुष्य, खग नर मृग, कीटादि में है। वह ऐसी सोई है जैसे जाड़े में आप्त कुण्डली मार कर सर्पिणी।

—डा० रांगेय राघव—गोरखनाथ और उनका युग, पृ० ८३-८४

दिया। निराकारवाद, शरीरवाद आदि सिद्धान्तों के द्वारा उन्होंने जीवन की सहज व्याख्या तथा आचारवाद का खण्डन किया। इनका धर्म है तथा जीवन में सहज मार्ग की पद्धति का समर्थन किया है। सिद्धों की इस साधना पद्धति का भी प्रभाव सूफी कवियों पर पड़ा। सिद्धों द्वारा अपनायी गयी गुरु महिमा परम्परा सूफी साधकों में स्पष्ट है, साथ ही '[illegible]' की स्तुति में भी इनका ही प्रभाव है। सिद्ध-साधना के साधक एकनिष्ठता को सर्वाधिक महत्त्व देते थे, जिसका अनुसरण इन सूफियों ने नहीं किया तथा परमात्म-साधना में ये सभी कवि तन्मयी या मरजिया भाव से व्यस्त रहे। नाथ तथा सिद्धों के प्रभाव से ही धर्म साधना में 'गुरु माहात्म्य' का पाठ इन सूफियों पर पड़ाया तथा ये सूफी साधक भी गुरु या 'पीर' के प्रति समर्पित हैं। रत्नसेन का 'गुरु सुआ' ही इसकी प्रेम-साधना का आधार रहा है। सिद्ध तथा नाथ साहित्य के व्यापक प्रभाव के ही सूफी साधक आचार, विचार व्यवहार में रूढ़ियों तथा पाखण्डों से मुक्त हैं। ये साधक सच्ची साधना में 'चारों ओर रंग रूप कण कण व्यापी 'परम ज्योति' की उपासना में निमग्न हो जाते हैं। यही कारण है कि कुरान में प्रतिपादित सिद्धान्त तथा भारतीय आध्यात्मिक साधना के तत्वों का रूप इन साधकों में मिलता है। वास्तव में इन साधकों का स्वरूप ही दोनों के समन्वय से उभर कर सामने आता है।

इनकी नायिकाओं में ईश्वरीय सत्व तथा सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। ईश्वरीय सौन्दर्य की सृष्टि नायिका है, जिसके सौन्दर्य से प्रभावित होकर ही साधक अपनी साधना आरम्भ कर देता है। सभी नायक नायिका रूपी नूर के प्रति ही दीवाने होकर विरागी हो जाते हैं। केवल 'युसुफ जुलेखा' का नायक ही इसका अपवाद प्रतीत होता है क्योंकि वह 'हक' का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया गया है। नायक का सांसारिकता से मुख मोड़ लेना, पारिवारिक सम्बन्धों को तोड़ देना, सम्बन्धियों के समझाने पर भी उनकी बात न मानना, नायिका की ही रट लगाना, सिंहलगढ़ की ओर योगी होकर निकल पड़ना तथा नायिका की प्राप्ति के लिए जान लगा देना प्रदर्शित किया गया है।

बौद्धधर्म के पतन के पश्चात सिद्धों तथा नाथों का सिंहलगढ़ तीर्थ सा बन गया था।[1] दूसरी ओर सिंहलगढ़ की यात्रा भारतीय लोक कथाओं में भी बहुत आती है। समुद्र-यात्रा तथा सिंहल द्वीप की सुन्दरी तथा धन को प्राप्त करना—यह कथांश प्राचीन साहित्य में भी उपलब्ध होता है। संस्कृत नाटिका 'रत्नावली' में रत्नावली[2] भी सिंहल की ही राजकुमारी कही गयी है। प्राकृत में कौतूहल लिखित लीलावती कथा[3]

---

१ डा० हरिवंश कोछड़—अपभ्रंश साहित्य, पृ० ३६४

२ भारतेन्दु—रत्नावली-नाटिका, पृ० ४

३ डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा सम्पादित भारतीय विद्याभवन १९४९ बम्बई से प्रकाशित लीलावती कथा।

में लीलावती भी सिंहल की ही राजकुमारी है। अपभ्रंश में लिखित धनपाल कृत 'भविस्सत कहा'[1] में समुद्र यात्रा का वर्णन है। करकंडु चरिउ में करकंडु[2] का सिंहल जाना तथा रति वेग से विवाह करना भी वर्णित है। 'जिनदत्त चरिउ' में भी नायक सिंहल की यात्रा करता है। जायसी के 'पदमावत' का नायक भी जोगी होकर 'सिंहलगढ़' की यात्रा करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'सिंहलगढ़' की यात्रा का कथानक रूढ़ि ही माना है। उनका कहना है कि वहाँ के लोग काले होते हैं तथा वहाँ पद्मिनी नायिकाओं के लिए नायक की यात्रा लोक कथा से ही सम्बन्धित जान पड़ती है।[3]

निष्कर्ष

इस प्रकार हिन्दी प्रेमाख्यानककाव्यों में वर्णित नायकों का स्वरूप अभारतीय तथा भारतीय तत्त्वों से बना है। फारसी पद्धति की प्रेम-साधना अध्यात्म साधना तथा भारतीय बौद्ध, योगाचार, नाथ-गाथात्मक, सिद्ध, नाथ, अपभ्रंश के चरित काव्यों आदि अनेक प्रभावों का ग्रहण कर उनका व्यक्तित्व निर्माण किया गया है। योग साधना के कारण वे भारतीयता में रम गये हैं तथा ये साधक नायक, विदेशीपन की भावना न जगा कर भारतीय नायकों की ही भावना जगाते हैं। नायकों के व्यक्तित्व निर्माण में उदारता का परिचय देने के कारण ही सूफी प्रेमाख्यानक काव्य भारतीय जनता में इतनी ख्याति प्राप्त कर सका तथा जन मानस का रमाने की शक्ति उसमें उत्पन्न हुई।

---

१ दे० दूसरा अध्याय, पृ० ६४
२ दे० सातवाँ अध्याय पृ० १८१
३ जायसी ग्रन्थावली पृ० ५२६

द्वितीय खण्ड

मध्ययुगीन सूफी प्रेमाख्यानक काव्य

हिन्दी के सूफी कविया ने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम की चर्चा की तथा, हिन्दुओं के घरो की प्रेम कहानियो को हिन्दुओं की भाषा म कहा तथा अपने सिद्धान्त का प्रचार किया। मसनवीशैली म लिखे गये इन काव्यो म नायक, कथा आदि सभी दृष्टि से भारतीय अभारतीय तत्वों का सामजस्य हो गया है। इन काव्या म पैगम्बर की वन्दना, खुदा की वन्दना, शाह वक्त की प्रशसा आदि को कथारम्भ म अपनाया गया। रूपकात्मकपद्धति से आध्यात्मिक धरातल पर एकेश्वरवाद का प्रचार है।

इस धारा म सवप्रथम नाम मुल्ला दाऊद का 'चन्दायन' या 'चन्दावत' कहा जाता है लेकिन यह ग्रन्थ अधूरा है। परशुराम चतुर्वेदी ने इस धारा का सवप्रथम ग्रथ शेख रिजकल्ला मुश्ताकी रचित प्रमवन जाव निरजन[1] (स० १५४६) को माना है। जायसी ने 'पदमावत' म स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती, प्रेमावती तथा उपा अनिरुद्ध नामक प्रेमकाव्यो का सकेत दिया है।[2] इनम स्वप्नावती मुग्धावती तथा प्रेमावती आज भी अप्राप्य हैं। मझन कृत 'मधुमालती'[3] प्राप्त है जिसे डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्रबल प्रेम का खण्ड-काव्य माना है। कुतुबन की 'मृगावती' की खण्डित प्रति उपलब्ध हुई है। इसम चन्द्रगिरि के राजा गणपति तथा कचननगर की कुमारी मृगावती का प्रेम-वणन है।

इस परम्परा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रथ जायसी का 'पदमावत' है। सूफी काव्य-परम्परा म केवल इसे ही विद्वान प्रेममूलक महाकाव्य स्वीकार करते हैं। पदमावत की रचना के आसपास ही मझन की 'मधुमालती' चतुर्भुज दास की 'मधुमालती' सदयवत्ससावलिगा' आदि को भी लिखा गया। 'ढोला मारु रा दूहा' तथा 'छिताई वार्ता' पदमावत के पूर्व ही लिखे जा चुके थे।

---

१ सूफी काव्य सग्रह पृ० ६३
२ जायसी ग्रन्थावली पृ० १००
३ मधुमालती, पृ० १० (भूमिका भाग)
४ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४०६

स० १६७२ म रचित उसमान की चित्रावली एक सरस रचना है। इस काव्य म चित्र दशन द्वारा नपाल के राजकुमार सुजा तथा रूपनगर की राजकुमारी चित्रावती का प्रेम वर्णित है। नायक कौलावती नामक सुन्दरी से विवाहित होने हुए भी अपार प्रेम कष्टों को चित्रावती के लिए सहता है। कवि न्यामत क प्रेमाख्यान भावसनि, कनकावती (१६७५) कामलता (१६७८) रूप मजरी (१६८५) पुहुपवरिपा (१६८५) रतनमजरी (१६८६) मधुकरमालति रतनावति, बुद्धिसागर लला मजनू कामावती पीतमदास च द्रसेन शीलनिधि छीता (१६६४)तथा कमलावती प्रसिद्ध हैं। सभी सूफी सिद्धाता म जकडी सामान्य कोटि की रचनाए हैं।[1] इस काल मे शेख नबी क 'ज्ञान-द्वीप' (स० १६७६) का अपना विशिष्ट स्थान है। इसम नमिसार क राजकुमार ज्ञानद्वीप तथा विद्यानगर की राजकुमारी देवजानी की प्रेम-कथा अपार व्यथा क साथ वर्णित है। नायक हठ-योगी जोगी हो भटकता तथा सिद्धि प्राप्त करता है। 'पद्मावत का काफी अनुकरण इसमे किया गया है। सेवक के जगनामा म सूफी सिद्धान्त का प्रकाशन मात्र है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण कृति नही है।

भक्ति-काल म आरम्भ हुई सूफीकाव्य परम्परा रीतिकाल म भी जीवित रही। अनेक कृतिया के सजन कवि जान की उनहत्तर रचनाओ का सग्रह हिन्दुस्तानी एकादमी प्रयाग म है।[2] कवि भक्ति तथा रीतिकाल दोनो का कवि है इसकी 'नलदमयन्ती प्रसिद्ध रचना है। यह ब्रजभाषा म लिखित प्रेम कहानी है। औरग जेब के काल म कवि ने पेमपरगास नामक प्रेमाख्यान लिखा। हुसेन अली न पुहुपावती काव्य की रचना की। इसम काशी के मानिक चन्द रूपनगर की राज कुमारी पुहुपावती के प्रेम की कथा है। स० १७९३ म कासिम शाह ने एक सुदर काव्य हसजवाहिर' नाम से लिखा। इसम राजकुमार हस तथा राजकुमारी जवाहर की कल्पित कथा है। यह भी रूपकात्मक काव्य है तथा पदमावत का अनुकरण है। नूर मुहम्मद नामक कवि ने इन्द्रावती' (स०१८०१) तथा अनुरागबासुरी' नामक दो प्रेम-काव्यो का सजन किया। इन्द्रावती म कालिजर के राजकुमार तथा आगमपुर की राजकुमारी इन्द्रावती के प्रेम का वणन है। यह भी घोर रूपकात्मककाव्य है तथा इस्लामी प्रचार का माध्यम है। सूफी कवियो के उदार दृष्टिकोण का इसम पूर्ण लोप है। शेख निसार न कुरान शरीफ की एक कथा 'युसुफ जुलेखा के आधार पर एक काव्य स० १८४७ मे युसुफ-जुलेखा लिखा। इसम नबी याकूब के पुत्र युसुफ तथा तमूर की कन्या जुलेखा के प्रेम का वणन है। यह भी सूफी सिद्धाता का प्रचार मात्र ही है।

---

१ जायसी परवर्ती सूफी कवि और काव्य, पृ० ३३० ३३५

२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, पृ० १४, अक १ स० २००६, वप ५६

मध्यकालीन इन समस्त प्रेमाख्याना म जायसी का 'पदमावत' ही महाकाव्य पद का अधिकारी ठहराया जाता है। काव्य का नायक रत्नसेन भारतीय तथा अभारतीय तत्वो से प्रेम का महान् आदश स्थापित करता है। वह महान आदशप्रेमी है। 'पद्मावत' म सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो की सम्पूण उपलब्धियो का विकास मिलता है। अन्य सभी सूफी-काव्यो म बिखरी विशेषताओ का, इस काव्य म एक स्थान पर देख सकते हैं। यह काव्य इतिहास तथा कल्पना से बना है। इसका नायक रत्नसेन काल्पनिक तथा ऐतिहासिक नायक है। इस काव्य का पूर्वार्द्ध काल्पनिक तथा उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। इस महाकाव्य के नायक पर हम अगले पृष्ठो मे विस्तार से विचार करेंगे।

पद्मावत का महाकाव्यत्व

प्रेममार्गीशाखा के प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी के प्रख्यात ग्रन्थ 'पद्मावत' को इस शाखा का सर्वोत्तम ग्रन्थ माना जाता है। शुक्लजी के शब्दो म "पदमावत हिंदी के सर्वोत्तम प्रबन्धकाव्यो म है।" प्रबन्धकाव्य म मानवीय जीवन का पूर्ण उद्देश्य होता है। ' उसम कथानक की अटूट शृखला रसात्मकता, सशक्त भावाभिव्यजना होनी ही चाहिए। 'पद्मावत प्रेम का विस्तार जीवन व्यापी है कथा प्रसगो की ममस्पर्शिता अद्भुत है। अत प्रबन्ध कल्पना म यह कृति बेजोड है। यद्यपि शुक्लजी ने प्रबन्धकाव्य ' मानकर भी इसे महाकाव्य नही कहा है। तथापि परवर्ती विद्वानो म जिनम आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा आदि न इसके महाकाव्यत्व पर प्रकाश डाला है। यहा महाकाव्य की पूव निधारित कसौटी मे इसके महाकाव्यत्व पर विचार करेंगे।

व्यापक परिधियुक्त कथानक

मानव-जीवन की सूक्ष्मवृत्तिया चेष्टाओ तथा काय व्यापारो को इस काव्य म स्थान मिला है। महाकाव्य की पद्धति के अनुकूल यह लोकप्रख्यात कथानक का आधार बना कर लिखा गया है जिसका पूर्वार्द्ध कल्पित तथा उत्तरार्द्ध एतिहासिक है। इस अर्द्ध एतिहासिक काव्य म प्रबन्ध वक्रता उत्पाद्यलावण्य का कथा गठन मे विशेष महत्त्व है। जिसम नर-नारी की सनातन कथा को अपनाया गया है। इसम नायक रत्नसेन तथा नायिका पदमावती की जन्म स लेकर मृत्यु पयन्त तक की कथा है। जीवन के उतार चढाव को लेकर जायसी ने इस कथानक को प्राणवान बनाया है। नायक सघष म ही जीता है फूलता फलता है। इस जीवन-व्यापी सघष-साधना के

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली की भूमिका, पृ० ६८

कारण कथानक म यथाथ बोध तथा जीवन-बोध को स्थान मिला है। जीवन का रागा त्मक बोध काव्य का महान तत्व है और रागात्मक बोध को ही इस प्रेम कहानी म व्यक्त किया है। 'पद्मावत म एक नही अनक ऐसे स्थल हैं "जो मनुष्य की रागा त्मिका प्रकृति का उन्बाधन कर सकत हैं उसके हृदय को भाव मग्न कर सकते हैं।" अत प्रेम की जीवन्त ज्योति स जग मग यह कथानक, भाव बोध के कारण अपनी व्यापक परिधि रखता है।

पदमावत का कथानक खण्डो (सर्गों) म परिबद्ध न होन पर भी दुबल नही है। हाँ, जायसी की घटना विस्तार प्रवत्ति खटकती है। कही कही खण्डो के अति लघु हो जाने से सन्तुलन बिगडा है। उदाहरणाथ रत्नसन सतति खण्ड रत्नसेन साथी खण्ड अत्यन्त लघु हो गए हैं। नागमती वियोग खण्ड म आकर कथा का दम फूल गया है, लकिन रत्नसन तथा पदमावती की आधिकारिक कथा के साथ, राघव चेतन का वृत्तान्त हीरामन सुए का वृत्तान्त आदि प्रासगिक कथाओ म सयोजित प्रवाह भी है तथा प्रभाव भी। पदमावत' के कथानक मे प्राचीनो के द्वारा वर्णित पचसधिया, अथ प्रकृतियाँ तथा कायावस्थाए नही मिलती हैं। इसका कारण स्पष्ट है जायसी लौकिक कथा के माध्यम स आध्यात्मिकप्रम की सफल यजना करना चाहत थ। अत महा काव्य की रूढ़िया की भवर मे वे फसे नही सहज प्रवाह म कथात्मक सरसता लाने म वे पूर्ण समथ रहे हैं। 'जो यह पढ कहानी हम सवरे दुइ बोल ' म ही उनकी भावा विति निहित है। घटना प्रवाह तथा चमत्कारी स्थलो पर भी 'पदमावत म कथान्विति पाई जाती है।

'पदमावत' भारतीय आचार्यों की सगबद्ध पद्धति का काव्य नही है, यह फार सिया की खण्डबद्ध पद्धति पर लिखा गया (५८) खण्डो का काव्य है। खण्ड का विभाजन करत समय कवि ने घटनात्मक-पद्धति के अनुकूल खण्डों का नामकरण किया है। जसे जन्म खण्ड, मानस रोदक खण्ड आदि।

गरिमा से युक्त नायक

भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों क मत से नायक उच्च कुलीन, युवा तथा महान व्यक्ति होना चाहिए। पदमावत नायिका प्रधान महाकाव्य है किन्तु नायक रत्नसन भी राजपिवार का धीरोदात्त नायक है। धीरोदात्त नायक की जिस आदश कल्पना का विश्वनाथ तथा वाग्भट्ट द्वितीय ने प्रस्तुत किया है, वह यहाँ नही है।

---

१ जायसी ग्रन्थावली, भूमिका पृ० ६८

, यह प्रेम-पन्थ का अडिग नायक है। विपत्तियों के तूफानों से गुजरता है। पद्मावती के लिए राज्य रानी सब कुछ छोड़ सकता है। अतः महाकाव्योचित गरिमा को यह नायक सामने लाता है। हाँ, लौकिक धरातल पर विचार करने पर यह नायक रूप लोभी तथा कामुक ठहरता है, किन्तु जायसी ने प्रतीकात्मक रूप में रत्नसेन को 'प्रेमपन्थ का दीवाना' चित्रित किया है, इस दृष्टि से यह अपराजेय नायक है। कथा के समस्त कलेवर में नायक की सत्ता महत्ता है। आदर्श प्रेमी की दृष्टि से जायसी का नायक उत्तम कोटि का व्यक्ति है।

रसात्मकता

काव्य का प्राणतत्व या आत्मतत्व रस है। आचार्यों के मत से शृंगार, वीर शान्त में से कोई एक अंगी तथा शेष अंगरसों की महाकाव्य में योजना हो। पद्मावत में जीवन के मूल भाव 'रति' को विस्तार दिया गया है। शुक्लजी पद्मावत का अंगी रस शृंगार मानते हैं।[1] किन्तु डा० शम्भूनाथ सिंह उसमें रहस्यवाद की दृष्टि से शृंगार का नहीं शान्त रस को ही प्रधान मानना पड़ेगा। + + + जिस तरह सूर, मीरा, कबीर के शृंगारिक वर्णन शान्त रस के अन्तर्गत माने जाते हैं, उसी प्रकार पद्मावत का समान प्रभाव शान्त रस समन्वित है शृंगार रस वाला नहीं।'[2] अतः लौकिक कथा की दृष्टि से देखने पर पद्मावत में विप्रलम्भ शृंगार अंगी है और आध्यात्मिक अर्थ की दृष्टि से वह शान्त रस प्रधान काव्य है। जायसी ने शान्त, करुणा, वीर तथा शृंगार रसों की व्यंजना की है। शृंगार के संयोग तथा वियोग पक्षों में से उन्हें वियोग के मर्मस्पर्शी स्थलों को उभारने में सफलता मिली है। 'नागमती का वियोग' हिन्दी जगत में प्रख्यात है। कोयल का कुहुक कुहुककर रोना, पक्षी का जल जाना, वृक्ष से पत्तों का झड़ जाना विरह की बात के कारण ही है। अलाउद्दीन के साथ गोरा बादल के युद्ध में वीर रस का परिपाक है। फिर भी पद्मावत में शृंगार को अंगी रस न मान कर शान्त को ही अंगी रस मानना चाहिए—

'हार उठाइ लीन्ह एक मूठी। दीन्ह उडाइ पिरथिमी झूठी॥'[3]

उद्देश्य की अडिग ज्योति

महाकाव्य का उद्देश्य ऐसा जाज्वल्यमान ज्योति वाला हो जो युगों युगों के मानव को नवजीवन की प्रेरणा दे सके अर्थात् प्रेरणात्मक उद्देश्य महाकाव्यों में होना ही चाहिए। जायसी ने प्रेम को व्यष्टि से समष्टि तक फैलाया है। अतः इसके उद्देश्य में

१ जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ६८
२ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ५७७
३ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३००

जीवन के व्यापक गम्भार सूक्ष्म तथा दश, जाति या विश्व मानवता की अनक पीढियो का जीवन सत्य प्रस्तुत किया गया है। कवि आध्यात्मिक सत्यो को लौकिक कथा के माध्यम से प्रस्तुत करता है। डा० शम्भूनाथ सिंह ने ठीक कहा है कि 'अत उसका उद्देश्य व्यापक और उदार मानवता का प्रसार और मानव हृदय का विस्तार और परिष्कार करना है।'[१] यह कहना अधिक सगत है कि प्रेम के अमृत स सघष के विष को समाप्त करने की शक्ति तथा पारलौकिक जीवन का अतिम सिद्धि प्राप्त करना हा इस आध्यात्मिक का य का उद्देश्य है।

अभिव्यजना मे असीम शक्ति

महाकाव्य का अभिव्यजना शिल्प अत्यधिक समय होना चाहिए। जायसा न फारसी की मसनवी पद्धति पर इस का य को लिखा है। जायसी अवधी के दक्ष कवि थे। लोककथा को लोकवाणी म कहना प्रभावशाली बन गया है। देशज, तदभव, ठेठ भाषा के घुल मिल शब्द लोकोक्तिया तथा मुहावरा के कारण अभि यजना म सहज अभिव्यक्ति की कला फूट पडी है। अभि यक्ति साफ तथा श द चयन बजाड है। इनकी अभिव्यजना म ताजे गुड की मिठास तथा सुग ध है। वस्तु वणन, व्याह, पकवान-वणन, रूप वणन कथा-वणन, अतिप्राकृत कहानिया क वणन म यह अभि यक्ति फूली नही है, एकदम कसावदार है। अलकारो म भाव क प्राणो को प्राकृतिक शक्ति दने की कला है। प्रेममार्गी शाखा म अनुभूति तथा अभि यक्ति दानो पक्षा म जायसी अपने ढग के टकनीशियन हैं। मधुर तथा विराट शला के दाना रूप बड प्रभावशाली तथा गत्यात्मक है। प्रात काल की लालिमा म भरा हुआ प्रकाश जो शोभा पाता है वही शाभा जायसा की कथा म उनका अभि यजना शिल्प पाता है।

'पद्मावत का विशालकाय आकार तथा वणन विस्तार भी उदात्त काव्यत्व के कारण सुरुचिपूण है। कवि ने लौकिक कथा म साकेतिक पद्धति का अपनाकर भावतत्त्व का सौ दय विस्तार किया है। भावतत्व का यह सौ दय विस्तार हम चाह श दो द्वारा अभि यक्त न कर सकें, लकिन पद्मावत पढते समय उसका अनुभव अवश्य करते हैं। अनुभूति की सम्प्रषणशालता पद्मावत के काव्यत्व का निखारती है। चिन्मय बिम्बा को उभारने की जायसी की आदत है, पद्मावती' क रूप वणन में का सिगार आहि का अनूठा महत्त्व है। दाशनिक कठारता को का य का सहजता में ढाल देना कवि को आता है। प्रेम पहाड़ गगन त ऊँचा क प्रतिपादन में जायसी की कला बडा जीव त है। आध्यात्मिक अनुभूतिया का ममस्पर्शी चित्रण विचारो की उदारता तथा जावन व सास्कृतिक रूप का लाने के कारण 'पद्मावत का काव्यत्व महाकाव्योचित है।

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ४७७

अत 'पद्मावत' में एक सफल महाकाव्य के सभी तत्व अनायास ही उपलब्ध है। हाँ, भारतीय आचार्यों की परिगणना के अनुसार चाहे उसमें कुछ दोष हो लेकिन पाश्चात्य दृष्टि से समन्वय तथा फारसी की महाकाव्यात्मक पद्धति (मसनवी) को ध्यान में रखने से इस महाकाव्य कहने में कोई सकोच नही होगा। जीवन की वृत्ति 'काम' मगल मडित होकर यहाँ विराजमान है। जीवन एक भ्रमयुक्त सपना है, इसमें इस शाश्वत सत्य की अभिव्यक्ति भी है। कथात्मक अन्विति, भावान्विति जीवन बोध, नवीन मानवमूल्य, काव्यत्व, उद्देश्य की गरिमा सभी इस बात के प्रमाण है कि पद्मावत हिंदी जगत का अमर महाकाव्य है।

'पद्मावत' का नायक

कथा का सूत्रधार

महाकाव्य का नायक कथा का मेरुदण्ड होता है। नायक के महत्कार्यों का प्रतिफलन ही कथा है। कथा का समस्त घटना चक्र नायक के चारो ओर ही घूमता है। देश विदेश के सभी आचार्य प्राय इस मत से सहमत हैं कि महाकाव्य का नेता ही कथा मे भव्यता उदात्तता, जीवन्त प्राणवत्ता तथा महत्ता को जन्म देता है। इस दृष्टि से 'पद्मावत' की समस्त कथा रत्नसेन एव पद्मावती पर आधारित है। सूफी काव्य मे नायिका को शाश्वत सौन्दर्य तथा परम-सत्ता का प्रतिनिधि माना जाता है उस दृष्टि से कवि ने इस काव्य को नायिका प्रधान बना दिया है, तथा कथा का नामकरण भी 'नायिका' के नाम पर ही किया है। वस भी सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो म 'नायिका के नाम पर ही काव्य के नामकरण की परम्परा—मृगावती, मधुमालती चित्रावली आदि से प्रकट होती है। 'फारसी' म नायिका का नाम नायक स पहिले ही आता है, जसे शीरी फरिहाद, लला मजनू आदि। इस नामकरण का कारण 'नायिका की दिव्य सत्ता के ही कारण है। परतु इस दिव्य सत्ता का आर आकृष्ट होने वाला साधक या नायक ही है।

'पदमावत' की कथा मात्र रत्नसेन पर ही नही टिकी है उसम पद्मावती की प्रधानता है। लकिन पद्मावती तथा नागमती दोनो का आधार रत्नसन ही है। वह दोनो छोरों को सम्हाले रहता है। नागमती धरती का आदश है तथा पद्मावती, आध्यात्म लोक का आदर्श। रत्नसेन दोनो को ही अत समय तक अपनाता है। 'पद्मवती का प्राप्त करने के लिए रत्नसेन प्रत्यक कठिनाई को सहज बनाता रहता है। विपत्ति के भीषण प्रहारो से टकराने वाला व्यक्ति रत्नसेन ही है। समस्त कथा को गति देने का काय वही करता है।

इस प्रेम-कथा म राजकुमार तथा राजकुमारी का प्रेम साधारण रूप मे नही

है, असाधारण है। कवि कथा से प्रेम साधना का सन्दर्भ जोड़ देता है तथा 'इश्क मजाजी' और 'इश्क हकीकी' दोनों को साथ लेकर चलने के कारण कथा सूफी सिद्धान्तों का स्पष्ट करने का माध्यम बन जाती है। चित्तौड़ के राजा चित्रसेन के पुत्र रत्नसेन का जन्म ही प्रेम पथ का धीर साधक बनने के लिए होता है। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी तथा 'गुरु सुआ' हीरामन के द्वारा पद्मावती के 'पारस रूप' का अद्भुत वर्णन सुनकर राजा के मन में 'प्रेम पीर' उठने लगती है, इस प्रेम दग्ध स्थल से ही कथा का आरम्भ हो जाता है।

कथात्मक विकास की सरणियां

कवि ने इस प्रेम कथा का अनेक अद्भुत मोड़ों, लोक कथाओं के तत्त्वों आध्यात्मिक संकेतों, प्रतीकों द्वारा व्यंजित किया है। सूफी साधक जैसे अनेक विघ्न बाधाओं से टकराते जूझते प्राणों का मोह त्याग कर एकनिष्ठता के साथ परम सत्ता की ओर लगातार बढ़ते हैं वैसे ही जायसी ने रत्नसेन को चित्रित किया है। विघ्न-बाधाओं को प्रेम पथ के पुष्प समझ कर उन पर चलने वाला असाधारण जीवट का पात्र रत्नसेन ही है। वास्तव में विघ्नों के दुर्गम पथों को पार करने की कथा ही 'पदमावत' है। सभी ओर से मुंह मोड़ कर, परमात्मा रूपी प्रियतमा में चित्त को दृढ़ता से लगा देने का भाव रत्नसेन में आरम्भ से अन्त तक मिलता है। राज्य का मोह नहीं माता, पत्नी की चिन्ता नहीं मर्यादा, कुटुम्बियों के समझाने का असर नहीं हीरामन द्वारा प्रेम पथ को काल पथ कहने पर भी प्राणों की परवाह नहीं जोगी बनकर कथा पहिनने में हिचक नहीं पार्वती द्वारा अप्सरा बनकर परीक्षा लेने पर भी असफल नहीं सात समुद्रों की भयंकर तरंगों से मन में कोई कम्पन नहीं, सूली पर चढ़ने में भी कोई हर्ज नहीं। केवल पदमावती के नाम की रटन में ही जीवन की सार्थकता है। अपनी धुन में रमने का पूर्ण भाव है।

पद्मावत की कथा में रत्नसेन की लगन ही निराली है। 'फारसी' कथा में पात्र वस्त्र फाड़ता, पहाड़ खोदता प्रेम विरह में जल जल कर मरता दिखाया गया है। जायसी ने रत्नसेन को मुसीबतों के कठोर से-कठोर प्रतिघात भी सहते दिखाया है तथा प्रिया से रमण करते हुए भी प्रदर्शित किया है। वियोग याग तथा भोग फिर भोग से चिर वियोग की ओर चित्रित किया है। फारसी तथा हिन्दी कथानकों में पर्याप्त अन्तर पड़ गया है।

जायसी ने पदमावती का रूप-वर्णन करते समय विश्व शोभा को एक सार कर दिया है फिर हीरामन द्वारा राजा के समक्ष उसके रूप का वर्णन बड़ी विशदता से है। पद्मावती के नख शिख-वर्णन में कथाकार थकना जानता ही नहीं। ऐसा दिव्य रूपों से रत्नसेन प्रभावित होता है तथा उसे प्राप्त करने के लिए निकल

पडता है। समुद्रो को पार करता है, गढ पर चढाई करता है, बन्दी बनाया जाता है शूली पर चढाने की तयारी होती है, दिव्य शक्तिया सहायता करती हैं, हीरामन भी सहायता करता है अन्त मे विवाह हो जाता है। कथा मे रत्नसेन का भोग, एक पक्षी द्वारा अपनी पूर्वपत्नी की विरह कथा सुनकर वापस होना, मार्ग में जहाज डूबना, प्रेम परीक्षा होना चित्तौड आना आदि कथा के भाग हैं।

रत्नसेन यहा भी सुख स रह नही पाता। अचानक राघवचेतन को देश निकाला होना है। राघव अलाउद्दीन को पदमावती के रूप-वर्णन से वासना विकल पशु-सा बना देता है। अलाउद्दीन का पद्मावती को प्राप्त करने को आक्रमण, राजा द्वारा युद्ध, दोना म सलाह, अलाउद्दीन द्वारा कूटनीति की चाल तथा राजा पुन बन्दी हो जाता है। जेल के अपार कष्ट झेलता है। 'पदमावती' गोरा-बादल की सहायता से उसे मुक्त करती है, तथा देवपाल नामक राजा की काली करतूत बताती है। रत्नसेन-देवपाल युद्ध तथा युद्ध म देवपाल का वध, आहत होने से स्वय की मृत्यु तथा पत्निया का सती हो जाना। सम्पूर्ण कथा म रत्नसेन ही जूझता रहा है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त वह कथा को आगे बढाता रहा है। उसके ही प्रयासो से कथा बनी है और उसकी सास रुकते ही कवि ने कथा को समाप्त कर दिया है। ऐसा लगता है कि जायसी ने कथा के इस प्राणवान सूत्रधार का ही उद्घाटन किया है जिसम सभी पात्र आते रहे हैं। गोरा बादल कथा के बीच मे आते हैं राघव चेतन तथा अलाउद्दीन भी अपनी दुष्टता का आरम्भ कथा के मध्य ही करते हैं। कथा को आरम्भ स अन्त तक ले जाने वाला रत्नसेन ही है। अत कथा का प्राणवान सूत्रधार होने के कारण उसे नायक कहना उचित ही है।

महत्त्वपूर्ण व्यक्ति

महाकाव्य का नायक शाश्वत महत्त्व का व्यक्ति होना चाहिए। इस कसौटी पर रत्नसेन का कसने से स्पष्ट हो जाता है, प्रेम-योग की साधना म वह अमर चरित्र चित्रित किया गया है। इतिहास मे चित्तौड का राजा रत्नसेन बडा ही सामान्य चरित्र है लेकिन जायसी ने अपनी कल्पना के द्वारा उसे 'प्रेम-पन्थ' का अपराजेय योद्धा बना दिया है। सूफिया के मत से परमात्मा का कोई रूप है, तो वह प्रेम ही है।[1] गजाला ने सम्पूर्ण सौन्दर्य सत्ता ईश्वर को ही कहा है। इस विराट सौन्दर्य की ओर झुकने वाला साधक स्वय ही अमर बन जाता है। जायसी ने रत्नसेन को प्रेम मार्ग की चार मजिलें तथा सप्त सोपानो पर सफलता से गुजरते दिखाया है।[2] दिव्य प्रेम म मस्ताना बनाकर उसमे दिव्यता का फूक दिया है। उसके आदर्श प्रेम से शिव-

१ ए० एम० ए० शास्त्री—आउट लाइन्स आव इस्लामिक कल्चर, पृ० ३१

२ मार्गरेट स्मिथ—अलगजाली दि मिस्टिक, पृ० १०९

पावती द्रवित हो गय हैं, तथा कभी कोढी तथा कभी भाट बन कर उनको राह दिखाते है। हीरामन राजा के प्रेम मम को समझ कर उस राह दिखाता है। मौत को भी प्रेम से राजा जीत लेता है। प्रेम-लोक का यह यात्री भी डा० माताप्रसाद गुप्त के मत से धरती का सर्वाधिक निमल रत्न' है—

सूर परससा भएउ किरीरा। किरिन जामि उपजा नग हीरा ॥
तहि ते अधिक पदारथ करा। रतनजोक उपजा निरमरा ॥[1]

ससार म उसकी बराबरी कोई नही कर सकता। राजा अपने प्राणा की बाजी लगाकर पद्मावती को प्राप्त करता है तथा पावती और लक्ष्मी द्वारा परीक्षण लिए जान पर सफल हो जाता है। पावती परीक्षा लेने के बाद कहती है—

निस्च यह ओहि कारन तया। परिमल प्रेम न आछ दया।
निस्च पेम पीर यह जागा। कसत कसौटी कचन लागा ॥[2]

जायसी ने मनुष्य म प्रेम को ही वैकुण्ठी तत्त्व स्वीकार किया है नही ता मुट्ठी भर राख का मानव क्या था ?[3] अत प्रेम की इस शाश्वत उपासना के कारण ही रत्नसेन शाश्वत महत्त्व का व्यक्ति सिद्ध होता है। जिस ग्रथ म भारतीय सास्कृतिक चेतना के नायक राम तथा कृष्ण को शाश्वत महत्त्व वाला व्यक्ति कहा जाता है उस ग्रथ म रत्नसेन का शाश्वत महत्त्व का व्यक्ति मानने का तात्पय नही है क्योकि वहा कवियों की दष्टि ही और थी। तुलसी के राम आदर्शों की प्रतिष्ठा के कारण अमर नायक हैं लेकिन जायसी का रत्नसेन प्रेम साधना का सिद्ध साधक होने के कारण अमर व्यक्ति है। वास्तव म रत्नसन के माध्यम से जायसी न प्रेम क अमरत्व को ही प्रतिष्ठित किया है। प्रेम के इस अमरत्व की प्रतिष्ठा करने वाला आज भी अमर है।

अलौकिक सौन्दय की अनुभूति से नायक मे उद्वेग

शाश्वत प्रम और सौन्दय का कोश तो ईश्वर हा है। जायसा न परमब्रह्म के उसी रूप का हुस्न और नूर' का पद्मावता म एकत्रित किया है। जन्म स ही वह अद्भुत और अलौकिक ज्याति इस प्रकार है—

प्रथम सा जाति गगन निरमई। पुनि सा पिता माथ मनि भई ॥
पुनि वह जाति मातु घट आई। तेहा ओदर आदर बहु पाई ॥
जस अवधान पूर होइ मासू। दिनदिन हिये होई परगासू ॥
जस अचल मह छिप न दाया। तस उजियार दिखाव हीया ॥

---

१ पदमावत—दो० ५२ (स० माताप्रसाद गुप्त)
२ वही, दो० २११
३ वही, दो० १६६

सात मदिर सवारहि औ चन्दन सब लीप ।
दिया जो मनि सिवलोक महॅ उपजा सिंघल दीप ॥[1]

शिवलोक की इस मणि का अवतार जायसी ने सिंहल द्वीप म दिखाया है। जन्म से ही उसका प्रकाश सूर्य तथा चन्द्रमा से भी बढ़कर था ।

जानहु सुरुज किरिन हुति काढ़ी । सूरुज-कला घाटि, वह बाढ़ी ॥
मानिमि महॅ दिनकर परगासू । सब उजियार भएउ कविलासू ॥
इते रूप मूरति परगटी । पूनौ ससी छीन होइ घटी ॥
घटतहि घटत अमावस भई । दिन दुइ लाज गाडि मुइ गई ॥
पुनि जौं उठी दुइजि होइ नई । निह कलक ससि विधि निरमई ॥
पदुम गध बेधा जग बासा । भवर पतग भए चहु पासा ॥
अतें रूप भइ कन्या जेहि सरि पून न कोई ।
धनि सो दस रूपवता जहा जनम अस होई ॥[2]

उसने राजमहल को शिव लोक बना दिया । द्वितीया का चन्द्रमा उसके रूप से पराजित होकर छिपने लगा । उसकी कमल-गन्ध दसो दिशाओ म व्याप्त हो गई—

सूर परस सो भएउ किरीरा । किरिन जामि उपजा नभ हीरा ॥

\+ \+ \+ \+

रामा आइ अजोध्या उपन लछन बतीसो सग ।
रावन रूप सौं भूलिहि दीपक जस पतग ॥[3]

पद्मावती के बडे होने पर जड चेतन उसके रूप से विमोहित होने लगा । 'मान सरोवर' उसके रूप पर अपार मुग्ध है—

सरवर रूप विमोहा हिए हिलोर करेइ ।
पाय छुअइ मकु पावौं तेहि मिसु लहरैं देइ ॥[4]

मानसरोवर का जल उसके स्पर्श से सुगन्धित हो गया । वह शीतल हो गया तथा उसकी दाहक ऊष्मा समाप्त हो गयी । जिस जिसने पद्मावती के उस दिव्य रूप का पान किया उसम अद्भुत परिवर्तन हुए—

बिगसे कुमुद देखि ससि रेखा । भतहि ओप जहा जोइ देखा ॥
पावा रूप रूप जस चहा । ससि मुख जनु दरपन होइ रहा ॥

---

१ जायसी ग्रन्थावली, जन्म खण्ड, पृष्ठ १९
२ वही पृष्ठ १९
३ वही पृष्ठ १९ २०
४ वही, मानसरोदक खण्ड, पृष्ठ २४

नयन जो देखा कमल भा निरमल नीर सरीर ।
हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर ॥[1]

इस अपार रूप का नाम लेकर ही हीरामन नागमती को उसके परों की धूल कहता है । राजा के पूछने पर वह कहता है—

पद्मावति राजा के बारी । पदुम ग ध ससि बिधि औतारी ।
ससि मुख अग मलयगिरि रानी । कनक सुगन्ध दुआदस बानी ॥[2]

हीरामन राजा के समक्ष उसका रूप वर्णन करता हुआ थकता नहीं । उसके रूप का और कोई है ही नहीं—

उग्रत सूर जस देखिये चाद छप तेहि धूप ।
ऐसे सबै जाहि छपि, पद्मावती के रूप ॥[3]

यह अद्भुत रूप राजा के चित्त म चित्र की तरह चिपट जाता है । तीन लोक तथा चौदह लोकों का समस्त रहस्य उसे स्पष्ट हो गया तथा पद्मावती के लिए प्रेम नामक ओकार शब्द उसमे फूटने लगा । हीरामन वही पर राजा को 'प्रेम' का नाम लेकर बहकने से रोकता है तथा प्रेम पथ की कठिनाइयों को समझाता है—

पेम सुनत मन भूलु न राजा । कठिन पेम सिर देइ तो छाजा ॥
पेम फाद जो परा न छूटा । जाइ दीह बहु फाद न टूटा ॥[4]

लेकिन राजा 'दुइ जग तरा पेम जेइ खेला'[5] कह कर अपनी साधना का आरम्भ कर देता है । पद्मावती रत्नसेन के लिए सामान्य नारी नही है, वह उसम विराट सत्ता का दर्शन करता है । वह उसके रक्त की बूद बूद म रमी हुई है । रोम रोम म वही बसी हुई है । हाड हाड मे उसका शब्द है नस नस म उसकी ही ध्वनि है ।[6] इस ईश्वरीय ज्योति को प्राप्त करने के लिए रत्नसेन सब कुछ त्याग देता है तथा भक्त बन कर उसके ही नाम का जाप करता है । सूफी साधक परमात्मा के अनन्त सौन्दर्य की चर्चा करते हुए जगत म जड चेतन के रूप को उसी का रूप मानते हैं । जगत के दर्पण म उस अलौकिक सौन्दर्य की प्रतिच्छाया देखकर वह उस पर मुग्ध हो जाता है । पद्मावती का यह विराट सौन्दर्य ही नायक की प्रेरणा है । इस प्रेरणा से वशीभूत होकर ही वह मौत से टकराने को तयार है । अत (आत्मा) रत्नसेन उस

१ जायसी ग्रन्थावली—मानसरोदक खण्ड पृष्ठ २५
२ वही—राजा सुआ सवाद-खण्ड, पृष्ठ ३८
३ वही पृष्ठ ३९
४ वही, पृष्ठ ३९
५ वही, पृष्ठ ३९
६ डा० श्याममनोहर पाण्डेय—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृष्ठ २०१

अलौकिक (परमात्मा) पद्मावती से मिलन के लिए ही उद्वेग शील है। प्रेम सृष्टि का मूल है, इस भाव का वशिष्ट्य ही उसे अमरत्व की ओर ले जाता है।

प्रेम में उदात्त वृत्ति की पराकाष्ठा

रत्नसेन प्रेम का उदात्त रूप है। वसे सूफियो ने प्रेमवृत्ति का असीम विस्तार किया तथा प्रेम और ईश्वर को पर्यायवाची स्वीकार किया है। जायसी ने भी 'मानुस पम भएउ बकठी। नाहित काइ छार एक मूठी'[1] के प्रश्न को प्रेम की अमरता से पुष्ट किया है। प्रेम म विरह मिलन का सयोग अपूर्व है। रत्नसेन प्रेम-पथ को 'ब्रह्म-पथ' मानता है। वह प्रेम को सवस्व मानकर अपना भाव विस्तार करता है तथा प्रेम-लोक के लिए प्रेम-योग करता है। 'प्रेम दशा भाव-योग की दशा है इसी-लिए अपने प्रेम को व्यक्त करने या उसके आधार पर जगत के प्रति अपने जीवन के अनुराग को प्रदर्शित करन म हृदय को जो उल्लास मिलता है, वह दूसरी स्थिति मे नही।'[2] इस प्रकार प्रेम हृदय की विशदता को सामने लाता है। रत्नसेन प्रेम सागर का अमर 'मरजिया' है। यही कारण है कि वह पद्मावती के प्रेम-सागर म अपने को निमग्न कर लेता है। वह मात्र हमारे चित्त को आकर्षित ही नही करता, हमारे चित्त का उत्कष भी करता है।[3] प्रेम की इस ब्रह्ममय उत्कषता के कारण ही उसम लोको त्तर उदात्तता उत्पन्न हो गयी है। डा० ओमप्रकाश ने इसी कारण रत्नसेन को प्रेम-पगम्बर माना है। उनके शब्दो मे 'रत्नसेन पगम्बर का प्रतिनिधि सूफी गुरु (या स्वय पगम्बर है। सोलह सहस्र राजकुमार उसके अनुयायी हैं जो उसके रास्ते पर ईमान लाते हैं। समुद्र का किनारा ही इश्क का आरम्भ है माग के सात समुद्र नाना प्रकार की यातनाएं हैं। अन्त म सिंहल का सुख स्वग भाग है पद्मावती बीबी फातिमा जान पडती है, क्योकि उन्ही की दया स सब का उद्धार होता है तोते का वचन कुरान का उपदेश था।'[4] जायसी ने प्रेम को हल्के धरातल पर प्रस्तुत नही किया।

उनके प्रेम निरूपण मे सुख अल्प तथा दुःख की भरमार है। नायक की स्थान-स्थान पर परीक्षा है, कदम-कदम पर खाई है तथा मुसावता के हिमालय उसके सामने न जाने कितने खड हैं। उसे समुद्र पार करने हैं उनके भयकर जीवो से बचना है तथा माग की प्रत्येक बाधा का सामना भी करना है। प्रेम नायक का विलास नही बन सका है प्रेम नायक का जीवन है, उसके सघष की साधना है।

---

१ जायसी ग्रन्थावली—मडपगमन खण्ड, प० ७१
२ लक्ष्मीनारायण मिश्र 'सुधांशु'—जीवन के तत्व और काव्य सिद्धान्त।
३ 'साहित्य' (पत्रिका) १९५५, पष्ठ ९, ले० प्रो० जगदीश पाण्डेय।
४ डा० ओमप्रकाश—हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य, पृष्ठ ६०

उस परमरम्य निधि को प्राप्त करने के लिए वह अपने उदात्त प्रेम का परिचय देता है।

प्रेम मार्ग मे मृत्युञ्जयी

इस प्रेम पथ म वह मृत्युजया है। सूफियो की अपनी धारणा म 'प्रेम-पथ' 'मसूर-पथ' है। उसम पग पग पर कठिनाइयो का होना अपक्षित है। रूह जब तक अपना तादात्म्य (फना) नही कर लेनी है उमे अपार वेचनी रहती है। मजनू फरिहाद की यातनाएँ इसका उदाहरण हैं। 'पदमावत' का नायक भी मुसीबतो के पहाड से गुजरा है। गुरु सुआ उन कठिनाइयो का विस्तार से वणन करता है—

पम सुनत मन भूल न राजा। कठिन पम, सिर, सिरदइ जौ छाजा॥
पम फाद जा परा न छूटा। जीउ दीन्ह प फाद न टूटा॥[1]

'पदमावत म सुग्गा सौन्दय ब्रह्म पद्मावती के रूप का खुल कर वणन करता है। वह नागमती के सौन्दय को सराहन म समथ नही है, क्योकि उसने क्षितिज तलसार रूपा' पदमावती को देखा है। वह जब राजा का पदमावती के रूप ससार म अपने वणन द्वारा ल जाता है तो विस्मय, आश्चय और जिज्ञासा को ज म दता है। रूप-वणन करने से पूव ही वह का सिगार ओहि वरनौ राजा। ओहिक सिगार ओहिक को छाजा' कह कर अपनी वाणी की असमथता प्रकट करता है। रूप वणन करते समय वह थकता छकता नही नरतय म जीता है। राजा अपनी अन्त प्रेरणा से उस रूप का आत्म साक्षातकार करता है तथा उसके विरह की तडपन एव रटन मे ही आत्म लाभ करता है। उस परम सौन्दय शक्ति रूपा के लिए अपने को पूण समर्पित करना तथा अपने को तदाकार कर लना उसकी अकथ साधना का परिणाम है। सौन्दय जिस साधना की अपेक्षा करता है वह इस साधक म पर्याप्त है। यह प्रेमी वाचलता, वहक या दिखावे का मुखौटा नही लगाय है उसम प्रेम का अगाधारणत्व तथा 'दिव्यत्व' स्पष्ट झलकता है। इसी साधना म वह नाथपन्थी हठयागी बन गया है। 'इस साधना न हठयाग की अनेक क्रियाओ का प्रतीकात्मक वणन कवियो न किया है। अन्त मे साधक अपने लक्ष्य तक पहुँच कर अपने प्रिय अथवा उस सत्ता का साक्षात्कार कर लता है जिस के लिए वह असीम व्याकुलता लकर चला था।[2] अपना इस अटूट एव असीम लगन के कारण ही उसकी सौन्दर्यासक्ति, दिव्यासक्ति बन गई है और वह सच्चा सौन्दय-योगी सिद्ध हुआ है।

नायक मे सौन्दर्यासक्ति

रत्नसेन नायिका पदमावती म विराट सत्ता का सौन्दय प्राप्त करता है।

---

१ जायसी ग्रन्थावली—राजा सुआ सम्वाद खण्ड, पृ० ३९
२ ब्रजकिशोर मिश्र—अवध के प्रमुख कवि, प० ९५

यह सामान्य नारी नहीं है, उसमें अद्भुत तथा अलौकिक तत्त्वों की प्रधानता है। इस सौंदर्य-केन्द्र का आधार पद्मावती का रूप वासनात्मक नहीं है। नायक तो निमग्न मन से उधर उन्मुख होता है। उसकी प्रत्येक तड़पन में ईश्वर का स्मृति है तथा प्रत्येक प्रयास में उस अद्भुत स्वरूप को पाने का आग्रह है। उसका प्रयास स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर चलता है मन की निमग्नता ही उसका पाथेय है। जायसी ने शरीरासक्ति को प्रेम मार्ग का प्रथम कठिनता माना है। प्रेम का यह मार्ग दुर्गम तथा अतिशय ऊंचा है—

गगन दृष्टि सौं जाइ पहूँचा। प्रेम अदिस्टि गगन सौं ऊंचा॥
धुव तें ऊंच पेम धुव उवा। सिर द पाउ देइ सो छुवा॥
तुम राजा हो सुखिया करहु राज सुख भोग।
एहि रे पंथ सो पहुंच सहै जो दुक्ख बियोग॥[1]

यह प्रेम ही सब कुछ है लेकिन यह प्रेम सौंदर्य से ही जन्मता है। यह प्रेम सौन्दर्य साधक को साधना की उच्च भूमि पर पहुँचने का माध्यम है तथा इस प्रेम से लौकिक तथा अलौकिक सिद्धियों में सफलता तथा भुक्ति मुक्ति प्राप्त होती है। प्रेम ही पृथ्वीतल का सौंदर्य है। इस सौंदर्य के लिए जिसने अपना जीवन नहीं दिया उसका जीवन निष्फल है—

अलेहि पेम है कठिन दुहेला। दुइजग तरा पेम जेइ खेला॥
दुख भीतर जो पेम मधु राखा। जग नहिं मरन सहै जो चाखा॥
जो नहिं सीस पेम पथलावा। सो प्रिथिमी महं काहेक आवा ?॥[2]

समस्त सृष्टि में बिखरा हुआ सौन्दर्य का सागर प्रेम का ही रूप है। तीन लोक, चौदह खण्डों में जायसी ने प्रेम के अतिरिक्त और कुछ स्वीकार ही नहीं किया है।[3] पदमावती वही सौंदर्य है जो अपने रूप से सर्वत्र व्याप्त है। राजा में पद्मावती के प्रति भाव सौन्दर्यासक्ति ही है।

दृढ आत्म-शक्ति

प्राच्य एवं पाश्चात्य आचार्य इस तथ्य से पूर्णतः सहमत हैं कि महान काव्य या महाकाव्य का नायक अपराजेय आत्म शक्ति से युक्त व्यक्तित्ववान चरित्र होना चाहिए। जो चरित्र संघर्ष की धार में टिकता नहीं है वह दुर्बल एवं असहनीय है एवं जो चरित्र संघर्ष की प्रत्येक चुनौती को स्वीकारता है तथा सफल होता है वह निश्चय ही अपार ओजस्‍ वाला अमर चरित्र होता है और उसे ही महाकाव्य का

१ जायसी ग्रन्थावली—प्रेम खण्ड, पृ० ५०
२ वही राजा सुआ संवाद खण्ड, पृ० ४०
३ वही, पृ० ३९

ग्यक होना चाहिए। परिस्थितियो के सघर्ष यूह मे वह मलिन न पडे, चमक उठे या अपने प्रकाश से औरो को भी अभिभूत कर द। इस प्रकार नायक की 'आत्म क्ति उसके चरित्र का आत्म-तत्व है। इस दृष्टि से विचार करने पर जायसी का त्नसेन मध्ययुगीन काव्य-नायको म एक विशिष्ट महत्व का अधिकारी है। प्रेम का ाथ वसे भी तेज धार का पथ है और उसम अपार सकट हो, तो जीवन ही जाता है। जायसी के नायक न प्रम को साधना के रूप म लिया है तथा कष्टो का भी याचना ही माना है।

प्रेम सागर का अमर मरजिया

प्रेम समुद्र मे कूद कर उसने अपने को डुबाया या छिपाया नही, उसकी आत्मा म छिप रत्न को लेकर ही सास ली है। राजा को प्रेमी बनता हुआ देखकर हीरामन ने 'प्रेम-पथ की अपरिमित यातनाओ का धुआधार वणन किया है। सामा य प्रेमी होता तो वहा पर अपना मत परिवर्तित कर देता, लेकिन रत्नसेन को कष्टो की चिन्ता नही। प्रेमिका के लिए सवस्व त्याग कर अपार कष्टो की चुनौति झेलने वाले नायको म रत्नसेन मूधन्य है। वह कठिनाइयो के प्रलय म मनु है, जो बहुत सहता है। अपनी साधना म हिमालय सा अडिग है और अपनी प्रेमिका का एकनिष्ठ, निश्छल योगी राजकुमार ह। पग पग पर उसके प्रेम की परीक्षा है तथा उसके परीक्षको म देवता दानव मनुष्य और पक्षी समुद्र आदि सभी है—शिव पावती उसके प्रेम की परीक्षा लेते है तथा उसकी प्रेम साधना से गदगद होकर उसे 'शिव गुटिका' देत हैं। तोता विघ्नो के वणन कर मसूर आदि साधको के उदाहरण द्वारा परीक्षा लेता है। समुद्र, दानव सभी उसे परखते है। राजा के समक्ष हीरामन न प्रेम सागर की कठिनाइयो का विशद सकेत दिया है—

सुए कहा मन बूझहु राजा। करब पिरीत कठिन है काजा॥
तुम गा जइ घर पोई। कवल न मेटेउ, मेटेउ काई॥
जानहि भौर जौ जेहि पथ लूटे। जाउ जा ह औ दिए न छूटे॥
कठिन आहि सिघल कर राजू। पाइय नाहि जूझ कर साजू॥
ओहि पथ जाहि जो होइ उदासी। जोगी जती, तपा स यासी॥
भोग किए जो पावत भोगू। तजि सो भोग कोइ करत न जोगू॥
तुम राजा चाहहु सुख पावा। भोगहि जोग करत नहि भावा॥
साधन्ह सिद्धि न पाइय जौ लगी सध न तप।
सो प जान बापु रा कर जो सास कलाप॥५॥'

पथ अगम, दुगम घाटियाँ, विषम गढ है, उसम पक्षी नही जा सकता, चींटी

---

१ जायसी ग्रन्थावली—प्रेम खण्ड, पृ० ५० ५१

नहीं बढ़ सकती। पग पग पर विघ्नों के सिंह मुँह फाड़े पड़े है। प्रेम में योग की चर्चा करने से भी सिद्धि नहीं है। सिद्धि तो साधना में अपने कर्म योग को लगा देने में है—

कामा जोग कथन कै कथे। निकस छिउ न बिना दधि मथे।।
जो लाई आप हेराय न कोई। तौ लहि हेरत पाव न सोई।।
पम पहार कठिन बिधि गढ़ा। साप चढ़ जो सिर कै चढ़ा।।
पथ सूरि कै उठा अकूरू। चोर चढ़, की चढ़ मसूरू।।
तू राजा का पहिरसि कथा। तेरे घरहि माझ दस पथा।।
काम, क्रोध, तिस्ना, मद माया। पाचौं चोर न छाडहिं काया।।
नवौ सिंध तिन्ह क दिठियारा। घर मूसहिं निसि की उँजियारा।।
अबहु जाग अजाना, होत आव निसि भोर।
तब किछु हाथ न लागिहि मूसि जाहिं जब चोर।।[1]

सूफी प्रेम साधना में साधक को इतनी अधिक परीक्षाएं झेलनी पड़ती हैं कि उसका जीवन प्रायः करुणा का पात्र बन जाता है। वास्तव में सूफी नायक आध्यात्मिक यात्री होता है और अपनी अध्यात्म यात्रा के लिए उन्हें तन, मन, धन, किसी की भी चिंता नहीं होती है। पद्मावती को पारस रूप दिव्य ब्रह्म का सौंदर्य कहा गया है। रत्नसेन (आत्मा का) प्रतीक है। प्रेम की ज्वाला को सुलगाने वाला हीरामन गुरु है। इस प्रकार साधक या सालिक के सूफीविधान जायसी ने अपने नायक में समाहित कर दिए है। सूफियों के अनुसार एकेश्वरवादी नूर नित्य पारमार्थिक सत्ता है। रूपों में अनकत्व दिखाई देने पर भी आंतरिक एकत्व की भावना सर्वत्र विद्यमान है। यह संसार उसी 'हक' की 'हकीकत' का ही अभिव्यक्ति है। संसार में जो भी सौंदर्य है वही है। 'हीरामन' रत्नसेन के लिए मुरशिद गुरु है, जो उसे 'प्रेम मार्ग' की ओर उन्मुख करता है तथा इश्कमजाजी के माध्यम से इश्क हकीकी की ओर अग्रसर करता है। साधक में ज्ञान स्वतः उत्पन्न होता है तथा रत्नसेन पद्मावती में प्रेम में पछाड़ें खाता, रोता मूर्च्छित होता हुआ अपना समस्त ध्यान उसी पर केंद्रित कर देता है। अपने 'तौबा' या अनुताप के क्षणों में वह समस्त राजपाट के ऐश्वर्य से उपराम होकर जीवन से विरक्त हो जाता है तथा उसकी समस्त साधना पद्मावती में निमग्न हो जाता है। यही कारण है, राजा फकीरों का बाना धारण कर जोगी हो जाता है। गोरखपंथी साधुओं के उपकरण जुटाता है तथा पद्मावती पद्मावती रटने लगता है। किसी के भी समझाने से वह अपना पथ नहीं छोड़ता है। साधना की दृढ़ता ही उसे बहुत श्रेष्ठ साधक सिद्ध करती है। जायसी ने सूफी सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति करने के अनुरूप ही कथा का

1 जायसी-ग्रन्थावली—प्रेमखण्ड, पृ० ५१

रूप दिया है। 'इन्हीं सिद्धान्तों के अनुरूप हो कथा की सृष्टि हुई है। एक राजकुमार एक राजकुमारी से प्रेम करने लगता है, पर मार्ग में बहुत सी बाधाएँ हैं। प्रेमी प्रेमिका से मिल नहीं पाता। अनेक प्रयत्न विफल होते हैं। अन्त में किसी हितैषी या पथ प्रदर्शक की सहायता पाकर दोनों का मिलाप होता है। यही परिस्थिति खुदा और उसके बन्दे में है। साधक ईश्वर की विभूति, उसका सौन्दर्य देखकर मोहित हो जाता है पर उसका मिलाप नहीं हो पाता। संसार की अनेक कठिनाइयाँ माया मोह है। अन्त में गुरु की सहायता पाकर दोनों मिल जाते हैं।'[1] इस प्रकार यह कथा गठन भारतीय एवं अभारतीय तत्त्वों को लेकर हुआ है। सूफी उपासना के अनुकूल ही अनन्त सौन्दर्य एवं अनन्त शक्ति का रूप नायिका में प्रस्तुत किया है। रत्नसेन उस के प्रेम में (फना) मानवीय गुणों को नष्ट करता हुआ, ईश्वरीय गुणों (बका) की ओर बढ़ता है। वैसे भी साधक की प्रेम-साधना का पथ सूफी-काव्य के चिंतकों ने बहुत ही कठिन माना है। उनके मत से साधक को परमेश्वर से मिलने के लिए जाते हुए, मार्ग में सात स्थानों से होकर जाना पड़ता है, जिनमें से प्रत्येक दस पदों से आवृत है।[2] लेकिन इस मत पर विवाद है, ये कुछ सूफियों के मत से प्रारम्भिक अवस्था के प्रतीक हैं।[3] जायसी ने रत्नसेन में आध्यात्मिक-यात्रा के इन सप्त सोपानों को स्थान दिया है—

(१) प्रथम अवस्था तोबा या अनुताप की अवस्था है। यह अवस्था भयजन्य न होकर प्रेमज होती है तथा साधक अनुताप की ज्वाला में दग्ध होकर जगत के प्रति विराग और ईश्वर के प्रति अनुराग प्रदर्शित करता है। रत्नसेन में पद्मावती का रूप-श्रवण यह प्रेमज अनुताप है। वह उसी प्रेम घाव में घायल हो जाता है तथा अपने राज पाट ऐश्वर्य का परित्याग कर देता है। सर्वस्व का समर्पण वह पद्मावती के लिए करता है जिसे हम प्रेमालाप ही मान सकते हैं।

(२) दूसरी अवस्था (जहद) में साधक अपने पर अधिकार करने का प्रयास करता है तथा मानसिक कष्टों में जाता है। पद्मावत' का साधक भी अपनी आत्म साधना में लग जाता है। जोगी होता तथा संन्यासी होकर वह निकलता है, अपार कष्टों को झेलने में उसे अपार मानसिक कष्टों को सहना पड़ता है।

(३) इस तृतीय सोपान सब्र' के अन्तर्गत वह कष्टों की चिन्ता नहीं करता तथा 'आहि न मारि कछु आशा' की उक्ति का संकेत देता है। दुनिया से निराश होकर वह उस प्रियतम (नायिका) को प्राण देना चाहता है।

१—डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १७५
२—परशुराम चतुर्वेदी—सूफी काव्य संग्रह पृ० २९
३—डा० सरला शुक्ल—जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य, पृ० ७८

(४) इस अवस्था म वह हीरामन का 'गुरु' मानता है, जिसने उसे ज्ञान ज्याति दी है।

(५) तथा अनेक परीक्षाओं म 'धय' का परिचय देकर, सप्तम सापान ईश्वर मिलन (सती होना) तक पहुचता है।

रत्नसेन साधना के चतुर्विध सोपानो को भी पार करता है। मारिफत की इस अवस्था म उसका 'इल्म' हृदयगत होता है। पद्मावत का सात्विक अपनी आत्मानुभूति के क्षण म ही जीता है।[1] वह इश्क के सम्बल से सब को झुका देता है। देवता तथा मानव सभी उसका लोहा मान गये हैं। स्वय पद्मावती उसके प्रेम से प्रेम करती है। इस प्रेम पक्ष के दोनो रूप विषम नही उभयात्मक हैं। विरहाग्नि प्रथम नायक म तथा पश्चात नायिका म उत्पन्न हुई है। नायक अपनी विरहाग्नि का विश्वव्यापी बना देता है। उसे वज्र भी वहन है। समाधिस्थ रत्नसेन पूर्ण तादात्म्य की स्थिति म आकर उससे मिल जाता है। यही अवस्था 'अभेदोपलब्धि' की सूचक है।

सासारिक पथिक रत्नसेन भोगपुर से गोरख पथ ग्रहण कर गोरखपुर चल दिया। यह सिंगी, चक्र, अधारी लेता है—

तजा राज राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहेउ वियोगी ॥
तन बिसभर मन बाउर लटा। अरुझा पेम परी सिर जटा ॥
चन्द्र बदन औ चन्दन देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा ॥
मेखल सिंघी चक्र धधारी। जोग बाट, रुद्राक्ष अधारी ॥
कथा पहिरि दण्ड कर गहा। सिद्ध होइ कह गोरख कहा ॥
मुद्रा स्रवन कठ जप माला। कर उपदान काँध बघछाला ॥
पावरि पाव, दीन्ह सिर छावा। खप्पर लीन्ह भेरकर राता ॥[2]

गोरखपन्थी वेश धारण के पश्चात वह प्रेमी प्रेम-नगर जाता है। यही से वह अध्यात्म नगर पहुँचता है तथा सौन्दय नगर का अधिकारी बन जाता है। रत्नसेन की प्रेम फकीरी ही उसकी सच्ची फतह है—

जायसी ने चार मजिलो का भी सकेत दिया है। डा० श्याम मनोहर पाण्डेय ने रत्नसेन के जन्म से लेकर सुग्गे के आगमन तक की स्थिति को 'नासूत' कहा है। राजा का जोगी' बनना समुद्रो को पार कर सिंघल द्वीप पहुचना मलकूत' की स्थिति मान सकते हैं। सिंघल गढ म पहुचने के पश्चात वैवाहिक गतिविधियो को 'जबरूत' मान सकते हैं। लेकिन बाद की स्थिति अस्पष्ट है। पद्मावती के मिलन के

१—परशुराम चतुर्वेदी—सूफी काव्य सग्रह, पृ० ३१
२—जायसी ग्रन्थावली—जोगी खण्ड, पृ० ५२

साथ ही वियोग आ जाता है। संघर्ष तथा युद्ध में फँस कर नायक मर जाता है। अतः 'व्याहूत' की स्थिति बहुत स्पष्ट नहीं है। इसी प्रकार 'शरीअत' 'तरीकत' तथा 'हकीकत' तक की स्थिति तो रत्नसेन में है, लेकिन 'मारिफत' की अवस्था थोड़ी अस्पष्ट है, बस सती रूप में रत्नसेन पद्मावती का मिलन उसकी साधना की जीत है, चिरन्तन सत्य एवं चिर मिलन है।[1] प्रेमानुभूति की चरम सद्गति है। उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जायसी ने अपने नायक में सूफी सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप भी समाविष्ट कर दिया है। वह साधना का प्रतीक (सालिक) होने के कारण प्रतीकात्मक चरित्र बन गया है। उसमें जायसी का अपार दार्शनिक चिंतन, आध्यात्मिक अनुभूतियाँ समन्वित हो गयी हैं। 'पदमावत' का नायक रत्नसेन शास्त्रीय महाकाव्यों के ढंग का धीरोदात्त चरित्रवाला आदर्श नायक नहीं है।'[2] वह सूफीसाधना का प्रतीकात्मक नायक है जिसमें सूफियों का 'फामूला' प्रायः दृष्टिगत होता है। फिर भी रत्नसेन के क्षत्रियत्व में भारतीयतत्व की रक्षा की गई है। इस प्रकार यह नायक भारतीय तथा अभारतीय तत्वों का मिश्रण बन गया है।

भारतीय दृष्टि

जायसी के इस नायक पर नाथ पंथ, हठयोग तथा बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। साथ ही यह नायक भारतीय काव्य रूढ़ियों के अन्तर्गत ही अपना विस्तार पाता है। चन्दवरदाई के पृथ्वीराज रासो में 'शुक शुकी संवाद' के रूप में ही कथा वर्णित है। जायसी ने 'पदमावत' में भी हीरामन सुग्गा द्वारा कथा को आगे बढ़ाया है। दूसरे रत्नसेन का लोक रूप इतना अधिक भारतीयता ग्रहण कर चुका था कि जायसी उसे पूर्णरूप से अभारतीय चरित्र बनाने में असमर्थ हो रहे होंगे। उसमें भारतीय इतिहास का एक गौरवमय रूप भी रक्षित है तथा वह एतिहासिक पात्र पूरी तरह अनैतिहासिक भी नहीं किया जा सकता था। यह सत्य है कि जायसी ने रत्नसेन तथा पदमावती के सम्बन्ध में प्रचलित सभी लोककथाओं को स्थान दिया है। जायसी के नायक सम्बन्धी एतिहासिक ज्ञान की चर्चा करते हुए भी आचार्य शुक्ल ने इस कथा के लोक-तत्व पर बल दिया है— जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर सूक्ष्म ब्यौरों की मनोहर कल्पना करके, उसे काव्य का सुन्दर रूप दिया है।'[3] 'उत्तर भारत में, विशेषत अवध में पदमनी रानी और हीरामन सुए की कहानी अब

---

१ डा० श्याममनोहर पाण्डेय—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १३७

२ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४३३

३ आ० रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३०

तक उसी रूप में कही जाती है, जिस रूप में जायसी ने उसका वर्णन किया है।''[1] शुक्ल जी के इन आधारों को सत्य मान कर डा० सत्येन्द्र ने इस प्रकार अपना मत व्यक्त किया है—

(१) पदमावत की सम्पूर्ण कथा लोक कहानी है।

(२) उसका ऐतिहासिक वृत्त से सम्बन्ध सार रूप में [illegible] हो गया था जिससे कहानी में ऐतिहासिक नाम आ गए और लोक कहानी के अभिप्रायों की ऐतिहासिक व्याख्या लोक मानस में प्रस्तुत कर दी गई जिसका काव्यरूप जायसी ने गढ़ा किया।[2] यही कारण है कि पद्मावत के नायक में लोकतत्त्व का जाने अनजाने मेल हो गया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इन नायकों को जनता तक अपनी बात पहुँचाने का माध्यम माना है। इन सूफी साधकों ने पौराणिक आख्यानों को पहले इन लोक प्रचलित कथानकों का आश्रय लेकर ही अपनी बात जनता तक पहुँचाई।'[3] लोक प्रचलित परम्पराओं में प्रेमिका के लिए जोगी का जाना तथा उसके दर की खाक छानना भी है। जगनिक के आल्हखण्ड में आल्हा ऊदल को अनेक बार जोगी बनना पड़ता है। हीर रांझा में भी रांझा हीर के लिए जोगी बनता है तथा उसके घर जाता है। डा० रवीन्द्र भ्रमर ने इसी तथ्य को इस प्रकार प्रकट किया है कि "नायक का योगी का वेश बदलकर अपनी प्रिया से मिलने जाना या उसे प्राप्त करने का प्रयास करना लोक कथाओं की एक प्रिय रूढ़ि भी है। पंजाब की लोकप्रिय कथा हीर रांझा में हीर से मिलने के लिए रांझा योगी का वेश धारण करता है। सारंगा सदावृक्ष' की कहानी में भी 'सदावृक्ष' भीख मांगने वाले योगी का रूप बदल कर सारंगा से मिलने जाता है। जगनिक के आल्हाखण्ड में आल्हा ऊदल कई स्थानों पर योगी का वेश बदलते हैं। कुतबन कृत 'मृगावती' के उड़ जाने के बाद राजकुमार उसके वियोग में योगी का वेश धारण करके घर से बाहर निकल पड़ता है।[4] जायसी का रत्नसेन भी पदमावती के लिए जोगी बन कर घर से निकलता है तथा गोरखनाथ की शरण ग्रहण करता है। वस्तु सिंघल द्वीप पदमिनी रानी, शुक आदि भी लोकमानस के रूप ही हैं। 'पदमावती' भारतीय साहित्य में न जाने कितने स्थानों पर नायिका है। चाहे भास का 'स्वप्नवासवदत्तम' हो या 'पृथ्वीराजरासो' सभी में विद्यमान है।[5] 'पदमिनी' नायिका की चर्चा भी भारतीय

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रंथावली, पृ० ३०

२ डा० सत्येन्द्र—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन, पृ० २७६

३ आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ५७

४ डा० रवीन्द्र भ्रमर—पदमावत में लोक तत्व, पृ० ६६

५ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४२१ २८

काव्यशास्त्र में प्रायः होती रही है। इसी प्रकार सिंघलगढ़ भी स्त्री प्राप्ति का स्थान भारतीय साहित्य में बहुत बार आया है। हठयोगियों के लिए भी सिंघलद्वीप की यात्रा एक रूढ़ि ही है। अतः पदमावती तथा सिंघलगढ़ को भी रूढ़ि के रूप में ही मान सकते हैं।

जायसी के रत्नसेन पर भारतीय प्रभाव होने का एक कारण यह भी है कि जायसी सूफी धर्म का प्रचार प्रसार चाहते थे, सभी सूफियों की दृष्टि ऐसी ही रही है। मुस्लिम धर्म ग्रन्थों के आश्रय से ही जायसी का काम नहीं चला, उन्हें निरन्तर पड़ने वाले भारतीय प्रभावों, संस्कारों को भी बाह्य रूप से ग्रहण करना पड़ा। साथ ही सूफी नायकों को अधिक विदेशी रूप न अपना कर भारतीय रूप देना पड़ा। जायसी का रत्नसेन भी साधक बनने से पूर्व योगी का रूप धारण करता है। वह सिर पर जटा, हाथ में किंगरी, शरीर में भस्म लपेट, शृंगी धधारी, मेखला, चक्र रुद्राक्ष के साथ कथा धारण करता है[1] तथा 'गोरखनाथ' की जय बोलता हुआ अपने प्रेम-योग में लग जाता है। वैसे भी प्रेमाख्यानकों के अधिकांश नायक ऐसी ही वेश भूषा धारण करते रहे हैं।[2] बस भक्तिकाल को 'आध्यात्म प्रेम काल' भी कह सकते हैं। हठयोगी, नाथपन्थी, तान्त्रिक सिद्ध भी आध्यात्मिक प्रेम की तलाश में थे। सगुणभक्ति के कृष्ण काव्य से सम्बन्धित भागवत सम्प्रदाय में ही मधुरता या प्रेम का जयनाद था। ऐसे समय में जायसी इन प्रभावों से अछूते रह भी कैसे सकते थे। उन्होंने शिव से राजा को 'सिद्ध गोटिका' दिलाकर अपनी भारतीयता का प्रमाण दिया है नहीं तो वे मुहम्मद या किसी भी पैगम्बर से यह कार्य करा सकते थे। लेकिन सभी पैगम्बरों को ताक में रखते हुए शिव पार्वती, हनुमान आदि को लाना उनके भारतीय रंग का ही जोश है। शिव के द्वारा भी हठयोग-साधना का उपदेश दिया है—

गढ़ जस बाँक जसि तोरि काया। पुरुष देखु ओही कै छाया॥
पाइय नाहि जूझ हठ कीन्हे। जेइ पावा तेइ आपुहि चीन्हे॥
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तहँ फिरिहि पाँच कोतवारा॥
दसव दुआर गुपुत एक ताका। अगम चढ़ाव, बाट सुनि बाँका॥
भेद जाइ साइ वह घाटी। जो लहि भेद, चढ़ै हुइ चाँटी॥
गढ़ तर कुण्ड सुरंग तेहि माहाँ। तह वह पंथ कहौं ताहि पाहा॥
चोर बैठ जस सेंधि सवारी। जुआ पैंत जस लाव जुआरी॥

---

१ जायसी ग्रंथावली—जोगी खण्ड, पृ० ५२

२ देखिए, डा० सरला शुक्ल—जायसी परवर्ती सूफी कवि और उनका काव्य, पृ० ६६

जस मरजिया समुद धँसि हाथ आव तब सीप।
ढूँढि लेइ जो सरग दुआरी चढ़ै सो सिंघलदीप॥[1]

जैसे मरजीवा समुद्र में पैठ कर अपने हाथ में मोती वाली सीपी लाता है, तू भी उसी प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म में डुबकी लगाकर उस स्वर्ग द्वार (ब्रह्मरंध्र द्वार) सुषुम्ना को खोज कर सिंघलद्वीप (काया) पर विजय प्राप्त करो। दूसरी ओर 'सिद्धिगुटिका' को प्राप्त करने से सिद्धि प्राप्त राजा मंगल में देवता गणेश जी की जय बोलता है। गणेश हमारा विघ्न हरण करते हैं जिनकी पूजा प्रत्येक कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए सर्वप्रथम करते हैं। उस गणेश की रत्नसेन का जय बोलना शोभा भी देता है—

सिधि गुटिका राजै जब पावा। पुनि भइ सिद्धि गनेस मनावा।[2]

इसके साथ साथ राजा सामान्य जोगी या भिखारी नहीं है वह अपार जीवट का जिद्दी योगी है। वह बसीठों के सम्मान पर कहता है कि—

पदमावति राजा कै बारी। हौं जोगी ओहि लागि भिखारी॥
खप्पर लेइ बार भा मांगौं। भुगुति देइ, लेइ मारग लागौं॥[3]

योगी को वानर भी भली भाँति काटें, इस स्थिति में भी उसे योग मार्ग का ही एक मात्र सहारा है। संसार की सभी साधनाएँ तो साधना करने से आती हैं लेकिन योग साधना अपने को दग्ध करने से आती है। राजा इस स्थिति पर डट कर ही अपने को गला रहा है। पदमावती के योग में रक्त के आँसू तथा दग्ध पत्र का सहारा है—

सवरि रकत नैनहिं भरि चुआ। रोइ हँकारसि माझी सुआ॥
परी जो आँसु रकत कै टूटी। रेंगि चली जस बीरबहूटी॥
ओहि रकत लिखि दीन्ही पाती। सुआ जो लीन्ह चोंच भई राती॥
बाँधी कंठ परा जरि काँठा। बिरह के जरा जाइ कित नाठा॥
मसि नैना लिखनी बरुनि, रोइ रोइ लिखा अकत्थ।
आखर दहै, न कोई छुवै, दीन्ह परेवा हत्थ॥[4]

साथ ही यह सन्देश भी भेजता है कि तुमने देवताओं को बलि दी थी, उसी पथ में बलि दिया हुआ मैं अभी तक पड़ा हुआ हूँ तथा वक्षस्थल पर लिखे गए 'आखर' अत्यधिक

---

१ जायसी ग्रंथावली—पार्वती महेश-खण्ड, पृ० ६३
२ वही, राजागढ़ छेंका खण्ड, पृ० ६४
३ वही, पृ० ६४
४, वही, पृ० ६६

आहत करते हैं। पद्मावती यह सब कुछ जानकर, अपने आपको सम्हाल नही पाती तथा उसकी दशा भारतीय विरहिणी नारी की भाँति हो जाती है—

विरह क आगु सभार, मन चीर, सिर रग।
पिउ पिउ करत रात दिन जस पपिहा मुख मूग ॥[1]

रत्नसेन अपन समस्त प्रेम पन्थ म शिवजी के आधीन रहा है। शिवजी ने ही उसे सिद्धि देकर सच्चा सिद्ध, सिद्ध कर दिया है। अत उसके ऊपर भारतीय साधना का प्रभाव अत्यधिक है। वह हठयोग नाथ पन्थ, बौद्ध-दर्शन तथा पौराणिक प्रभावो को लिए हुए है, जिसका सकेत 'पदमावत' म पग पग पर मिलता है। डा० वीरेन्द्रसिंह न यह निष्कर्ष इस प्रकार दिया है कि 'उनका समस्त काव्य आदि स लेकर अन्त तक प्रतीकात्मक सन्दर्भों स भरा पडा है इनके साथ साथ प्रतीकात्मक मूल कथा भी है। जायसी का साधक नाथपन्थ, बौद्ध धर्म तथा पुराणा के प्रभाव से प्रभावित होने के कारण भारतीय रग म रगा है दूसरी ओर वह सूफी साधना के समस्त आधारो को अपने साथ लेकर चलने के कारण सूफी साधक का प्रतीक है।"[2]

प्रतिनिधि चरित्र

महाकाव्य का नायक जीवन का प्रतिनिधि चरित्र होना चाहिए। उस चरित्र म जीवन के गत्यात्मक तत्व समाहित हो। इस दृष्टि स विचार करने पर थोडी सी कठिनाई 'पदमावत' के रत्नसेन क सम्बन्ध म आती है। वह उस कोटि का प्रतिनिधि चरित्र नही है जिस कोटि म राम आते हैं अथवा इतिहास पुरुष पृथ्वीराज चौहान, सुजानसिंह या छत्रसाल बुन्देला आते हैं। तुलसीदास के 'राम' ने तो प्रतिनिधित्व करन का कोई भी क्षेत्र ही नही छोडा है। व आदर्श पुत्र, राजा, योद्धा, स्वामी, मित्र सभी कुछ हैं। जीवन म उनका चरित्र तो आदर्श का अक्षय भण्डार बन गया है जिसका अनुकरण करना आज भी हम सब का इष्ट रहता है। इसी प्रकार चन्दबरदाई के नाम नायक का भी आदर्श राजपूती आन का आदर्श है। वे त्रस्त तथा सताए हुए लोगो को बेधडक शरण दान देते हैं। पृथ्वीराज चौहान चालुक्य राजा भीम के निकाले हुए सात वीरो को शरण देता है तथा उनके ही पीछे युद्ध ठान लेता है। इन राजपूतो का आदर्श 'अपनी आन के लिए मर मिटना ही है। युद्ध पराक्रम, शौर्य तथा रक्षण की प्रवृत्ति के कारण इनके आदर्श भी जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

'पदमावत' का रत्नसेन राजपूत होता हुआ भी राजपूती परम्परा के आदर्शों का आदर्शरूप नही है। फिर भी पदमावत के उत्तरार्द्ध म उसके क्षत्रियत्व के रक्षण

१ जायसी ग्रन्थावली—गढ छेका खण्ड, पृ० ६८
२ डा० वीरेन्द्रसिंह—हिन्दी काव्य मे प्रतीकवाद का विकास, पृ० २६४

का प्रयास कवि ने किया है। अपनी रानी के अपमान का बदला लेने के लिए ही वह देवपाल का वध करता है। 'पद्मावत' के पूर्वार्द्ध में उसका चरित्र 'प्रेमी का' चरित्र है। वह ऐसा चरित्र है कि अपनी अपूर्व पत्नी नागमती को छोड़कर चल देता है। माता पिता, कुटुम्बी, सम्बन्धी तथा स्त्रियों की बात नहीं मानता है। हठपूर्वक वह 'पदमावती पद्मावती' की रट लगाता हुआ भस्म लगाकर सिंहल द्वीप सोलह हजार योगियों को साथ लेकर चल देता है तथा सात समुद्रों की घोर यातना सहता है। जिस प्रेम के लिए रत्नसेन सब कुछ छोड़ देता है वह सूफियों का आदर्श भले ही हो भारतीय जनता का आदर्श नहीं है। भारतीय प्रेम में संयम का विशेष महत्त्व है उसका घोर अभाव रत्नसेन में है। इस लोकदृष्टि तथा धर्मदृष्टि से उसका चरित्र लोक निन्दा का रूप ले लेता है। साथ ही उसके चरित्र में एक महत्तर प्रेम धारा का भी अपना मूल्य है जिसे नकारना ठीक नहीं है। आदर्श प्रेम का है और गहरे सच्चे प्रेम का। अतः उस प्रबल प्रेम के आवेग में जो कुछ करणीय अकरणीय रत्नसेन ने किया है, उसका विचार साधारण धर्म नीति की दृष्टि से न करना चाहिये।' डा० शुक्ल जी लोक मंगलवादी भावना के घोर समर्थक होने पर भी रत्नसेन को अपने 'फार्मूले' से नहीं आँकते। उसका मूल्यांकन उन्होंने एक आदर्श प्रेमी के रूप में करना ही उचित समझा है। इससे दो लाभ हुए हैं एक तो रत्नसेन के प्रति औचित्य की दृष्टि दूसरा दीवानापन सूफी नायक के प्रभाव के कारण ही जायसी ने उत्पन्न किया है।

प्रेम-पन्थ का प्रतिनिधि चरित्र

रत्नसेन ने चाहे धर्म के क्षेत्र में अपना स्थान न बना पाया हो चाहे उसने अखण्ड क्षत्रियत्व के तेज की रक्षा न की हो चाहे उसने सामाजिक दृष्टि से कोई लोक के लिये आदर्श धाम न बनाया हो, लेकिन उसका कमनीय प्रेम क्षेत्र निश्चय ही प्रेम लोक या स्वर्ग है। इस प्रेम के पथ को उसने कहीं भी मलिन नहीं होने दिया है। अपार त्याग के साथ उसे अपने रक्त से सींचा है। वह पदमावती के लिए घोर से घोर नारकीय यातनाओं को सहना अपना सौभाग्य समझता है। जायसी ने प्रेम मार्ग की सराहना की है, तो रत्नसेन उससे आगे ही है—

प्रेम पंथ जो पहुँच पारा
बहुरि न मिल आइ एहि छारा

यही कारण है कि उन्होंने प्रेम को गगन से ऊँचा कहा है। प्रेम से बड़ा आदर्श सूफी कोई भी दूसरा नहीं मानते हैं। प्रेम के इस आदर्श को प्रत्येक पात्र रत्नसेन पूरी करता है। उसका प्रेम योग आसक्ति का नहीं, शुद्धता का लाव है। यह प्रेम वासना के पंक से पंकिल नहीं है इसमें सात्विकता है त्याग है धैर्य है, कर्त्तव्य है, निष्ठा है तथा

अखण्ड रागात्मक घन है। यह प्रेम लाभ नही आत्मा का सौन्दय लोक है। इस लोक म जा मन मारता है, इन्द्रियो का दमन करता है तथा उल्टे परो चलता है सिर के बल चलता है मसूर बनता है, वही पहुँच सकता है। इस साम्राज्य मे पीडा ही पीडा है काटे ही काटे हैं, त्राहि त्राहि का ही भीषण स्वर है, लेकिन यह पीडा भी सूफी प्रेम का वरदान है। यह पीडा ही साधक का ब्रह्म के पास ले जाती है। यह दु ख सब को मात्र रहा है। पदमावती के विरह म रत्नसेन मज गया है। किसी भी परिस्थिति मे प्रलोभन म, अपने इष्ट से न गिरने वाला यह प्रेमी साधक है। प्रेम व क्षेत्र म उसका असाधारणत्व निश्चय ही अनुपम है। हिन्दी के सूफी काव्य मे उसकी कोई दूसरी मिसाल नही है। प्रेम ब्रह्म का ही पर्याय है। यह धारणा अब पुरानी हो चली है।

प्रेम प्रेम से होय, प्रेम से पराइ पइय।
प्रेम बध्यो ससार, प्रेम परमारथ पाइय॥[1]

यह प्रेम मात्र लौकिक नहा है इसम अलौकिकता का तत्व स्वत प्रवेश कर गया है। रत्नसेन के इस प्रम-याग की साधना से प्रभावित होकर ही डा० माताप्रसाद जी गुप्त ने उस धरती का सर्वाधिक रत्न[2] स्वीकार किया है। जायसी ने रत्नसेन के द्वारा शुद्ध प्रेम का एक आदश स्थापित किया है।

मुहमद कवि यह जारि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा॥
जोरी लाइ रक्त क लेई। गाढि प्रीति नयनन्ह जल भेई॥
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा॥[3]

उन्होंने 'फूल मर पर मर न बासू' की उक्ति अपने नायक के प्रेमादश के लिए ही प्रयुक्त की है। इस प्रकार नायक को प्रेम पन्थ' का प्रतिनिधि चरित्र मानना चाहिए।

दिव्य शक्ति से अलकृत, समन्वित

पद्मावत के रत्नसेन को हम मानवीय धरातल पर रख कर नही परख सकते हैं। वह 'सामान्य' नहीं विशेष प्रकार की प्रवत्ति रखता है। इसम 'अति मानवीय' या लोकोत्तरत्व के तत्व का प्राधान्य है। लौकिक व्यक्ति माया एव वासना म जितनी प्रगाढ़ता स बध जाता है रत्नसेन उतनी ही शक्ति से इनसे दूर है। वह सब तज हरि भज की कोटि का साधक है। अपनी साधना म वह अपनी प्रियतमा

१ सूरसागर।
२ डा० माताप्रसाद—पदमावत, पृ० ८०
३ जायसी ग्रन्थावली (उपसहार), पृ० ३००

में परम सत्ता के अखण्ड सौन्दर्यवाद का दर्शन करता है। 'पद्मावती' का रूप-श्रवण ही उसमें 'दिव्यत्व' को जन्म देता है। उसकी आत्म शक्ति प्रकाश हो जाती है। वह अपनी प्रेम धुन में इतना दिव्यत्व प्राप्त कर गया है कि पावती से कहता है कि—

आहि न मोर कुछ आस, मैं ओहि आस करेउ।
तहि निवाम पीतम कहैं, जिउ न दउ का देउ।।[1]

रत्नसेन अपनी साधना से अपार शक्ति प्राप्त करता है। अपने समस्त 'अहं' का समर्पण उसमे निवेदन शक्ति उत्पन्न करता है। अपनी एकनिष्ठता से वह पावती द्वारा परीक्षा लेने पर भी सफल ही होता है। मानस में पावती जब सीता का रूप धारण कर परीक्षा लेती है उस समय राम उन्हें तत्काल ही पहिचान लेते हैं। यह उनकी दिव्य शक्ति का ही प्रभाव है। इसी प्रकार 'पदमावत' में रत्नसेन पावती को पदमावती मानने की भूल नहीं करता तथा उनके समक्ष अपनी साधना के इष्ट का उद्घाटन है—

भलेहि रंग अछरी तोर राता। मोहिं दूसरे सो भाव न बाता।।
मोहि ओहि सवरि भुए तस लाहा। नैन जो देखसि पूछसि काहा।।
अबहिं ताहि जिउ देइ न पावा। तोहि असि अछरीठाढि मनावा।।
जो जिउ देइ हौ आहि कै आसा। न जानौं काह होइ कवि लासा।।
हौ कविलास काह लै करऊं। सोइ कवि लास लागि जेइ मरऊं।।
ओहि के बार जाउ नहि वारी। सिर उतारि न वद्यावरि सारौं।।
ताकरि चाह कहै जो आई। दोउ जगत तहि देहु बड़ाई।।[2]

वह पावती के समक्ष अपनी दृष्टि-पथ की दृढ़ता तथा इष्ट में प्रेम की प्रगाढ़ता का परिचय देता है। 'सूफी काव्यों में नायक का घर बार छोड़ कर निकल पड़ना और वियोग की दशा में अपने को समस्त जगत से अभिन्न देखना प्रथम पक्ष की साधना है और प्रेम की उन्मत्तता प्रिय की प्राप्ति और उसके लिए आत्म विसर्जन अंतिम अवस्था थी।[3] यह प्रेम-साधना सूफीसाध्य की दिव्य साधना ही है। नायक एवं दिव्यानुभूति के प्रति मार्गदर्शित होकर ही नायक कर्मन्याग एवं ज्ञान योग को प्राप्त होता है। उसकी इस दिव्य साधना में इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान तीनों का साम्य होता है। रत्नसेन में प्रगाढ़ प्रमावस्था योगी की समाधिस्थ अवस्था ही है। इस अवस्था का साधना में उसका रूप आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में, "ताप के अतिरिक्त विरह के और और अंगों का भी विचार। जायसी ने इसी हृदय-हारिणी

---

२ जायसी ग्रन्थावली पावती महेश-खण्ड, पृ० ६३
१ जायसी ग्रन्थावली—पावती महेश-खण्ड, पृ० ६१
२ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी —मध्ययुगीन धर्म साधना, पृ० ५८

ौर व्यापकत्व विधायिनी पद्धति पर बाह्यप्रकृति का सूत्र ग्राम्यतन्जगत का प्रति बम्ब सा निरूपण हुए किया है। काम हेतु प्रेषा से लिया गया है। प्रेम योगी रत्नसेन के विरह व्यथित हृदय का भाव हम सूर्य चन्द्र वन के पेड, पक्षी, पत्थर, चट्टान सब म देखने चलते हैं—

राव रोव वै बान जो फूटे। सूत हि सून रुहिर मुख छूटे॥
नयनहिं चली रकत कै धारा। कथा भीत्ति भरउ रत तारा॥
सूरज बूडि उठा होइ ताता। ग्रामजीउ टेसू वन राता॥
भा वसन्त, रानी वनसपती। ग्रौ राते सब जोगी जती॥
भूमि जो भीनि भएउ सब गेरू। ग्रौ रात सब पख पखेरू॥
राती सती, अगिनि सुब काया। गगन मव रात तेहि छाया॥
डूगर मा पहार जो भीजा। पै तुम्हार नहिं राव पसीजा॥[1]

योग के ताप म जल जल कर उसने तपस्या की है। उसने अपनी समस्त रागात्मक वत्तियाँ उसी ब्रह्म म केन्द्रित कर दी है—

ग्रौ सवेरौं पदमावति रामा। यह जिउ नवछावरि जेहि नामा॥
रक्त क बूद कया जस ग्रहही। पदमावति प्रद भावति कहही॥
रहै त बूद बूद मह ठाऊ। परत सोई लेइ लेइ नाऊ॥
रोव राव तन तासा ग्रोघा। सूतहि सूत वेधि जिउ सोवा॥
हाडहि हाड सबद सो होई। नस नस माह उठ धुनि सोई॥
जागा विरह तहा का गूद मास, कै हान?
हौं पुनि साचा होइ रहा ग्रोहि के रूप समान॥[2]

अपनी समस्त प्रेम परीक्षाओं मे वह सफलता की अन्तिम मजिल पर है। जो 'पेम मधु को चलकर प्रेम-पथ' म अपना सिर दान नहीं कर देता है उसका प्रिथिमी मह आना ही व्यर्थ है। वह 'कथारि कथा' पहन कर पदमावती का 'भिखमगा' बनकर 'प्रेम समुद्र' म उतर आता है। वह 'मरजिया भाव से कहता है कि—

सात पनार खोजि कै खाजि क काढौ पेम गरथ।
सप्त सरग चढि धावौं पदमावति जेहि पथ॥[3]

इस पथ' म वह सूली पर चढन म भी नहीं टिगता है। विरह-सरागहि भूज मासू। गिरि गिरि परै रक्त कै ग्रासू[4]। रक्त के ग्रासू गिरा कर वह सिद्ध हो

१ जायसी ग्रन्थावली, प० ३६ ४०
२ वही, प० १११ ११२
३ वही, प० ६३
१ वही, पृ० ६५

जाता है, उस अपनी साधना का शीघ्र प्राप्त होता है। इस साधक को नि य शक्ति स अलकृत मानना ही उचित है।

कार्यों की उदात्तता

नायक का उत्साही होना अत्यन्त आवश्यक है। आचार्य शुक्ल जी ने साहस पूर्ण आनन्द की उमग का नाम उत्साह दिया है तथा कम सौन्दर्य के उपासक को ही सच्चा उत्साही कहा है।[२] कम सौ दय का उपासक फलासक्ति नही रखता वह तो काय करने म ही अपनी साथकता समझता है। इस दृष्टि से विचार करने पर रत्नसेन भी सच्चा उत्साही व्यक्ति ठहरता है। उसके काय व्यापारो म आच्छादन नही, एक महाकाव्योचित गरिमा है। हीरामन के द्वारा पदमावती का सौन्दय वणन सुनकर उसके भीतर जो चाह उत्पन्न होती है उसे वह पूरा ही करता है। अपने समस्त जीवन को उसके लिये होम दना सामान्य मानव के लिये सम्भव नही है। चाहे चन्द्रमा चमकना ब द कर द या सूय गर्मी न दे तब भी रत्नसेन अपने माग स भ्रष्ट नही हो सकता। पावती हो या अप्सरा, रत्नसेन अपने कत्तव्य पथ म डिगना जानता ही नही। हीरामन कठिनाइयो का वणन करे या गणपति उस कोई अन्तर नही पडता वह 'जोगी' बनकर धूनी रमा दता है। उसके प्रेम सम्बन्धी काय व्यापार इतने परिष्कृत हो चुके है कि वह अपने प्रियतम को प्राणो का दान देना चाहता है। पदमावती को भी वह छल कपट या छीन कर नही लाता अपनी दिव्य साधना के बल म वशीभूत करता है। 'पदमावत के चरित्रो में नायक रत्नसेन का जीवन यद्यपि बहुत अधिक व्यापक और वविध्य काय कलाप से युक्त नही है, पर उसम कत्त य भावना, प्रेम भावना और वीर भावना का सहयोग दिखाई पडता है।'[३] फिर अपने कार्यों की भव्यता के लिए वह मानस के नायक के आगे कही नही ठहरता है। उसम मानव सुलभ, लोभ गव, अदूरदर्शिता आदि दुबलताएँ भी हैं लेकिन आदश प्रेमी के रूप मे। उसके कार्यों म अद्भुत उदात्तता है। उसने कार्यों म सूफी नायको स भी मिलता है। वह चाहे आदश महापुरुष न हो लेकिन आदश प्रेमी त्यागी एव बलिदानी भावनाओ का प्रतीकात्मक चरित्र है। वह आध्यात्मिक जगत का विजयी योद्धा है जिसके काय व्यापारो की उदात्तता पग पग पर मिलती है। जायसी ने रत्नसेन द्वारा अपना सिद्धान्त पुष्ट किया है। राजा न आत्मा का सग्राम आत्मा स तथा हृदय का सग्राम हृदय स जीता है, तलवार स नही। सामान्य काव्यो क नायक की भाँति रत्नसेन युद्ध या अपहरण स पदमावती को नही प्राप्त

---

२ चिन्तामणि (भाग १)—उत्साह।

३ डा० शम्भूनाथसिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४०६

करता है, उसे ब्रह्म साधना या कम याग, ज्ञान-याग, भक्ति योग तीनो की समन्वित शक्ति से प्राप्त करता है। रत्नसेन ने सिद्धा, फकीरा मुल्लाग्रा, साधुग्रों एव भिक्षुग्रो के समक्ष ग्रपनी 'साधुता' का प्रतिष्ठित कर दिया है। उसने ग्रपनी इष्ट साधना मे यह सिद्ध कर दिया है कि "एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदय से हाता हुग्रा गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूप रग के भेदो की ग्रोर से ध्यान हटा एकत्व का ग्रनुभव करने लगता है।"[1] वह जायसी की ग्रपनी कसौटी है कि मनुष्य प्रेम से ही वैकुण्ठी हो गया है, नहा ता वह मिट्टी था। इस रूप मे रत्नसेन का प्रस्तुत करना ही उनका उद्देश्य रहा है। 'प्रेम' की ग्राध्यात्मिकता एव लौकिक उदात्तता के कारण ही डा० शम्भूनाथसिंह ने उसे 'प्रेम, प्रवण मानवतावाद' का नाम दिया है। उन्होने परम सत्य के चिरन्तन, ग्रनन्त ग्रौर ग्रनिर्वचनीय सौन्दय का मानव जगत म प्रतिबिम्बित करके भी उसकी विराटता ग्रौर ग्रनन्तता का नही नष्ट होने दिया। साथ ही उसी ग्रनिर्वचनीय वण्यवस्तु की ग्राभा को पूणत झलका भी दिया है।"[2] रत्नसेन की साधना दृष्टि भी चरम कोटि की प्रेमरूपा है। 'सूफी का या म नायक का घरबार छाड कर निकल पड़ना ग्रौर वियाग की दशा मे ग्रपने को समस्त जगत से ग्रभिन्न देखना प्रथम पक्ष की साधना है, ग्रौर प्रेम की उन्मत्तता प्रिय की प्राप्ति ग्रौर उसके लिए ग्रात्म विसजन ग्रन्तिम ग्रवस्था की।"[3] रत्नसेन का यह उन्मुक्त ग्रात्म विसजन भी जायसी की उदार दृष्टि का ही परिणाम है।

जायसी ने ग्रपने नायक का सूफी होते हुए भी भारतीयता म ही ग्रधिक भ य पाया है। वह फारसी नायको की भाँति फकीरी धारण कर 'दीवाना' मात्र भी रह सकता था। परन्तु जायसी न उस पर गोरखपन्थी, हठयागी तथा बौद्ध धम का प्रभाव दिया है। वह पद्मावती का भिखारी ही नहीं है, गेरुए वस्त्र के साथ खप्पर, मेखला, व्याघ्र चम, रुद्राक्ष माल, किंगरी, खडाऊ, सिंगी, चक्र, धधारी लेकर यागी बन जाता है। वह यागी भी सामान्य नहीं, ऐसा जिसका पावती एव शिव भी लोहा मानते हैं। ऐसा प्रेमी जिसके रोम राम म दिव्य शक्ति के प्रति खिचाव है। उसका निश्चय भी महापुरुष का वह निश्चय है जिसम 'ध्रुवत्व' है। सात समुद्र उस निश्चय म शीघ्र व्यतीत होने वाली सात सासें हैं। यह लगाव भी शरीरी कम ग्रशरीरी ग्रधिक है। वह हृदयवाद म जीता है। इस प्रेम पथ म काया के नवद्वारा ग्रौर पच विकारा को वशीभूत करना ही पडेगा नहा ता साधक का सवनाश हो जायगा। यह प्रेम पथ' तेज धार पर चलने से भी कठिन है, क्याकि पहिले तो सिर के बल

---

१ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २

२ वहा, पृ० ४३१

३ ग्रा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—मध्ययुगीन धम साधना, पृ० २५८

चलना पड़ता है और फिर मन को योगी में सूक्ष्म बनाकर ले जाना पड़ता है। जीव को इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है, तृष्णा, लोभ का नाश करना पड़ता है। रत्नसेन त्याग के नाम पर पीछे नहीं है। हीरामन से ज्ञान पथ की राह पा कर निकल पड़ता है तथा संसार के नश्वर रूपों से आँखें फेर लेता है। अपनी आदर्श स्त्री नागमती का सन्देश सुनकर वह द्रवित हो जाता है तथा रानी से चित्तौड़ आकर क्षमा-याचना करता है। क्षत्रिय होता हुआ भी बिना झिझक के अलाउद्दीन के साथ भोजन करता है। एकेश्वरवाद तथा प्रतिबिम्बवाद के अद्वैत दर्शन में भी वह दृढ़ नहीं है। उस प्रकार उसकी उदार चेता वृत्ति प्रमुख है। विचारों की यह व्यापकता निश्चय ही महाकाव्य के नायक के अनुकूल है। उसके विचार देश काल की परिधि में सीमित नहीं हैं, प्रेम के असीम रूप को अपनाकर उनका विकास हुआ है। रत्नसेन के विचारों की व्यापकता उस सूफी साधक के व्यापक विचारों का प्रतीक है, जो सब कुछ सहज कर प्रेम पथ की उच्चतम चोटी पर पहुँचता है। जिसे किसी भी रूप को अपनाने में आपत्ति नहीं है केवल उनकी धुन में धुन लगी रहे। विपत्ति उनका सौभाग्य बन जाती है तथा प्रत्येक के प्रति नम्र, सहिष्णु रहते हैं। जनजीवन में अपनी साधना को स्थान मिले तथा नाना मत उनसे सहमत हों इसलिए भी विचारों का व्यापक होना आवश्यक था। जायसी ने रत्नसेन को प्रायः सकीर्णता से युक्त रखा है तथा कट्टरपंथ न दिखाकर अपनी विशद् दृष्टि का परिचय दिया है।

विचारों की व्यापकता

विचारों की व्यापकता समस्त सूफीकाव्यों का मूलाधार है। ये सूफी अपने विचारों में समन्वयवादी तथा हृदय से उदार थे। यही कारण है कि उनके काव्य का सामाजिक सांस्कृतिक धार्मिक एवं साहित्यिक पक्ष अत्यन्त उज्ज्वल है। इन्होंने अभारतीय होते हुए भी अपने को भारतीयता के रंग में रंगकर एक नवीन वातावरण खोला है। ये सभी साम्प्रदायिकता एवं धार्मिक कट्टरता के कायल कम ही थे। इन्होंने अपनी जो भी इश्क मजाजी तथा इश्क हकीकी की कहानी को कहना चाहा है उसमें हिन्दुओं की ही कहानियों को स्थान दिया है। 'प्रेम' का मानवतावादी रूप इनके काव्य में प्रायः मिलता है। मानव अपने हृदय को प्रेम से परिष्कृत कर कितना व्यापक बन सकता है यह इन कवियों ने अपने नायकों में समाहित कर दिया है। जायसी तो हिन्दुत्व को अपनाने में गौरव समझते रहे, उन्होंने सूफी सिद्धान्तों की आध्यात्मिकता एवं मतवादी दृष्टि को छोड़ा नहीं है। जाति रंग भेद धर्म आदि को भुलाकर सच्चा मानव अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। ऐसा 'मानव' जिसमें कालुष्य नहीं, प्रेम का तप्त स्वर्ण मात्र है। आचार्य शुक्ल जी ने विचारों के इस प्रकार उदात्त रूप को देखकर ही कहा है कि हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय का

अपने सामने रखके अजनबीपन मिटाने वाला म इन्ही का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की ही कहानियों को हिंदुओं की ही बोली म पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की ममस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपना उदार हृदयपूर्ण सामजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता नहीं थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।"[1] जायसी ने रत्नसेन के चरित्र का एतिहासिक पक्ष तो निभाया ही है उसके व्यक्तित्व की मुसलमान होते हुए भी पूर्ण रक्षा की है। भेद भाव से परे होकर वह *मुहम्मद तथा शिव—दोनों का भक्त* है। अपनी भक्ति धारा में भी वह सकुचित नहीं है। 'प्रेम मार्ग' में उसने नल दमयंती एवं लैला मजनू दोनों के आदर्श अपनाये हैं। ईश्वर प्रेम से ही प्राप्त होता है, धन या सम्पत्ति के गर्व से नहीं।

कथा के मूल भाव या रस का आधार

आचार्यों के मत से समस्त कथा का प्राण रस है। कथा के मूल रस के अनुरूप ही कवि कथा में विभिन्न प्रसंगों की योजना करता है। कथा को रूप देते समय वह रस विधान पर अपना ध्यान देता है तथा कथा में रम्य स्थलों का प्रस्तुत कर कथा मूर्ति का निर्माण करता है। यह समस्त कथा नायक या नायिका को केंद्र मानकर ही चलता है। घटनात्मक पक्ष का पूरा विधान नायक पर ही निर्भर करता है कभी कभी कवि नायक में अपनी सर्जक कल्पना से जीवन का वैविध्य प्रस्तुत करने के लिए अवसर जुटाता है। जिस प्रकार अनेक कथाओं के रहते हुए *एक कथा की अधिकारिता अनिवार्य है*, अथवा यह कहना चाहिए कि घटना बाहुल्य के रहते हुए भी समस्त कथा विधान की एक घटना में परिणति अनिवार्य है और अनेक पात्रों के समारोह में एक पात्र की नायकता असंदिग्ध है। इसी प्रकार अनेक रसों के मिश्रण में एक रस की अगिता भी स्वयं सिद्ध है।'[2] अनेक रसों में जो स्थिति अंगीरस की है, वही स्थिति अनेक पात्रों में नायक की है। नायक के चित्त की मूल प्रवृत्ति ही मूल रस का निर्णय करती है। कथा बंध के अंगीरस का निर्णय भी नायक को जानने का एक माध्यम है। मूल भाव की व्याप्ति में ही नायक का लक्षण छिपा है।

पदमावत का मूल भाव या रस क्या है, इस दृष्टि से विचार करने वाले विद्वानों की एक विशाल परम्परा है। अतः उनके विचारों की पुनरावृत्ति करना यहाँ

१ जायसी ग्रंथावली, पृ० २
२ डा० नगेन्द्र—आस्था के चरण, पृ० ५४८

निरथक ही है। हमारा उद्देश्य तो मूल रग म नायक के योग का निणय करना है। पदमावत सूफियो की प्रेम दृष्टि का तत्त्व लिया गया प्रेम तत्त्व है। उनके यहाँ प्रेम ही धर्म है कर्म है, पूजा है ब्रत है सयम है। प्रेम का अपरिमेय विस्तार उनके काव्या म है। सभी सूफीकाव्यो का मूलाधार है प्रेम और यह प्रेम या रति या नरतत्व इन कथाओ के आदि, मध्य एव अत म है। सभी कृतियाँ—चाहे मृगावती, स्वप्नावती, नलदमयन्ती चित्रावती मधुमालती, उषा अनिरुद्ध अनुराग-बाँसुरी यूसुफ जुलेखा, मदनानल कामकन्दला, भाषा प्रेम रस अथवा पुहुपावती कोई भी रचना हो उसमे शृगार की प्रधानता है। यह रति गुण श्रवण चित्र-दर्शन स्वप्न-दर्शन प्रत्यक्ष दर्शन किसी भी प्रकार से उत्पन्न हो लेकिन उसकी अस्मिता सत्ता वहाँ है। इस रति की लौकिकता एव अलौकिकता दोनो का सामजस्य इन काव्यो म दिखाई पडता है। य रति की दिव्यता के काव्य हैं। नर-नारी के सनातन भाव—रति का विस्तार ही इनमे है। सूफियो ने प्रेम ससार के रूप को ससार माना है। यह प्रेम जीवन की दिव्य चेतना का प्रतीक है। प्रेम का विधान के लिए ही प्रतीकात्मक प्रेम कथा की सृष्टि है। प्रेमपरक प्रतीको म मृग मृगी पुष्प भ्रमर चाद चकोर, स्वाति नक्षत्र तथा पपीहा की प्रतीकात्मक स्थिति को लिया गया है। शृगार के सयोग एव वियोग दोनो पक्षो म से इनका मन वियोग म अधिक रमा है। मिलन मधुर प्रेम का सुप्त रूप है तथा विरह प्रेम की जाग्रत चेतना का जीवन्त रूप। बिना विरह म दग्ध हुए साधक की साधना का स्वर्ण चमकता नही है। सभी नायक विरही है तथा घोर यातनाओ से हस कर गुजर गये है। मनोहर यूसुफ तथा रत्नसेन सभी इनके भीतर समाहित है।

रत्नसेन प्रवृत्ति से भी प्रेमी है। वह वासनात्मक प्रेमी नही साधनात्मक प्रेमी है। उसी की प्रेम यात्रा पदमावती है। पदमावती के सौन्दय से अभिभूत राजा को और कोई सोहता ही नही है। गुरु सुआ पदमावती (ब्रह्म) की प्रेम चिनगी रत्नसेन (आत्मा) म प्रज्वलित कर देता है—

भलेहि पेम है कठिन दुहेला।
दुइ जग तरा पेम जेइ खेला॥
\+ + +
जो नहि सीस प्रेम पथ लावा।
सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा॥[१]

जो "सच्चा प्रेमी है वह चित्त की एक तान स्थिति मे जीता है। ऐसा प्रेम प्रिय को छोडकर किसी अन्य वस्तु का आश्रित नही होता। न उसे सुराही चाहिए,

१ जायसी ग्रन्थावली—राजा सुआ सवाद खण्ड, पृ० ४१

न प्याला, न गुलगुनी गिलमे न गलीचा। न उनमे स्वर्ग की कामना होती है न नरक का भय।"[1] यही प्रेम हम रत्नसेन म दृष्टिगोचर होता है। आचार्य शुक्ल जी 'पदमावत' को शृंगार रस प्रधान काव्य मानते हैं।[2] दूसरी ओर डा० शम्भूनाथ सिंह का कहना है कि 'पदमावत म आद्यन्त रति भाव की पूर्ण व्यजना हुई है किन्तु उसका पर्यवसान करुण रस म हुआ है। यदि अलाउद्दीन और देवपाल के साथ हुए युद्ध म वह विजयी होता तो यह नायक का अभ्युदय कहलाता। तब यह काव्य सुखान्त होता और उसम प्रधान रस शृंगार तथा गौण रस वीर माना जाता। किन्तु अन्त म रत्नसेन की मृत्यु और पदमावती नागमती के सती होने की घटना से उसका पर्यवसान करुण रस म हुआ है।'[3] जायसी ने कथा के अन्त म ससार की असारता सिद्ध करते हुए निर्वेद भाव को अपनी आध्यात्मिकता द्वारा प्रस्तुत किया है। 'उन्होंने प्रतीक और सकेत पद्धति द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की स्पष्ट व्यजना भी की है तो उसम रहस्यवाद की दृष्टि स शृंगार रस को नहीं, शान्त रस को ही प्रधान मानना पडेगा। अंतिम दृश्य म जो रस व्यजित होता है वह उसी अप्रस्तुत पक्ष के शान्त रस की अंतिम परिणति है। जिस तरह सूर मीरा और कबीर के शृंगारिक वर्णन शान्त रस के अन्तर्गत माने जाते हैं उसी प्रकार पदमावत का प्रभाव शान्त रस समन्वित है शृंगार रस वाला नहीं। अत लौकिक कथा की दृष्टि से देखने पर पदमावत म विप्रलम्भ शृंगार अंगी है और आध्यात्मिक अर्थ की दृष्टि स वह शान्त रस प्रधान काव्य है।'[4] इस प्रकार नायक को लौकिक धरातल पर देखने स वह प्रेमी या शृंगारी वृत्ति का है जिसमे ढल कर कथा न शृंगार को प्राधान्य दिया है। नायक को आध्यात्मिक यात्रा का साधक मानने स कथा की प्रेम वृत्ति आध्यात्मिक प्रेम वृत्ति और नायकवृत्ति शान्तरस प्रधान हो जाती है।

कथा के अन्य पात्रों द्वारा नायक के महत्त्व की स्वीकृति

'पदमावत का नायक प्रेम समुद्र का अमर मरजिया है। अपनी साधना से उसने जड चेतन को झुका दिया है। उसके महत्त्व की सबसे बडी स्वीकृति यही है कि पदमावत' के सभी पात्रों का झुकाव उसकी ओर है। यद्यपि पदमावत' नायिका प्रधान काव्य है तथापि उसम नायक का जीवन्त चित्र भी प्रस्तुत किया गया है। जायसी कथा म ही आध्यात्मिक यात्रा की सिद्धि चाहते थे तथा सूफी सिद्धान्तों के अनुसार ही वे नायिका (परम-ब्रह्म) तथा नायक (आत्मा) का प्रतीकत्व भी निभाना

१ जायसी ग्रंथावली—राजा सुआ सवाद खण्ड, पृ० ६७
२ वही, पृ० ७१
३ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास, पृ० ४७७
४ वही, पृ० ४७७

निरर्थक ही है। हमारा उद्देश्य तो मूल रस में नायक के योग का निर्णय करना है। पदमावत सूफियों की प्रेम दृष्टि को लेकर लिखा गया प्रेम राग है। उनके यहाँ प्रेम ही धर्म है, कर्म है, पूजा है, व्रत है सर्वस्व है। प्रेम का अपरिमेय विस्तार उनके काव्यों में है। सभी सूफी काव्यों का मूलाधार है प्रेम और यह प्रेम या रति का नर्तन इन कथाओं के आदि मध्य एवं अंत में है। सभी कृतियों—चाहे मृगावती, स्वप्नावती, नलदमयन्ती चित्रावली, मधुमालती, उषा अनिरुद्ध, अनुराग-बांसुरी, यूसुफ जुलेखा, मदनानल कामकन्दला, भाषा प्रेम रस अथवा पुहुपावती कोई भी रचना हो, उसमें शृंगार की प्रधानता है। यह रति गुण श्रवण चित्र दर्शन, स्वप्न-दर्शन प्रत्यक्ष दर्शन किसी भी प्रकार से उत्पन्न हो, लेकिन उसकी अडिग सत्ता वहाँ है। इस रति की लौकिकता एवं अलौकिकता दोनों का सामंजस्य इन काव्यों में दिखाई पड़ता है। में रति की दिव्यता के काव्य है। नर नारी के सनातन भाव—'रति' का विस्तार ही इनमें है। सूफियों ने प्रेम संसार को रूप को सशार माना है। यह प्रेम, जीवन की दिव्य चेतना का प्रतीक है। प्रेम की दिखान के लिए ही प्रतीकात्मक प्रेम कथा की सृष्टि है। प्रेमपरक प्रतीकों में मृग मंगो पुष्प भ्रमर चाद चकोर, स्वाति नक्षत्र तथा पपीहा की प्रतीकात्मक स्थिति को लिया गया है। शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों में से इनका मन वियोग में अधिक रमा है। मिलन मधुर प्रेम का सुप्त रूप है तथा विरह प्रेम की जाग्रत चेतना का जीवन्त रूप। बिना विरह में दग्ध हुए साधक की साधना का स्वर्ण चमकता नहीं है। सभी नायक विरही है तथा घोर यातनाओं से हँस कर गुजर गये हैं। मनोहर यूसुफ तथा रत्नसेन सभी इनके भीतर समाहित है।

रत्नसेन प्रवृत्ति से भी प्रेमी है। वह वासनात्मक प्रेमी नहीं साधनात्मक प्रेमी है। उसी की प्रेम यात्रा पदमावती है। पद्मावती के सौन्दर्य से अभिभूत राजा को और कोई सोहता ही नहीं है। गुरु सुआ पदमावती (ब्रह्म) की 'प्रेम चिनगी' रत्नसेन (आत्मा) में प्रज्वलित कर देता है—

> भलेहि पेम है कठिन दुहेला।
> दुइ जग तरा पेम जेइ खेला॥
> + + +
> जो नहिं सीस प्रेम पथ लावा।
> सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा॥[1]

जो सच्चा प्रेमी है वह चित्त की एकतान स्थिति में जीता है। ऐसा प्रेम प्रिय को छोड़कर किसी अन्य वस्तु का आश्रित नहीं होता। न उसे सुराही चाहिए,

---

१ जायसी ग्रन्थावली—राजा सुआ संवाद खण्ड, पृ० ४१

प्याला, न गुलगुली गिलमें न गलीचा। न उनमें स्वर्ग की कामना होती है न रक का भय।'[1] यही प्रेम हम रत्नसेन में दृष्टिगोचर होता है। आचार्य शुक्ल जी पद्मावत को शृंगार रस प्रधान काव्य मानते हैं।[2] दूसरी ओर डा० शम्भूनाथ सिंह का कहना है कि 'पदमावत में आद्यन्त रति भाव की पूर्ण व्यंजना हुई है किन्तु उसका पर्यवसान करुण रस में हुआ है। यदि अलाउद्दीन और देवपाल के साथ हुए युद्ध में वह विजयी होता तो यह नायक का अभ्युदय कहलाता। तब यह काव्य सुखान्त होता और उसमें प्रधान रस शृंगार तथा गौण रस वीर माना जाता। किन्तु अन्त में रत्नसेन की मृत्यु और पदमावती नागमती के सती होने की घटना से उसका पर्यवसान करुण रस में हुआ है।[3] जायसी ने कथा के अन्त में संसार की असारता सिद्ध करते हुए निर्वेद भाव को अपनी आध्यात्मिकता द्वारा प्रस्तुत किया है। 'उन्होंने प्रतीक और संकेत पद्धति द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की स्पष्ट व्यंजना भी की है तो उसमें रहस्यवाद की दृष्टि से शृंगार रस को नहीं शान्त रस को ही प्रधान मानना पड़ेगा। अंतिम दृश्य में जो रस व्यंजित होता है, वह उसी अप्रस्तुत पक्ष के शान्त रस की अंतिम परिणति है। जिस तरह सूर मीरा और कबीर के शृंगारिक वर्णन शान्त रस के अन्तर्गत माने जाते हैं उसी प्रकार पद्मावत का प्रभाव शान्त रस समन्वित है, शृंगार रस वाला नहीं। अतः लौकिक कथा की दृष्टि से देखने पर पदमावत में विप्रलम्भ शृंगार अंगी है और आध्यात्मिक अर्थ की दृष्टि से वह शान्त रस प्रधान काव्य है।'[4] इस प्रकार नायक को लौकिक धरातल पर देखने से वह प्रेमी या शृंगारी वृत्ति का है जिसमें ढल कर कथा ने शृंगार को प्राधान्य दिया है। नायक को आध्यात्मिक यात्रा का साधक मानने से कथा की प्रेम वृत्ति आध्यात्मिक प्रेम वृत्ति और नायकवृत्ति शान्तरस प्रधान हो जाती है।

कथा के अन्य पात्रों द्वारा नायक के महत्त्व की स्वीकृति

पदमावत का नायक प्रेम समुद्र का अमर मरजिया है। अपनी साधना से उसने जड़ चेतन को भुला दिया है। उसके महत्त्व की सबसे बड़ी स्वीकृति यही है कि पदमावत' के सभी पात्रों का झुकाव उसकी ओर है। यद्यपि पदमावत' नायिका प्रधान काव्य है तथापि उसमें नायक का जीवन्त चित्र भी प्रस्तुत किया गया है। जायसी कथा में ही आध्यात्मिक यात्रा की सिद्धि चाहते थे तथा सूफी सिद्धान्तों के अनुसार ही वे नायिका (परम ब्रह्म) तथा नायक (आत्मा) का प्रतीकत्व भी निभाना

---

१ जायसी ग्रन्थावली—राजा सुआ संवाद खण्ड, पृ० ६७
२ वही, पृ० ८१
३ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास, पृ० ४७७
४ वही, पृ० ४७७

चाहते थे। यही कारण है कि उसमें नायिका' के रूप का असीम विस्तार है तथा स्थान स्थान पर त्रियत्व के संकेत दिए गये हैं। इस त्रियत्व में लौकिक पक्ष तिरोहित सा हो गया है। सुग्गे के द्वारा 'पदमावती' का रूप वर्णन सुनकर राजा का प्रेम भाव में पड़ कर मसुद' में गोते खाना आरम्भ हो जाता है। सुग्गा सुग्गा पमपथ' की कठिनाइयों का वर्णन करता है लेकिन राजा कहीं भी अपनी चित्तवृत्ति को दुर्बल नहीं करता है। राज पाट भोग तिलांजलि देता हुआ कथा पहनकर 'गोरखनाथ' की जय बोलता हुआ निकल पड़ता है। प्रेम की पावनता को चाहने के लिए मार्ग में मानस' की भांति शिव पार्वती मिलते हैं तथा साधना से प्रभावित होकर उसकी परीक्षा लेते हैं। पार्वती रूप बदल कर अप्सरा बन जाती है तथा लोक रीति के अनुसार प्रेमाचार की बातें कर रही हैं। यहां भी रत्नसेन अपनी लगन की एकतानता का प्रमाण देता है। यथा—

> ओहि के बार जीउ नहिं बौरों। सिर उतारि नेव छावरि सारों॥
> ताकरि चाह कहै जो आइ। दोउ जगत तेहि देउ बड़ाइ॥
> ओहि न मोरि किछु आसा, हौं ओहि आस करेउं।
> तेहि निरास पीतम कहँ जिउ न देउ का देउं॥[1]

रत्नसेन के इस उत्तर का प्रभाव पार्वती पर अत्यधिक गम्भीर हुआ है और उन्होंने 'प्रेम' की सत्यता पर विश्वास प्रकट करते हुए अपना निर्णय स्पष्ट किया है—

> गौरइ हँसि महेस सौं कहा। निहचै दहि बिरहानल दहा॥
> निहचै यहि ओहि कारन तपा। परिमल पेम न आछ छपा॥
> निहचै पेम पीर यह जागा। कसे कसौटी कंचन लागा॥
> बदन पियर जल डभकहिं नैना। परगट दुऔ पेम के बैना॥
> यह एहि जनम लागि ओहि सीझा। चहै न औरहि ओही रीझा॥
> महादेव देवन्ह के पिता। तुम्हरी सरन राम रन जिता॥
> एहु कहँ तस मया करेहू। पुरवहु आस कि हत्या लेहू॥[2]

महादेव स्वयं पार्वती की भाँति राजा की तप साधना से गद गद हो उठे। सिद्ध पुरुष के समक्ष यह योगी फूट फूट कर निर्विकार भाव से रोने लगा। उसको रोता हुआ देख कर भोलेनाथ द्रवित हो गये—

> कहेहि न रोव, बहुत तैं रोवा। अब ईसर भा, दारिद खोवा॥
> जो दुख सहै होइ सुख ओका। दुख बिनु सुख न जाइ सिवलोका॥

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ८१
२ वही, पृ० ८१

अब त सिद्ध भएसि सिधि पाइ। दरपन कया छूटि गई काइ॥
कहा बात अब हौं उपदेसी। लागु पंथ, भूले परदेसी॥
× × ×
कहौं सो ताहि सिंघलगढ़, है खण्ड सात चढ़ाव।
फिरा न कोइ जियत जिउ सरग पंथ देइ पाव॥[1]

प्रेमपन्थ का सच्चा साधक सीमित दायरे में रह ही नहीं सकता। फिर सूफी साधक तो कण-कण में उस परम प्रकाश रूप के दर्शन करता है। उन्होंने प्रेम का विशद प्रतीकात्मक वर्णन भी हृदय की विशालता को प्रस्तुत करने के लिए ही किया है। इस प्रकार के प्रतीकात्मक ढंग से वर्णित प्रेम धर्म का भावात्मक तत्व सिद्ध पुरुष का आनन्दातिरेक, शहीद का साहस, सन्त का विश्वास तथा नैतिक पूर्णता एवं आध्यात्मिक ज्ञान का एक मात्र आधार है।[2] क्रियात्मक रूप में यह आत्म त्याग और आत्म विराग है। वह कथा के प्रत्येक नर नारी पात्र पर अपना प्रभाव डालता है। उसने मनुष्य ही नहीं देवता (शिव-पार्वती) को भी अपने प्रेम-योग से मोह लिया है। जड़ समुद्र भी उसकी साधना को देखकर उसका सहयोगी हो जाता है। रत्नसेन के महिमावान व्यक्तित्व से ही असम्भव सम्भव होता रहा है, तथा प्रत्येक परिस्थिति ने उसमें मात मानी है। अखण्ड एवं अक्षम जीवट के इस पात्र की सराहना सन्त तथा सद दोनों वत्तियों के पात्रों ने अवसरानुकूल की है।

प्रतिनायक

इस महाकाव्य का प्रतिनायक इतिहास में प्रसिद्ध 'खिलजी सल्तनत का बादशाह अलाउद्दीन है। 'छिताईवार्ता' नामक प्रेम काव्य में भी उसका प्रतिनायक रूप मिलता है लेकिन जायसी ने उसे नायक के प्रेम-पथ की एक अपार बाधा के रूप में प्रस्तुत किया है। अलाउद्दीन में कामिनी के रूप का अनिवार मोह है। अत उस विलासी वृत्ति का रूप लोभी रूप ही कथा में मिला है। खलचरित्र राघवचेतन के कथन में वह राजा रत्नसेन पर धावा बोल देता है। छल कपट की नीति से पवित्र रूप पद्मावती को देखना है तथा राजा का अपहरण करता है। उसके साथ गोरा बादल जूझते हैं तथा राजा की मुक्ति कराते हैं। फिर भी कवि ने प्रतिनायक के चरित्र को विस्तार नहीं दिया। उसे मात्र एक पर्वत सी बाधा के रूप में लाखड़ा किया है। इस घटना से पद्मावती के चरित्र में दिव्यता आ गया है तथा उसके पतिव्रत धर्म का पूर्ण निखार मिला है। राजपूती मर्यादा तथा रानी का चरित्र दोनों

---

१ वही, पृ० ९३

२ इस्लाम के सूफी साधक – निकल्सन, अनुवादक श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृ० ६०

ही अमरता को प्राप्त हुए। खलनायक देवपाल भी कथा के एक भाग म आता है। रत्नसेन का कैदी समझ कर वह भी परिस्थिति का लाभ उठाना चाहता है तथा दूती द्वारा रानी को छलना चाहता है। उसे भी रत्नसेन युद्ध क्षेत्र म समाप्त करता है, लेकिन यह युद्ध उसे इतना महगा पडा है कि बाद म उसे अपनी जीवन लीला समाप्त करनी पडी है तथा उसके ही साथ दोनो पत्नियों को सती हो जाना पडा है। इन समस्त घटनाओ से नायक में प्रेम सत्ता तथा महत्ता का पूर्ण उदघाटन हुआ है तथा प्रतिनायक के चरित्र का विकास हो कथा म नही हो पाया। जीवन भर प्रेम पथ म जूझा हुआ विजयी साधक, 'युद्ध पथ म भी थका नही है तथा अपनी मर्यादा के लिए उसने जीवन की आहुति देकर ही दम लिया है। प्रेमी और योद्धा दोनो का मणि कांचन योग इस योगी म दिखाना निश्चय ही सराहनीय है।

नायक निर्धारण

रत्नसेन के महाकाव्योचित कार्य व्यापारो पर विस्तार से विचारोपरान्त भी एक प्रश्न सहज ही उठ खडा होता है कि वह किस कोटि का नायक है? साथ ही उस पर सूफीसाधना की दृष्टि का अधिक प्रभाव है अथवा भारतीय दृष्टि का? उसका एतिहासिक व्यक्तित्व बाधक बना है अथवा साधक? साथ ही वह प्रेम पथ म भी किस कोटि म रखा जाए?

भारतीय परम्परा के मुख्य नायक राम कृष्ण, गौतम महावीर, छत्रसाल, शिवाजी, वीरसिंह सुजान सिंह आदि सभी म उनका व्यक्तित्व बहुमुखी होकर आया है। उनके कार्य व्यापारो का वविध्य उनके व्यक्तित्व के अनेक रूप सामने लाता है। लेकिन सूफियो ने अपने नायकों म एसा नही किया। वे सभी प्रेम' के लोक म जीवित हैं इससे बाहर उनका क्षेत्र ही नही है। सभी नायक आत्मा के प्रतीक हैं साधना तप योग के प्रतीक हैं। सभी प्रेम पथ म आध्यात्मिक यात्री हैं। सात्विकता का रूप सभी म है।

पौर्वात्य एव पाश्चात्य दोनो ही आचार्यों ने महाकाव्य के नायक को महान उदात्त या महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप म ही स्वीकार किया है। भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य के नायक को धीरोदात्त होना चाहिए यह मानकर अनेक गुणो की चर्चा की है। धीरोदात्त गुणान्वित नायक की दृष्टि से रामायण, रघुवंश, शिशुपालवध, किराता र्जुनीय कुमार-सम्भव, विक्रमाकदेवचरित नैषधीयचरित आदि सभी महाकाव्यो म है। भारतीय आचार्यों ने नायक म दुनिया भर के समस्त दिव्य-गुणों की रचना चाही तथा उसम सभी श्रेष्ठ गुणो का स्थान दिया वहाँ भी उसम दुर्बलता की चर्चा ही नहीं की। इस दृष्टि से संसार के अन्य महाकाव्यो के नायक वहा नहीं ठहरते हैं।

हमारी दृष्टि आदशवादी तथा उनकी दष्टि यथाथवादी रही है। 'पैराडाइज लास्ट', वियोवूल्फ, 'डिवाइन कामडा' के नायक धीरोदात्त की कसोटी पर नही ठहरते है। अत भारतीय नायक दष्टि से उनके साथ न्याय नही होता है। ऐसे ही सूफियो के सिद्धान्ता स प्रभावित 'पद्मावत' पर भी भारतीय दष्टि न्याय नही कर सकती है। अत यह मानना उचित है कि महाकाव्य का नायक आदर्शो का जमघट न भी हो, धीरोदात्त भी न हो, एतिहासिक महामानव भी न हो पर अपने काय व्यापारो का महत्व रखता हो तथा उद्देश्य की महानता म तन, मन, धन से समर्पित हो। इस दष्टि स जायसी का नायक अपने ढग का अकेला ही है। 'प्रम पथ' म वह ससार भर क नायको का आदश है। 'प्रम-याग' मे वह ससार भर की कठिनाइया को पार करता हुआ थकता नही दखता तथा प्रकृति की परीक्षा म अद्वितीय, धीर, तपस्वी, महान साधक तथा एकनिष्ठ व्रती है। उसम मधुकरीवत्ति का पूण अभाव है उसका स्थिर समपण अदभुत है। सूफियो के 'प्रमवाद' का अमर कर दन वाला नायक प्रेमकाव्य म रत्नसेन की टक्कर का दूसरा नही।

जायसा ने अपन नायक के निर्माण म सूफी साधना के फामूले' का तो पूरा उपयोग किया, लकिन उन्होने आचार्यो द्वारा पूवनिर्धारित मानदण्डा का आश्रय नहा लिया। जायसी न उस केवल प्रेम-पथ का अथाह और असीम जीवट वाला साधक प्रस्तुत किया ह। वह राजा क्षत्रिय तथा योद्धा हाते हुए भी प्रम भीख का भिखारी, नाम पथी कथा धधारी धारी योगी ह। उसने जीवन क अन्य क्षेत्रा मे आदश स्थापित नही किए हैं। राम की भाँति वह आदश क्षत्रिय, आदश राजा, आदश पति, आदश राजनीतिज्ञ, आदश योद्धा तथा आदश धम सस्थापक नही है। वह तो प्रेम का चरम आदश ह। जायसी न उस आध्यात्मिक यात्रा का पथिक बनाकर भी मानव बना रहने दिया ह। साथ ही उसम कुछ मानव सुलभ दुगुण जमे द्रव्य-लोभ, रूपलाभ, धन का गव, अदूरदर्शिता, उतावली आदि भी हैं।[1] इस दष्टि से वह मानस क नायक के समक्ष कही भी नही टिकता है। 'पृथ्वीराज रासो' का नायक जितना बडा योद्धा तथा शरण रक्षक है उस रूप का भी इसम अभाव ह। धीरोदात्त नायक का जो स्वरूप अन्य भारतीय महाकाव्यो म मिलता ह, उसका अभाव जायसी के नायक म ह। डा० जयनाथ नलिन न सूफी नायक को प्रम पथ का बधडक[2] और आस्थावान पथिक मानत हुए उसे धीरोदात्त नायक स्वीकार किया है। वास्तव म प्रतिरस्थल, क्षमावान धीरोदात्त गुणों वल क दायरे म रत्नसेन नही आता ह। उसम धीरोदात्त नायक क कुछ पक्ष तो हैं लेकिन वह सम्पूण अथ म धीरोदात्त नायक नही ह।

१ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४८३
२ डा० जयनाथ नलिन—भक्ति-काव्य म माधुय भक्ति का स्वरूप।

रत्नसेन आध्यात्मिक साधना का पथिक है इस दृष्टि से उसे प्रतीकात्मक नायक कहना अधिक समीचीन है। जायसी ने उसे प्रेम की निष्ठ यात्रा में पूर्ण सफल चित्रित किया है। प्रेम में प्रयत्न नायक की ओर से है और उसकी कठिनता द्वारा कवि ने नायक के प्रेम को नापा है।[1] उन्होंने नायक पर लगाये गये आक्षेपों का भी खण्डन किया है कि प्रेम के साधन-काल में रत्नसेन में जो साहस कष्ट सहिष्णुता, नम्रता, कामनता त्याग आदि गुण तथा अधीरता दुराग्रह और क्षोभ आदि दुर्गुण दिखाई पड़ते हैं वे प्रेम जन्य हैं वे स्वतन्त्र गुण या दोष नहीं माने जा सकते।[2] शुक्ल जी के इसी मत को पुष्ट करते हुए डा० शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि 'पद्मावत का नायक रत्नसेन शास्त्रीय महाकाव्यों के ढंग का धीरोदात्त चरित्र वाला आदर्श नायक नहीं है। फिर भी उसमें कुछ चारित्रिक विशिष्टय अवश्य है। वह विशिष्टता उसके अनन्य प्रेम और प्रिय की प्राप्ति के लिए अदम्य साहस और प्रयास-त्याग के प्रदर्शन में निहित है।[3] शास्त्रीय आचार्यों की मान्यता जायसी का भुलाव ही रही है उनकी दृष्टि तो सूफी प्रेम मान्यता पर रही है और उसी के अनुकूल उसे उन्होंने व्यक्तित्व दिया है। जायसी आदर्श महापुरुष को नहीं, आदर्श प्रेमी साधक को सामने ला रहे थे। इसीलिए आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र का यह 'प्रतिकात्मक नायक'[4] सामने आया है।

जायसी ने नायक के चरित्र में भारतीय तथा अभारतीय दोनों रूपों का सामंजस्य कर दिया है। वह सूफी नायक मनोहर सुजान सारिक प्रानसिंह चानदीप आदि की भाँति कोरा आदर्श प्रेमी नहीं है उसमें जायसी ने प्रेम के साथ साथ वीरता का रूप भी प्रस्तुत किया है। नायक का अलाउद्दीन एवं प्रबल प्रतिनायक से पराजित न होना तथा अपनी मर्यादा के लिए देवपाल का वध उसके चरित्र को उज्ज्वल करते हैं। यहाँ पर यह संकेत भी अनिवार्य प्रतीत होता है कि यह नायक, फारसी नायक मजनूं तथा फरिहाद की भाँति भी नहीं है। उनका प्रेम बाल्यारम्भ से ही बहुत होता है तथा वे विवाहिताओं से प्रेम करते हैं तथा जान देते हैं। रत्नसेन कुमारी पदमावती की ओर बढ़ता है तथा एक निष्ठ साधना के साथ। अतः वह फारसी नायकों से भिन्न है। फारसी के जितने भी कवि हैं वे कविता में प्रेम के अतिरिक्त कुछ जानते ही नहीं है।[5] रत्नसेन ऐसा नहीं है। पदमावत के उत्तरार्द्ध में उसका

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रंथावली, भूमिका, पृ० २६

२ वही, पृ० १२३

३ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४३३

४ डा० वीरेन्द्रसिंह—हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद का विकास, पृ० २६४

५ डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १७

योद्धा रूप भी उभर कर सामने आया है।

रत्नसेन की अतिशय रुमानी वृत्ति से उसे धीर ललित मानने का भी भ्रम होता है। आचार्यों ने कलासक्त, निश्चिन्त, कोमल तथा अनुरागी नायक ही को धीर-ललित कहा है।[2] जैसे मालविकाग्निमित्र का अग्निमित्र 'स्वप्नवासवदत्ता' के उदयन आदि। वह उदयन सा विलासी प्रेमी नहीं है, वह स्त्री का नहीं परम-ज्योति का साधक है तथा प्रेम की उपासना के लिए अलाउद्दीन तथा देवपाल से जूझना भी है। अत उसे धीर-ललित नहीं कह सकते हैं।

शृंगारपरक नायकों की दृष्टि से वह दक्षिण नायक[2] कहा जा सकता है। प्रेमी के रूप में वह धरती का 'सर्वाधिक निर्मल रत्न' है। उसे आचार्य शुक्ल जी ने 'दक्षिण-नायक'[3] माना है। इस मत का समर्थन डा० रामकुमार वर्मा ने भी किया है।[4] यह मत अब सर्वमान्य हो गया है कि दक्षिण नायक के सभी लक्षण उसमें विद्यमान हैं अत पुनरावृत्ति की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

सम्पूर्ण 'पदमावत' में कार्य-व्यापारों की दृष्टि से वह धीरोदात्त धीर प्रशान्त, धीर-ललित या धीरोद्धत नायक नहीं कहा जा सकता है। उसमें धीरोदात्त नायक की दृढता के कारण उसकी झलक अवश्य है। वास्तव में जायसी की दृष्टि ही सूफी प्रेम साधना के कठघरे में सीमित रही। इस 'सालिक' का ताज पहिनाया। अत इस नायक को एक नवीन प्रकार का आध्यात्मिक यात्री स्वीकार करते हुए प्रतीकात्मक नायक ही कहना चाहिए। कथा रस, उदात्त वृत्तियों की दृष्टि से भी उसमें महाकाव्य के नायक के सम्पूर्ण गुण विद्यमान हैं। साथ ही 'प्रेम समुद्र' का ऐसा 'मरजिया' तो और कोई उसकी तुलना में ठहरता ही नहीं है। प्रेम साधना की दृष्टि से वह अद्भुत साधक है।

नायक के ऊपर कतिपय आक्षेप

जायसी का दृष्टिकोण एवं प्रेम कोण प्रस्तुत करने का था। यही कारण है कि पदमावत में उनकी सर्वाधिक दृष्टि प्रेम पक्ष पर रही है। अनन्त विघ्न बाधाओं को चाहे वे दविक, दैहिक या भौतिक किसी भी कोटि की हों पद्मावत का नायक पार करता रहा है। यह अदम्य उत्साह उस अथाह जीवट का पुरुषार्थी चरित्र सिद्ध करता है तथा अपना प्रेम भूमि में आरूढ़ प्रेमी की सभी अनिवार्य शर्तों को भी पूरा

१ निश्चिन्तो धीरललित कलासक्तसुखी मृदु। द० रू० २ ३

२ डा० माताप्रसाद, पदमावत, पृ० ४०

३ आ० रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ३६

४ डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १७

करता है। फिर भी रत्नसेन के चरित्र पर विद्वानों ने कुछ आक्षेप लगाये है। इन आक्षेपों पर विचारोपरान्त ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि ये आक्षेप कितनी शक्ति रखते है तथा उनमे कितना सत्यांश निहित है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने 'पदमावत' के नायक को 'रूप लोभी'[1] कहा है। वह हीरामन तोते के मुख से पद्मावती का अलौकिक रूप वर्णन सुनकर 'मुरझा' जाता है तथा प्रेम के समुद्र मे डूबने उतरने लगता है। वह उसके विषय मे गम्भीरता से सोचता नही है, बावले प्रेमी की भाँति बिना देखे ही उधर दौड पडता है। साथ ही साथ अपनी प्रथम सुन्दर सती रानी नागमती से एकदम मुँह फेर लेता है तथा पद्मावती, पद्मावती रटने लगता है। उसका यह रूप एक आदर्श प्रेमी का नहीं, एक रूप लोभी का रूप है। शुक्ल जी के इस कथन पर डा० माताप्रसाद गुप्त ने गम्भीरता से विचार करते हुए लिखा है कि 'वस्तुत यह समस्या जायसी के अध्ययन की ही समस्या नही है *हिन्दी के समस्त सूफी कवियो के अध्ययन मे हमारे सामने आती* है। प्रेम का प्रादुर्भाव, गुण-श्रवण, स्वप्न दर्शन चित्र दर्शन अथवा प्रत्यक्ष दर्शन से इन सभी की कृतियो मे होता है। इसलिए इस समस्या का समाधान भी कुछ अधिक व्यापक रूप से खोजा जा सकता है।'[2] वास्तव मे रत्नसेन के इस प्रकार के प्रेम के पीछे जायसी का अपना दृष्टिकोण तथा सूफी सिद्धान्तो का भी आधार है। सूफियो ने स्त्री पुरुष प्रेम को आध्यात्मिकता पवित्रता तथा भव्यता का जामा पहिनाया है। उनकी दृष्टि मे स्त्री से किया गया, प्रेम ईश्वर से प्रेम होता है। यह प्रेम सनातन है तथा जन्म से ही आरम्भ होता है। अचानक किसी गुण श्रवण या चित्र दर्शन की घटना से यह प्रेम जाग उठता है।[3] जायसी ने यह प्रेम सूर्य चन्द्रमा, सूर्य कमल चन्द्रमा चकोरी पुष्प तथा भ्रमर अनेक प्रेम प्रतीको के माध्यम से प्रगट किया है। सूफी कवियो ने नायक-नायिका मे जो एक दूसरे के प्रति अद्वैत भाव की घोषणा की है, वह भाव भी उन्हे सस्ते प्रेम के धरातल पर नही आने देता। भारतीय सूफीकाव्य मे प्राय गुण श्रवण चित्र दर्शन आदि की परम्परा प्रेम प्रसग मे कथानक रूढ़ि सी रही है, जबकि फारसी के सूफी कवियो ने जब निजामी का लैला मजनूँ' नायक को नायिका के 'मकतब' का दोस्त कह दिया है।[4] अत उनके प्रेम के आधार स्पष्ट हैं। भारतीय परम्परा मे कुछ कृतियाँ ऐसी है जिनमे प्रेम का अज्ञात उमडन है। 'परमाल रासो' मे ऊदल रानी का रूप-वर्णन सुनकर जोगी का वेश धारण करता है तथा भाग लेता

१ जायसी-ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ३२

२ स० डा० माताप्रसाद गुप्त—पदमावत।

३ डा० श्याममनोहर पाण्डेय—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० १६

४ वही, पृ० ४७

है। लेकिन वह अविवाहित है। अत उसकी समस्या का रूप दूसरा है। रत्नसेन को विवाहित होने के नाते 'अनिवर्णनीयम परकलत्रम'[1] की उक्ति माननी चाहिए थी या फिर उस थोडे धैर्य से राजोचित व्यवहार करना चाहिए था। इसका एक ही समाधान है कि मुल्ला दाउद के 'चन्दायन' में यह प्रेम परम्परा चल पडी थी। साथ ही उन कवियों ने प्रेमी तथा रूपलोभी मे कदाचित ही कोई अन्तर कभी किया हो। रत्नसेन के प्रेम-द्वार ताला अपने वर्णन से खोल देता है तथा जीवात्मा म (रत्नसेन) परमात्मा (पद्मावती) से मिलन के लिए अकुलाता है। प्रेम की यह सघनता जो रत्नसेन के मन मे पद्मावती के लिए है वह गहरा है। मृत्यु भय नहीं शिव परीक्षा मे वह सफल, समुद्र को पार करने का भय नहीं। वह सभी तरह पद्मावतीमय हो गया है, उसकी सास सास मे, बूद बूद म, पद्मावती की तडपन है। वह रूप लोभ नहीं है। सामान्य प्रेमी, भोग चाहता है जिसका आधार है वासना की तृप्ति। वह प्रेमिका के लिए प्राण देने म आनन्द का अनुभव नहीं करता। रत्नसेन प्राण देने म भी आनन्दमय रमता योगी है। वह प्रथम योगी है, फिर भोगी तथा अन्त मे सच्चा मर्यादा रक्षक भी। इसके विपरीत प्रतिनायक अलाउद्दीन तथा देवपाल का पद्मावती को पाने की कोशिश करना रूप-लोभ है। अलाउद्दीन राघव चेतन स रूप वर्णन सुनकर तथा देवपाल अपनी दूती से रूप वर्णन सुनकर दौड पडना है। इनका यह दुष्ट प्रयत्न सवथा निन्द्य है क्योंकि उनका आधार ही शारीरिक प्यास है। वे वासनात्मक भूख के अन्धे हैं, जिनमे मात्र भोग है।

समस्या का एक पहलू और भी है कि पद्मावती रत्नसेन, मधुमालती मनोहर आदि सभी मे दोनो ओर स प्रेम की प्रधानता है जबकि देवपाल तथा अलाउद्दीन के लिए पद्मावती के मन म तनिक भी आसक्ति नहा है। उनका एकपक्षीय प्रयत्न है जो सवथा निन्दनीय तथा अनौचित्य से भरा है। इसके विपरीत रत्नसेन के लिए पद्मावती मे एक अजीब तडपन पैदा होती है तथा हीरामन के द्वारा अपना प्रेम सन्देश भेजती है। अत रत्नसेन का प्रम एकपक्षीय नहीं है, हाँ, उसम एकनिष्ठता है। इसमें रूप-लोभ नहीं है दो विरही हृदयों का मधुर मिलन है।

रत्नसेन रूपलोभी नहीं है, एकनिष्ठ प्रेमी है। 'लोभ सामान्योन्मुख होता है और प्रेम विशेषोन्मुख। कहीं कोई अच्छी वस्तु सुनकर दौड पडना लोभ है किसी विशेष वस्तु पर इस प्रकार मुग्ध रहना कि उससे कितनी ही अच्छी अच्छी वस्तुओ के सामने आने पर भी उस विशेष वस्तु से प्रवृत्ति न हटे रुचि या प्रेम है। किसी स्त्री या पुरुष के रूप की प्रशसा सुनते ही पहिला भाव लोभ का होगा। किसी को हमने बहुत सुन्दर देखा और लुभा गये, उसके पीछे दूसरे को उनसे भी सुन्दर देखा

१ कालिदास—अभिज्ञान शाकुन्तलम, पचम अक।

तो उस पर लुभा गये। जब तक प्रवृत्ति का यह व्यभिचार रहेगा, तब तक हम रूप लोभी ही माने जाएंगे। जब हमारा लाभ किसी एक ही व्यक्ति पर स्थिर हो जायेगा हमारी वृत्ति एकनिष्ठ हो जायगी तब हम प्रेमी कहे जाने के अधिकारी होंगे।'[१] इस कसौटी पर भी रत्नसेन सामान्यो मुग्ध न होकर विशेषो मुग्ध ही हैं। वह पद्मावती के अतिरिक्त और किसी को स्वीकार ही नहीं करता। हीरामन राजा को आकस्मिक रूपलोभी बना देखकर उसके समक्ष प्रेममार्ग की कठिनाइयों का भी वर्णन करता है। लेकिन प्रेम-समुद्र में मग्न राजा हीरामन के समझाये जाने पर भी डिगता नहीं है—

सुए कहा मन बूझहु राजा। करब पिरीत कठिन है काजा॥
तुम राजा जेइ घर पोई। कवल न भेंटेउ भेंटेउ काई॥
जानहिं भौंर जो जेहि पथ लूटे। जीउ दीन्ह और दिए हु न छूटे॥
कठिन आहि सिंघल कर राजू। पाइय नाहिं जूझ कर साजू॥
ओहि पथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी जती, तपा, सन्यासी॥

× × ×

जौं लहि आय हेराइ न कोई। तौ लहि हेरत पाव न सोई॥
पम पहार कठिन बिधि गढ़ा। सो पै चढ़ै जो सिर सौं चढ़ा॥
पंथ सूरि के उठा अकूरू। चोर चढ़ै की चढ़ मसूरू॥[२]

इन अनेक कठिनाइयों को सुनकर भी राजा अपने मत में स्थिर रहता है। उसका प्रेम भाव कम नहीं होता। कठिनाइयों को सुनकर और उभरता है। वह सब कुछ छोड़ कर योगी का वेश धारण करता है—

तजा राजा राजा भा जोगी। और किंगरी कर गहेउ वियोगी॥
तन बिसंभर मन बाउर लटा। अरुझा प्रेम, परी सिर जटा॥
चन्द्र बदन औ चन्दन देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा॥
मेखल सिंघी चक्र धंधारी। जोग बाट रुद्राछ अधारी॥
कंथा पहिरि दण्ड कर गहा। सिद्ध होइ कहं गोरख कहा॥[३]

गोरख पन्थी योगियों का रूप धारण कर, राजा पूर्व पत्नी नागमती तथा अपनी माँ आदि को त्याग कर चल देता है। सामान्य राजा की भाँति राज्य वैभव का मयलाभ उसे नहीं सोचना है। मार्ग में गजपति भी परीक्षा रूप में आता है। राजा का प्रेम ज्वर देख कर वह भी मार्ग की कठिनाई का वर्णन करता है तथा सात समुद्रों के दुर्गम रूपों का संकेत देता है—

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि (लोभ और प्रीति), पृ० ७०

२ जायसी ग्रन्थावली—प्रेम-खण्ड, पृ० ५१

३ वही, जोगी-खण्ड, पृ० ५३

सात समुद्र अगूथ अपारा। मारहिं मगरमच्छ घरिआरा ॥
उठै लहर नहिं जाइ सँभारी। भागिहि कोइ निबहै बपारी ॥
+ + +
सिंघल दीप जाइ सो काइ। हाथ लिए आपन जिउ होई ॥
खार, खीर, दधि जल उदधि, सुर, किलकिला अकूत।
को चढ़ि नाँघ समुद ए, है काकर अस बूत ? ॥[1]

राजा का प्रेम यहाँ भी अटल, अचल है। वह प्रेम को ही शक्ति तथा शिव मानता है। वह सिर देकर अपना पर आगे रखता जाता है। अतः मरण में उसे भय नहीं है। वह समुद्र को बूँद समझता है। उसे मगर मच्छ आदि का भी भय नहीं है। अपनी प्रेमिका के लिए प्रत्येक विपत्ति उसे प्यारी लगती है। 'प्रयत्न नायक की ओर से है और उसकी कठिनता द्वारा कवि ने नायक के प्रेम को नापा है। नायक का यह आदर्श लैला मजनूँ, शीरीं फरहाद आदि उन अरबी फारसी कहानियों के आदर्श से मिलता जुलता है जिसमें हड्डी की ठठरी भर लिए हुए टाँकियों से पहाड़ खोद डालने वाले आशिक पाए जाते हैं।'[3] रत्नसेन यदि रूप लोभी होता तो इन विपत्तियों से उसे काँपना अवश्य चाहिए था।

रत्नसेन रूप लोभी है या सच्चा प्रेमी, यह परीक्षा जायसी ने शिव पार्वती द्वारा भी प्रस्तुत की है। पार्वती द्वारा परीक्षा देखिए—

पारबती मन उपजा चाऊ। देखौं कुँवर कर सत भाऊ ॥
दहुँ यह बीच कि पेमहि पूजा। तन मन एक कि मारग दूजा ॥
भै सुरूप जानहुँ अपछरा। बिहँसि कुँवर कर आँचर धरा ॥
+ + +
हौं आछरि कबिलास की जेहि सरि पूजि न कोइ ॥
मोहिं तजि सँवरि जो ओहि मरसि कौन लाभ तोहि होइ ॥[4]

रत्नसेन अप्सरा के रूप पर नहीं डिगता जैसे विश्वामित्र, नारद आदि डिगते रहे हैं। वह 'मोहि दोसरे सौं भाव न बाता' कह कर अपने विशुद्ध प्रेम की एक निष्ठा प्रत्यक्ष करता है—

अब हौं तेहि जिउ देइ न पावा। तेहि अस आछरि ठाढ़ मनावा ॥
जौं जिउ देहु ओहि के आसा। न जानौं काह होइ कबिलासा ॥

---

१ जायसी ग्रंथावली जोगी खंड, पृ० ५३
२ वही, राजा गजपति संवाद खंड, पृ० ५६
३ वही, भूमिका भाग, पृ० २८
४ जायसी ग्रंथावली—महेश खंड, पृ० ६२ ६३

हौं कबिलास काह स करऊ । जाई कबिलास लागि जाहि मरऊ ॥
जाहि क बार जीवहि थारी । गिर उतारि लवदावहि हारी ॥
ताकर काह कहै जा धाई । दुखी जगत तेहि रउ बसाई ॥
ओहि न मागि कछु माया हो माहि माग करऊ ।
तहि रिगाग ओम क जिउ न रउ का रउ ॥'

पावती उस निश्चय ही पद्मावती का तपस्वी मान लती है । वह उसे 'बसत बगौरी पचा नागा' कहा पर मजबूर कर दता है । पावती का मान द्रवित हो जाता है तथा शिव स दया करने की माग करती है । महादेव का भेस कर उसकी प्रेम-पीर असीमित हो जाती है तथा वह पद्मावती के लिए फूट फूट कर रोने लगता है—

तस रोव जस जिउ जर गिर रत भो मागु ।
रोव रोव सब रोवहि सूत सूत भरि माँगु ॥'

स्वय शिव राजा की सहायता करते हैं समभाते हैं उसका माग निर्देश करते हैं । साथ ही वे उसे सिद्ध गुटिका भी देते हैं । इस प्रकार रत्नसेन का प्रेम सामान्य बावले का अस्वाभाविक प्रेम रहा है, वह पूर्ण समर्पित प्रेमी का प्रेम है । उसमें वासना या उसकी इच्छाओं को कोई स्थान नहीं है । अपने प्रेम म राजा की दशा अपार है । यह अपार दशा ही उस रूप-लाभ से दूर अत्यन्त प्रेमी कहने को विवश कर देती है ।

फारसी के सूफीकाव्यों म नायक अन्य विवाहित नायिकाओं स प्रेम तो करते हैं लेकिन इस प्रेम का आधार भी हृदय ही है । वे अपनी प्रेमिका के पति के लिए शालीनता का पालन करते हैं । डा० माताप्रसाद जी ने हिन्दी के समस्त सूफीकाव्य को ध्यान म रख कर केवल चंदायन के लोरिक को नायिका को भगाने के कारण अपयश दिया है । नहीं तो सूफी नायक विरह म तडप-तडप कर अपना ही मास गलाते हैं लेकिन अपनी धुन में धूनी रमाते वे थकते नहीं । वे आत्मा का संग्राम अस्त्र से नहीं, दुष्ट प्रयत्न स नहीं कूटनीति के छल कपट से नहीं, हृदय स जीतते हैं । इसीलिए ये हृदय-वीर नायक हैं । ये सभी महान विरही नायक हैं विरह किसी भी नायक स कभी भी छूटा नहीं है ।

कहसि दुक्ख मानुस कर आसा । जहा दुक्ख तह भोर निवासा ॥

१ जायसी ग्रन्थावली—महेश खण्ड पृ० ९३
२ वही पृ० ९३
३ जायसी ग्रन्थावली—पावती महेश खड पृ० ९३

जेहि हा दुक्ख होइ जग भीतर प्रीति होइ भ्रम ताहि।
प्रीति बात का जान बपुरा जेहि सरीर दुख नाहि ॥[१]

विरह प्रेम की जागति गति का नाम है, इस दृष्टि में लगातार विरह की गति उसे विशुद्ध प्रेमी ही सिद्ध करती है।

(२) रत्नसेन के चरित्र में अदूरदर्शिता तथा अतत्परता की भी आचार्य शुक्ल जी ने चर्चा की है।[२] इसका कारण यह है कि अलाउद्दीन के साथ राजा ने बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया। अपने राजमहल में लाना, भोजन कराना, शतरंज खेलना दर्पण में अपनी रानी को दिखाना, उचित नहीं है। राघव चेतन उससे क्रुद्ध होकर दिल्ली गया था, तथा वह कभी भी राजा का अहित कर सकता था। अपने उस क्रुद्ध शत्रु का भी उसे ध्यान रखना चाहिए था। साथ ही अलाउद्दीन के ऊपर एकदम विश्वास कर लेना उसके व्यक्तित्व की कमी को सामने लाता है। पहिले तो राजपूती परम्परा की दृष्टि में उसे कभी अलाउद्दीन को किसी भी प्रकार से पदमावती को दिखाने की बात नहीं माननी चाहिए थी। जायसी ने फिर भी उससे पर्दे के भीतर दर्पण में दिखाकर राजपूती गौरव की रक्षा की है। लेकिन रत्नसेन अलाउद्दीन के अमित्र भाव को नहीं जान पाता है तथा बंदी बनता है। इस प्रकार एक सफल राजा के रूप में या नीतिज्ञ के रूप में, उसमें दक्षता का अभाव खटकता है। राजा में दूरदर्शिता तथा बुद्धि की जो तीक्ष्णता होती है वह उसमें कम है। 'रत्नसेन की व्यक्तिगत विशेषता की झलक हमें उस स्थल पर मिलती है जहाँ गोरा-बादल के चेताने पर भी वह अलाउद्दीन के छल को नहीं समझता और उसके साथ गढ़ के बाहर तक चला जाता है। दूसरे पर छल का सन्देह न करने से राजा के हृदय की उदारता और सरलता तथा नीति की दृष्टि से अपनी रक्षा का पूरा ध्यान न रखने में अदूरदर्शिता प्रकट होती है।'[३] वह 'सुहृद सम्मत' तथा 'कान्ता सम्मत' नीतियों को ठुकराता है। अपने विश्वास पात्र सरदारों की मन्त्रणा पर ध्यान नहीं देता। आँख मूँद कर सब कुछ करता है इससे उसमें भविष्य दृष्टि का अभाव लगता है तथा वह राजा होता हुआ भी नीति से अनभिज्ञ लगता है।

दूसरी ओर अलाउद्दीन से युद्ध करने के लिए वह सभी राजाओं को पाती भेजता है। साथ ही अपने निकटतम सम्बन्धी गन्धवसेन को कोई भी खबर नहीं देता। जायसी ने सिंहल के राजा को अपार प्रतापी तथा शक्तिमान चित्रित किया है। ऐसे बलशाली व्यक्ति को इस घोर विपत्ति में स्मरण न करना भी राजा की बड़ी भूल है।

---

१ मझन—मधुमालती (स० माताप्रसाद गुप्त) पृ० ११६

२ जायसी ग्रन्थावली—भूमिका भाग पृ० ११२

३ वही, पृ० १२३

यदि उसने अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए गन्धर्वसेन को नहीं बुलाया है, तो भी बात कुछ जमती नहीं। साथ ही सिंहलगढ़ में दूत भेजना भी कठिन नहीं था। सिंहल के व्यापारी लगातार आते जाते थे, ऐसी कोई यात्रा असुविधा भी नहीं थी। अतः उस रूप विषम स्थिति में न बुलाना भी अदूरदर्शिता प्रकट करती है।

धार्मिक दृष्टिकोण से भी राजा ने उदारता दिखाने का प्रयत्न किया है। वह हिन्दू होकर भी मुसलमान के साथ भोजन करने को तैयार हो जाता है। इतिहास से स्पष्ट है कि उस काल की धार्मिक स्थितियों में ऐसा असम्भव है। लगता है रत्नसेन अलाउद्दीन के प्रताप के सामने झुक गया था और टूट गया था। वह सगरौन के सिद्धान्त पर उतर आया था जिससे उसे पूर्ण असफल रहना है।¹ रणथम्भौर के वीर नायक हम्मीरदेव ने कभी भी ऐसा नहीं किया तथा अपनी मर्यादा से डिगे नहीं। राणा प्रताप कभी भी अकबर के साथ ऐसा करने को तैयार नहीं हुए। राजपूती परम्परा पर अतः रत्नसेन का यह कार्य कलंक ही है।

इस तथ्य का एक कारण यह भी है कि जायसी ने पद्मावत का उत्तरार्ध इतिहास के साथ सूत्र सम्बद्ध किया है, शायद वहाँ जायसी का इतिहास-बोध प्रबल हो गया था। इतिहास में रत्नसेन अलाउद्दीन से विवश होकर उसे अपनी रानी दिखाता है तथा वह बन्दी बनाया जाता है। जायसी ने ऐतिहासिक तथ्यों को विकृत नहीं किया तथा अतिरिक्त पक्षपात के चक्कर में न पड़ते हुए सही रूप को प्रस्तुत किया है। यदि रत्नसेन में नीति की दूरदर्शिता दिखाते तो इतिहास के साथ न्याय न होता। अतः इतिहास-बोध का पालन करने के कारण भी उन्हें अदूरदर्शिता का पक्ष लेना पड़ा है।

वस्तुतः रत्नसेन पद्मावती के लिए भी बिना सोचे-समझे ही निकल पड़ता है। यह ठीक है कि वह बाधा को बाधा नहीं मानता, राजा होने के नाते उसे थोड़ा सा विचार भी करना चाहिए था। लोक दृष्टि से यहाँ भी उसकी अदूरदर्शिता ही प्रकट होती है। साथ ही साथ राजा हीरामन के हाथ का खिलौना सा बन गया है। जब सभी विषयों में वह हीरामन को पण्डित मानता है, तब अलाउद्दीन के आक्रमण के समय हीरामन की बुद्धिमानी का लाभ क्यों नहीं उठाता। युद्ध की भयाक्रान्त स्थिति तथा राजा की घबराहट में उसका चरित्र दया का पात्र बना है। बन्दी बन जाने पर पद्मावती को अपना सन्देश भेज कर उसने बुद्धिमानी ही की है तथा उस विपत्ति में भी पद्मावती को न देने की ठानने के कारण उसके चरित्र की थोड़ी रक्षा हुई है। वस्तुतः एक महान् राजा की दृष्टि से उसका चरित्र सराहनीय नहीं है।

---

१ डा० ईश्वरी प्रसाद—भारत का इतिहास खंड २

(३) राजा रत्नसेन में अधैर्य, अविश्वास कूटनीतिज्ञता का अभाव, सफल शासक के गुण तथा सफल पति के गुण कम हैं। पद्मावती के रूप संसार में खोकर वह नागमती को दूध की मक्खी की तरह दूर फेंक देता है। वह उसे कभी भी याद नहीं करता, जब कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उसे याद करना चाहिए था। पक्षी के द्वारा एक रात का अचानक नागमती की कहानी सुनकर विकल हो जाना तथा फिर उस सती के प्रति सहानुभूति दिखाना, बड़ा दिखावा लगता है।

नागमती के प्रति राजा की आरम्भिक उपेक्षा बड़ी कठोर है जो उसे मानवीय धरातल से थोड़ा नीचा कर देती है। उसे एकदम ठुकराना किसी भी आदर्श पति की दृष्टि से औचित्यपूर्ण नहीं है। इस प्रकार नागमती की पावनता, कामनता का दमन ही रत्नसेन के प्रति हमारे मन में घृणा जागती है तथा लोक दृष्टि से यह कार्य उसके लिए गर्हित अवश्य है। अपनी मां की उपेक्षा, मंत्रियों, सम्बन्धियों की उपेक्षा थोड़ा आश्चर्य पैदा करती है।

राजा का नाराज होकर राघव चेतन को निकाल देने वाली घटना भी उनकी बुद्धिमत्ता नहीं प्रकट करती। राघव ऐसा पण्डित जिसे यक्षिणी सिद्ध थी, तथा जो यक्षिणी के प्रभाव से कुछ भी करने में समर्थ था उसे वाममार्गी तथा वेद-विरुद्ध कह कर निकाल देना अधिक संगत बात नहीं है। ऐसे गुणी को देश निकाले का दण्ड, राजा की अदूरदर्शिता का प्रमाण सा है। दूसरी ओर पद्मावती इस गुण से कभी भी अप्रसन्न नहीं है। वह सूर्य ग्रहण के दान का बहाना लेकर उसे अपना अमूल्य कंगन देकर प्रसन्न करना चाहती है।

कंगियान धनि आगम विचारा। भल न कीन्ह अस गुनी निसारा ।।
जेहि जाखिनी पूजि ससि काढ़ा। सूर के ठांव करै पुनि ठाढ़ा ।।

जायसी ने पद्मावती में भविष्य दृष्टि का संकेत किया है, लेकिन रत्नसेन को राघव से आघात दिखाकर उसे अदूरदर्शी बना दिया है। इसी अदूरदर्शिता का परिणाम यह हुआ है कि उसने दिल्ली जाकर अपने अपमान का बदला लेने के लिए अलाउद्दीन में वासनात्मक अग्नि को प्रज्वलित किया है, तथा युद्ध के नगाड़े बजवा दिए हैं। इसी युद्ध में गोरा तथा बादल ऐसे अमर सरदारों को अपने प्राणों की बाजी लगाकर राजा की भूल का ठीक करना पड़ा है।

राजा को मूर्च्छा तथा मरण की स्थिति में पाकर भी शंका उठती है। वह पुनः पुनः मरने के लिए तैयार हो जाता है। फिर भी डा० सुधीन्द्र ने पदमावत के नायक पर विचार करते हुए लिखा है कि 'परन्तु इनके साथ लोक दृष्टि से कुछ अवगुण भी दिखाई देते हैं, जैसे आतुरता (पदमावती को पाने की इतनी व्यग्रता होना) दुराग्रह (जो बात बात पर मरने को उद्यत हो जाते हैं) स्त्रैण (चारी) जो

१ जायसी ग्रन्थावली-- राघव चेतन देस निकाला खंड, पृ० २००

पद्मावती का पाने के लिए सिंहलगढ़ छिद्र पर युगल म प्रकट होती है परन्तु इन सबकी अच्छाई बुराई उनके उद्देश्य पर अवलम्बित है । इन वृत्तियों का निरूपण रूप से नहीं देखा जा सकता। फिर उनकी ये सब वृत्तियाँ ही कवि के प्रधान लक्ष्य, आध्यात्मिक संकेत देने की वृत्ति के कारण प्रकट हुई हैं। चोरी सेंध में घुसना लौकिक प्रेम म ही बुरा है पारलौकिक प्रेम में वह यौगिक क्रियाओं की अभिव्यंजना करता है।[1] जायसी ने प्रेम पन्थ के जिस अमर साधक का रूप को लिया, वह सभी दोषों का परिहार कर देता है। अपनी समस्त लौकिक वृत्तियों पर विजय पा लेना भी असाधारणत्व की ही सृष्टि है। 'वह जानता है कि उसका प्रेम पन्थ शूलमय है, किन्तु वह यह भी जानता है कि साधना की राह में शूल भी फूल हो जाते हैं। वह जानता है कि साधना की राह अगिधार और मझधार सी है। उसका लक्ष्य अत्यन्त दूर है— सात सागर पार।' शिवसहाय जी ने भी नायक के समस्त आरोपों का उत्तर इस प्रकार दिया है कि प्रियतमा की प्राप्ति उसकी सिद्धि है। प्रेम की साधनावस्था में तो उसके शील के परम भूषण हैं किन्तु साथ ही कतिपय प्रेम जन्य दूषण भी लक्षित होते हैं। वह पदमावती के लिए अधीर हो उठता है आत्मघात के लिए प्रस्तुत हो जाता है। स्वयं को उसका भिखारी बताता है अभीष्ट की प्राप्ति हेतु दुराग्रह करता है, सेंध लगाने तथा चोरी में तो वह कुशल ही है, साथ ही झूठ बोलने में परायण भी है। प्रेम-लोभ का दूषण भी उसमें है। किन्तु ये दूषण प्रेम जन्य होने के कारण उसके शील के भूषण हैं।[2] इस प्रकार पाठक जी ने सूफियों के प्रेम सिद्धान्त के आधार पर अपना मत स्थापित किया है।

जायसी के नायक पर लोक दृष्टि से विचार करने पर रूप लोभ, अर्थ लोभ, दुराग्रह अदूरदर्शिता भक्कीपन पत्नीव्रत धर्म का नाश मात्र वर्णन सुनकर ही प्रेम में मूर्च्छित होकर भटकने वाला व्यक्तित्व, राजकाज में ढीला, राघव के निष्कासन में राजनीतिज्ञ दृष्टि का लोप, शत्रु को अपनी स्त्री दिखाने की सहमति कूटनीतिज्ञता की कमी, अपने गोरा बादल से सरदारों पर अविश्वास, चोरों की तरह सिंघल में सेंध लगाने की घटना में व्यक्तित्व का पतन आदि अनेक दोष दिखाई देते हैं। आदर्शवादी भारतीय दृष्टि से अपनी प्रथम रूपवती सती नारी को छोड़कर अन्य की रट लगा लेना सर्वथा अनुचित है। पदमावती के लिए रत्नसेन की तड़फड़ाहट में निश्चय ही रूप जन्य विकार है तथा घोर संकटों के बाद उसका घोर भोग भी कवि ने वर्णित किया है। रत्नसेन ने जब हीरामन के मुख से पदमावती का अपार सौंदर्य वर्णन सुनकर हाथ पर छोड़ दिए हैं तथा बावला बनकर खूब रोया गाया है, यदि वसे

---

१ डा० सुधीन्द्र कविवर जायसी और उनका पद्मावत पृ० ७८

२ डा० शिवसहाय पाठक—पदमावत का काव्य सौन्दर्य, पृ० १८२

३ वही पृ० १८२

ही लोग में कोई सामान्य या असामान्य व्यक्ति करने लगेगा तो लोग उस पर थूकेंगे तथा सामाजिक बोध का उत्तरदायित्व उसे बहुत नीचा व्यक्ति साबित करेगा।

निष्कर्ष

जायसी ने शायद अपने नायक की मर्यादा का आध्यात्मिकता का महान पहिना कर पूर्ण बचा लिया है। 'एतिगरी' के माध्यम से सभी परिस्थितियाँ तथा ध्वनियाँ उत्पन्न की हैं कि वह लोकोत्तर भूमि पर खड़ा हो जाता है। जायसी ने रत्नसेन एसे एतिहासिक चरित्र में भारतीय कथानक रूढ़ियों तथा सूफियों के प्रेमवाद से एक नवीनता उत्पन्न की है उसे पूर्ण सूफी साधक की तरह उपस्थित किया है। 'पद्मावत' के नायक पर विचार करने के लिए यह अनिवार्य है कि सूफियों के प्रेम सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर ही विचार किया जाना चाहिए। सभी सूफी-काव्य नायिका प्रधान हैं तथा नायिका परम सत्ता का प्रतीक है। जायसी ने भी पद्मावती को परम सत्ता के प्रतीकार्थ में ही लिया है। रत्नसेन में इस दृष्टि से जो 'गुरु सुआ' के संकेत से जागरण उत्पन्न होता है, वह असम्भव नहीं लगता तथा रत्नसेन बावला नहीं एक आदर्श प्रेमी लगता है। श्री इन्द्रचन्द्र नारंग का यह मत उचित ही है कि वास्तव में इस काव्य के नायक के रूप में वह प्रेमी था—एसा प्रेमी जो पार्वती तथा लक्ष्मी तक की ओर आँख उठाकर नहीं देख सकता और अपनी प्रेमिका के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने में आगा-पीछा नहीं करता। वह पद्मावती के प्रति अनुचित प्रस्ताव करने वाले का सिर काट कर उसके सम्मान की रक्षा करने में प्राणोत्सर्ग करके काव्य जगत में अमर हो गया है। उसके जोड़ का दूसरा प्रेमी काव्य संसार में नहीं है।[1] इस प्रकार सभी विद्वान इस मत से सहमत हैं कि रत्नसेन प्रेम-मार्ग में अद्भुत और अपार जीवट का नायक है तथा प्रेम साधना की दृष्टि में वह अमर सूफी साधक है। प्रेम मार्ग में वह कहीं भी तिल भर भ्रष्ट नहीं होता तथा मृत्युंजयी स्वरूप को सामने लाता है। विपत्तियों के समक्ष असीम विश्वास उसे प्रेमजयी नायक सिद्ध करता है। 'अनुराग उसकी निधि है, विराग और कष्ट सहिष्णुता उसका संबल, त्याग उसका संकल्प है, प्रियतमा सिद्धि उसका व्रत।'[2] अपनी समस्त इच्छाओं से वह समर्पित नायक है। अतः रत्नसेन के चरित्र पर लगाये जाने वाले दोष प्राय निराधार हैं। वस्तुस्थिति यह है कि हम उसे लोकदृष्टि को ध्यान में रखकर उस पर दोष देते हैं, जबकि वह सूफी प्रेमसाधना से निर्मित पात्र है। उसे सूफी सिद्धान्तों के आधार पर स्वरूप प्राप्त आदर्श प्रेमी की दृष्टि से ही परखना चाहिए। प्रेम की दृष्टि से वह निर्दोष तथा अपने ढंग का सूफी संसार में अकेला नायक है।

---

१ इन्द्रपाल नारंग—पदमावत का अनुशीलन पृ० १७६-८०

२ डा० शिवसहाय पाठक पदमावत का काव्य सौंदर्य पृ० १८०-८१

तृतीय अध्याय

राम के नायकत्व का स्वरूप-विकास

राम के नायकत्व का उद्गम

प्राचीन काल से लेकर आज तक राम भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। भारतीय जीवन एवं साधना पर इस प्रिय नायक का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा है कि भारतीय आदर्श एवं मर्यादा का सम्पूर्ण स्वरूप उनके व्यक्तित्व में देखा जा सकता है। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि राम नाम का कभी कोई व्यक्ति रहा होगा, जो धीरे धीरे संस्कृति के विकास के साथ-साथ विकास प्राप्त करता गया। जिसके विराट तथा मधुर व्यक्तित्व के निर्माण में ऋषियों की मेधा, योगियों की चिंतन साधना, संतों महात्माओं भक्तों तथा न जाने कितने रहस्यों का हाथ है। जीवन तथा जगत् में जो कुछ महान अनुकरणीय दिव्यशक्ति से अलंकृत उन्हें लगा, वह राम के व्यक्तित्व में समाविष्ट कर दिया गया। राम गुण सागर बनकर हमारी सांस्कृतिक चेतना के प्रतिनिधि हो गए। राम मानव, महामानव, विष्णु रूप, अवतारीपुरुष, नारायण, पतित पावन, ब्रह्म निर्गुण-साकार लोक जीवन के एक मात्र आधार बन गये।

भारतीय जीवन को राममय देखकर लगता है कि राम के इस नायकत्व का विकास अचानक एक वर्ष या एक युग में नहीं हुआ। वह प्रत्येक युग में युगानुकूल बदलता रहा। युग के नवीन जीवन मूल्य राम के व्यक्तित्व में मिलते रहे और वे त्रेता सतयुग, द्वापर तथा कलियुग तक लगातार नमिक विकास को प्राप्त करते रहे हैं। तुलसी का नायक इसी युग युग की साधना का विकास प्राप्त रूप प्रस्तुत करता है। मध्ययुगीन महाकाव्यों में राम के नायकत्व पर विचार करने से पूर्व यह अनिवार्य सा प्रतीत होता है कि राम के व्यक्तित्व से प्रभावित साहित्य की विधाओं में चाहे वे प्राचीन महाकाव्य हों या नाटक, जन आख्यायिकाएं हों या गुरु शिष्य परम्परा की चर्चाएं, *उन पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाना चाहिए ताकि इस सांस्कृतिक नायक का* पूर्ण चित्र स्पष्ट हो सके। साथ ही यह भी देखा जा सके कि वे कौन सी राजनैतिक सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक अथवा नैतिक परिस्थितियां थीं जिन्होंने राम के व्यक्तित्व को तुलसी के मानस तक उतना विराट् व्यक्तित्व दिया। इस व्यक्तित्व में युग-बोध तथा जीवन बोध का कितना अपार रूप दर्शन है, यह रूप किन मानदण्डों या प्रतिमानों को लेकर विकसित हुआ है, इस रामकथा का इतना लोक व्यापी प्रचार

प्रसार कसे हुआ, तथा यही कथा भक्तो एव गहस्थो के जीवन का आधार कसे बन गई ? इन सभी प्रश्नो को देखते हुए राम के नायकत्व का क्रमिक विकास देखना अनिवाय है।

भारतीय सस्कृति के नायक राम की कथा के मूल स्रोत कितने हैं, तथा यह कथा कितनी प्राचीन है राम म कहाँ-कहा से क्या-क्या मिलता रहा है इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार होता रहा है, फिर भी विद्वान् किसी एक सवमान्य निष्कष पर नही पहुँच सके हैं। भारतीय ज्ञान साधना क प्राचीनतम साहित्य वेदो म राम तथा राम-कथा के पात्रो क नामो का उल्लेख मिलता है, किन्तु यह कहना सम्भव नही है कि वे प्राचीन नाम जो वेदो मे उपलब्ध होते हैं उनका सम्बन्ध आज तक प्राप्त होने वाली रामकथा से है। राम ऐतिहासिक पुरुष थे या केवल कवि कल्पना के आदशपुज ? इस प्रश्न का उत्तर लगभग सभी विद्वान् यही देते रहे हैं कि राम कथा कोरी कल्पना नही है, राम निश्चय ही ऐतिहासिक व्यक्ति रहे होंगे, जिनके चरित्र का बाद मे कवित्यपूण विकास हुआ।

वैदिक साहित्य मे राम

वदिक साहित्य मे 'राम' नामक अनेक व्यक्तियो का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है कही व राजा हैं, कही वे आचाय हैं, कही वे महिमाशाली यजमाना के साथ है।[1] ऋग्वेद म एक स्थान पर 'राम' प्रतापी यजमानो के साथ हैं।[2] इससे पता चलता है कि वे पराक्रमी राजा रहे होंगे एव यह राम ही पीछे से 'रामचन्द्र' या दाशरथि राम बनकर विराट् रूप प्राप्त कर गये। 'सायण' के अनुसार 'राम' का अथ 'रमणीय पुत्र' है।[3] डा० बलदेव प्रसाद का कहना है कि "राम नाम तो उस समय इतना प्रचलित था कि इस नाम के धारी लोग न केवल भारत मे ही पाये जाते थे किन्तु मिश्र के रमेस, ईरान के राम हुआस्त्र, असीरिया के रम्मन अथवा रामानु आदि मे भी उसकी छटा देखी जा सकती थी। भारत मे राम नाम तो इतना सामान्य बन चुका था कि 'रमणीय पुत्र' क अथ म भी वह प्रयुक्त होने लगा था।[4] ' इस प्रकार राम नाम की व्यापकता असदिग्ध है। ऐतरय ब्राह्मण म राम मार्गवेय' और जनमेजय को लेकर एक कथा प्राप्त होती है,[5] जिससे पता चलता है कि वे श्याम

१ वदिक कोश—श्री सूयकान्त, प० ४४६
२ प्रतद्दु शीमे पथवने वेने प्र रामे वोचम सुरे मघवत्सु।
—ऋग्वेद—१० ९३, १४
३ रामायण —५, ८, १३
४ डा० बलदेवप्रसाद मिश्र—मानस में राम कथा, प० ३
५ ऐतरेय ब्राह्मण —७, २७, २४

राम कथा एक ही युग की वस्तु प्रतीत होती है, जबकि वदिक युग के जीवन में आदर्श बन हुए थे जबकि वदिक देवताओं का प्राधान्य बना हुआ था + + + राम रावण का युद्ध भी आर्य-अनार्य समय की ही घटना है, जिसमें आर्यों की विजय हुई, पुन रामकथा के जिस आदिम रूप की कल्पना की गई है, उसी म नहीं, वाल्मीकि की कृति का जो मूल रूप विद्वानों ने स्थिर किया है उसम भी राम का रूप अवतार का नहीं महापुरुष का ही है। इसलिए रामकथा यदि वदिक युग की वस्तु नहीं तो उसके कुछ ही पश्चात् की है यह कदाचित माना जा सकता है।[1] राम के नायकत्व के बीज वदिक साहित्य म मानना चाहिए चाहे वे इन्द्र के रूप म हो अथवा प्रतापी राजा के रूप म। किन्तु उनका सकेत यहा अवश्य विद्यमान है। पार्जिटर ने भी वेदो के इस राम को परवर्ती परम्परा के नायक राम के रूप म स्वीकार किया है।[2] श्री विनायक चिन्तामणि वद्य का भी यही मत है।

रामायण मे राम

भारतीय परम्परा यह मानती है कि वाल्मीकि रामचरित्र के प्रत्यक्ष द्रष्टा थ अत वे समकालीन हैं। किन्तु इस तथ्य पर बडा विवाद है। राम स सम्बन्धित कथाए रामायण से पूर्व प्रचलित थीं, उनके प्रमाण मिलते हैं। यह कथा गुरु शिष्य परम्परा म चलती रही। मौखिक कथाओ को वाल्मीकि ने 'जन श्रुत' कह कर अपना लिया। रामायण को कुशीलव गा गा कर सुनाते रहे मौखिक परम्परा के ही कारण रामायण म पाठभेद है। लेकिन 'रामायण' के राम अथाह जीवट के सवगुण सम्पन्न उदात्त मानव हैं, । कवि न जीवन के समस्त आदर्श गुणो को राम के रूप म साकार कर दिया।[3] यहाँ राम का स्वरूप अवतार का नहीं, जनजीवन को प्रेरणा दने वाल महापुरुष का है। यही से राम अत्यन्त भव्य स्वरूप प्राप्त कर गये हैं।[4] परवर्ती परम्परा म राम के नायकत्व का आधार स्तम्भ यही काव्य है। पीछे

१ स० डा० धीरेन्द्र वर्मा—द्वितीय खण्ड, पृ० ३००

2 F E Pargiter—Ancient Indian Historical Tradition p, 170

3 ' Still as depicted by Valimiki Rama was a high-soulded hero and poets including those nameless one's who wrote Puranas in the name of old Risis, Particularly Bhava Bhuti still move highly exalted his character Rama therefore won a place in the heart of Indian people and that must hav soon let it to the foundation of cult

—R G Bhandevkar—Vaisnavism Saivism p 47

4 Rama was perhaps a Victorious historical king the hero of the second great Indian epic Ramayana

—Max Beber—The Religion of India, p 306

के बौद्ध तथा जैनियों के साहित्य में राम के जो उल्लेख मिलते हैं वे इस तथ्य के निश्चित प्रमाण हैं कि बुद्ध तथा महावीर स्वामी से पूर्व ही राम प्रख्यात नायक के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे।[१] उपर्युक्त मतों से स्पष्ट है कि 'रामायण' ही राम के नायकत्व का महत् प्रारम्भ है।

महाभारत में राम

'महाभारत' में राम कथा का चार स्थानों पर उल्लेख है। इसमें 'रामोपाख्यान' सर्वाधिक प्रख्यात तथा महत्वपूर्ण माना जाता है। 'रामोपाख्यान' में ब्रह्मा देवताओं से कहते हैं कि विष्णु मेरे आदेश के अनुसार अवतार लेकर रावण की हत्या करेंगे।[२] 'स्वर्गारोहण' सर्ग में भी रामावतार का उल्लेख है।[३] 'आरण्यक पर्व' में एक स्थान पर राम का दशरथ गृह निवास तथा रावण-वध का वर्णन है।[४] 'रामोपाख्यान' में रावण की कथा तथा 'शान्ति पर्व' में शम्बूक-वध का वर्णन मिलता है।[५] इन सभी अध्यायों को देखकर ही डा० वेबर ने 'रामोपाख्यान' को ही रामकथा का आधार माना है।[६] किन्तु उनका मत समीचीन नहीं है। रामायण निश्चय ही महाभारत से पूर्व की रचना है। महाभारत के पात्रों का संकेत तक रामायण में नहीं है जबकि महाभारत रामकथा का उल्लेख करता है। अतः राम कथा का आधार भी रामायण पर ही अधिक टिका है। 'आरण्यक पर्व'[७] में

१ 'अनेक बार पण्डितों ने यह सिद्ध करना चाहा है कि रामायण बुद्ध के बाद रची गयी और वह महाभारत से भी बाद की है। किन्तु इससे समस्याओं का समाधान नहीं होता। भारतीय परम्परा एक स्वर से वाल्मीकि को आदि कवि मानती आई है। यहाँ के लोगों का विश्वास है कि रामावतार त्रेता युग में हुआ था।"

—श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'— संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ६६

२ तदयमवतीर्ण सौ मन्ति योगाञ्चतुर्भुज।
विष्णु प्रहरतां श्रेष्ठ स कमतत्करिष्यति ॥५॥ ३,२६

३ वेदे रामायणे पुण्डे भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरि सवत्र गीयते ॥२३॥ १८,६

४ विष्णुना वासता चापि गृहे दशरथस्य च।
दश ग्रीवोहतश्छन्न सयुगे भीम कर्मणा ॥१८॥ ३,२६६

५ श्रूयते शम्बुके शूद्रे हते ब्राह्मणदारक।
जीवतो धर्मासद्य रामत्सत्यपराक्रमात ॥६२॥ १२, १४६

६ ऐ० वेबर—अनादि रामायण—पृ० ६५

७ महाभारत आरण्यक पर्व—३ १४७, २८, ३८

हनुमान ग्यारह श्लोकों में राम बनवास और सीताहरण से लेकर अयोध्या लौटने तक की कथा को सक्षप म कहते हैं। द्रोण पव म 'पोडश राजोपाख्यान'[१] के अन्तगत भी रामकथा प्राप्त है। नारद राम-महिमा के उद्घाटन के लिए अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्ध-काण्ड तक की कथा कहते हैं। राम यहाँ देवताओं, ऋषियों, प्राणियों आदि सब म महान घोषित किए गए हैं। 'शान्ति पव' म कृष्ण धमराज का राम के अश्वमेध यज्ञ की कथा सुनाते हैं।[२] रामोपाख्यान तथा रामायण म साम्य की अधिकता है। 'रामोपाख्यान के कुछेक स्थल तो 'रामायण' के बिना स्पष्ट ही नहीं हो सकते[३], इससे भी रामायण की प्राचीनता सिद्ध है। 'वनपव' का रामोपाख्यान भी रामायण का ही लघु रूप प्रस्तुत करता है। यहाँ तक आते आते राम के नायकत्व म ईश्वरत्व का समावेश हो जाता है। रामायण तथा महाभारत के समय से ही परशुराम तथा बलराम की कथाए प्रचलित थीं। शायद इसीलिए कामिल बुल्के का मत है कि रामायण के नायक को निर्दिष्ट करने के लिए विशेषण का सहारा लेना आवश्यक था, यही कारण ह कि 'दाशरथिराम' तथा 'रामभद्र' के स्थान पर 'रामचन्द्र शब्द मिलता है।[४] अपने मत की पुष्टि मे उन्होंने निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किए हैं—

१ राम—पूर्ण चन्द्रानन ।[५]
२ राम—पूर्णचन्द्राभिवोदितम् ॥[६]
३ राम—सोमवत्प्रियदर्शन ।[७]

'रामचन्द्र' पूरा नाम सम्पूर्ण 'रामायण' मे केवल एक ही बार प्राप्त होता है।[८]

बौद्ध साहित्य में राम

राम का व्यक्तित्व इस समय तक बहुत लोकप्रिय हो गया था। बुद्ध ने स्वय अपने को राम का ही रूप कहा है। बौद्धो ने अपने जातक साहित्य मे 'राम-कथा'

---

१ महाभारत—द्रोणपव—१, ८, ४३७, ४२२
२ महाभारत—शान्तिपव—१२, २९ ४६, ५५
३ दे० वी० एस० सुकथाकर—रामोपाख्यान एण्ड महाभारत, मेमोरेशन, पृ० ४७८
४ दे० कामिल बुल्के—रामकथा—उत्पत्ति और विकास पृ० ११
५ रामायण, ५, ३४ २८
६ वही, ६ ३३, ३२
७ वही १, १, १८
८ 'रामचन्द्र महावृष्ट्या ग्रस्त रावण राहुणा ॥'६, १०२, ३२

को जब तब स्थान दिया है। प्राचीन बौद्ध साहित्य मे राम कथा से सम्बधित अब तक तीन जातक मिले हैं जिनम स दशरथ जातक बहुत प्रख्यात है।[5] 'जतवन म बुद्ध द्वारा एक कथा इस प्रकार कही गयी ह कि किसी गृहस्थ का पिता मर गया था उस ने सभी काय शोक से अभिभूत होकर त्याग दिए थ। भगवान बुद्ध न उसे उपदेश दिया कि प्राचीन काल म पण्डित लोग पिता के मरने पर शोक सन्तप्त हो सवथा निष्क्रिय नही हो जाते थ। उन्होने दशरथ के स्वधाम म जाने पर राम के असीम धय का उदाहरण दिया है। यही पर स्वय को बुद्ध ने राम स्वीकार किया है। इस कथा स भी यही पुष्टि होती है कि भगवान बुद्ध से पूव राम के गुणो की चर्चा पण्डितों का प्रिय व्यसन था तथा राम के गुणो की धाक उस समय के चिन्तको तथा समाज सुधारको पर जम चुकी था।[6] कोई भी व्यक्ति अपने को राम कहकर धन्य समझता था। गौतम का अपने को राम कहना यही सिद्ध करता है। रामायण महाभारत तथा दशरथ जातक के सात एक समय क ही प्रतीत होन ह *किन्तु राम कथा के सम्बन्ध म रामायण का ही विशेष प्रमाण है। जातकों से जो* रामकथा हम प्राप्त होती है उस पर भी रामायण का ही प्रभाव मानना चाहिए।

जन साहित्य मे राम

जन साहित्य म राम का विस्तत वणन प्राप्त है। राम, लक्ष्मण तथा रावण को जनियो ने महापुरुषो की कोटि म रखा है। त्रिषष्टि लक्षण महापुरुष मे राम, लक्ष्मण तथा रावण क्रमश बलदेव वासुदव तथा प्रतिवासुदेव माने जाते हैं। वासुदव अपने बडे भाई बलदेव क साथ प्रतिवासुदेव का वध करत हैं। वे दिग्विजय करने के उपरान्त चक्रवर्ती सम्राट बन जात हैं। यहा यह द्रष्टव्य है कि प्रतिवासुदेव का वध बलदेव (राम) नहा करत वासुदेव (लक्ष्मण) करते हैं। इसस ध्वनित है कि वे राम से अधिक शक्तिशाली लक्ष्मण को मानत हैं किन्तु परवर्ती परम्परा म ऐसा नही है। जनियों ने राम-कथा का अपने ढग से प्रयोग किया है। फिर भा राम की महत्ता तथा उनके व्यक्तित्व का विस्तार यहाँ भी है। इससे भा स्पष्ट है कि राम सभी धर्मों म प्रवेश कर गय थ तथा एक आदश के रूप म वे अपनाये जाने लगे थे। इन समस्त जन काव्यो म राम का व्यक्तित्व एक महापुरुष का है।

---

५ दे० फादयाल, ए जातक भाग ३ १ ४ ४६१

६ जातक स्वत साक्षी हैं कि उन्होंने अपना उनक वक्ता थी गौतम बुद्ध ने 'पौराणिक पण्डितों' स यह राम कथा पाई थी। अतएव बौद्ध लोग इस राम कथा क आदि प्रवर्तक नहीं कह जा सकते॥

—डा० बल्देवप्रसाद—मानस म राम कथा, पृ० ८

राम कथा सम्बन्धी गाथाएँ तथा आख्यानक काव्य

बौद्धों के त्रिपिटका से स्पष्ट झलकता है कि बाल्मीकि रामायण से पूर्व गाथाएँ प्रचलित हो चुकी थी। 'आदि रामायण' इसी परम्परा का स्फुट आख्यान काव्य है। विद्वान 'बाल्मीकि कृत रामायण' से भी पूर्व 'आदि रामायण' का समय निर्धारित करते हैं। इसमें राम के क्षत्रियत्व के आदर्श का मुक्तगान है। कवि ने राम की बड़ी ही विराट मूर्ति यहाँ प्रस्तुत की है। लेकिन आज विद्वान यह सिद्ध कर चुके हैं कि बाल्मीकि रामायण ही आदि-काव्य है और शेष परवर्ती रचनाएँ हैं। राम के नायकत्व का जितना विकास बाल्मीकि रामायण में दृष्टिगोचर होता है, उतना पूर्व या समकालीन के किसी भी ग्रन्थ में नहीं होता। रामायण में राम का चरित्र आर्य संस्कृति का आदर्श चरित्र है। अतः इन गाथाओं तथा आख्यानक काव्यों का महत्व अधिक नहीं है।

पुराण शैली में राम

सामान्य धारणा यह है कि पुराणों के महान ज्ञान का प्रवर्तन प्रजापति ने किया। व्यास ने पुराण विद्या का प्रचार किया। अष्टादश पुराणों में विष्णु पुराण, ब्रह्म पुराण, भागवत पुराण आदि का विशेष महत्व है। पुराण-शैली में लिखी 'अध्यात्म रामायण' भी मिलती है। पुराणों से प्रभावित इन रामायणों में भक्ति-स्वर का प्राधान्य है। जनसामान्य भगवान में विश्वास रखता हुआ उनको भक्ति में अपने को लय करना चाहता है। इसका संकेत 'आनन्द रामायण' तथा 'अद्भुत रामायण' में मिलता है। 'भुशुण्डि रामायण' से लगता है कि तुलसीदास ने काग गरुड़ सम्वाद उसी का आधार बनाकर लिखा है। इन सभी में बाल्मीकि रामायण' का ही अनुसरण है। हाँ, इनके भीतर विष्णु का राम के रूप में अवतार होने का संकेत है तथा राम के व्यक्तित्व में उपासना पद्धति का तीव्र रूप यहाँ मिलता है।

राम और अवतारवाद

धीरे धीरे विष्णु के दो रूप कृष्ण तथा राम, कृष्णाश्रयी वैष्णव शाखा तथा रामाश्रयी वैष्णवशाखा के रूप में विभक्त हो गये। कृष्णाश्रयी शाखा की सर्वप्रथम विशेषता यह रही कि यहाँ कृष्ण को विष्णु सर्वप्रथम माना जाता रहा तथा बाद में

अनेक रूपों की कथाएँ प्रचलित हुई।[1] राम के विषय में इसका ठीक उल्टा है, प्राचीन साहित्य इस तथ्य का प्रमाण है कि रामकथा न जाने कब से प्रसिद्ध थी,[2] न जाने इस कथा का कितना प्रचार प्रसार होता रहा और राम केवल एक नर चन्द्रमा या महामानव के रूप में आदरणीय रहे। अवतार के रूप में विष्णु राम का रूप बहुत बाद में प्रचलित हुआ। राम विष्णु के अवतार कब से माने जाने लगे, इस विषय पर बड़ा विवाद है। डा० भण्डारकर का मत है कि ग्यारहवीं शती में राम का विष्णु रूप में अवतार का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।[3]

भारत में अवतारवाद की भावना कब प्रचलित हुई, कुछ निश्चित कहना कठिन है। विद्वान अवतारवाद की भावना को शतपथ-ब्राह्मण' से स्वीकार करते हैं।[४] आरम्भ में विष्णु की अपेक्षा प्रजापति का महत्व अधिक हो गया। प्रजापति ने मत्स्य, कूर्म, वराह आदि का अवतार धारण किया। परम्परा में परिवर्तन आया तथा परवर्ती काल में प्रजापति से विष्णु का महत्व अधिक हो गया तथा वे अवतारवाद में प्रतिष्ठा पा गये। 'महाभारत के नारायणोपाख्यान'[५] में वाराह तथा विष्णु का सम्बन्ध मान लिया गया। वामनावतार तथा नृसिंह अवतार आरम्भ से ही विष्णु से सम्बन्धित हैं।[६] कृष्ण का विकास हुआ और उनके साथ साथ अवतारवाद में नया

१— अवतारवाद के इस ऐतिहासिक क्रम के अनुसार श्रीकृष्ण तथा राम दोनों विष्णु के प्रारम्भिक अवतारों में माने जाते हैं। 'महाभारत' और वाल्मीकि रामायण में देवों के सामूहिक अवतारवाद का सम्बन्ध क्षत्रियों से ही अधिक रहा। दवी राज उत्पत्ति के समयक मनु ने मनुस्मृति में राजाओं के शरीर में विभिन्न देवों का अंशावतार माना है। वैष्णव अवतारवाद में क्षत्रिय राम और कृष्ण तत्कालीन ब्राह्मण भक्तों के उपास्य रूप में प्रचलित हुए।

—डा० कपिलदेव पाण्डेय मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, पृ० १५

2 Max Bcber—The Religion of Indin, p 307

3 The Cult of Rama therefore must have come into existence about the eleventh century

R G Bhahdarkar—Vaisnavism, Saivism p 47

४ शतपथ ब्राह्मण, ८, १, १

५ नारायण उपाख्यान—१२, ३१, ७२

६ एच० याकोबी—इनसाइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग ७

परिवत्त न आया तथा अवतारवाद म प्रेमरूपा भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। भागवतो के उपास्यदेव वासुदव कृष्ण थे जिनका विष्णु से आरम्भ म कोई सम्बन्ध ज्ञात नही होता है। सम्भवत तीसरी शताब्दी ई० पू० मे वासुदव कृष्ण तथा विष्णु की अभिन्नता स्थापित हुइ।[1] राम की लोक कथा का व्यापकत्व उसे अवतारवाद की ओर मोड़ कर ले गया। 'एक ओर अवतारवाद की भावना फलती जा रही थी, दूसरी ओर कई शताब्दियो से राम का चरित्र भारतीय जनता के सामन रहा था। रामायण की लोकप्रियता के साथ साथ राम का महत्व भी बढ़ता रहा, उनकी वीरता के वर्णन म अलौकिकता की भावना भी बढने लगी। रावण पाप और दुष्टता का प्रतीक बन गया और राम पुण्य और सदाचार का। अत इस विकास की स्वाभाविक परिणति यह हुई कि कृष्ण की भाति राम भी विष्णु के अवतार माने जान लगे।'[2] बुद्ध भी छठी शताब्दी म विष्णु के अवतार माने जाने लगे थे। नारायण उपाख्यान'[3] म विष्णु के छ अवतारा की सूची इस प्रकार है— (१) वाराह (२) नसिंह, (३) वामन, (४) भार्गव राम (५) दाशरथिराम, (६) वासुदेव कृष्ण।

'हरिवंश पुराण'[4] म चार बार विष्णु के अवतारो की सूचना मिलती है। 'भागवत पुराण,[5] म दो बार बाइस तथा एक बार इक्कीस अवतारो के नाम गिनाए गए है जिनके नामो की सूची देना यहाँ समीचीन नही है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि राम के चरित्र का आरम्भिक रूप एक आदर्श पुरुष का रहा होगा। उनका चरित्र जसे जसे लोकप्रिय होता गया वसे वसे उसम अद्भुत तत्व या अलौकिकता का समावेश होता गया। बौद्ध साहित्य म भगवान तथागत की राम के रूप म कल्पना है। राम ने रामायण म नर रूप म, महाभारत म क्षत्रिय रूप मे, ब्राह्मणो मे विष्णु अवतार रूप म तथा पुराणो म भक्त-वत्सल इष्टदेव के रूप म स्थान प्राप्त किया। राम की कथा का सास्कृतिक गौरव इतना बढ़ा कि भारतीय जीवन का कण कण राम म मिलकर धन्य हो गया। अखण्ड भारत की सास्कृतिक चेतना के नायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम बनत गय। विष्णु का राम रूप म अवतार सम्पूर्ण भारतीय वाङमय म प्रतिष्ठित हो गया।

---

१ एच० चौधरी—अर्ली हिस्ट्री आव दि वैष्णव सेक्ट, पृ० ६३
२ डा० कामिल बुल्के—राम कथा, उत्पत्ति और विकास, पृ० १४६
३ महाभारत—१२, ३२६ ७२, ६२
४ श्रीमती वीणापाणि—हरिवंश पुराण का सास्कृतिक अध्ययन पृ० ४०
५ भागवत पुराण—१, २, ३ २,७

धार्मिक साहित्य में राम का समन्वित रूप

अवतारी राम धार्मिक नेता बन गये धीरे धीरे सम्पूर्ण भारतीय धर्म साधना मे वे एकाधिकार प्राप्त कर गये। उनका व्यक्तित्व जीवन म मर्यादा का प्रतीक बन गया और धर्म म यह धार्मिक नेता प्रेरणा का अग्रदूत बन गया। भक्ति-मार्ग का वेदो म मूल तथा भागवत धर्म म विकास मिलता है। सम्भव है कि भागवत का भक्ति मार्ग बौद्ध तथा जैन धर्मों की प्रतिक्रिया स उत्पन्न हुआ हो। धीरे धीरे ब्राह्मण धर्म का समन्वय हो गया और वैष्णव धर्म की उत्पत्ति हुई। भक्ति भावना विष्णु का आश्रय पाकर विस्तार पाने लगा। विष्णु के अनेक अवतार माने जाने लगे, जिनमे रामावतार भारतीय संस्कृति के अधिक अनुकूल पडा। फिर भी भागवत धर्म, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र भक्ति शास्त्र रामानुज निम्बार्क तथा वल्लभ के सम्प्रदायो म कृष्णावतार को एकाधिकार मिला।[1] रामावतार का संकेत तो बहुत पहिले मिला था लेकिन राम के साथ भक्ति भावना का संकेत बहुत बाद म मिला।[2] वैष्णव संहिताओ तथा उपनिषदो म राम पूजा तथा राम भक्ति का गम्भीर प्रतिपादन है। ऐसे ग्रन्थो की रचना सवप्रथम रामानुज सम्प्रदाय म हुई। अपने भाष्य म उन्होने कृष्ण तथा राम का प्रतिपादन किया। संहिता म शक्ति का सम्बन्ध भी विष्णु से हो गया। यही शक्ति सीता तथा विष्णु राम बन गये।[3] राम विषयक तीन उपनिषदें सुरक्षित है। (१) रामपूर्व तापनीय (२) रामोत्तर तापनीय (३) रामरहस्योपनिषद्। मुक्तिकोपनिषद् मे हनुमान परमात्मा के रूप मे राम की वन्दना करते हैं। भगवद्गीता के अनुकरण पर रचित रामगीता' नामक ग्रन्थ का उल्लेख डा० कामिल बुल्के ने किया है जिनमे वेदान्त के आधार पर राम के परम ब्रह्मत्व का प्रतिपादन है। गीता की भांति इसम भी अठारह अध्याय है। रामानन्द ने 'वैष्णव मताब्ज भास्कर' तथा श्री रामार्चन पद्धति म विष्णु तथा लक्ष्मी के स्थान पर राम सीता को अपना आराध्य माना है। दक्षिण भारत स आलवारो की राम भक्ति धारा उत्तरी भारत म आई।[4] रामानन्द ने चौदहवीं शताब्दी म इसी राम भक्ति

१ डा० बलदेवप्रसाद मिश्र—तुलसी दर्शन, पृ० ५१

२ डा० कामिल बुल्के—रामकथा उत्पत्ति और विकास, पृ० ५५

३ मुक्तिकोपनिषद्— रामत्व परमात्माऽसि सच्चिदानन्द' अध्याय १ ४

४ (१) भक्ति द्राविड ऊपजी लाये रामानन्द।
परगट किया कबीर ने, सप्त द्वीप नव खण्ड॥

(२) उत्पन्ना द्राविडे साहं, कर्णाटे वृद्धि गता।
स्थिता किंचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णता गता। पद्म पुराण

का प्रचार किया।[1] कबीर ने निर्गुण राम को अपनाया। आगे चल कर राम का अनेक रूपों में विकास 'मानस' में हुआ। इसीलिए तुलसी ने मानस को 'नाना पुराणनिगमागम सम्मत रघुनाथ गाथा'[2] का नाम दिया है।

भक्ति धारा में राम के नायकत्व का विकास कृष्ण के नायकत्व के विकास के बाद में हुआ, अतः उन पर कृष्ण की मधुरा भक्ति का प्रभाव स्वाभाविक था[3] और राम भक्ति में रसिक-सम्प्रदाय का जन्म हुआ।[4] कृष्ण के नायकत्व में आनन्द कला का प्रसार तथा राम में लोक-मर्यादा तथा सम्बन्ध का विकास हुआ।[5]

पौराणिक साहित्य में राम

पौराणिक साहित्य में राम का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुआ। इन गाथाओं में राम के महान गुणों का लेकर विशद चर्चा है। पौराणिक साहित्य में राम पर ईश्वरत्व की इतनी प्रतिष्ठा की गई कि वान्ह में व सदैव-सदैव के लिए उसी रूप में अमर हो गये। हरिवंश पुराण'[5] में संक्षिप्त रामचरित्र उपलब्ध होता है। धरा पर धर्म की स्थापना के लिये रामावतार, पिता की आज्ञा से वनवास तथा अपने अतुल पराक्रम से देवताओं को मुक्ति देने के लिए असुरराज रावण के वध तक की एक कथा है। इसमें राम राज्य का वर्णन बड़ा अद्भुत है। लगता है कि तुलसी ने अपने रामराज्य-वर्णन में इसका अवश्य ही उपयोग किया होगा। आदर्श राजा के रूप में उनका यह रूप जन्हें ही लोकरंजनकारी नायक का है। विष्णु पुराण में भी राम कथा लघु रूप से प्राप्त है। भागवतपुराण अग्निपुराण नारदीयमहापुराण, तथा पद्मपुराण आदि में राम के गुणों का वर्णन मिलता है। उपपुराणों में विष्णु धर्मोत्तरपुराण नृसिंहपुराण शिवमहापुराण, श्री देवी भागवत पुराण (इसमें नवरात्रिमहात्म्य की कथा) आदि प्रसिद्ध हैं। देवी भागवतपुराण में राम नवरात्रि का व्रत रखते हैं शक्ति की आराधना में पूर्ण समर्पण के भाव से जुट जाते हैं। यहां पर राम का रूप एक धारव्रती योगी का आता है जो साधना पद्धति तथा अजेय आत्मशक्ति से शत्रु को जीत लेता है।

---

१ डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३४१

२ रामचरित मानस—पृ० १

३ डा० भगवतीप्रसादसिंह—राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय पृ० ७६

४ वही पृ० ७७

५ हरिवंश पुराण —२ ९३ ६ ७

अनेक रामायणों में राम

राम के नायकत्व मे विकास की दृष्टि से अनेक रामायणों का भी महत्व है। राम देश के कण कण, म किस प्रकार रम गये थे, भारतीय जीवन कितना राममय बन गया था इसका प्रमाण यह रामायणें प्रस्तुत करती हैं। अनेक राम कथा सम्बन्धी रामायणों की सूची से लगता है कि प्रत्येक कवि इस महान चरित्र का गुण गान करने मे अपने को धन्य समझता रहा होगा। महारामायण, सवतरामायण, लोमश रामायण, अगत्स्य रामायण मञ्जुल रामायण सोपद्यरामायण रामायण महामाला, सौहाद्र रामायण, रामायण मणिरत्न चन्द्र रामायण मन्द रामायण स्वायम्भुव रामायण, सुब्रह्म रामायण सुवचस रामायण, देव रामायण, श्रवण रामायण दुरन्त रामायण रामायण चम्पू आदि अनक रामायणा का उल्लेख मिलता है। अधिकाश रामायणें आज प्राप्त नही हैं। किन्तु लगता है कि इन रामायणों का उद्देश्य अपने भारतीय जीवन के सास्कृतिक नायक की दिव्यता का उदघाटन रहा होगा।

ललित साहित्य में राम के नायकत्व की परम्परा

प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य म राम रस का अमृत मिल गया है। धीरे धीरे राम के गुणों का गान जीवन का प्रेरणात्मक राग बन गया। कालिदास न ४०० ई० के लगभग रघुवश नामक महाकाव्य के उन्नीस सर्गों म राम के वशजो का विशद गान किया है। रघुवश' का आरम्भ राजा दिलीप से तथा अन्त राम कथा के विस्तार के साथ होता है। प्रसनजित ने सेतुबन्ध नामक अपने महा काव्य मे राम कथा को आधार बनाया। सातवीं शताब्दी मध्य का लिखा हुआ 'भाईकाव्य या रावण वध भी राम से सम्बन्धित अमर रचना है। कवि न बाइस सर्गों म राम जन्म स लेकर राज्याभिषेक तक की घटनाओं को रामायण कथा के अनुकूल प्रस्तुत किया है। युद्धवीर के रूप म राम का यह अनुपम उदाहरण है। कुमारदास (८०० वीं शताब्दी) का जानकीहरण महाकाव्य पन्द्रह सर्गों का उपलब्ध है जिसम राम का विरही नायक का रूप तथा मानव हृदय की कोमलता को प्रस्तुत करने वाला दिखाया गया है। नवी शताब्दी म अभिनव कृत रामचरित भी राम को लेकर लिखा गया महाकाव्य है। क्षेमेन्द्र ने ग्यारहवी शताब्दी म दशावतार चरित तथा रामायण-मन्जरी' की रचना की। लगभग चौदहवी सदी म साल्यमल्ल का उदार राघव' नामक महाकाव्य मिलता है। पन्द्रहवी शताब्दी म रघुनाथ उपाध्याय ने राम विजय नामक काव्य की रचना की तथा राम का दिव्य-नायकत्व वहाँ पर अद्भुत है। चक्र कवि का १७ वा शताब्दी का जानकी-परिणय नामक खण्डकाव्य भी राम के नायकत्व का लेकर लिखा गया। इस प्रकार बाल्मीकि रामायण से

राम के नायकत्व की परम्परा ललित साहित्य मे बडी विशाल है। वे काव्य के सनातन नायक बन गय तथा उनके उदात्त-नायकत्व के वर्णन के बिना महाकवि अपनी भक्ति को अपूर्ण समझने लगे। परिणामस्वरूप लोक रुचि राम की ओर हो गयी थी।

इस लोक रुचि का प्राबल्य नाटकों म देखा जा सकता है। अनेक नाटक राम का आधार बनाकर लिखे गये। नाटक जीवन का सच्चा अनुकरण है तथा जनमानस की सच्ची अभिव्यक्ति का साधन भी। महाकवि भास ने 'अभिषेक-नाटक' तथा 'प्रतिमा-नाटक' मे राम-कथा को आधार बनाया। भवभूति ने (आठवीं शताब्दी) महावीर चरित तथा 'उत्तर राम चरित' नामक नाटकों की रचना की। अनग हृष ने आठवी सदी मे 'उदात्त राघव' भोजदेव ने ग्यारहवी सदी मे 'कुन्दमाला' मुरारि (नवी सदी) ने 'अनघ राघव' राजशेखर ने (दसवी सदी) मे 'बाल रामायण, हनुमान कृत (दसवी सदी मे) 'महानाटक', जयदेव कृत 'प्रसन्न राघव' आदि का आधार रामकथा ही है। इस प्रकार सस्कृत साहित्य मे राम महाकाव्य तथा नाटक दोनो के लिए सवमान्य नेता बने रहे। प्रत्येक युग के अनुसार उन के व्यक्तित्व म नर, देव नारायण रक्षक योद्धा, त्यागी आदि अनेक गुणों का अलग अलग प्रस्तुतीकरण किया। तुलसीदास तथा उनके परवर्ती महाकाव्यकार कवियों के समक्ष राम के नायकत्व की एक विशाल परम्परा था। मुगलो के काल म उत्पन्न तुलसी अपने नायक 'निसिचर हीन करौ मही भुज उठाय प्रण कीन्ह' से बडी प्रतिज्ञा क्या कर सकते थे। हिंदुओं को नवीन प्रेरणा देने वाला चरित्र, उस समय तक राम से बढकर कोई दूसरा था ही नहीं। विश्वास का सागर यह नायक ही जन-जन का सहारा था। इसी कारण तुलसी ने अपने नायक को धर्म-नायक, सास्कृतिक नायक आदि अनेक रूपो म प्रस्तुत किया है।

तुलसी पूर्व हिन्दी के ललित साहित्य में राम का नायकत्व

सस्कृत के ललित साहित्य म राम के नायकत्व की एक विशाल परम्परा है इसका सकेत ऊपर किया है। तुलसी पूर्व हिन्दी म भी राम-साहित्य उपलब्ध है, जिसका सकेत प्राचीन साहित्य के अनुसधित्सु समय समय पर देते रहे हैं। खोज विवरण से राम साहित्य का सूचनाए उपलब्ध हुई हैं। चौदहवी शताब्दी में रामानन्द ने रामरक्षास्तोत्र मे राम की वन्दना की है।[1] नाभादास के 'भक्तमाल' म कबीर धना सना आदि सन्तो के नाम की सूची है जो निर्गुण राम को परम ब्रह्म एव

१ दे० काशी नागरी प्रचारिणी सभा का खोज विवरण, स० ७६

परम उपास्य के रूप में अपनाते हैं।[1] मन्त विष्णुराम ने 'वाल्मीकि रामायण' का हिन्दी रूप प्रस्तुत किया है।[2] ईश्वरदास की कृति 'भरत मिलाप' का भी नाम इस परम्परा में लिया जाता है।[3] कृष्ण भक्ति के अमर गायक सूरदास ने राम का गुण गान साम्प्रदायिकता से मुक्त होकर किया है। सूर सागर के नवम स्कन्ध में सम्पूर्ण 'राम कथा' का उल्लेख है। सूरदास द्वारा वर्णित एक पद रावण वध के सम्बन्ध में देखिए—

रघुपति अपनो प्रन प्रतिपार्यो।
तोर्यो कापि प्रबल गढ़, रावन टूक टूक करि डार्यो।
कहुँ भुज कहुँ धर कहुँ सिर लोटत मानो मद मदवारो॥
भभकत, तरफत, स्रोनित में तन नाही परत निहारी॥
\+ \+ \+
दियो विभीषन राज सूर प्रभु कियो सुरनि निस्तारो॥[4]

तुलसी ने इसी भारतीय संस्कृति के आधार-स्तम्भ राम को अपने काव्य में नायक बनाया। आगे चलकर हम 'रामचरित मानस' के नायक पर विचार करेंगे।

प्राचीन साहित्य के आधार पर राम के ऐतिहासिक महत्त्व का उद्घाटन

वेदों से राम का ऐतिहासिक महत्व आरम्भ होता है। तुलसीदास के 'राम चरित मानस' तक उनके व्यक्तित्व में विष्णुत्व परमब्रह्मत्व तथा लीलावतारी ईश्वरत्व का तत्व समाविष्ट दिखाई देता है। विण्टरनित्ज़ का यह मत उचित लगता है कि आरम्भ में राम एक क्षत्रिय जाति के नेता थे उनके महत्कार्यों ने महामानवत्व की प्रतिष्ठा की कवियों की वाणी ने उनका आदर किया वे एक राष्ट्रीय नेता के रूप में पूजनीय बन गये तथा धीरे धीरे वे परम ब्रह्म के रूप में परिणत हो गये।[5] रामायण से पूर्व वे प्रतापी राजा हैं। रामायण में वे महामानव तथा सर्वगुण सम्पन्न सांस्कृतिक नेता हैं बौद्ध तथा जैन साहित्य में आदर्श पुरुष हैं, पुराणों में इन पर ईश्वरत्व की प्रतिष्ठा है, वेदान्त की ब्रह्मवादी परम्परा में वे पूर्ण ब्रह्म हैं। धार्मिक भक्ति आन्दोलन में वे परम ब्रह्म हैं तथा भक्तों के कष्ट निवारणार्थ ही वे संसार में

---

१ भक्तमाल छप्पय, पृ० ३६
२ काशी नागरी प्रचारिणी सभा का खोज विवरण पृ० ५४
३ वही पृ० २१
४ सूरदास—सूरसागर—प्रथम खण्ड, नवम स्कन्ध, पृ० २८६, पद नं ६०३
५ विण्टरनित्ज़—ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, पृ० ५०१

अवतार धारण करते हैं। डा० मानाप्रसाद गुप्त ने इस एतिहासिक परम्परा का अध्ययन करने के पश्चात् बड़ा ठोस मत प्रस्तुत किया है कि तुलसी को अपने से पूर्व के साहित्य से एक पूर्ण चरित्र की प्राप्ति हुई जिसमें उन्होंने और चार चाँद लगा दिए। किसी भी जाति की काव्य प्रतिभा ने कभी भी जिन उदात्त गुणों की कल्पना की होगी कदाचित् उनका एक आदर्शमय रूप हमें राम के चरित्र में समाहित मिलता है।[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चरित्र की इसी पूर्णता का संकेत शील, शक्ति तथा सौन्दर्य इन तीन विशेषणों द्वारा व्यक्त किया है। 'तुलसी के मानस से रामचरित की जो शील-शक्ति सौन्दर्यमयी स्वच्छ धारा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँच कर, भगवान के स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलका दिया।[2] तुलसी ने इस परम्परा से प्राप्त समृद्ध नायक को शीर्ष पर पहुँचा दिया है।

मध्ययुगीन राम-काव्य

मध्ययुगीन हिन्दी के राम भक्त कवियों के समक्ष संस्कृत का विशाल तथा समृद्ध राम-साहित्य रहा है। इन कवियों ने वाल्मीकि रामायण तथा अनेक रामायणों से एक विराट सांस्कृतिक नायक को प्राप्त किया। इस नायक में भारतीय जीवन के समस्त आदर्शों का मन है राम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मर्यादा के प्रतीक बन कर अवतरित हुए हैं। अपने आरम्भिक रूप से ही रामकथा आदर्शों पर टिकी रही है अतः इसमें अधिक परिष्कार की सम्भावनाएँ नहीं थीं। राम सामान्य लौकिक नायक न होकर धर्म प्राण, संस्कृति प्राण बनाकर साहित्य में प्रतिष्ठित किए गए अतः उनमें परिवर्तन करना संस्कृति को विकृत करने का प्रयास ही होता यही कारण है कि राम के मानवत्व तथा ब्रह्मत्व दोनों रूपों में कोई विशेष परिवर्तन कभी सम्भव ही नहीं हो सका।

हिन्दी में रामानन्द ने जब भक्ति आन्दोलन की जयध्वनि उत्तरी भारत में ऊँचा किया तब राम-काव्य का प्रणयन हुआ। दिव्यभावधर नालासहचर अवतारी राम साहित्यिक क्षितिज पर आसन जमाने लगा। तुलसीदास ने राम काव्य धारा में सम्भावनाओं का अन्तिम छोर छू लिया। अतः राम का समस्त नायकत्व तुलसीदास में ही मूर्त केन्द्रित होकर रह गया। वेदों, पुराणों, नाटकों, कथाओं, रामायणों के राम तुलसीदास में वैष्णव संस्कारों की अमिट छाप लेकर अमर हो गये। उनका

१ डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० २८३

२ आ० रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३

'मानस' विश्वमहाकाव्यों में आज भी अपना गौरवपूर्ण स्थान बनाकर शाश्वत जीवन मूल्यों के कारण अडिग है।

तुलसी पूर्व राम काव्य परम्परा हिन्दी में बहुत क्षीण रूप में मिलती है। रामानन्द के रामरक्षा स्तोत्र का भक्ति की दृष्टि से महत्त्व होते हुए भी साहित्यिक महत्त्व नगण्य ठहरता है। नाभादास के भक्तमाल [1] में अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द सुरसुरानन्द पद्मावति नरहरि पीपा, भावानन्द रैदास, धना सेना, आदि का नाम लिया गया है। इनमें से किसी ने राम में अवतारी परमब्रह्मत्व के रूप का उद्घाटन तक नहीं किया। विष्णुदास ने वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद किया, ईश्वरदास ने भरत मिलाप की रचना की।[2] इनकी एक रचना अंगद पैज भी है, किन्तु उसका साहित्यिक महत्त्व नाम मात्र का ही है। मुनिलावण्य की रावण मन्दोदरी संवाद ब्रह्मजिनदास की दो कृतियाँ—हनुमंतरास तथा रामचरितया रामरस, सुन्दर दास का हनुमान चरित अग्रदास की रामाष्टयाम तथा रामध्यान मंजरी, राम ज्यानार आदि रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है।[3] लेकिन प्रबन्ध के क्षेत्र में इन रचनाओं का महत्त्व बहुत नगण्य ठहराया जाता है।

रीतिकाल अधःपतन का काल होते हुए भी उस काल में राम पर खूब लिखा गया है। कवियों ने कृष्ण की भाँति उनके चरित्र को भ्रष्ट नहीं किया तथा उनके शील शक्ति एवं सौन्दर्य से युक्त मर्यादित रूप के प्रति अपार आदर व्यक्त किया है। लालदास नामक कवि ने सं० १७०० में अवध विलास नामक लघु खण्ड काव्य की रचना की। कवि कपूरचन्द ने भाषा रामायण' (सं० १७००) पुरुषोत्तम ने 'हनुदूत' सं० १७०१ पीताम्बर ने राम विलास (सं० १७०२) वारहट नरहरिदास ने 'राम चरित्र कथा [4] की रचना की। ये छोटे-छोटे काव्य हैं जो राम के जीवन पर बहुत कम प्रकाश डालते हैं। ईश्वरप्रसाद त्रिपाठी ने वाल्मीकि रामायण का सं० १७३० में राम विलास रामायण नाम से अनुवाद किया।[5] मानदास ब्रजवासी ने सं० १७३० में रामचरित्र [6] की रचना की। मोहन कवि ने रामाश्वमेध'[7] की रचना की। यह खण्डकाव्य वर्णन में बहुत ही सुन्दर है।

१ भक्तमाल—छप्पय ३६
२ नागरी प्रचारिणी सभा का खोज विवरण (१९४१—४३) संख्या ५४१
३ हिन्दी-साहित्य, पृ० ३०४ ३०५, भाग २
४ मिश्रबन्धु विनोद— द्वितीय भाग, पृ० ४३८
५ वही, पृ० ४८८
६ वही, पृ० ४५८
७ वही, पृ० ५१२

रामचरित मानस की शली पर नेपन तरगो म समस्त रामकथा को दलेलसिह ने रामरसायन' का रचना का। यह कृति विशाल होते हुए भी काव्यत्व की दष्टि से बहुत दुबल है। राम प्रियाशरण न 'सीतायन' नामक सात काण्डो मे विभक्त एक प्रबन्ध-काव्य लिखा।[1] इस नायिका प्रधान काव्य मे कथा भाग कमजोर है। भक्त कवि जानकीशरण ने अवधा सागर'[2] स १७६० म विस्तार के साथ लिखा है। राम के अष्टधाम का वणन १४ सर्गों म किया गया है। यह कृति सन्तो म बहुत प्रख्यात है क्योकि इसमें कृष्ण चरित जमा आनन्द मिलता है। बहुत सफल प्रबन्धरा व्य होता हुआ भी यह काव्य महाकाव्योचितउदारता से रहित होकर दुरूह हो गया है।

रीतिकाल म ही गुरु गोविन्दसिंह ने 'गोविन्द रामायण' की रचना की। यह कृति पुराणकाव्य अधिक है महाकाव्य कम। महाकाव्य इस कहा ही नहीं जा सकता। कवि न मार्मिक स्थलो को चलता तथा महत्त्वपूर्ण घटनाओ का छोड दिया है। युद्ध-वणन म हो सिक्ख गुरु रमे रहे है। भरत के प्रति अविश्वास परशुराम की भद्दे शब्दो का प्रयोग राम की शालीनता को नष्ट करते हैं। बहुत विशाल कथानक के नायक राम यहा धीरोदात्त नहीं कहे जा सकते ह। महजराम नामक वश्य न तुलसी की शली म 'रघुवश दीपक'[3] नामक विशद प्रबधकाव्य लिखा है। कवि ने राम के जीवन का प्रत्येक दृश्य विस्तृत फलक पर लिखा है फिर भी वर्णना के ववण्डर म फसा यह काव्य महाकाव्य नहा बन पाया क्योकि बणन शिथिलता तथा कथावृत्ति म कमी के कारण यह काव्य मानस की नकल बनकर ही रह गया। सोमनाथ कवि ने भी वाल्मीकि रामायण के आधार पर 'रामचरित रत्नाकर'[4] नामक एक काव्य लिखा है, जिसम मौलिकता नाम मात्र को भी नहीं है।

भोजपुरी भाषा म बाबा तुलसीदास न रामायण' की रचना तुलसी शली के अनुकरण पर ही की।[5] इस काल म चन्द्रदास का 'राम रहस्य' (स १८०७) मामदास का रामार्णव रामायण स० १८१८ रामचरणदास ने 'रामचरित (स० १८२५), शिवप्रसाद पाण्डेय ने अद्भुत रामायण' स०१८३० मे मदन भट्ट न 'सुलोचना चरित्र (स० १८३०) भूपति न रामचरित्र रामायण' (स०१८३१) हरिदास न रामायण (स० १८३४) गुलाबसिंह न रामायण' (स० १८३५) मधुसूदन दास न 'रामाश्वमेध' (स० १८३९) भवानीदास की 'अद्भुत रामायण (स० १८४०), आनन्दराम का 'राम सागर (स० १८५०), सुन्दर कुवरि का

---

१ राम भक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, प० ३६४
२ वही पृ० ३६६
३ नागरी प्रचारिणी खोज विवरण, पृ० १२२ २३, १६२३
४ वही, प० ६० १६१७ १६
५ वही, पृ०५१०, १६४१ ४६

राम काव्य की इस विस्तृत परम्परा न रामचरित मानस तथा केशव का रामच न्द्रिका नामक दो महाकाव्य ही प्रदान किए हैं। अत इन्ही का दृष्टि म रखकर अगल पष्ठो मे इनके महाकाव्यत्व की चर्चा करत हुए राम के नायकत्व पर विचार करेंगे।

रामचरित मानस का महाकाव्यत्व

लोक-व्याप्ति की दृष्टि स 'मानस' हिन्दी का गौरव-ग्रन्थ है। युग युग के मानव को प्रेरणा दने की इस काव्य मे अक्षय शक्ति है। प्रणतपाल राम की यश। गाथा को कवि ने सन्तो महन्ता, दीन-दुखिया, राजाग्रो विद्वानो म अमर कर दिया है। मिश्रबन्धुग्रो ने ठीक ही कहा है कि यह ग्रन्थ जितना सर्वप्रिय है उतना अन्य ग्रन्थ नही। केवल अक्षर ज्ञान स लकर वेदान्ती तक इसका समान रूप स आदर करत हैं।[१] इसका कारण स्वथा स्पष्ट है। इस रचना के अन्तस्तल मे एक सारा देश, एक सारा युग मूर्तिवन्त होकर हिल्लोलित हो उठा है। मानस ने जनमानस म इतना रमण किया है कि इसकी एक एक अर्द्धाली सामान्य व्यक्ति के लिए धम ग्रन्थ का आप्तवचन[२] बन गई है। 'मानस आज के सिद्धमन्त्रो का भण्डार है। ज्ञान विज्ञान रीति-नीति का पारावार है। इस धम ग्रन्थ मे इतना कुछ है कि 'राम चरित मानस ससार के श्रेष्ठ महाकाव्यो म अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसकी महत्ता मे प्रभावित होकर डा० श्रीकृष्णलाल उसे 'पुराणकाव्य'[३] तथा श्यामसुन्दर दास व्यापक हिन्दू धम का सकलित सस्करण[४] कहत हैं। सप्त प्रबन्ध' तथा प्रबन्ध बुद्धि के अनुसार तुलसी को उसकी प्रबन्ध पटुता पर स्वय गव है। यहा पर हम महाकाव्य की निर्धारित कसौटी को ध्यान मे रख कर उसके महाकाव्यत्व पर विचार करेंग।

व्यापक परिधियुक्त सुगठित कथानक

जातीय जीवन के इस महाकाव्य मे, सस्कृति के परमोज्ज्वल कीतिस्तम्भ म कथा चिर सनातन तथा चिर नवीन है। तुलसी ने अनेक ग्रन्था के मन्थन से अपनी कथा को रूप प्रदान किया है। वाल्मीकीय रामायण अध्यात्म रामायण, हनुमान

---

१ मिश्रबन्धु—सक्षिप्त हिन्दी नवरत्न, प० ३६

२ राजबहादुर लमगोडा—वि व साहित्य मे रामचरित मानस, पृ० १

३ डा० श्रीकृष्णलाल—मानस दशन, प० १५७

४ बाबू श्यामसुन्दरदास—हिन्दी साहित्य, पृ० २५८

नाटक, योग वाशिष्ठ प्रसन्न राघव आदि ग्रन्थों का सार निचोड़ा है। सम्पूर्ण कथा मे एक श्रृंखला है रामजन्म से लेकर धनुर्भंग तथा रणदारा प्राप्त तक आदि, राम वनवास से हनुमान द्वारा सीता की खोज तक मध्यभाग और रावण-वध से लेकर धर्मराज्य या रामराज्य की स्थापना तक कथा का अन्त मानना चाहिए। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में तुलसीदास ने रामचरित मानस की कथा को एक महाकाव्य के दृष्टिकोण से लिखा है।[1] अवान्तर कथाएं मानस में एकरूप नहीं हैं। नायक के उत्कर्ष के लिए तथा कथा में रसात्मक शक्ति के सम्वर्द्धनार्थ अहिल्या उद्धार ताड़कावध, शबरी आतिथ्य आदि का प्रासंगिक कथाएं आयी हैं। सम्पूर्ण कथा में नाटकीय संधियों अर्थ प्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं की पूर्णता भी डा० शम्भूनाथसिंह ने सिद्ध की है।[2] इस महाकाव्य का कार्य है रामराज्य की स्थापना। इस कार्य की फलसिद्धि में कथा के सभी अंग कारण कार्य श्रृंखला में जुड़े हैं। घटनाओं के अवरजाल में तुलसी फंसे नहीं हैं। अतः इस काव्य का कथात्मक अन्विति अप्रतिम है। इस कथा में तुलसीदास ने जीवन को इतने व्यापकत्व के साथ देखा है कि आज का आलोचक आश्चर्य करता है। पुराण-श्रुति सार में कथा के व्यापक प्रसार एवं मध्ययुगीन जीवन की झांकी दी गई है। रावण के अत्याचारों में मुसलमानों का दारुणिक कार्य-कलाप बोल रहा है। मानस में कथा का विराट रूप, बौद्धिक ऊंचाई सूक्ष्म पकड़ के अंश भक्ति तथा ज्ञान के प्रसंग, आज के जीवन के अभिन्न अंग बन गये हैं। मानस के कवि ने आत्मसाधना में लीन रह कर गहराई के साथ अन्तर्यात्रा की है। डा० बलदेवप्रसाद मिश्र के शब्दों में तुलसी मत न केवल मानव धर्म और भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठ बातों को ही समेटे हुए है वरन् वह गीता से लेकर गांधीवाद तक समस्त धर्म प्रवर्त्तकों के साहित्य सिद्धान्तों को भी अपनी गोद में खिला रहा है। गीता का अनासक्ति योग बौद्धों और जैनों का अहिंसावाद, वैष्णवों और शैवों का अनुराग वैष्णव शाक्तों का जप शंकराचार्य का अद्वैतवाद रामानुज की भक्ति भावना निम्बार्क का द्वैताद्वैत मध्व की रामोपासना वल्लभ का बाल रूप आराध्य चैतन्य का प्रेम गोरख आदि योगियों का संयम, कबीर आदि संतों का नाम माहात्म्य रामकृष्ण परम हंस का समन्वयवाद ब्रह्मसमाज की ब्रह्मकृपा आर्य समाज का आर्य संगठन और गान्धीवाद की सत्य अहिंसामूलक आस्तिकतापूर्ण लोक सेवा आदि सभी कुछ तो उसमें है ही साथ ही मुसलमानों का मानव बन्धुत्व और

१ डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २५८

२ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ५३१ ५३३

ईसाइयो का श्रद्धा तथा कारुण्य से पूर्ण सदाचार भी उसम क्रीडा कर रहे हैं।'[1] अत मानस का कथा परिधि बडी ही व्यापक है।

उदात्त नायक

महाकाव्य के लिए 'धीरोदात्त गुणान्वित' की भारतीय आचार्यों ने तथा पाश्चात्य आचार्यों न उदात्त व्यक्ति की चर्चा की है। आचाय हजारीप्रसाद द्विवदी ने चरित्र चित्रण की दृष्टि से विश्व के गिने चुने कवियो मे तुलसी को रखा है।[2] अनेक नायको के सभी सुलभ गुण तुलसा के राम म हैं। वाल्मीकीय रामायण म नारद से वाल्मीकि ने जिस दुलभ नरचन्द्रमा का बात कही सुनी थी, उस व्यापक रूप को तुलसी ने ही ग्रहण किया है। उमो महामानव का उदय तुलसी की आत्मा मे हुआ और वह नायक आज भी सरस्वती के मन्दिर म अपनी उदात्त प्रशान्त आभा के तज से अकेला है। शिव सहित कलाश उठाने वाला काल को वश मे रखने वाला, चलने पर दिशाओ का भयभीत कर दने वाला प्रबल प्रतिनायक रावण राम के बाणो से ही शरीरान्त कर देता है। प्रतिनायक की पराजय तथा नायक की जय मे ही इसकी महत्ता निहित है। मानस का नायक 'पृथ्वीराज रासो' के नायक की तरह कोरी टेक वाला नही, पदमावत के नायक की तरह आसक्त प्रेमी नही, 'सूरसागर' के नायक की भाति रिझानेवाला छलिया नही, वह मर्यादा का रूप है। समस्त गुणो की सूचा से भी राम' बहुत अधिक है। उसी को तुलसी 'जिन कर चरित विदित ससारा' से कहत हैं। लोकहितकारी उतन हैं कि राक्षसो की वध की प्रतिज्ञा भुजा उठाकर करते हैं। मर्यादा पालक इतन हैं कि 'मनकुपन्थ पग भी नही रखत हैं। दयालु इतने है कि विभीषण बालि त्रिजटा अगद हनुमान सभी उन्हें करुणानिधान कहते हैं। रामायण के अन्य चरित दशरथ कौशल्या, कैकेयी, मन्दोदरी, रावण, मेघनाद आदि सभी को ययाथ के साथ उभारा गया है। मानस' का नायक अपना गरिमा म सबसे अलग है।

रसात्मकता

भाव वविध्य तथा रस वविध्य से कथा म प्रभविष्णुता की शक्ति बढ जाती है। तुलसी ध्वनिवादी न होते हुए भी रसवादी हैं एव 'मानस' रस का अथाह सागर। 'रस विशेष' के साथ सरस कवित्त मे तुलसी ने विशेष योग दिखलाया है। युद्ध की चिरन्तन कथा भक्ति का प्रवाह तथा जीवन की आत्म-साधना जीवन का सर्वांगीण चित्र होने के कारण इस काव्य के सम्बन्ध म यह विवाद है कि उसका अगीरस

१ डा० बलदेव प्रसाद मिश्र—तुलसी-दर्शन, पृ० ३४१

२ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी-साहित्य उद्भव और विकास, पृ० २३७

कौन-सा है ? विद्वानों ने इसे वीर रस, करुण रस, शान्त रस तथा भक्ति रस प्रधान काव्य कहा है। यदि अंगीरस नायक की मूल वृत्ति का प्रतिपादन होता है तो उस काव्य में जनसुखदायक प्रतिपालक नायक राम प्रतिनायक रावण का वध करते हैं तथा पौरुष के प्रताप से विपत्तियों में पर्वतों को तोड़ कर असद् का नाश तथा सद् की स्थापना करते हैं। इस दृष्टि से अंगीरस वीर है। परन्तु तुलसी के राम वीर योद्धा ही नहीं, आदर्श प्रभु पिता, भाई सब कुछ हैं। वे ब्रह्म के ही पर्याय हैं। 'जाहि धर मुनि ध्यान तथा अकल अनीह अनाम' के अनुसार राम ब्रह्म हैं तथा भवसागर के प्राणियों के एकमात्र आधार। तुलसी भक्त थे और भक्ति उनके जीवन का पर्याय थी। अतः भक्ति रस को ही रामचरित मानस का अंगीरस मानना चाहिए। राम जन्म से पूर्व देवताओं द्वारा की गई प्रार्थना 'जयजय सुरनायक' उसी भक्ति का प्रमाण है।[1] वैसे भी भवन तरहि उदगारि की भी दृष्टि से यह भक्ति का काव्य है। मानस में राम जन्म पर वात्सल्य तथा अद्भुत रस, दशरथ मरण में करुण रस, जनक-वाटिका प्रसंग में शृंगार रस, परशुराम संवाद में रौद्ररस, राम रावण युद्ध में वीर रस तथा उत्तरकांड में भक्ति रस तथा शान्त रस का प्रवाह है। अतः 'मानस' की रसात्मक शक्ति में प्रभावक्षमता अद्भुत है।

उद्देश्य की ज्योति

भारतीय आचार्यों ने पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि को महाकाव्य का उद्देश्य माना है। अरस्तू से लेकर बावरा तक पाश्चात्य विद्वान भी महाकाव्य के उदात्त उद्देश्य पर एकमत रहे हैं। तुलसी वैयक्तिक सुख साधना से अधिक लोक-मंगल को आदर देते हैं। उनके व्यापक उद्देश्य में समाज धर्म, राष्ट्र धर्म तथा विश्व धर्म निहित हैं। मानवतावाद का, उद्देश्य की दृष्टि से कोई ग्रन्थ है तो रामचरित मानस। हाँ, आधुनिक कृति 'कामायनी' को भी इसी कोटि में रखना चाहिए। कलिकाल के भव-बन्धन काटने के लिए तुलसी ने यह परमोज्ज्वल आख्यान चुना है। तुलसी का राम कथा कलि कलुष विभजनि 'सशय नाशनि भवसरिता तरनी', आदि विशेषण देना भी लोक हित का समर्थन है। राम के सभी कार्य लोकहितकारी हैं। नारद का मोह भंग कर वे उन्हें ज्ञान नेत्र देते हैं। नाव धर्म की स्थापना के लिए राक्षसों का वध करते हैं लोक मर्यादा के रक्षणार्थ सामान्य बात पर अपनी स्त्री को अग्नि परीक्षा करके भी त्याग देते हैं तथा लोकवादर्श से रामराज्य की स्थापना करते हैं। अतः 'मानस' का उद्देश्य जीवन से असद् का निष्कासन तथा सद् की स्थापना

१ देखिए—डा० उदयभानुसिंह—तुलसी दर्शन मीमांसा—उपसंहार भाग—भक्ति रस, पृ० ४०७

मानना चाहिए। तुलसी का उद्देश्य जीवन में भक्ति के द्वारा निर्मल दृष्टि की प्राप्ति का रूप भी है। उनके मत से ज्ञान तथा भक्ति में प्रभेद नहीं है। दोनों से ही सांसारिक तापों का हरण होता है। आदर्श की अडिग भूमि पर विश्व धर्म की स्थापना ही 'मानस' का उद्देश्य मानना चाहिए।

अभिव्यंजना में शक्ति

कृति लघुकाय हो या विशालकाय, लेकिन समर्थ कवि के पास समर्थ अभिव्यक्ति अवश्य होना चाहिए। विचारों की गहनता को, प्रतीकों की सांकेतिक शक्ति को, भव की अतल मर्मस्पर्शिता, हृदय को झकझोर देने की कला, बिम्बों की प्राणवत्ता तथा मूर्तिवत्ता, शैली की अबाध प्रवाहमयता, प्रभावक्षमता, भाषा की पक्की पकड़, महाकवि की अनिवार्य शर्त है। आत्म-रस से पोषित तुलसी की अभिव्यंजना में सब कुछ वदग्ध-युक्त है। महाकवि की शैली में दुर्दम नद का प्रवाह हो, मानस की शैली ऐसी ही दुर्दमनीय है। तुलसी की शैली में वाग्धारा की स्फीति तथा वचन की स्वच्छता बहुत है। वे कहते समय अधिक हिचकियाँ नहीं लेते, साफ तथा डटकर कहते हैं। अतः इस शैली को जीवन्त शैली कहना चाहिए। मधुर प्रसंगों में कंकन किंकिनि की भी उन्हें पहिचान है तथा 'घनघमण्ड गरजत घन घोरा' में भी वे माहिर हैं। कवि का मधुर तथा विराट पर समान अधिकार है। अवधी भाषा की शक्तियों का तुलसी ने अत्यधिक विकास किया। भाषा की सहजता तथा भाषा में निबद्ध शब्द के मर्म को किसी ने जाना है तो 'मानसकार' ने। शब्द की आत्मा को टटोलकर जन-जन से उसका परिचय कराया है। अलंकारों ने वाणी की अभिव्यक्ति-क्षमता को विशेष बल दिया है। 'मानस' में ज्ञान तथा भक्ति का रूपक, सप्त प्रबन्ध सुभग सोपान का रूपक हिन्दी संसार का शोभा-कोष है। भावानुरूप छन्द परिवर्तन के कारण कहीं मात्रिकछन्द, चौपाई, दोहा, सोरठा, तोमर, त्रिभंगी आदि तथा वर्णिक मालिनी त्रोटक इन्द्रवज्रा, वंशस्थ आदि का स्मरणीय प्रयोग प्रस्तुत किया है। 'सबसे बड़ी विशेषता गोस्वामी जी की है भाषा की सफाई और वाक्यरचना की निर्दोषता, जो हिन्दी के अन्य किसी कवि में नहीं पाई जाती।'[1] डा० बलदेव प्रसाद मिश्र का तो यहां तक कहना है कि उनका एक एक छन्द सौ-सौ ग्रन्थों के बराबर हो गया है।'[2] इन सभी विद्वानों के मतों से स्पष्ट है कि मानस की अभिव्यंजना शक्ति असीम है।

अतः रामचरित मानस का महाकाव्यत्व आदर्श महाकाव्यत्व का मानदण्ड है। आचार्यों की कसौटी पीछे छूट जाती है और 'मानस' का महाकाव्यत्व उससे भी आगे

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—तुलसी ग्रन्थावली, भाग ३, पृ० २३६

२ डा० बलदेवप्रसाद मिश्र—तुलसी दर्शन, पृ० ३५१

बढ़ जाता है। अतः मानस सिद्ध कवि का सिद्ध-पीठ है, जीवन काव्य है। महामानव तथा ब्रह्म की कीर्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश था। तुलसी के मणिकुट्टिम प्रयोगों का यह अचल स्तम्भ है मानवतावाद का अमरकेतु तथा भारतीय संस्कृति का मूर्तिवन्त फल है। और परम्पराओं तथा आदर्शों का नमूना है।

तुलसी द्वारा नायक-निरूपण

मानस की सम्पूर्ण कथा के मेरुदण्ड राम हैं सभी पात्र उनके व्यक्तित्व के अंग हैं अतः और किसी भी पात्र को चाहे वे भरत हों या लक्ष्मण नायक नहीं कहा जा सकता है। लक्ष्मण का व्यक्तित्व राम के व्यक्तित्व पर आधारित व्यक्तित्व है।[1] भरत के गुणों की विशद चर्चा मानस में है परन्तु वे कथा के मूलाधार या प्रारम्भ के आधार नहीं हैं। सम्पूर्ण रामायण में भक्ति रस का प्रवाह है और इस भक्ति के आलम्बन पूर्ण ब्रह्म राम हैं।[2] अतः कथा का प्रधान रस राम के नायकत्व को ही सिद्ध करता है। राम के व्यक्तित्व का आन्तरिक तथा बाह्य रूप डा० गुप्त जी की कसौटी से परखा जा सकता है।[3] उन्होंने महापुरुष के व्यक्तित्व के लिए शास्त्रीय आधार प्रस्तुत किया है—

(१) नायक के व्यक्तित्व में सौन्दर्य तत्त्व
(२) नायक के व्यक्तित्व में शक्ति-तत्त्व
(३) नायक के व्यक्तित्व में शील-तत्त्व

अतः राम के व्यक्तित्व में हम क्रमशः इन तीन तत्त्वों का विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे। मानस का प्रथम आधार है—बाह्य सौन्दर्य तथा दूसरा आन्तरिक। अतः राम के व्यक्तित्व का बाह्य सौन्दर्य हम पहिले उद्घाटित करेंगे।

सौंदर्य तत्त्व

तुलसी के राम का सौन्दर्य [illegible] है। [illegible] मधुर [illegible] रूप-सरोज[4] है [illegible] काम [illegible] था।[5] [illegible][6] [illegible]

कपोल विनिन्दित हास[1], नीकी छवि, ललित चितवन[2], ललाट पर प्रकाशमान तिलक,[3] कानों मे मकराकृत कुण्डल, सिर पर मुकुट मधुप सम काले कुटिल बाल[4], वक्षस्थल पर बनमाल सिंह सी गदन हाथी की सूड के समान सुभग भुजदण्ड, बिजली को लजाने वाले पीताम्बर के कारण उनका सौन्दर्य अपार है। वे सौंदर्य सागर तथा 'आदि सक्ति छवि निधि जग मूला'[5] के रूप म दिखाई देते हैं। वे देवताओं की विनती करने पर कौशल्या की कोख से जन्म लेते हैं। इस समय भी 'शोभा सिन्धु'[6] के रूप मे प्रगट होते हैं। 'काम कोटि छवि' या 'आनन अमित मदन छवि छाई'[7] का वर्णन तथा राम की शिशु लीलाओं[8] की झाकी 'मानस' म अवलोकनीय हैं। शिशु-राम किशोरावस्था म प्रवेश करते हैं क्षत्रियोचित आयुधो से सज्जित हो मुनियों तथा जड चेतन को मोहने लगते हैं।[9] विश्वामित्र राम की इस छवि को देखकर विस्मित रह जाते हैं।[10] अपने पुत्रो को विश्वामित्र को देते समय भी 'सुन्दर-सुत' दशरथ कह उठते हैं। अपने रजक रूप म राम विश्व चित चोर तथा कान्तिमान स्याम तन हैं। राम ने जब विदेह-नगर मे प्रवेश किया उस समय जनक, जनकनगर के नर-नारी, सभी उनके दिव्य रूप से मोहित हो गये। जिनकी छवि देखकर सीता धन्य हो गई।[11] धनुष-यज्ञ मे उनकी छवि प्रत्येक व्यक्ति का कामना के अनुकूल दिखाई दी। धनुष भग से क्रोधित भृगु कुल कमल पतग भी राम के रूप जलधि म निमज्जित हो गये।[12]

१ विधुकर निकर बिनिंदक हासा। १।१९५।७
२ बिमु जक अबक छबि नीकी। चितवन ललित भावती जीकी। १।१४६।३
३ तिलक ललाट पटल दुतिकारी।—१।१४६।४
४ कुण्डल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥ १।१४६।५
५ मानस १।१४७।२
६ लोचन अभिरामा, तन घनश्यामा, निज आयुध भुज चारी॥
   भूषन बन माला, नयन बिसाला, शोभा सिन्धु खरारी ॥ १।१९०।१
७ मानस—१।१९८।७
८ (i) धूसरि धूरि भरे तनु आए। भूपति बिहँसि गोद बठाये। मा० १।२०७।८
   (ii) भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
   भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥१।२०३।
९ राम देखि मुनि देह बिसारी। १।२०६।७
१० वही
११ भये विदेह विशेषी॥ १।२१४।८
१२ (i) मनहु रंक निधि लूटन लागी॥ १।२२१।२
   (ii) सुर न असुर नाग मुनि माहीं।
   सोखा अस कहु सुनिअत नाहीं॥ १।२२१।६
   (iii) चली राखि उरि स्यामल मूरति॥ १।२३४।१
   रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन ॥१।२६८।८

राम विवाह के अवसर पर ब्रह्मलोक में प्रजापति, इन्द्रलोक में देवराज इन्द्र, शिवलोक में शंकर आदि 'सौन्दर्य-रसानिधि' को एकटक देखते रहे।[1] राम-रूप के चातक तुलसी ने राम के सौन्दर्य को लोक चित्तापहारी दिव्य-सौन्दर्य का रूप प्रदान किया। परम ब्रह्म का यह सौन्दर्य आनन्द का, कला का शाश्वत सौन्दर्य है। डा० श्रीकृष्णलाल ने तुलसी वर्णित रूप तथा सौन्दर्य को देखकर ठीक ही कहा है कि 'मानस में राम का सौन्दर्य तो वह नवनीत कोमल सौन्दर्य है जिसका आधार पौराणिक कामदेव और रति हैं। 'मानस' में राम में सर्वत्र यही 'कोटि मनोज लजावन हारे' का सौन्दर्य दिखाई देता है जिसे देखकर जीव मात्र चित्र लिखे से खड़े रह जाते हैं।[2] इस प्रकार राम का यह मधुर रूप दिव्य सौन्दर्य से मण्डित है।

राम का शक्ति-सौन्दर्य भी अद्भुत है। वे पुष्प से सुकुमार होने पर भी वज्र से कठोर हैं, जब ताड़का त्रिशिरा बालि रावण आदि के वध में उनका सौन्दर्य पराक्रम से चमक उठा है। जिस व्यक्तित्व में कठोरता तथा कोमलता का मणिकांचन योग नहीं, वह अपने सौन्दर्य में अपूर्ण रह जाता है। राम का धीर वेश उनका अपना तेज है। पापी से पापी को भी वे दया तथा मुक्ति देते हैं। यह उनके आत्म सौन्दर्य का प्रमाण है। संसार में जो कुछ सुन्दर हो सकता है वह राम के सौन्दर्य में तुलसीदास ने मिला दिया है। वाल्मीकि के राम का सौन्दर्य युद्ध-क्षेत्र में निखरा है लेकिन तुलसी के राम का सौन्दर्य युद्ध तथा प्रेम दोनों में अनुपम है। अतः तुलसी द्वारा वर्णित राम में सौन्दर्य की कोई भी सीमा रेखा खींचना सम्भव ही नहीं है।

शीलतत्व

तुलसी के राम का शील संसार का आदर्श है। उनकी चित्तवृत्ति सहज ही उत्तेजित नहीं होती मर्यादाओं की रश्मि में नियन्त्रित रहती है। वाल्मीकि ने राम के चरित्र में धर्मज्ञता, कृतज्ञता सत्य-परायण इन्द्रियजयी आदि अनेक गुणों की सूची दी है। उन्हें समुद्र के समान गम्भीर, हिमालय के समान धैर्यशाली विष्णु के समान पराक्रमी क्रोध में कालाग्नि सदृश पृथ्वी के समान क्षमादानी तथा कुबेर के समान दानी बतलाया है।[3] वे शरीर धारी धर्म ही हैं।[4] 'मानस' में राम प्रजा वत्सल

---

१ (क) निरखि राम छवि विधि हरषाने। १।३१६।८
(ख) रामहि चितव सुरेस सुजाना॥ १।३१६।६
(ग) सकल राम रूप अनुरागे। १।३१६।२ (१) मुदित देवगण रामहि देखी। १।३१६।८

२ डा० श्रीकृष्णलाल मानस दर्शन, पृ० ५४

३ रामायण—१, १, २।४

४ वही, १६, १६

तथा विनयी अधिक हैं। आरम्भ से व प्रणत निवेदनादि से थोडे समय मे ही विद्या प्राप्त कर लेते हैं।[1] विनय पत्रिका' म तुलसी ने 'सुनि सीतापति शील सुभाऊ'[2] में उनके शील का विशद निरूपण किया है। पारिवारिक परिधि में वे अपने शील के कारण आदर्श-पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श-स्वामी, आदर्श योद्धा, आदर्श पति आदर्श-त्यागी, आदर्श राजा आदि सभी कुछ हैं। शील-तत्व के कारण ही वे लोक धर्म'[3] का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। तुलसी ने 'उसी आदर्श चरित्र के भीतर अलौकिक प्रतिभा के बल स उन्होंने धर्म के सब रूपों को दिखाकर भक्ति का प्रकृत आधार खडा कर दिया है।[4] उनकी प्रकृति म धर्म धुरीन सत्य, स्नेहशील के कारण ही शत्रु भी उनकी मुक्त कठ स सराहना करता है। परशुराम का तेज उनके शील के समक्ष फीका पड जाता है विश्वामित्र राम के शील की सराहना करते थकते नही तथा धर्मावतार भरत राम के शील की सराहना म जावन काट दत हैं। गुरु श्रद्धा के कारण हा शिवजी का धनुष उठा लेते हैं।[5] राम के शील के आगे ही कुटिल कैकेयी को पश्चाताप करना पडता है। इस प्रकार तुलसी ने राम के शील का इतना विस्तार किया है कि सर्वोच्च वनकर मानव से वे ईश्वरत्व प्राप्त कर गये।[6] सामाजिक क्षेत्र मे उनके शील का रूप पग-पग पर मिलता है।[7] हृदय विस्तार के कारण ही उनका राम राज्य आदर्श राज्य का प्रतीक बन गया है। 'रामायण' मे राम राज्य की कल्पना है, लेकिन उसका विस्तार तुलसी के राम ने ही किया है। राम ने अपन शाल स धर्म की स्थापना की मर्यादा को स्थिर किया।[8] पतित पावन तथा शरणागत वत्सलता, राम म असीम है। सात्विक गुण के प्रताक भरत उनको अपराधिहु पर कोह न काऊ कहते हैं। क्रूर कुटिल, वेद विरुद्ध सभी राम के शील

१ (क) अल्पकाल विद्या सब आई ॥ १।२०३।४
(ख) प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहि माथा।
१।२०४।७
(ग) विद्या विनय निपुन गुनसीला। १।२०३।६
२ विनय पत्रिका—पद १००
३ रामचन्द्रशुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १८
४ वही, पृ० २१
५ गुरहि प्रनामु मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा ॥ १।२६०।५
६ राम राज्य नभगेस सुनु सचराचर जग माहि।
काल, कम, सुभव गुन, कृत दुख काहुहि नाहि॥ ७।२१
७ बरना श्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहि सदा पावहि सुखहि, नहि भय सोक न रोग ॥ ७।२०
कोटि विप्र वध लागहि जाहू। आए सरन तजउ नहि ताहू॥ ५।४३।१।१
८ मानस—२।२५६।५

म 'कुल-भूषण'[१] बन जाते हैं। इस प्रकार 'मानस' के रूप में शील का अथाह सागर है।

शक्ति-तत्व

राम कथा में राम की असाधारण शक्ति का गान ही है। उनकी शक्ति विध्वंसक नहीं, लोक-कल्याणार्थ निशाचरों का वध करके ही। वह पृथ्वी का भार हरण करते हैं। राम की दिव्य शक्ति का प्रकाशन मानस के अनेक स्थलों पर है—

(१) विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के लिए वे ताड़का वध करते हैं।[२]
(२) अनेक राजाओं के मध्य धनुर्भंग करना।[३]
(३) परशुराम के तेज को मन्दित करना।[४]
(४) जयन्त, विराध, खरदूषण त्रिसरा कबन्ध वध।[५]
(५) दुंदुभि राक्षस की अस्थियों का प्रक्षेपण करना।
(६) बालि-वध।[६]
(७) कुम्भकरण का वध।
(८) रावण वध[७]

तुलसी के राम का बाण ब्रह्म शक्ति का प्रतीक है। रावण जिसकी भुजाओं के पराक्रम से दिग्पाल विकल हो जाते हैं[८] दिग्गजों के दाँतों को जिसकी छाती मूली

---

१ कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक वेद बाहेर सब भाँती।
राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउ भुवन भूषण तबही तें॥ २।१६५।१,२

२ एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥
१।२०८।५

३ लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहु न लखा देख सब ठाढ़ें।
तेहि छन मध्य राम धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥ १।२६०।५

४ बहुछल बल सुग्रीव करि, हिय हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥ ५।८।

५ धरनि धसई धरि धाव प्रचण्डा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खण्डा।६।७०।६

६ बहु छल बल सुग्रीव कर हिय हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि॥ ५।८।

७ धरनि धसइ धर धाव प्रचण्डा।
तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खण्डा॥ ६।७०।६

८ धरनि धसइ धरि धाव प्रचण्डा। तब सर हति प्रभु कृत दुइ खण्डा॥
६।१०२।३

की तरह ताड देती है, जिसके चलन पर धरती डोलती है, दिग्पालो से जिसने पानी भरवाया है[1] कुम्भकरण जैसा प्रबल योद्धा जिसका भाई है, इन्द्रजीत मेघनाद जिसका पुत्र है, काल जिसकी पाटी में बँधा है, चर और अचर को जिसने पराक्रम से पछाड दिया है।[2] जगत में जिसका अतुलित यश फला है।[3] लोकपाल जिसके यहा बन्द हैं, जिसकी गति अपार है,[4] उस प्रबल प्रचण्ड प्रतिनायक का वध करना बल में सागर राम का ही तेज है। उनके क्षत्रियत्व के तेज में मुनियों का आशीर्वाद देवताओं का विनय तथा धर्मात्माओं ने आत्मा का तेज दिया है। राम के व्यक्तित्व में तुलसी ने इतनी शक्ति सौन्दर्य का दर्शन कराया है, कि ऐसी झाँकी भारतीय साहित्य में कहीं नहीं मिलेगी। राम का युद्ध धर्म युद्ध है, वे विजयता नहीं, धर्मावतार, धर्मनेता हैं।

अवतारी राम

सम्पूर्ण 'मानस' में एक ही ध्वनि है कि राम अधर्म का नाश करने के लिए अवतार धारण करते हैं।[5] गीता में भी परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्[6] के द्वारा भी यही हेतु दिया गया है। परम ब्रह्म के अवतार हेतु तुलसी

---

१ (क) जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरउ जाइ बरि आई॥
जिनके दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥ ६।२४।५,६

(ख) जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥ ६।२४।७

(ग) दिग्पालन्ह मैं नीर भरावा। ६।२७।५

२ कुम्भकरन अस बंधु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहि सुनेउ जितेउ चराचर झारि॥ ६।।२७

३ रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाके बन्दी जाना॥ ६।८६।४

४ जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत विषय विविध जिमि, नित नित नूतन मार॥ ६।९२

५ जब जब होई धरम की हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
१।१२०।६,८

६ गीता—४।७।८

के मत स अनेक हैं।[१] तुलसी के राम व्यापक विरज अज अकल अनीह, वेदो म अज्ञेय होते हुए भी भक्तो क लिए अवतरित होते है।[२] वे सच्चिदानन्द रूप हैं, वे निगु ण, निराकार असाम होते हुए भी भक्तो क लिए सगुण-साकार बनकर मानव लीला करते हैं। वे ब्रह्मा विष्णु तथा महेश से भी ऊँचे हैं।[३] जो राम के इस अपार असीम रूप से भिन्न हो जाता है वह राममय हो जाता है।[४] यह ससार प्रकाश्य है तथा राम उसके प्रकाशक हैं।[५] वे अश अशी सब कुछ हैं। तपस्या से प्रसन्न होकर वे वरदान दते हैं और मानव लीला करते हैं जो शिशु बनकर किलकते हैं क्षत्रिय के वीर वेश म वे ही दुष्टो का नाश करते हैं। गुणातीत मायानात होन हुए भा विप्र धनु सन्त हित वे ज म धारण करत है। मानस म देवताओ ने जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रणत पाल भगवन्ता के रूप म इमा रक्षक ब्रह्म क अवतार हेतु प्राथना की है। उपयु क्त प्रधान कारणो क अतिरिक्त मानस म राम जन्म के अनेक प्रासगिक कारणो का भी शिवजी ने सकेत दिया है।[६]

(१) देवताओ के रक्षाथ अवतार धारण करना।

(२) ऋपि शाप से जय तथा विजय का रावण तथा कुम्भकण का रूप धारण करना।

(३) जालन्धर रावण का राक्षस रूप मे जन्म लेना।

---

१ (i) हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाय न सोई ॥१।१२०।८
राम जनम के हेतु अनेका। परम विचित्र एक ते एका ॥ १।१२१।२

(ii) गाधितनय मन चिन्ता व्यापी। हरि बिनु मरहि न निसिचर पापी।
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतारेउ हरन महि भारा ॥
१।२०५।५,६

(iii) असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहि निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहि बिसद जस राम जन्म कर हेतु ॥१।१२१।

२ (i) ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह, अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥१।५०।

(ii) सोइ राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति माया धनी।
अवतरेउ अपने भगन हित निजतन्त्र नित रघुकुल मनी ॥१।५१।

३ जग पेखन तुम देखनिहारे। बिधि हरि सम्भु नचावन हारे ॥२।१२६।१

४ सोइ जानइ जहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई ॥२।१२६।३

५ जगत प्रकास्य प्रकासक राम। मायाधीस ज्ञानु गुन धाम् ॥१॥११६।७

६ १।१२१।५ १।१२२।, १।१२२।२, १।१२४।२, १।१३५।
१।१२५।१, १।१७८।१,२ ॥

(४) मनु तथा शतरूपा की तपस्या से प्रसन्न होकर वरदान देना।
(५) अभिशप्त राजा प्रतापभानु का रावण रूप में जन्म लेना।
(६) असुरों के अत्याचारों से पीड़ित पृथ्वी का गाय रूप में विलाप करना।
(७) शापग्रस्त व्यक्तियों का उद्धार करना।
(८) यज्ञादि कर्म में प्रवृत्त मुनियों तथा ब्राह्मणों की रक्षा करना।
(९) भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करना।

इसलिए 'मानस' में वे 'हरिहउ सकल भूमि गरुआई' की प्रतिज्ञा करते हैं। भगवान के पुराणों में वर्णित मीन, कमठ, सूकर, नृसिंह आदि अवतारों का भी तुलसीदास ने संकेत दिया है।[1] अनेक अवतारों के माध्यम से यह विराट ब्रह्म अपने विराट ब्रह्माण्ड में लीलावतार बनकर आता है। 'मानस' में स्थान-स्थान पर यह संकेत है कि राम मानव लीला कर रहे हैं। उनका महाविष्णुत्व, अखण्डत्व, महामानवत्व ईश्वरत्व, लोक प्रति अपार अपनत्व बड़ा अद्भुत है। डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ने ठीक ही कहा है कि 'गोस्वामी तुलसीदास जी के राम न केवल ब्रह्म हैं (निर्गुण ब्रह्म तथा सगुण अशरीरी परमात्मा हैं) न केवल महाविष्णु हैं (सगुण शरीरी परमात्मा हैं) न केवल मर्यादा पुरुषोत्तम हैं (आदर्श मनुष्य हैं) वरन् तीनों के सामंजस्य से परम पूर्ण आराध्य हैं।[2] तुलसी ने राम को प्रत्येक सम्भव जीवन के दृष्टिकोण से देखा है। मध्ययुगीन सांस्कृतिक चेतना को मुगल काल में त्राण का आश्वासन चाहिए था, राम ने दिया। 'तुलसी के राम शास्त्र नहीं धर्म की प्रतिमूर्ति है।'[3] मुगलों के समय में ऐसे सन्त नायक या दिव्य व्यक्तित्व की धर्मावतार कल्पना तुलसी के दिव्य-दृगों का प्रकाश है। उनका नायक दार्शनिकों के विवाद में चाहे निराकार तथा साकार दोनों का सामंजस्य माना जाए, लेकिन सत्य यह है कि तुलसी को एक ऐसे अमर मानव की तलाश करनी पड़ी जिसके आदर्श भारतीय सांस्कृतिक जीवन के आधार बन सकते हों।'[4] यह मानव चिर प्राचीन होते हुए भी चिर नवीन है। मानव होते हुए भी ईश्वर है तथा ईश्वर होते हुए भी मानव है।

राम—विकसनशील चरित्र

उपर्युक्त विवेचन से एक बात स्पष्ट हो गई है कि राम का चरित्र परम्पराओं, युगों से विकसित होता आ रहा है। तुलसी ने उस चरित्र को युगानुकूल ढाला तथा

---

१ मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परशुराम बपु धरी॥ मा० ३।५।४
२ डा० बलदेवप्रसाद मिश्र—तुलसी-दर्शन, प० १३३
३ डा० रामरतन भटनागर—समसामयिक जीवन और साहित्य, पृ० २३६
४ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य-उद्भव और विकास, पृ० २३७

चरित्र म अविध्य प्रस्तुत किया। आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने एसे चरित्र की अवतारणा विश्व साहित्य म दुर्लभ माना है। राम अपनी गरिमा से ही नर नारी पर छाये हुए हैं। मानस म भरत जसा निर्मल निश्छल चरित्र भी राम के त्याग से श्रद्धानत हो जाता है। राम के नायकत्व का परखने के लिए अब हम पूर्व निर्धारित मानदण्डो को ध्यान म रख कर विचार करेंगे—

कथा का सूत्रधार

भारतीय तथा पाश्चात्य दोनो देशो के आचाय इस तथ्य पर बल देते हैं कि महाकाव्य का नायक कथा का प्राणवान सूत्रधार होना चाहिए। इस कसौटी पर तुलसी का नायक बहुत खरा है। राम इस धम तथा के मूल म हैं। तुलसी का भी उद्देश्य भक्त होने के नाते अपने आराध्य की महिमा का उद्घाटन है। राम शत्रु तथा मित्र दोनो के ही आराध्य हैं। मन्दोदरी विभीषण आदि शत्रु पक्ष के होने पर भी राम से प्रभावित हैं सुग्रीव तथा हनुमान राम के चरणो म ही जीवन की साथकता समझते हैं।

तुलसी ने राम की कथा के सूत्र वेदो पुराणो रामायणो महाभारत बौद्ध तथा जन कथाओ तथा धार्मिक साहित्य से एकत्र किए हैं। इसका संकेत ऊपर दे चुके हैं। राम की कथा म तुलसी ने अधिक परिवतन नही किए हैं। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण से तुलसी ने बहुत कुछ लिया लेकिन राम का चरित्र उन्होने अपने ही ढग से प्रस्तुत किया है। मानस म राम जन्म से रावण-वध तक की अनगिनत घटनाओ म राम के ही क्रिया-कलाप चलते हुए हैं।[1] प्रासंगिक कथाए बालि-वध अहिल्या उद्धार आदि सभी म राम का रूप प्रधान है। मानस के तीनो वक्ता शिव याज्ञवल्क्य तथा काकभुशुण्डि से तुलसी ने लोक प्रख्यात कथा का ही मम उदघाटित किया है। इस दिशा म कथा प्रवाह म मग्न पाठक या श्रोता को असल बात की ओर ध्यान दिलाते रहने की आवश्यकता समय समय पर उस कवि को अवश्य मालूम होगी जो नायक को ईश्वरावतार के रूप म दिखाना चाहता है।[2] सम्पूर्ण कथा म राममय वातावरण होने के कारण धार्मिक पवित्रता छाई हुई है। राम को धम संस्थापक युग नेता के रूप म प्रस्तुत किया है। कथा का समस्त चक्र ही उसके व्यक्तित्व से संचालित है।

---

१ डा० विद्या मिश्र—वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० २८६

२ आ० रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १७

महत्त्वपूर्ण व्यक्ति

महापुरुष अपने असाधारण कृतित्व तथा व्यक्तित्व से शाश्वत महत्त्व का व्यक्ति बन जाता है। चाहे वे गौतम हो या महावीर स्वामी रत्नसेन हो या शिवाजी उनकी महत्ता उनके कार्यों मे निहित है। 'राम' तो भारतीय जीवन का ऐसा नायक है जो आर्य सस्कृति मे अपने आदर्शों के कारण शाश्वत महत्त्व का व्यक्ति है। सदसम्पन्न इस व्यक्तित्व मे अन्याय के विरुद्ध लोहा लेने की शक्ति असीम तथा अटूट है उसका कारण है उनका अदम्य अहकार एव क्षत्रियत्व से मण्डित उनका आत्मतेज। वे धरा को राक्षसो से मुक्ति दिलाने के लिए निभय प्रतिज्ञा करते हैं तथा उसे पूरा करना इस विराट व्यक्तित्व के सामने कुछ नही है। शरणागत को वे गले लगाते हैं शत्रु भी शरण म आ जान पर उन्हे लक्ष्मण सम प्रिय बन्धु लगता है।

राम राज्य भी भावनात्मक आनन्द लोक है जिसके अधिष्ठाता राम हैं। रामराज्य की कल्पना करके आज भी व्यक्ति पथ पाता है। पूर्ण ब्रह्म होने के नाते जो जानबूझ कर मानव लीला करते हैं पत्नी के वियोग मे व सामान्य व्यक्ति की भाति तडपते हैं बन्धु के बेहोश हो जाने पर वे सामान्य व्यक्ति की भाति करुण विलाप करते हैं तथा पिता वचन मनते हु नहि ओहू' आदि गम्भीर वचन भी कहने लगते हैं। भरत का सभी प्रकार से सराहते हुए वे थकते नही हैं। वनवास से लौटने के पश्चात कौशल्या के पास न जाकर पश्चाताप की अग्नि से पवित्र कैकेयी के पास सबसे पहिले जाते हैं। देवताओ, ब्राह्मणो सन्तो, दुबल दीनो की रक्षा करते हैं। आचार्य शुक्ल ने इस मर्म को इस प्रकार उद्घाटित किया है कि 'किसी श्रेणी का हिन्दू हो, वह अपने प्रत्येक जीवन म राम को पाता है, सम्पत्ति मे विपत्ति मे, घर में वन मे रण क्षेत्र मे आनन्दोत्सव म, जहाँ देखिए वहाँ राम'[1] आचार्य शुक्ल जी ने उत्तरापथ के जीवन को ही राममय कहा है, लेकिन राम ने तो उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ दोनों को ही राममय कर रखा है। राम के महत्त्व का प्रधान कारण है अमगल का नाश तथा मगल की स्थापना। वे ताडका सुबाहु, सुबन्ध, त्रिसरा खरदूषण, कुम्भकर्ण तथा रावण आदि सभी का वध करते हैं। बालि का वध भी वे भाई की पत्नी को बलात लेने के कारण करते हैं। विद्वानो के मत से बालि-वध राम के चरित्र को निर्दोष नही सदोष सिद्ध करता है। लेकिन इसका एक ही उत्तर है कि बालि का वध उन्होने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नही अपितु कुदृष्टि रखने

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३

वाले को मारना पाप नहीं है, यह कहकर किया है। बालि का वध भी धर्म-स्थापना का एकमात्र प्रयास ही है। तुलसी ने कलि-कल्याणार्थ यह धर्मधारी चरित्र लिया जिसका चरित्र तरण-तारण होने के कारण जन मन का भजन है—

> रामकथा सुंदर करतारी। संसय बिहग उड़ावनि हारी।
> राम कथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराज कुमारी॥[1]

दृढ़ आत्म शक्ति

राम के शाश्वत महत्त्व का कारण है उनके मानस मन की अपराजयता है। कठिन से कठिन विपत्ति में भी उनका सहज विश्राम अक्षुण्ण रहता है। शिव सहित कैलाश पर्वत को उठानेवाला काल को नियन्त्रण में रखने वाला परम प्रचण्ड रावण जिसके चलने से धरती डगमगाती है वही रावण राम के बाणों से दमतोड़ देता है। राजकुमार सुकुमार राम को भीषण वनों में भटकते हुए देखकर सबका धैर्य यहाँ तक कि धीरज का भी धीरज छूट जाता है लेकिन राम हैं कि उनका धैर्य छूटता नहीं है, उनकी गति रुकती नहीं है। वनवास के अवसर पर पिता की अत्यन्त करुणा-दशा देखकर भी वे धैर्य-धारण करते हैं। वन में साधनहीन होते हुए भी भयभीत नहीं होते। मायावी रावण का धैर्य के साथ वध उनकी अपराजेय आत्म-शक्ति का ही प्रमाण है। ऐसे अपराजेय आत्म शक्ति के व्यक्तित्व को देखकर रवीन्द्रनाथ टगोर ने कहा था मन में जब तब एक महत्त्व व्यक्ति का उदय होता है सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार आ जमाता है मनुष्य चरित्र का उदार महत्त्व मनश्चक्षुओं के सामने अधिष्ठित होता है तब उसके उन्नत भावों से उद्दीप्त होकर उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मंदिर निर्माण करते हैं।... उस मन्दिर में जो प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है, उसके देव भाव से मुग्ध और उसकी किरणों से अभिभूत होकर नाना दिग्देशों से आ आ कर लोग उसे प्रणाम करते हैं।[2] तुलसी ने राम को नर से नारायण बनाकर उनका शील शक्ति और सौन्दर्य चरम सीमा पर पहुँचा दिया। 'रामायण' के राम को तुलसी ने घट घट वासी यथा लोक रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है। राम की आत्म शक्ति में नरत्व विष्णुत्व तथा ब्रह्मत्व तीनों का समन्वय है। लौकिक लोकोत्तर तथा अलौकिक तीनों प्रकार की झाँकियाँ भी उनमें दिखाई पड़ती हैं। राम अपनी इस विराट शक्ति के कारण ही अपराजेय आत्म शक्ति के नायक हैं।

---

१ मानस—१।११३।१,२

२ रवीन्द्रनाथ ठाकुर—मेघनाद वध की भूमिका, पृ० १५७, १५९ (हिन्दी अनुवाद—चिरगाँव, सं० १९८४)

प्रतिनिधि चरित्र

राम का चरित्र अनेक आदर्शों का कोश है। पिता की आज्ञा पुत्र के लिए शिरोधार्य है इसका आदर्श राम का चरित्र प्रस्तुत करता है। तुलसी ने राम को आदर्श के सर्वोच्च शिखर पर प्रतिष्ठित करके भी उनके मानवत्व की पूर्ण रक्षा की है। सुख दुःख में वे सामान्य मानव की भांति अपने क्रिया-कलाप करते हैं। लक्ष्मण शक्ति के अवसर पर उनके धैर्य का बांध टूट जाता है तथा पश्चात्ताप के क्षणों में 'नारिहेतु प्रिय बन्धु गवाईं'[1] तथा 'जहौं अवध कवन मुख लाई'[2] आदि अनेक प्रश्न उनके मन में उठते हैं। जीवन के प्रत्येक रूप में चाहे वह प्रेम हो या युद्ध राम का चरित्र प्रेरणा देता है। 'तुलसी के मानस से रामचरित की जो शील शक्ति सौन्दर्यमयी स्वच्छधारा निकली उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँचकर भगवान के स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलका दिया। रामचरित की इसी जीवन व्यापकता ने तुलसी की वाणी को राजा रंक, धनी दरिद्र मूर्ख पण्डित सबके हृदय और कंठ में सब दिन के लिए बसा दिया।' इससे निष्कर्ष निकलता है कि राम के चरित्र में ऐसा कुछ है जो परत्व में मुक्ति दिलाकर निजत्व की ओर ले जाता है। उन्होंने राम के चरित्र का आधार लेकर मानव जीवन की जितनी व्यापक समीक्षा की है उतनी हिन्दी साहित्य के किसी कवि ने नहीं की। इस समीक्षा के साथ ही उन्होंने लोक शिक्षा का भी ध्यान रखा और मानव जीवन में ऐसे आदर्शों की स्थापना की जो विश्वजनीन हैं और समय के प्रवाह से बह नहीं सकते।[4] उनका यह विश्वजनीन व्यक्तित्व ही हमारे जीवन का प्रतिनिधि बन गया है।' डा० माताप्रसाद गुप्त का कहना है कि 'राम के व्यक्तित्व में तुलसी ने बालक की सरलता का, अतुलनीय नम्रता का छोटों पर स्नेह का, गुरुजनों के प्रति समादर की भावना का, अनुपम उदारता तथा निस्वार्थता का कर्त्तव्य पालन का एक सवेदनशील व्यक्तित्व का अपकारियों के प्रति भी प्रेम-पूर्ण सद्भावना का, एक नितान्त सन्तापी स्वभाव का आदि अनेक गुणों का भव्य रूप प्रस्तुत किया है।[5] साथ ही राम मानवीय धरातल पर भी स्थित हैं अतः जीवन का प्रतिनिधि चरित्र राम को कहना ही चाहिए। मानस के कवि का उद्देश्य राम भक्ति का प्रचार मात्र ही नहीं है, कलि-कलुष

१ मानस—६।६०।६

२ जौं जनतेऊ बन बंधु बिछोहू। पिता वचन मनतेऊ नहिं ओहू॥६।६०।६

३ आ० रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास, प० ३

४ डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३४६

५ डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० २६७ ८८

विभंजन, आशुतोषक जगत्त्राणेता राम को आदर्श का प्रतिनिधि चरित्र भी बनाता है।

दिव्य शक्ति से अलंकृत

भारतीयों के मत से महाकाव्य का नायक दिव्य शक्ति से अलंकृत होना चाहिए। उसमें ऐसी दिव्यता हो कि लोक में सांस्कृतिक जागरण हो जाए। इस दृष्टि से भी तुलसी का नायक बहुत पूर्ण है। वे मायातीत, अज, अगोचर, अविनाशी, चिन्मय, अखण्ड कामधर से अक्षय¹, भव भय हरण करने वाले गुणों के सागर, अजय निर्गुण निर्विकार, माया से परे, देवताओं के स्वामी, दुष्ट-दमन में पटु, ब्राह्मणों के रक्षक आदि न जाने कितने अनगिनत दिव्य गुणों से अलंकृत हैं। 'कथा की मिति जग नाही'² तथा 'नाना भाँति राम अवतारा'³ में भी यही ध्वनि है। इस दिव्यता के कारण ही तुलसी के राम डा० श्यामसुन्दर दास के शब्दों में 'व्यापक हिन्दू धर्म के सम्बन्धित संस्करण हैं।'⁴ उनका दिव्य रूप का संकेत मानस में स्थान-स्थान पर मिलता है, जब वे अपि 'चापक' धनुष उठा लेते हैं तब ही बाण में बालि का वध करते हैं कुम्भकरण तथा रावण से योद्धा को जीवन-मुक्त कर देते हैं। तुलसी के राम की यह दिव्यता अतिमानवता या अतिलोकोत्तरता या लोक मंगल की भावना तथा धर्म संस्थापक की मूर्ति में प्रगट है। यहाँ आकर आत्म धर्म तथा लोक धर्म एक हो गया है। उनका नायक मात्र धीरोदात्त या दिव्य-नायक ही नहीं, धर्म मूर्ति सन्त हैं। उनके गुणों में भारतीय आत्मा के चिरन्तन सौन्दर्य का उभार तथा निखार है। डा० राजकुमार पाण्डेय ने तुलसी के राम में दिव्यता तथा मानवीय आदर्शों के अद्भुत रूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'तुलसी के राम उच्चतम अलौकिक आदर्शों के प्रतीक होकर भी मानवीय भूमि पर प्रतिष्ठित हैं और वे मानव मात्र के हैं।'⁵ तुलसी का जीवन बोध इसी कारण अटूट है। राम अपनी दिव्यता में बहुत ही विराट हैं। तुलसी ने अपने विषय की गम्भीरता को तो निभाया ही है, अपने काव्य के *नायक को इतना विराट बना दिया है जिसका माथ स्वर्ग का स्पर्श करता है* और पाँव धरती में गहराई तक गड़े हुए हैं। यह विराट राम तुलसी की कल्पना के ही

---

१ *मानस—६, प्रथम श्लोक*

२ मानस—१।३२।५

३ वही—१।३२।६

४ हिन्दी साहित्य, पृ० २५८

५ डा० रामकुमारपाण्डेय—रामचरितमानस का काव्य-शास्त्रीय अनुशीलन, पृ० ४८६

नहीं, उनकी अंतरात्मा की अनुभूतियों और विश्वासों के राम हैं।'[1] वेदों से लेकर मध्ययुग तक अनेक महान् पुरुषों में अवतारों की कल्पना की जा चुकी थी लेकिन तुलसी ने राम के व्यक्तित्व में इतनी दिव्यता का समावेश कर दिया कि पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कोई भी कवि इनकी बराबरी नहीं कर सका। रामचन्द्रिका के राम 'मानस' के राम के सामने छोटे लगते हैं यहाँ तक कि कृष्ण-काव्यों के कृष्ण भी राम जितना विराट तथा दिव्य व्यक्तित्व नहीं रखते हैं। इस प्रकार उनका नायक दिव्य तेज का प्रतीक है।

विचारों की व्यापकता

नायक में विचारों की संकीर्णता या साम्प्रदायिकता नहीं होनी चाहिए। इस दृष्टि से तुलसी राम में विचारों की अपार व्यापकता है। वे प्रेम से दिए गए शिवरी के झूठे बेरों का निस्संकोच भाव से ग्रहण करते हैं स्वयं प्रकाश्य रूप प्रधान होते हुए भी शिव की भक्ति करते हैं तथा शिवद्रोही दास से वे सपने में भी घृणा करने का भाव व्यक्त करते हैं। राज्य में उन्हें अपना-पराया नहीं दिखाई देता। विचारों की इस व्यापकता के कारण ही वे कैकेयी द्वारा किए गए कुटिल कृत्य पर क्रोध करने के बजाय विधि को दोषी ठहराते हैं। रावण ऐसे अधम को जिसे नरक की नीचा से नीची श्रेणी मिलनी चाहिए थी, जो लोक को पास रहा था, उसे भी राम ने मरणोपरान्त कैवल्य प्रदान किया। वे शत्रु के प्रति शत्रु नहीं सदैव मित्र बन जाते हैं। वे सभी को अपना मानते हैं। 'सबमय प्रिय सब मय उपजाए' का भाव भी व्यक्त करते हैं। विचारों की व्यापकता के कारण ही विभीषण को लंका का राज्य देते हैं। वे लंका का राज्य लेने की नीति से रावण के साथ युद्ध नहीं ठानते वे तो अन्याय तथा लोकोद्धार के लिए क्षत्रियत्व का तेज 'खर सुखेन कालकिन होई' के साथ प्रगट करते हैं। विचारों की इस व्यापकता का अनुकरण यदि आज का मानव कर सके तो न जाने कितना महान बन सके। डा० कपिल देव पाण्डेय ने उन्हें भारतीय संस्कृति का सांस्कृतिक पुराण प्रतीक'[2] कहा है। उनके व्यक्तित्व में व्यक्ति, इतिहास, जनश्रुति युग चेतना, सांस्कृतिक एवं जातीय-काय कलाप, सांस्कृतिक साहित्य साधना, उपासना [3] सभी का रूप समाहित हो गया है।

कार्यों की उदात्तता

महाकाव्य के नायक में कर्म सौंदर्य का अतुल रूप होना चाहिए। संस्कृत के आचार्यों ने पुरुषार्थ-चतुष्टय की चर्चा का आधार नायक को ही बनाया है। उसे धर्म,

---

१ डा० शम्भूनाथसिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ५१६
२ मध्ययुगीन साहित्य में अवतारवाद, पृ० ६८३
३ वही पृ० ६८४

अर्थ, काम, मोक्ष म से किसी एक की प्राप्ति होनी चाहिए। पाश्चात्य जगत म अरस्तू ने भी नायक क कार्य-व्यापार को महत्व दिया है। इस कसौटी पर रामचरित मानस का नायक अधिक खरा उतरता है। उसका तो जन्म ही जन-कल्याण के निमित्त है। वह साधुओं को राक्षसो से त्राण देता है। अहिल्या जसी पावन महिलाओं का अपने पग की धूलि से पवित्र करता है। रावण का वध करके पापों व पाप का निष्कासन कर देते है। अपने उदात्त कार्यों के कारण वे राम राज्य का अमर आदर्श प्रस्तुत करते हैं। ताडका सूपनखा आदि के प्रति भी इनकी दृष्टि कल्याणमयी है। बालि वध भी व व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं लोक की प्रतिष्ठा के लिए करते हैं। राजनतिक दृष्टि से व इतने सफल हैं कि विभीषण को अपनी शरणा म अभयदान देते हैं तथा रावण-वध का पूरा वृत्तान्त उससे जानकर रावण का वध करते हैं। अपने उदात्त-कार्यों के कारण ही व आदर्श राजा आदर्श पति आदर्श पुत्र आदि सभी कुछ बन जाते हैं। यही कारण है कि राम के कार्यों की तुलना भारतीय साहित्य के किसी अन्य नायक से नहीं की जा सकती है। उनके ही उदात्त कार्यों से अन्य कवियों को अपने नायकों म भी प्रेरणात्मक शक्ति उत्पन्न करने की प्रेरणा मिली है।

वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण म राम द्वारा उत्तर काण्ड म सीता निर्वासन की कथा है। भवभूति ने उत्तररामचरित म भी इसी कथा को चुना है। पदमपुराण म भी सीता निष्कासन की कथा है। इस प्रकार तुलसी से पूर्व प्राय सम्पूर्ण काव्यो म सीता के निष्कासन की कथा है। तुलसी ने मानस' म इस कथा को छोड दिया है। उनके राम बेकार के लोकापवादो म विश्वास नहीं रखते उन्हें सीता के प्रति कोई सन्देह नहीं है। अत तुलसी ने पूर्व प्रचलित इस दु खान्त कथा को छुआ ही नहीं है। राम के काय सीता प्राप्ति के साधन मात्र नहीं, लोक-जीवन के आदर्श प्रतिमान हैं। मध्ययुग मे राम जसे नायक की आवश्यकता तुलसी को प्रतीत हुई और उन्होंने ऐसे विराट व्यक्ति को युग धर्म के लिए समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जिसके महनीय काय युग युगान्तर म मानव को सदव दिशा देते रहेंगे।

कथा के मूल भाव या रस का आधार

राम की कथा इस काव्य म आधिकारिक कथा है। इस आधिकारिक कथा का ढलाव युद्ध की ओर है। आय अनाय संस्कृति का युद्ध ही इस कथा के मूल मे है। रामावतार का कारण ही यही है कि वे धर्म की स्थापना करना चाहते हैं। लक्ष्मण हनुमान सुग्रीव अंगद जाम्बवान नल नील आदि सभी पात्रो की कथा राम कथा का ही अंग है। प्रतिनायक रावण कुम्भकरण मन्दोदरी, मेघनाद

सुलोचना आदि की कथा भी भक्ति से पूर्ण है। कथा का मूल भाव है अन्याय के विरुद्ध तब तक युद्ध करना जब तक उसका पूर्ण विनाश न हो जाए। राम से बढ़ा अन्याय के विरुद्ध जीवट से युद्ध करने वाला नायक ही दुर्लभ है। राम के अदम्य उत्साह को देखकर ही विद्वानों ने इस काव्य का रस वीर ठहराया है।

इस काव्य का अंगीरस वीर है या शान्त रस या भक्ति रस इस पर विद्वानों में बड़ा विवाद है। तुलसी के राम भक्तों के राम हैं जन विश्वास में न्याय के साम्कृतिक प्रतीक हैं अनन्त, अगोचर निर्गुण, निराकार होने पर भी सन्तों के लिए सगुण साकार हैं। उनके धनुष के बाण भक्तों की रक्षा से ही पावन हैं, जन-रक्षक होने के कारण ही राम का वीर-वेश भक्तों को प्रिय है। कथा के मध्य में तुलसी ने अनेकों प्रसंगों में राम चर्चा की है इस दृष्टि से मानव-भक्ति-सागर है। अलौकिक ब्रह्म की कथा में तुलसी ने भक्त का विश्वास रमा दिया है। तुलसी विश्वास का कवि है निर्वेद का नहीं। जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण 'मानस' में कहीं नहीं है अतः शान्त रस का राम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरी ओर राम-रावण की कथा लौकिक रूप में युद्ध कथा है तथा इस रूप में वह वीर रस प्रधान काव्य है। लेकिन लोकोत्तर धरातल पर जहाँ भक्त और भगवान हैं वहाँ पर 'मानस' में भक्ति का अखण्ड रूप है, भक्ति भी तो एक उदात्त रति का ही रूप है भक्ति आंदोलन ने पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में भक्ति भाव को और प्राणवान बना दिया। वेदों, पुराणों जैन बौद्ध आदि में राम की स्थापना लौकिक धरातल से ऊपर हो ही चुकी थी अतः भक्ति भाव धीरे धीरे परिपक्व होता रहा। अतः भक्ति भाव धीरे धीरे परिपक्व होता रहा, इस साधना ने भाव को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत कर दिया है भाव की परिपक्व दशा का नाम ही रस है।[1] भक्ति की यह रस-दशा शृंगार भाव का भक्ति से थोड़ी भिन्न रस-दशा है। शृंगारिक लौकिक रति का ही आधार इसमें नहीं है अतः मनोविकार से युक्त भाव रति को, जिसमें तुलसी ने मानव, पशु पक्षी सभी को एक राग दिखाया है, अपना लिया है। देव विषयक इस रति का उज्ज्वल भाव का परिपक्व रूप भक्ति रस प्राप्त हुआ है। 'मानस में सभी भाव शान्त, दास्य आदि तथा भयानक, वीभत्स, रौद्र आदि रसों को भक्ति रस में ही परिगति मिली है।[2] राम का वीर-वेश भी जन रक्षक राम का ही है, अतः इस वीरत्व का मुकाव भी भक्ति की ओर ही है। राम उत्तरकाण्ड में कहते हैं कि—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥[3]

१ रामदहिन मिश्र—काव्य-दर्पण, पृ० २११
२ दि नम्बर आफ रसाज—पृ० १३०
३ मानस—७।७२

'मानस' के आरम्भ तथा अन्त मे भगवान की भक्त-वत्सलता को अनेक प्रकारो से वर्णित किया गया है। तुलसी ने भक्ति भाव न उत्तर काण्ड मे एक सिद्धान्त अपना लिया है—

राम अमित गुन सागर, थाह कि पावइ कोइ।
सन्तन्ह सन जस किछु सुनऊ, तुम्हहिं सुनावहिं सोइ॥[1]

वियोगी हरि ने 'मानस के भक्ति रस को अपार धार सागर'[2] स्वीकार किया है। राम भक्ति भावो के चिर नायक है। इस दृष्टि से 'मानस' का अगीरस भक्ति रस ही मानना चाहिए। सामान्य धरातल पर 'मानस' मे वीर रस तथा विशुद्ध ज्ञान-योग के धरातल पर राम के नायकत्व म भक्ति रस का अखण्ड प्रवाह मिलता है। कथा की एक एक अर्द्धाली राममय है। रामचरित' का 'विशेष रस' भक्त के आनन्द के लिए अपनी लीला का प्रसार ही है। राम की मूल प्रवत्ति तथा कथा के कलवर मे एक ही गूज है—राम की भक्त वत्सलता। अत युगो युगो की वीरपूजा का तुलसी ने (भक्ति पूजा) मे मिला लिया—

पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। रामतें अधिक राम कर दासा॥[3]

तुलसी ने कथात्मक चमत्कार-पद्धति की अपेक्षा, राम के अलौकिक व्यक्तित्व को भक्तो के लिए प्रस्तुत किया है। डा० श्रीकृष्णलाल के शब्दो म, 'एक वाक्य मे रामचरित मानस राम भक्ति का काव्य है, रामचरित का काव्य नही राम कथा का काव्य नही।'[4] वाल्मीकि रामायण मे राम वीर-जाति के वीर-नेता हैं। लेकिन 'मानस' की स्थिति थोडी भिन्न है। तुलसी के राम असाधारण समर विजेता तथा अनेक दिव्य शक्तियो म सम्पन्न हैं। वे पृथ्वी पर धर्म की रक्षा के लिए ही अवतार धारण करते हैं। रावण-वध भी वे अधर्म का नाश करने के लिए तथा कुलद्रोही विभीषण का साथ भी वे भक्त हृदय होने के कारण ही देते हैं। भाव विश्वव्यापी है वैयक्तिक एकदम नही। प्रजापतियों के सयम से एक ही बाण बालि का वध करना है, उनका एक ही बाण इन्द्र के

—————
1. —७।९२
2. —वियोगी हरि कृत टीका की प्रस्तावना
3. —११९।१३, १४, १५, १६
4. —श्रीकृष्णलाल—मानस दर्शन, पृ० १४१

पुत्र जयन्त का तीनो लोकों मे पीछा कर सकता है। मारीच को सौ योजन दूर एक बाण फक सकता है। अत राम सीता के उद्धार के लिए ही युद्ध मे प्रवृत्त नही हैं वे तो मानव लीला से भक्तो को आनन्द प्रदान करने के लिए, लोकोद्धार के लिए, युद्ध मे रत हैं। करुण' नामक भाव का राम ने अद्भुत विस्तार किया है। इस करुणा के ऊपर ही वीर रौद्र आदि भाव टिके हैं। दूसरे शब्दो मे तुलसी मे राम के प्रति इतना समपण है कि भारतीय साहित्य म इतना बडा समपण अपने आराध्य के लिए शायद कही नहीं मिलता है। राम के चरणो म शत्रु भी (चाहे वह रावण ही क्यो न हो) मस्तक झुकाता है। डा० शम्भूनाथसिंह के शब्दो म, निष्कप यह है कि रामचरित मानस की आधिकारिक कथाओ म वीर रस अगी रस है, पर ग्रन्थ का पयवसान वीर रस म नही वल्कि भक्ति रस मे हुआ है। प्रथम सोपान के पूर्वार्द्ध मे भी भक्तिरस ही प्रधान है और अधिकारिक कथा म भक्ति रस का स्थान वीर रस से प्रथम ही है। अत समग्र रूप से भक्ति रस की प्रधानता है।'[1] इस प्रकार आचाय रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्रीकृष्णलाल, डा० शम्भूनाथसिंह, डा० उदयभानुसिंह आदि अधिकाश विद्वानो न मानस' का अगीरस वीर न मानकर भक्ति रस ही स्वीकार किया है। तुलसी न सास्कृतिक तथा आध्यात्मिक धरातल पर राम को मानव के रूप म नही परम ब्रह्म के रूप म प्रस्तुत किया, तुलसी सन्त थे, अत सन्त के लिए भक्ति-धारा म निमग्न हो जाना स्वाभाविक ही है।

महाकाव्य के अन्य पात्रों द्वारा उसके महत्त्व की स्वीकृति

मानस' मे राम का चरित्र प्रत्येक सत तथा असत पात्र पर छाया हुआ है। जिन पात्रा का वे वध करते हैं, वे पात्र भी राम की महानता को स्वीकार करने मे सकोच नही करते। वसे राम के चरित्र पर निरपराध बालि-वध का दोष लगाया जाता है। वह बालि भी राम द्वारा अपने वध को देखकर कह उठता है कि 'जिस राम के नित्य मुनि निरन्तर ध्यान रखते हैं, मानव अपना जन्म-जन्मान्तर जिनकी साधना म लगा देता है वही राम मेरे समक्ष खडे हैं इससे बडा मेरा और क्या सौभाग्य हो सकता है। विभीषण राम भक्ति की तन्मयता म अपने दुराचारी भाई का साथ छोड देता है। सुग्रीव तथा अगद राम के गुण प्रचारक सेवक हैं। हनुमान ऐसा अखण्ड ब्रह्मचारी राम क तेज से प्रभावित होकर अपने को उनका दास' कहलाने मे ही धन्य समझता है। दशरथ राम की गम्भीरता तथा पितृभक्ति की सराहना करते हुए थकते नही हैं। पितृ आज्ञा से वन जाने के उपरान्त दशरथ राम राम रटते हुए अपने प्राण होम देते हैं। राम की त्याग-वृत्ति से परिचित होने

१ डा० शम्भूनाथसिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४५७

के कारण भरत राज्य का नाम नहीं लेते हैं। भरत राम के प्रति इतने आस्थावान हैं कि राम के विरुद्ध कभी भी कुछ सोच ही नहीं सकते हैं। वे तो राम की चरण पादुकाओं की पूजा में ही तृप्ति का अनुभव करते हैं। भरत का जितना पवित्र मानस में दूसरा नहीं है।[1] ऐसा निष्कलंक चरित्र भी राम के महत्व को स्वीकार करता हुआ सा है। लक्ष्मण बचपन से ही राम के प्रति समर्पित हैं।[2] महत्वाकांक्षा से दूर यह चरित्र राम में अपने व्यक्तित्व को इस प्रकार से परिसमाप्त किए हुए है कि इसकी जोड़ का उदाहरण अन्यत्र बड़ी कठिनाई से ही मिलेगा।[3] लक्ष्मण राम की शक्ति के प्रति इतने निष्ठावान हैं कि तात के अधीर होने पर भी कहते हैं कि राम की भृकुटि के मुड़ते ही संसार नष्ट हो सकता है।[4] रावण जैसा शठ तथा हठी व्यक्ति भी अन्त में राम के महत्व को स्वीकार करता है। राम मानस में सभी पात्रों को चाहे वे शत्रु रहे हों या मित्र, उन्हें वे 'कैवल्य पद' सदा ही देते रहे हैं। देवताओं को उनके वचन तथा प्रतिज्ञा पर अटूट विश्वास है, वे उन्हें सुरनायक जननायक, प्रणतपाल, कहकर वन्दना करते हैं। कैकेयी जैसा पापपूर्ण चरित्र भी राम के विशुद्ध स्वभाव से प्रभावित होकर ग्लानिमय बना रहता है तथा कैकेयी अपने किए कृत्य पर 'कुटिल नारि पछितानी अघानी' के रूप में पश्चाताप करती है। इसीलिए वनवास से वापिस आने पर राम कौशल्या के पास न जाकर सर्वप्रथम कैकेयी के पास जाते हैं।[5] उग्र होने के कारण उन्हें जनता के मानस का पूर्ण ज्ञान है तथा कैकेयी को पश्चात्ताप की अग्नि से पवित्र मानकर वे आदर देते हैं। 'मानस' के सभी चरित्रों ने उनके दिव्य गुणों का इस अवसर अवसर पर अनुभव किया है। यही कारण है कि मानस के चरित्र राम के महत्त्व को कभी विस्मृत नहीं कर पाते हैं। महत्त्व की इस दृष्टि से उनका अलौकिक तेज अद्भुत है, तथा उनके अपराजेय व्यक्तित्व की छाप सब पर दृष्टिगोचर होती है।

---

१ भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही।।
तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू ।।मा०२।१८४।४,८

२ बारेहि ते निज हित पति जानी। लछमन राम चरन रति मानी।। मा०१।१९८।३

३ डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० २९२

४ भृकुटी विलास सृष्टि लय होई। सपनेहु संकट परइ कि सोई ।।मा०३।२८।४

५ प्रभु जाने कैकेयी लजानी। प्रथम तासु गृह गये भवानी।। मा०७।१०।१,

प्रतिनायक द्वारा नायक के महत्त्व का उद्घाटन

तुलसीदास के इस लीलावतारी नारायण से युद्ध करने वाला प्रतिनायक भी असाधारण जीवट का है। यद्यपि तुलसीदास ने 'वाल्मीकि रामायण' के रावण के विराट रूप का हटाकर 'मानस' म एक ऐसे रावण की सृष्टि की है जो सवथा अन्याय का ही पुतला है तथापि रावण के सत पक्ष को उन्होंने एकदम छिपा दिया है। डा० माताप्रसाद गुप्त का यह कथन बडा ही साथक है कि 'खेद है कि हमारा कवि नायक के प्रति उत्कृष्ट भक्ति के कारण इस वीर चरित्र के साथ पर्याप्त न्याय नहीं कर सका है। यह ठीक है कि वह मायावी, प्रचण्ड, क्रूर तथा अधर्मी है।[1] सीताहरण' उसके छल का स्पष्ट उदाहरण है। वह निशाचर सम्राट अपनी प्रचण्डता म इतना विकराल है कि युद्ध म उसके चलने पर धरती डगमगाती है। शक्तिशाली इतना है कि शिव के सहित कलाश पवन को अपनी भुजाओ पर उठा लेता है दिग्पालो से नीर भरवाता है काल को कद रखता है। नीति धर्मा इतना है कि दूत के अभद्र वचना का सुनकर भी प्राण-दण्ड नही देता है, साथ ही बलात चुराई हुई सीता को धमकाता ता है लकिन शारीरिक बलात्कार कभी नही करता है। भक्त इतना बडा है कि अपने आराध्य शिव के लिए सवस्वदान कर सकता है। क्रोधी इतना है कि क्रोध आने पर अपन सहोदर विभीषण को भी लात मार कर निकाल सकता है। पारिवारिक रूप से इतना शक्तिशाली है कि उसका पुत्र मेघनाद इन्द्र का जीत लेता है। भाई कुम्भकरण युद्ध का विकट विकराल योद्धा है। रावण स्वय भी युद्ध का पारगत है। उत्साही इतना है कि मरत दम तक अपने विश्वास को कम नही करता है तथा कायरो की भाँति अपने घुटने नही टकता है वाक पटु इतना है कि अगद को बाल-वध का दृष्टान्त देकर तथा राम को 'प्रिया-विरह मे व्यथित' कह कर अगद को मनोवैज्ञानिक प्रभाव द्वारा अपने पक्ष म करना चाहता है। दम्भी इतना है कि अपनी टक्कर का योद्धा वह विश्व म कोई दूसरा समझता हा नही है ज्ञानी इतना है कि नारायण के हाथ मरने म भी अपना सौभाग्य ही समझता है। इस प्रकार रावण असाधारण जीवट का प्रचण्ड शक्तियो वाला प्रतिनायक है। वह धीरोद्धत से बहुत बडा रूप प्रस्तुत करता है। वह पूर्ण रूप से भौतिकवादी है।[2] यह प्रवृत्तिमूलक चरित्र आदशवादी नही वरन् वस्तुवादी है कल्पनावादी नही, वरन प्रत्यक्षवादी नही, वरन् आशावादी अदृष्टवादी नही, वरन सकल्पवादी, सशयवादी नही, वरन निश्चयवादी और धार्मिक नही वरन् अधार्मिक है।[3] तुलसी के भक्ति भाव न ऐसे अधार्मिक चरित्र को भी अन्त मे भक्त बना

---

१ तुलसीदास—पृ० २६७

१ डा० उदयभानुसिंह—तुलसी काव्य मीमासा, पृ०४१६

२ डा० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, प० २६६

दिया है। शिव भक्त रावण अन्त में राम-भक्त बन जाता है। यह तुलसी द्वारा थोपा गया या गढा हुआ रूप है। अधिकाश आलोचकों की स्पष्ट धारणा है कि तुलसी अपने नायक के समक्ष रावण की हीनता ही दिखाते रहे तथा उसकी महानता को वे नकारते रहे हैं। परिणामस्वरूप प्रतिनायक के साथ वे याय नही कर सके है, मात्र अपने नायक के गुणो की विश्व यापी दुदुभी मानस' म पीटत रहे हैं। प्रतिनायक का उन्होंने शक्तिशाली भी इतना नायक की महत्व स्थापना के लिए ही दिखा दिया है। 'प्रतिनायक की इस महत्ती शक्ति, भयकर साहस अतिमानवीय वीरता और लोक विध्वसक प्रवत्तियो का सामना करने और उसका नाश करने वाला नायक कितना महान व्यक्ति होगा। यही दिखाने के लिए राम कथा मे रावण का यह रूप चित्रित किया गया है।[3] देव मनुज त्रासकारी इस पापी का वध राम के महत्त्व की बडी दि य शक्ति का ही प्रमाण है।

राम के नायकत्व का निर्धारण

उपयु क्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'मानस' के नायक राम 'महाकाव्य' की शास्त्रीय नायक की कसौटी से बहुत ऊपर के नायक हैं। भारतीय आचार्यों ने काव्य शास्त्र मे जिस 'धीरोदात्त नायक की अविकत्थन, क्षमावान गुणान्वित कह कर प्रतिष्ठा की है वह भी राम के समक्ष बहुत नगण्य ठहरता है। वे नायको के नायक हैं, आदर्शों के अक्षय कोश तथा विश्वासो के शाश्वत महारत्न हैं। दशन के ब्रह्म समाज शास्त्र के लोक-नेता, मनोविज्ञान के महामानव आदि सभी मिलकर भी राम की बराबरी नही कर पाते हैं वे उन सभी से परे हैं। यह नायक किसी भी परिभाषा की सीमा म आना ही असम्भव है। मानव ने जितने आदश गुणो की कल्पना की है उन सभी का अक्षय विश्व कोष राम का चरित्र है। डा० शम्भूनाथ सिंह ने राम के नायकत्व पर विचार करते हुए ठीक ही कहा है कि तुलसी ने अपने विषय की गरिमा को तो निभाया ही, अपने काव्य-नायक को इतना विराट बना दिया है कि जिसका शीष स्वग का स्पश करता है और पाव धरता म गहराई तक बढे हुए हैं। यह विराट राम तुलसी की कल्पना के ही नही उनकी अतरात्मा की अनुभूतियो तथा विश्वासो के राम हैं। मध्ययुग म तुलसी ने ऐस विराट चरित्र को प्रस्तुत किया जिसके समक्ष कोई भी नायक टिकता ही नही है। हिन्दी के प्रथम महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' का नायक पृथ्वीराज चौहान उनके सामने कण भर है, पद्मावत का आदश प्रेमी नायक भी फीका है। सूरसागर' का कृष्ण व्रज विलास' तथा 'कृष्ण चन्द्रिका का मधुर कृष्ण भी जिसकी समानता नही कर पाता है। केशव की 'राम चन्द्रिका के राम तथा वाल्मीकि रामायण के पूर्ण मानव राम भी जिनके समक्ष

३ डा० शम्भूनाथसिंह—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ६८१

आते ही छोटे पड जाते हैं। वास्तव में तुलसी के राम सास्कृतिक आदर्शों के अजर अमर नायक हैं। वे युग-युग की ऋषि-साधना के महान् परिणाम है जिनके महान व्यक्तित्व म सम्पूण भारतीय उदात्त कल्पना का वरदान मिल गया है। तुलसी के नायक से बडा चरित्र आधुनिक काल का भी कोई महाकाव्यकार उपस्थित नही कर सका है। 'प्रिय प्रवास' के लोक सेवी कृष्ण, कृष्णायन के कृष्ण, सभी उनके सामने अधूरे हैं। 'साकेत' के राम, वदेही वनवास के राम भी समानता नही कर पात। यही कहना उचित है कि आज तक कोई भी महाकवि इतन महान चरित्र को इतनी उदात्तता के साथ अभी तक प्रस्तुत नही कर सका है। अत तुलसीदास के नायक राम' नायक क निर्धारित लक्षणो से भी बहुत ऊँची भूमि पर विद्यमान हैं।

निष्कर्ष

तुलसी के राम वेदो, पुराणो, उपनिषदों, रामायण महाभारत, बौद्ध तथा जन साहित्य प्राचीन आख्यानक काव्यो, नाटको तथा भक्ति आन्दोलन की शक्ति से निर्मित अपार सम वय क परिणाम रूप हैं। तुलसीदास ने सास्कृतिक, धार्मिक नतिक सामाजिक आदि सभा सनातन आदश मूल्यो को राम के चरित्र में समाविष्ट कर दिया है। हिदुओ के पतन काल तथा मुगलो के शासन काल मे उन्होन एक एस अपराजेय व्यक्तित्व की सष्टि को, जो समाज को अपने मूल्या के माध्यम से आधार दे सके। राम के द्वारा प्रतिष्ठित शाश्वत मानदण्ड समस्त आय जाति के प्रतीक बन गए। सम्पूण भारत ही तुलसीदास ने राममय कर डाला। मर्यादा तथा धम का रक्षक इतना विशाल व्यक्तित्व हिन्दी म ही नही, सम्पूर्ण भारतीय साधना में नही है। इस प्रकार मानस के नायक राम युगा-युगा की साधना का परिणाम हैं उन्हें धम, सस्कृति, इतिहास, दशन आदि सभी ने मिल कर नवीन स्वरूप दे दिया है, जो मानवत्व, ईश्वरत्व दोनों दष्टिया से भव्य, उदात्त, अद्भुत तथा अपार है।

रामचन्द्रिका का महाकाव्यत्व

भक्ति काल के श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्यो म 'रामचन्द्रिका' की गणना की जाती है एव केशव अपने पाण्डित्य प्रदशन के लिए जाने माने कवि कहे जाते हैं। पाण्डित्य का यह मोह उनका लगभग सभी कृतियो म तथा रामचन्द्रिका म विशेष रूप से उभडा है। केशव ने 'रामचन्द्रिका मे राम की पूव कथा का आधार ग्रहण किया। कथा स्थान-स्थान पर दुबल हो गयी है, सरसता रिक्त सी जान पडती है, फिर भी

१ आचाय रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २०६

केशव सीताराम का वरन म चूके नहीं हैं। इन्हीं की पैतरेबाजी, अलंकार की कृत्रिम बोली तथा सहज-बोध की कमी के कारण ही आचार्य शुक्ल रामचन्द्रिका के प्रबन्धत्व पर शंका करते हैं। मिश्रबन्धुओं ने इस प्रबन्ध-न्याय स्वीकार किया है। उनके मत से इस कृति मे कथा की गति म बाधा अवश्य पड़ी है किन्तु प्रबन्ध की आत्मा 'रोचकता' को केशव ने कहीं भी खण्डित नहीं होने दिया है।[1] हरि कथा की लहर केशव ने इस कृति म तब भक्त के नहा तब पान गाथा के भावों का अभिव्यक्ति का है। रामचन्द्रिका को प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत क्या कहना चाहिए इस दृष्टिकोण से महाकाव्य की कसौटी पर इसका निर्णय करेंगे।

व्यापक परिधियुक्त कथानक

राम की व्यापक परिधि म रामचन्द्रिका की चान्दनी खिली है। यह वृत्त मिश्र कथानक की कोटि म आयेगा। यह कहना औचित्य से दूर है कि केशव केवल छन्द, अलंकार आदि का विस्मयकारी प्रदर्शन करना चाहते थे राम का गुणगान नहीं। हां मुक्त तुलसी के प्रबन्धत्व की बनावट की रामचन्द्रिका म खोजना ठीक नहीं। जिस काल ने इस कृति को जन्म दिया वह राजदरबार का जगमगाता समय था। केशव दरबारी कवि थे तुलसी की तरह सब तज हरि भज भक्त नहीं। अत केशव की कथा पर उनका दरबारी प्रभाव हावी है। केशव ने राम कथा को नवीन गति नहीं दी, लेकिन तुलसी के समय म हा राम पर महाकाव्य लिखने का साहस सराहनीय है। इस कथा म केशव नगर वन उपवन सभी जगह विचरे हैं विद्वानों ने अपने ज्ञानबल पर इसे परखा है अत राम कथा पर आधारित इस वृत्त को सकुचित परिधि वाला नहीं कहा जा सकता है इस काव्य मे सर्गों का नामकरण प्रकाश किया है। छन्द परिवर्तन से भी कथा की गति भंग हुई है वरन् कथा खण्ड-खण्ड सी हो गयी है। अत शुक्ल जी के शब्दों मे रामचन्द्रिका अलग अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह सो जान पड़ती है।[2] यह मान सकते है कि रामचन्द्रिका की कथा मे पदमावत' तथा मानस जैसी प्रबन्ध क्षमता नहीं। फिर भी विरल कथा सूत्र के होते हुए भी यह एक 'भक्तिपरक प्रबन्धकाव्य है।[3] जिसकी कथा म महाकाव्यात्मक शक्ति है। कवि ने अधिकांश स्थलों पर कथा-व्यापार की सूचना मात्र दी है फिर भी बहुत से स्थल हैं जहा कथा का सम्यक प्रवाह है।[4] उदाहरण के लिए धनुष भंग तथा सीता विवाह आदि का विस्तारस वर्णन बड़ा रोचक है। नाटक की सन्धियां तथा कार्यावस्थाओं पर भी यह कथा सफल उतरती है। 'फलागम मे राम

१ मिश्रबन्धु—सम्मिन्न हिन्दी नवरत्न, पृ० १७४

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २१०

३ स० डा० नगेन्द्र—हि० सा० का बृहत् इतिहास, पृ० ३०२

४ डा० हीरालाल दीक्षित—आचार्य केशवदास, पृ० १३७

का आदर्श ही मानव की भाँति यहा भी दृष्टिगोचर होता है। केशव ने वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव आदि के अनेक स्थलो का अनुवाद सा दिया है, लेकिन उनकी मौलिकता मे 'परम्परा के स्थान पर वशिष्ट्य के समावेश का ध्यान अधिक रखा गया है।'[1]

उदात्त नायक

महाकाव्य प्रधान रूप से नायक की ही अचल कीर्ति का गान है। इस काव्य के नायक धीरोदात्त राम हैं। 'रामचन्द्रिका के राम साक्षात् परम ब्रह्म हैं जो राक्षसो का नाश करने के लिए अवतार धारण करते हैं। तुलसी के राम मे जहाँ धय एव त्याग की असीम शक्ति है वहाँ केशव के राम मे उसके स्थान पर उग्रता तथा अमित उत्साह वत्ति है। राम वनगमन के अवसर पर राम का कौशल्या को नारी धम का उपदेश दना बहुत खटकता है। इन दोषों से नायक की गरिमा को ठेस पहुँची है। दासियो का नख शिख वणन भी केशव ने राम का सुनाया है। अत यह कहना उचित है कि वाल्मीकि के राम, तुलसी के राम जिस अथ मे धीरोदात्त हैं, उस अथ मे कशव के राम नही। सामान्य काय कलापो का वणन केशव को ले डूबा है। वे राम के जीवन का मधुर पक्ष चचल चारु दृगचल सो , प्रस्तुत करते है इसी तुलना मे तुलसी का 'अखिया अति चारु चली बस च्यौ' का वणन अधिक मार्मिक है। केशव ने आरम्भ मे राम का 'तुम हो अनन्त अनादि सवग सवज्ञ सवत्र'[2] कहा है। अत 'रामचन्द्रिका' के नायक म कुछेक दोषो के होते हुए भी महाकाव्य के नायक के गुण हैं। सीता, कौशल्या, म दोदरी दशरथ आदि का चरित्र भी केशव ने अधिक पटुता से उपस्थित नहीं किया। प्रचण्ड प्रतिनायक का नायक दलन करता है।

रसात्मकता

'रामचन्द्रिका का भाव वणन बहुत समृद्ध है। केशव हास्य या व्यग्य की कोटि म चाहे हल्के पडे हो, लकिन उनकी कल्पना के पख कमजोर नही हैं। महाकाव्य का मा य विषय है युद्ध, जो वाल्मीकि रामायण से आरम्भ हो गया था। राम का पौरुष इस काव्य का ज्याति है। यदि नायक को आधार मानकर उसके अगी रस का निणय करें तो राम का उत्साह अडिग है। अत प्रधान रस 'वीर कहा जायगा। कथा के कलेवर मे भी इसी उत्साह-भाव की सर्वाधिक व्याप्ति है। फलागम' का स्थिति म भी वीर रस ही अगी कहा जायेगा, क्योकि वही नायक की मूल वृत्ति का प्रतिफलन है। शृ गार, शान्त, रौद्र भयानक सभी रसो का इसमे मेल है। राम के व्यक्तित्व का शृ गारपक्ष वीर भाव का पोषक है। लवकुश रामयुद्ध वणन राम-

---

१ स० डा० नगेन्द्र—हि० सा० का वृहत इतिहास, पृ० ३१०

२ रामचन्द्रिका—६।४४

रावण युद्ध से भी अधिक भयानक है। धनुष टूटने के बाद भयानक रस का एक उदाहरण देखिए—

मत्त दंति अमत्त ह्वै गए देखि दंति न मज्जही।
ठौर ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहीं बज्जहीं॥[१]

लक्ष्मण शक्ति के अवसर पर राम के क्रोध में रौद्र रस की सफल व्यंजना है जहाँ वे 'बिना सिद्धि सिद्ध सब'[२] की प्रतिज्ञा करते हैं। रामचंद्रिका का इक्तीसवाँ तथा बत्तीसवाँ 'प्रकाश' शृंगार के श्रेष्ठ स्थल हैं। लव-कुश युद्ध में केशव रक्त की नदियाँ बहा देते हैं। 'जयन्द मुण्ड भुजग' में वीभत्स रस है। जहाँ मन्दोदरी तथा उसकी सखियाँ अंगद को मूर्ख बनाती हैं वहाँ हास्य की अच्छी पुट है। इस प्रकार 'रामचंद्रिका' में भाव वैविध्य तथा नाना वर्णन क्षमता के कारण रस-वैविध्य है।

उद्देश्य की ज्योति

रामचंद्रिका का उद्देश्य है जीवन के कल्याण पक्ष पर बल देना। केशव का यह कहना कि तिनके गुण कहिहैं सब सुख लहिहैं पाप पुरातन भागे में कवि अपने आत्म ताप के द्वारा लोकहित की बात करता है। रामचंद्रिका' के उद्देश्य पर आक्रमण करते हुए डा० शम्भूनाथ सिंह ने लिखा है कि महाकाव्य' में जिस गम्भीर जीवन-दर्शन, लोक कल्याणाभिनिवेशी दृष्टिकोण तथा आदर्शोद्भूत महानता की आवश्यकता होती है रामचंद्रिका में उसका अभाव है[३] डा० सिंह के मत में मौलिक भूल है। इसका कारण है कि केशव उस राम की कथा कहना चाहता है जो 'सब सुख लहिहैं पाप पुरातन भागे तथा पापों को नष्ट कर आत्म-तोष तथा आत्म-परिष्कार करने वाले हैं। अतः लोकदृष्टि का अभाव तथा महत्प्रेरणा की कमी का दोष केशव पर झूठा है। डा० प्रतिपालसिंह ने ठीक ही कहा है कि 'केशव तुलसी के समान ही धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे और केशव की चिरंतन भूमि भी अद्वैतवाद की है और तुलसी की अपेक्षा वह अधिक स्पष्ट है।'[४] अतः रामचंद्रिका का उद्देश्य है कल्याण की सम्भावना।

अभिव्यंजना में शक्ति

केशव ने भाषा बोलन जानहीं जिनके कुल के दास' कह कर भी भाषा में ही रचना की है। उनकी अभिव्यंजना को क्लिष्ट शिल्प कहा जाता है और बहुत समय तक 'केशव को कठिन काव्य का प्रेत' कहकर उनकी अभिव्यंजना पर आक्रमण भी होते रहे। केशव ने पाण्डित्य प्रदर्शन के चक्कर में कठिन अप्रचलित, संस्कृतनिष्ठ

---

१ रामचंद्रिका १७।४९
२ वही, २०।४६
३ डा० शम्भूनाथ सिंह—हिन्दी महाकाव्यों का स्वरूप विकास, पृ० ६७५।
४ केशव और उनका साहित्य, पृ० १२७

शब्दों का प्रयोग करके ही विडम्बना को जन्म दिया है। वैसे उनके भाव क्लिष्ट नहीं हैं। भाषा की दुरूहता भी सर्वत्र नहीं यत्र-तत्र ही है। उक्ति वैचित्र्य तथा वाग्वदग्ध्य में केशव को सफलता मिली है। वह अपने पिंगलज्ञान, तथा आलंकारिक प्रयोगों से पाठक को अभिभूत कर लेते हैं। ब्रज के शब्द और बुन्देलखण्डी क्रियाओं से जो बात बनी है, उसमें भाव का मर्म बँध गया है। कवि की अभिव्यक्ति शक्ति तो समर्थ है लेकिन 'रामचन्द्रिका' में अनुपयुक्त छन्दों के चुनने के कारण भी कुछ क्लिष्टता आ गई है। केशव की अभिव्यंजना पर डा० श्यामसुन्दरदास ने ठीक ही कहा है कि 'जिस प्रकार तुलसी अपनी सरलता और सूर अपनी गम्भीरता के हेतु सराहनीय हैं वैसे ही वरन् उससे भी बढ़ कर केशव अपनी भाषा की परिपुष्टता के लिए प्रशंसनीय है।'[1] केशव ने अलंकारों की योजना बड़ी व्यापक की है लेकिन उनमें ऊपरी ठूसठाम अधिक है। वे कभी-कभी तो उत्प्रेक्षा सन्देह रूपक आदि की लड़ी सी बाँध देते हैं, जैसे लंका में आग लगने का दृश्य भरत की सेना का वर्णन आदि अनेक स्थल हैं। प० कृष्ण शंकर शुक्ल जी का यह कहना उचित ही है कि कभी कभी तो ऐसा लगता है कि यहाँ आलंकारिक योजना का नहीं जा सकता, परन्तु केशव आकाश पाताल को छानकर कुछ ऐसी अप्रस्तुत योजना कर देते हैं कि हमें चकित रह जाना पड़ता है।[2] भाव को व्यक्त करने के लिए 'बोलत बोल फूल से झरें' मुहावरे भी अपनाये हैं। प्रसादगुण पर केशव की आस्था है। केशव में शब्द शैथिल्य भी कहीं-कहीं मिलता है। अतः च्युत संस्कृति दोषों की भरमार है यथा 'विषमय यह गोदावरी' आदि प्रयोग। फिर भी केशव की अभिव्यक्ति में नाटकीय जीवन्तता, साहित्यिक मार्दव, भावानुकूल गति संवादात्मक शक्ति तथा उत्कृष्ट कवित्व शक्ति है। केशव के शब्द सागर ने साहित्य की समृद्धि की है। इस अभिव्यंजना शिल्प में कितनी ही दुरूहता क्यों न हो, उसकी समर्थ शिल्प की गरिमा सराहनीय है।

अतः रामचन्द्रिका को महाकाव्य मानने में कोई बाधा नहीं है। प्रबन्ध कल्पना, संवादों में नाटकीय सजीवता, भाव विधान, उत्कृष्ट अलंकार-योजना, कथा-वस्तु में परम्परित एवं नवीन प्रयोग, लोकहितकारी योजना, समृद्ध अभिव्यंजना शिल्प इसे महाकाव्य ही मानने को विवश कर देते हैं। 'मानस' एवं विश्वजनीन महाकाव्य की दृष्टि से रखते हुए रामचन्द्रिका को लघु पाकर महाकाव्य न मानना केशव के प्रति न्याय नहीं है।

---

१ सं० डा० श्यामसुन्दरदास रामचन्द्रिका, मनोरंजन पुस्तकमाला, पृ० ५

२ प० कृष्णशंकर शुक्ल केशव की काव्य-कला, पृ० १०३

'रामचन्द्रिका' के नायक राम

पृष्ठभूमि

प्रत्येक नायक अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। 'रामचन्द्रिका' का नायक भी इसका अपवाद नहीं है। नायक निर्माण की दृष्टि में भौतिक बाह्य परिस्थितियों का कितना हाथ होता है इसका प्रमाण केशवदास का इतना प्रहर, रीतिकालीन परिस्थितियों तथा उस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है। तुलसी के नायक शिरोमणि राम 'रामचन्द्रिका' के नायक बनते ही प्रतापी राजा की भाँति रह गये हैं। राजसी व्यवहार की कुशलता के साथ राजसी विलासिता के भी शिकार हो गये हैं। रीतिकालीन दरबारी प्रभाव उनके राम पर भी पड़ा है जिसका विवेचन अगले पृष्ठों में प्रस्तुत करेंगे। राम के व्यक्तित्व का सार्वभौमिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक रूप यहाँ कम उपलब्ध होता है। यह ठीक है कि केशव ने वाल्मीकि रामायण के राम को ही अपनी दृष्टि में रख कर उनका नायकत्व अपनी दृष्टि से उभारा है। 'रामायण' के 'नरचन्द्रमा' का प्रभाव 'रामचन्द्रिका' के राम पर स्पष्ट झलकता है। केशव का पाण्डित्य यहाँ उनका साथ दे गया है। यदि वे राम के साथ बहुत न्याय नहीं कर पाये हैं, तो उसे नीचे गिराने के दोषी भी नहीं ठहराये जा सकते हैं। राम के चरित्र में तुलसी के बाद विकास की दिशाएँ ही बहुत कम रह गई थीं। केशव ने राजा राम के महत्त्व, महामानवत्व को रक्षित करने का प्रयास 'रामचन्द्रिका' में अवश्य किया है। यही कारण है कि उनका नायक रीतिकालीन राजाओं के विलास-वैभव से प्रभावित होता हुआ भी, उनसे बहुत ऊपर उठा हुआ है। राम में भोग प्रवृत्ति का विकास प्रस्तुत करके केशव ने उन्हें हमारे और पास ला दिया है। वे मात्र आदर्शों के पुंजीभूत न बनकर जीवन में रमने वाले मानव बन गये हैं।

केशव के नायक राम की तुलना तुलसी के नायक राम से करने पर, वे छोटे लगते हैं तथा आलोचक केशव की हृदयहीन भर्त्सना करता है। ऐसा करने पर हम केशव के साथ कोई न्याय नहीं कर पाते और अपनी हठवादिता का ही परिचय देते हैं। हमें भूलना नहीं चाहिए कि तुलसी ने इतने विराट नायक को प्रस्तुत किया है कि उसकी तुलना में हिन्दी संसार का प्रत्येक नायक हेय प्रतीत होता है। तुलसी ने भक्ति की चरम मंजिल पर पहुँच कर राम के दिव्य रूप को देखा है जहाँ सामान्य कवि की पहुँच संभव ही नहीं है। जो ब्रह्म में रम गया, डूब गया उस तुलसी को पाना सम्भव ही नहीं था। राम के चरित्र को भक्ति तथा कला की दृष्टि से इतना दिव्य तथा भव्य कर दिया था कि उसमें विकास की दिशाएँ कम रह गई थीं। केशव दरबारी कवि, तुलसी रमता जोगी, विरागी साधक बड़ा अन्तर

था दोनो के जीवन मे, मूल दृष्टि मे। केशव तुलसी के समकालीन ही थे तथा 'वाल्मीकि रामायण' से प्रभावित होकर दरबारी वातावरण से ऊब कर पाप पुरातन नष्ट करने के लिए राम के यश वर्णन मे लग गये। उन्होंने इसी कारण 'मानस' के बाल काण्ड को लगभग छोड सा दिया है। केशव ने विश्वामित्र आगमन से कथा आरम्भ की है तथा राम के यश प्रताप भोग आदि का मुक्त वर्णन किया है। तुलसी के नायक की तुलना मे केशव का नायक फीका है अत हमारा आकर्षण उनके राम के प्रति कम जगता है। 'मानस' के राम के प्रति पाठक के भक्त-हृदय मे जो श्रद्धा भाव से पूर्ण पारावार उमडता है वह 'रामचन्द्रिका' के राम के प्रति नहीं। दूसरे, केशव राम मे कोई असाधारण विशेषता उत्पन्न नहीं कर सके हैं राम के भोग दृश्य भी प्रस्तुत करके उन्होने कोई चमत्कार नही किया। तीसरे केशव के राम पर रीतिकालीन राजाओ की प्रतिच्छाया पडी है। इस प्रभाव को रीतिकालीन परिस्थितियो पर विचार करने से स्पष्ट देख सकते हैं।

सामाजिक परिस्थितियाँ

व्यक्ति समाज का अभिन्न अग है तथा समाज का प्रभाव जाने अनजाने ग्रहण करता ही रहता है। केशव का समय भक्ति तथा शृगार का सगम-स्थल है। भक्ति के जीर्ण काल तथा विलासिता के उठान काल मे 'रामचन्द्रिका' हमारे सामने आती है। सत फकीरो की भक्ति धारा तथा सगुण भक्तो की भक्ति धारा का जल अब उथला हो गया था। अकबरी दरबार से ही विलास के मीना बाजार का आरम्भ हो जाता है। राजा प्रजा राग रजन मे रम गई नैतिकता लक्ष्मी से त्रस्त हो पर बना गई। राजा राज के सुखसाज तथा प्रजा अपने प्रेम-नाम मे लगी रही। राजाओं के मन रानियो के विलास मे डूब गये। जसा राजा कर रहे थे, वसा ही चरित्र राम का केशव ने 'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध मे प्रस्तुत किया है। राजाओ के दरबार मे जसे नृत्य-वाद्य होते थे, वसे साज केशव ने राम के राजा बन जाने के बाद एक नहीं अनेक प्रस्तुत किए हैं। विलासी राजाओ की भाँति वे राग रग मे मस्त हैं तथा सामान्य राजाओ की भाँति वे प्रसन्न होने पर अपनी प्रिया को वरदान माँगने को विवश करते हैं।[1] केशव ने दरबार मे राजाओ के रग रास देखे थे, अत उन दृश्यों

१ (क) अदभुत गति सुन्दरी विलोकि। विहसति है घूघट पट रोकि ॥३२।११
रा०च०

(ख) आई बनि बाला, गुनगन माला, बुधि बल रूपन बाढ़ी।
शुभ जाति धिरनी, चित्र नेदतें, निकसि भई जनु ठाढ़ी।
मानो गुन सगनि, यो प्रति अगनि, रूपक रूप विराज।
बीनानि बजाव, अद्भुत गाव, गिरा रागिनी लाज ॥३०।२ रा० च०

(ग) सुन्दरि भाँति जो जो मह भावत। सो मन तो निरखै सुख पावत॥
३३।२० रा० च०

को वे आभिजात्य मानकर राम में प्रतिष्ठित करते रहे हैं। उनकी दृष्टि में राम का सही मार्ग प्रकृतिमूलक रूप ही अभय रहा होगा तभी उन्होंने ऐसा किया है। लेकिन यह विलास के दृश्य बाद में सम्मिलित हो गए हैं तथा अरण्यप्रसंग तथा सीता निर्वासन में राम की सहानुभूति तथा लोकरंजक वृत्ति को उभार दिया गया है।

साहित्यिक स्थिति और नायक

रीतिकाल का समस्त साहित्य-नायक नायिकाओं की काम-लीला हाव भाव, संयोग वियोग शृंगार साज सिंगार-रचना आदि से भरा पड़ा है। साहित्य की स्थिति अब दरबारी थी भक्ति काल के कवि की भांति नहीं। ...रदियों एकान्त वनों में राम कृष्ण नाम की धूनि रमा कर रम रहा था अब तो कवि राजदरबार में नायिका भेद के शृंगार राजा का मन बहलाकर रोजी कमाता था। केशव देव, पद्माकर बिहारी, घनानन्द आदि सभी चाहे वे रीतिमुक्त कवि हों अथवा रीतिबद्ध सभी प्रेमगान गा रहे थे। साहित्यिक दृष्टि से रीति-युग के कवियों ने मानवीय जीवन में व्याप्त आशाओं, लालसाओं आकांक्षाओं रूप-तृष्णा सौंदर्य प्रेम विलास त्याग साहस, रीझ आदि का यथातथ्य चित्रण किया है।[1] कवि 'राधा कृष्ण सुमिरन के बहाने' मनमाने ढंग से नायक-नायिकाओं के प्रेम का निरूपण कर रहा था। राधा काम मुग्धा, रतिमुग्धा मात्र तथा कृष्ण विहारी रसहारी मात्र रह गये। कुछ गिने चुने कवियों लाल भूषण, सूदन, जोधराज आदि ने ही वीर रस की धारा प्रवाहित की है शेष सभी कवि लक्षण-ग्रन्थों तथा लक्ष्य ग्रन्थों में लगे रहे। इस साहित्यिक प्रवृत्ति का भी केशव के नायक पर गहरा प्रभाव है वे सामान्य नायक या राजा की भांति सीता के साथ विलास करते हैं। तुलसी के लोकनायक में जो लोकमर्यादा तथा लोकरक्षक का भाव था वह रामचन्द्रिका के राम में कहाँ? केशव राजदरबार में पले, बढ़े वे उस दरबारी प्रभाव को अपने नायक से बचा भी कैसे सकते थे इसी लिए वही राम के चरित्र में राजाओं की भांति क्रिया-कलापों का केशव ने वर्णन किया है। शायद केशव ने कभी-कभी तो वे शृंगार आखेट तथा कामिनी में डूबे दिखाये हैं। रीतिकाल के राजाओं की भांति सभा में विराजमान होकर संगीत-साज सुनते हैं कभी रानियों की जल क्रीडा का दृश्य देखने में मस्त हैं। इस प्रकार अनेक उदाहरणों से सिद्ध है कि राम के ऊपर यह विलासिता का रंग रीतिकाल की सामाजिक परिस्थितियों की ही देन है। डा० हीरालाल दीक्षित ने ठीक ही कहा है "राज्याभिषेक के बाद तो राम और तत्कालीन मुगल सम्राटों तथा राजा महाराजाओं में तनिक भी अन्तर नहीं रह जाता।"[2]

---

1 डा० भगीरथ मिश्र—हिन्दी रीति साहित्य, पृ० १५

2 डा० हीरालाल दीक्षित—आचार्य केशवदास, पृ० १७

अकबरकालीन मुगल समाज प्रतिबन्धो से मुक्त था, उसमे उत्सव, रीतिरिवाज की छूट थी। मुख के इस वातावरण मे जनता मे आचार भ्रष्टता आ चुकी थी। सम्राट विलासी, शराबी तथा मस्तीखोर थे।[1] शाही घरानो मे बनावट, सजावट का बोलबाला था।[2] "यो तो मुगलवंश के ऐश्वर्य और वैभव मे विलासिता की प्रधानता आरम्भ काल से ही चली आ रही थी, फिर भी प्रथम तीन सम्राटो ने विलास की उद्दाम लहरो मे अपने आपको बह नही जाने दिया था। पर जहाँगीर के व्यक्तित्व मे विलासत्व असतुलित रूप मे प्रकट हुआ और फिर शाहजहाँ की वैभव प्रियता और विलासप्रियता का तद्युगीन सामन्तो पर इतना प्रभाव पडा कि उनकी कर्त्तव्य शक्ति का दिन पर दिन ह्रास होता गया।"[3] ऐसे शृगारिकता के वातावरण से केशव का काव्य बच नही पाया। यही कारण है कि उनके नायक के ऊपर रीतिकालीन शृगारिकता विलासिता की छाप स्पष्ट है। केशव ने राजा राम मे अनेक विलासी गुणो को राजसी महानता दिखाने के लिए ही रखा है, लेकिन उनसे राम के विराट व्यक्तित्व की जो हानि हुई है, उस ओर उनका ध्यान नही गया।

राजनीतिक स्थिरता, आश्रयदाता तथा केशव की आभिजात्य रुचि

केशव का समय राजनीतिक परिस्थितियो की दृष्टि से राजनीतिक हलचलो का कम स्थिरता का अधिक है। बाबर, हुमाऊँ के पश्चात मुगल राज्य का सच्चा सस्थापक अकबर दीन इलाही' के सिद्धान्त तथा अपनी हिंदू मुस्लिम नीति की उदारता के कारण जम गया था। उसके समय मे साहित्य, कला, शासन प्रणाली सभी पद्धतिया मे अभिवृद्धि हुई। अकबर सगीत का प्रेमी कवियो का सम्मान करने वाला, राजपूती बिखरी शक्ति से धय के साथ टक्कर लेने वाला शासक था, जिसने कला तथा कर्त्तव्य नामक जीवन तगडी के दोनो पलो को सन्तुलित रखा। पिता की यह परम्परा विलासी जहागीर को मिली। शराबी शासक जहाँगीर अकबर की तरह योग्य तो न था लेकिन न्यायी तथा चौकन्ना शासक था। सौभाग्य से उसे नूरजहा का सयोग तथा सहयोग मिला। अत प्रजा की उन्नति में बाधा नही पडी। अकबर की तरह जहाँगीर के हरमखाने मे भी राजपूतो की बेटिया आश्रय पा रही थीं। इस प्रकार जहाँगीर अपनी राजनीतिक सत्ता को सम्हाले रहा।

केशव का समय (स० १६१८ १६८० वि०) सत्रहवी सदी अकबर के शासन का काल है। जिस दरबार मे कवियो और कलावन्तो का जमघट था। अकबर

१ विन्सेण्ट ए स्मिथ—अकबर द ग्रेट मुगल, पृ० ३३६

२ श्री अल्लामा अब्दुला युसुफ अली—मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, प० ४३

३ स० डा० नगेन्द्र—हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, षष्ठ भाग, रीतिकाल, पृ० १३

स्वयं ही साहित्य का बड़ा कद्रदान बादशाह था तथा वह तानसेन तथा बीरबल के गान तथा व्यंग्यों का भी कायल था। उसने हुमायूँ के अस्थिर साम्राज्य की जड़ों को जमा दिया। हिन्दुओं के साथ ववाहिक सम्बन्ध के द्वारा मित्रता को दृढ़ किया।[1] उसने धार्मिक सहिष्णुता से हिन्दुओं के अपार समुदाय को अपने शासन में सुव्यवस्थित रूप से अपना लिया। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि केशव का दिल्ली दरबार से कभी भी सीधा सम्पर्क नहीं रहा। वे ओरछा-नरेश के दरबार में काव्य-शास्त्र, वीर नायकों के चरित्र तथा राजदरबार के रंगीन वातावरण में रमते रहे। ये राजपूत राजा आजीवन मुगल दासता के प्रति विद्रोह करते रहे। मधुकर शाह ने बड़े स्वाभिमान से अकबर की विशाल वाहिनी का सामना किया। मधुकर आजीवन अकबर से संघर्ष करते रहे तथा अपना राज्य अपने पुत्र रामशाह को तथा प्रबन्ध भार वीरसिंह देव को सौंप गए थे। वीरसिंह देव ने भी अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया।[2] उसे इन्द्रजीतसिंह का समर्थन मिला। उसने दतिया के प्रदेश पर अपना कब्जा कर लिया। सलीम के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर उसने अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ का प्रमाण दिया। इस प्रकार केशव वीरनायकों के राजकवि हैं। दरबार की इस राजनीति का प्रभाव केशव के 'वीरसिंहदेवचरित' 'जहाँगीरजसचन्द्रिका' तथा 'रामचन्द्रिका' तीनों की प्रबन्ध काव्यों पर पड़ा है।

इस राजनीतिक वातावरण का प्रभाव 'रामचन्द्रिका' के नायक पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। केशव के 'राम' अपने राज्यकाल में रईस तबियत रसिक बादशाह की तरह व्यवहार करते हैं। 'राम' के राज लोक का एक मुगल दरबारी शाही रूप देखिए—

> मन वर्ने जहाँ तहाँ बहुधा तने सुवितान।
> झालर मुकुतान की अरु झूमके बिनमान।
> चौक मनि नील की पटिकान के सुवपाट।
> देखि देखि सो होत हैं सब देवता जनुभाट।
> सेत पीत मनीन के परदे रचे रचि लीन।
> देखि कै तह देखिए जनु लोल लोचन मीन।
> सुभ्र हीरन को सुभ्रगन है हिंडोरा लाल।
> सुन्दरी तह झूल ही प्रतिबिम्ब के तह ताल॥[3]

---

१ डा० श्री नेत्र पाण्डेय—भारत का बृहत् इतिहास, पृ० ३६०

२ ओरछा गजेटियर—भाग ६

३ रामचन्द्रिका २६।४२, ४३

'राम' के रगमहल की शोभा अद्भुत है। उसमे 'चित्री बहुत चित्रनि'[1] के विलास धाम हैं। सुन्दरियो का नृत्य तथा उनके अगो की दमक का सौन्दय अनुपम है। दशरथ दरबार के सकेत तथा जनक दरबार के सकेत भी इस राम के रगमय दरबार से मन लाते हैं। केशव के राम का क्रोध भी राजपूत क्षत्रिय का है, जो परशुराम जो के समक्ष प्रकट हो जाता है। नायक चरित्र म क्षणिक उग्रता दिखाना भी तत्कालीन राजाओ का क्रोध प्रवृत्ति के प्रभाव से प्रभावित लगता है। 'राम' रीतिकालीन राजनतिक मनोवृत्तियो के अनेक स्थल पर शिकार हो गये हैं तथा उनमें राजसी रौद्रता भी समाहित हो गयी है।

धार्मिक परिस्थितियों का नायक पर प्रभाव

अकबर का उदार धार्मिक नीति के कारण जनता को विशेप धार्मिक सनातनी का सामना नही करना पड रहा था। उसने धार्मिक समन्वय का सिद्धान्त 'दीन इलाही, चला दिया था।[2] बचपन से ही उदार सूफीमत के सिद्धान्तो ने उसके मन मे घर कर लिया था। दिल्ली के शेख ताजुद्दीन का भी इस पर विशेप प्रभाव था। उसने फतहपुर-सीकरी म 'इबादतखाना' बनवाया जिसमे विभिन्न धम वालो का धार्मिक शास्त्राथ होता था, जिसमे हिन्दू, मुस्लिम, जन, पारसी आदि विभिन्न वर्गों के धार्मिक नेता सम्मिलित होते थे। बादशाह स्वय इन धार्मिक वादविवादो मे भाग लेता था। जनाचाय हरिविजय सूरि, विजयसेन सूर आदि का उस पर विशेप प्रभाव पडा था। दीनइलाही की नीव भी रहस्यवाद, अध्यात्मवाद आदि के सम्मिश्रण से बनी थी।[3] सन्तो की धार्मिक पाखण्डता के प्रति उपेक्षा तथा 'सन्तन कहा सीकरी सो काम, का भी उस पर प्रभाव पडा था।

दूसरी ओर मध्ययुग की साहित्य-साधना पर भक्ति आन्दोलन का तीव्र प्रभाव पडा। भक्ति प्रसार का कारण ईसाइयत तथा मुसलमानो के अत्याचार का परिणाम न होकर शकर के अद्वत आन्दोलन का प्रभाव था। इस भक्ति आन्दोलन म राम-भक्ति तथा कृष्ण भक्ति शाखा के आचाय भी सक्रिय भाग ले रहे थे। रीतिकाल का कवि कभी शृगार के गीत गाकर थकता है तो कृष्ण या राम भक्ति का ही सहारा लेता है। केशव की 'रामचन्द्रिका' के नायक को भी 'परमब्रह्म' 'अवतार-मणि' 'पतितपावन' 'जगरक्षक' आदि अनेक विशेपणों से युक्त पाते हैं। क्षीण भक्ति धारा का प्रबल रूप रामचन्द्रिका म अनेक स्थानो पर देखा जा सकता है। केशव ने राम को साम्कृतिक पुनरुद्धारक दिव्य रूप म स्मरण किया है। यथा—

---

१ रामचन्द्रिका ३०।१

२ डा० ईश्वरीप्रसाद—भारत का इतिहास, भाग २, पृ० ८४

३ वही, पृ० ८६

पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान परिपूरन बतावै न बतावै और उक्ति को।
दरसन देत जिन्हें दरसन समुझैं न नेति नेति कहैं वेद छांडि भेद जुक्ति को।
जानियहु केसोदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अनिमाहि गुन देहि गरिमाहि नाम देहि महिमाहि भक्ति देहि मुक्ति को॥[1]

केशव इस प्रकार पूर्व से चली आती हुई धार्मिक परम्पराओं से परिचित थे। डा० प्रतिपालसिंह ने उनपर अद्वैतवाद तथा रामानुज सम्प्रदाय की भक्ति भावना की गहरी छाप सिद्ध की है।[2] केशव ने राम को धार्मिक नेता 'पुरातन पापों' से मुक्ति के लिए ही स्वीकारा है।

जिनको जस हंसा, जगत प्रसंसा, मुनि जन मानस रंता।
लोचन अनुरूपनि स्याम स्वरूपनि अंजन अंजित संता।
कालत्रय दरसी, निर्गुण परसी होत बिलम्ब न लागै।
तिनके गुन कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै॥[3]

उपर्युक्त विवेचन से सामाजिक साहित्यिक राजनैतिक धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव 'रामचन्द्रिका' के नायक राम पर स्पष्ट झलकता है। केशव ने अपने 'राम' को मात्र आध्यात्मिक मूर्ति ही नहीं बनाया। उन्हें मानव की भांति जीना भी आता है वे राजाओं से शालीन, योद्धाओं से शौर्यवान सब कुछ हैं। युग की परिस्थितियों के कारण ही तुलसी के 'लीलावतारी राम' तथा केशव के 'अवतारमणि' राम में बड़ा ही अन्तर है। एक ओर केशव के राम में 'वाल्मीकि रामायण' के राम की झलक अधिक है दूसरी ओर केशव ने अपने नायक में रीतिकालीन विलासी प्रभाव के साथ भी पुरातन तेज कायम रखा है।

रामचन्द्रिका में राम का नायकत्व

'तुलसी' ने राम का इतना उदात्त तथा व्यापक रूप प्रस्तुत किया था कि उसमें चरित्र विस्तार की दिशाएं अधिक नहीं रह गयी थीं। दूसरे, तुलसी का सन्त भक्ति की चरमभूमि पर पहुँच कर राम के दिव्य रूप का मुक्त दर्शन कर रहा था। 'केशव' प्रवृत्ति से ही तुलसी से भिन्न हैं वे तो रीति निरूपक आचार्य हैं, जो अलंकार रस नायिका भेद की चर्चा करते रहे अथवा वे राजदरबार में राजपूत राजाओं के चरित-गान गाते रहे। ऐसा लगता है कि दरबारी वातावरण से केशव

---

१ रामचन्द्रिका १।३
२ केशव और उनका साहित्य, पृ० १०८
३ रामचन्द्रिका १।२०

को घृणा महसूस हुई थी और उनका मन ब्रह्म की ओर उन्मुख हो गया। राम का भक्त-वत्सल मर्यादित रूप उन्हें पाप मुक्त' कराने वाला लगा होगा, उन्होंने 'हरि ही हरि हैं'[1] का संकेत इसी हेतु दिया है। विलास से भयभीत उनका मन वाल्मीकि' के राम की शरण मे गया। वाल्मीकि' के राम महच्चरित के महामानव हैं। मुनि ने स्वप्न मे ही 'न रामन्देव गाइ हैं न देवलोक पाइ हैं,'[2] का उपदेश दिया है। केशव ने भक्ति भाव से राम के विराट् रूप के समक्ष अपने को झुका लिया था तथा सोइ परम ब्रह्म श्रीराम है अवतारी अवतारमणि'[3] कहकर उनके गुणगान का निश्चय कर लिया। केशव ने 'अवतारमणि, पुराण पुरुष, नृप सनातन, वेदो मे नेति नेति अष्टसिद्धि तथा भक्ति के दाता'[4] परमब्रह्म, अखिल विश्व को अपने आलोक से आलोकित करने वाले राम का अपनी दृष्टि का आधार बनाया है। उनके राम अमल अनन्त अनादि हैं तथा वेद उनके विषय मे बहुत कुछ बताने मे समर्थ नही हैं। उन्होने राक्षसो का (कैटभ नरकासुर आदि) वध किया[5] दानी बलि से दान लिया, समान दृष्टि वाले, शत्रु मित्र के साथी, भक्तो के कल्याणार्थ अवतार धारण करते हैं। गीता के ब्रह्म की भाँति व धर्म की स्थापना तथा अधर्म का नाश करने वाले हैं। अपनी इच्छा से पृथ्वी भार हरण हेतु[6] आततायी रावण का उन्होने वध किया है। पृथ्वी का भरण करने के कारण ही वे सीता को अग्नि मे अपना शरीर रख कर छाया शरीर रखने की राय देते हैं। राम को 'सूरचन्द्र' नमन करते रहते हैं। वह पूर्ण ब्रह्म मानव बनकर सब कुछ करते हैं।[7] तुलसी के राम लीलावतारी' तथा केशव के राम अवतारमणि' होते हुए भी अवतारवाद की विष्णु परम्परा मे आते हैं।[8] इसी अवतारी राम में केशव का मन रम गया है--

---

१ रामचन्द्रिका १।११

२ वही १।१६

३ वही १।१७

४ वही १।३

५ (क) तुम अमल अनन्त अनादि देव नहिं वेद बखानत सकल भेव।
सबको समान नहीं बर नेह सब भक्तन कारन धरत देह ॥ रा०च०
(ख) अनेक ब्रह्मादि न अन्त पायो। अनेकधा वेदन गीत गायो।
तिन्हैं न रामानुज बन्धु जानो। सुनो सुधी केवल ब्रह्म जानो ॥ रा०च०

६ निजइच्छया भूतल देह धारी अधम संहारक धर्मचारी।
चले दशग्रीवहि मारिवे को, तपी व्रती केवल वारिवे को ॥ रा०च०

७ ब्रह्मादि देव जब विनय कीन्ह। तट क्षीर सिन्धु के परमदीन।
तुम कह्यो देव अवतारहु जाय। सुत हों दसरथ को होब आय ॥ रा० च०

८ डा० कपिलदेव पांडेय-मध्ययुगीन साहित्य में अवतारवाद पृ० ५१४

रामचन्द्र पदपद्म, वृन्दारकवन्दामि वन्दनीयम् ।
केशवमति भूतनया लोचन चचरीकायते ॥[१]

केशव ने भी राम का कल्याणाथ म रित लोक नायक के रूप म दिखाया है। मानव का मन मानव के गुणों से प्रेरणा प्राप्त कर सके, उनके आदर्शों का अनुसरण कर सके यह सोच कर ही केशव ने राम को मानव रूप म मानकर उनकी 'चन्द्रिका' का निर्माण वर्णन प्रस्तुत किया है। ऐसा लगता है कि वेदों से लेकर, पुराणों, महाकाव्यों नाटकों आदि सभी म राम के नायकत्व को लेकर जो प्रख्यात रचनाएं की गई थी उनका ज्ञान केशव को था। यही कारण है कि उनके नायक पर वाल्मीकि के राम तथा भवभूति के राम हनुमन्नाटककार के राम, प्रसन्नराघव के राम, अध्यात्म रामायण के राम का प्रभाव विद्वानों ने 'रामचन्द्रिका' के राम पर स्पष्ट स्वीकार किया है।[२] राम पर प्राचीन प्रभावों का निष्पादन करना उद्देश्य नहीं है। अत आचार्यों द्वारा निर्धारित मानदण्डों के निकष पर राम के नायकत्व पर विचार करेंगे।

कथा का सूत्रधार

इस विषय म आचार्यों का निर्णय मत है कि नायक को कथा का प्राणवान सूत्रधार होना चाहिए। इस दृष्टि से 'रामचन्द्रिका' म समस्त आकर्षण का केन्द्र राम का ही चरित है। समस्त कथा उनके गुणगान पर ही टिकी है। वास्तव म

पर परमज्ञानी वसिष्ठ जी मुनि-तेज का वर्णन करके राजा से अनुमति प्रदान करा देते हैं।[1] यहीं से राम के पराक्रम का प्रारम्भ है। वे विश्वामित्र की अनुमति से ताड़का का वध करते हैं, मारीच तथा सुबाहु आदि राक्षसों का वध कर वे देव-समुदाय को प्रसन्न करते हैं।[2] विश्वामित्र यज्ञ पूरा कर शीघ्रता से सीता के धनुष यज्ञ में राम को ले जाते हैं। केशव ने जनक-वाटिका के राम-सीता मिलन प्रसंग की रमणीयता की ओर ध्यान न देकर रावण-बाणासुर विवाद की कल्पना की है। मार्ग में 'अहिल्या उद्धार' करते हुए राम धनुष-यज्ञ में मुनि के साथ जाते हैं, रावण तथा बाणासुर माथा मार कर लौट चुके हैं[3], राम 'व्रज से कठोर, कैलाश से विशाल, काल से भी कराल धनुष को 'फूल मूल जिमि टूक'[4] टूक कर देते हैं—

बाँधि बर स्वर्ग को साधि अपवर्ग, धनुभंग को सब्द गयो भेदि ब्रह्मण्ड को॥[5]

इस प्रकार केशव ने 'रामायण' की कथा का आधार ही अधिक ग्रहण किया है तथा राम के कार्य-व्यापारों में क्षिप्रता दिखलाई है। परशुराम जी के क्रोध को वे 'मानस' के राम की तरह चुपचाप संयम से सहन नहीं है। वे उग्र रूप से परशुराम के क्रोध का विरोध करते हैं। यहाँ केशव ने राम के क्षत्रियत्व का रूप प्रबल दिखाया है—

मगन भयो हर धनुष सान तुमको अब साल।
वृथा होइ विधि सृष्टि ईश आसन ते चाल॥
सकल लोक संहरहु सेष सिर तें धर डार।
सप्तसिंधु मिलिजाहिं होइ सबही तम भार।
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केसव बुझि जाइ बरु।
भृगुनन्द सँभारु कुठार मैं कियो सरासन जुक्त सरु॥[6]

राम तथा परशुराम के इस विवाद को स्वयं महादेव आकर सुलझाते हैं तथा वे 'तन मन सुख पायो' कहकर अमर, अनन्त, अनादि देव राम के पराक्रम का परशुराम से धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा कर प्रकट करवाते हैं। यहाँ पर कथा चक्र राम पर ही आधारित है। कथा में राम वनगमन, वनगमन से पूर्व माता को उपदेश, शूर्पनखा

१ रामचन्द्रिका २।२४
२ वही ३।१०
३ वही ४।३६
४ वही ५।४१
५ वही ५।४२
६ वही ७।४२

प्रसंग, सीताहरण तथा राम विलाप, सीता खोजते हुए सुग्रीव मित्रता, मित्र के लिए बालिवध, हनुमान द्वारा [illegible] कुम्भकर्ण वध, विभीषण शरण, रावण वध [illegible] सभी घटनाएँ राम के ऊपर ही आधारित हैं। अयोध्या वापस लौटना, सीता निर्वासन, लव कुश-युद्ध तथा अन्त में सीता स्वीकार का प्रसंग, सभी राम पर केन्द्रित हैं। केशव ने कथा में विस्तार नहीं किया है, हाँ कभी कभी वे राजसी वर्णन में अवश्य रम गए हैं। राम द्वारा उपदेश दिलाने की कला में, राम द्वारा सम्राट की भाँति विलास वर्णन दिखाने में भी वे चूके नहीं हैं। राम-कथा की शीघ्रता से कहने के कारण पाठक के लिए रमणीय स्थल केशव नहीं जुटा पाये हैं। तुलसी की भक्ति भावना घटनाओं के लाने जाने में ये नहीं पड़े हैं। जिस 'धनुष-यज्ञ' के प्रसंग को तुलसी ने महान् आकर्षण प्रदान किया, उसी प्रसंग को केशव मात्र कथात्मक संवादों के चुटकुलों के साथ टाल गये हैं। यही कारण है कि प्रबन्धात्मक शक्ति की कमी लगती है।[1] कथा में क्रम का अभाव, अनुपात का अभाव, गति का अभाव, मार्मिक स्थलों का अभाव आदि अनेक खटकने वाली स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं। केशव ने रमणीय दृश्यों की उपेक्षा करके अपनी हृदयहीनता का परिचय तो दिया ही है पाठक के मन को भी लगातार अशान्त भी रखा है। इन समस्त दोषों के कारण उनका प्रबन्धत्व तो बाधित हुआ है लेकिन कथा में राम का नायकत्व कहीं भी बाधित नहीं हुआ। केशव का प्रबन्धत्व फीका इसलिए और भी लगता है क्योंकि हम 'मानस' के प्रबन्धत्व की संस्कारवश तुलना करते हैं। यदि 'मानस' को दृष्टि से हटाकर देखें तो केशव के कथात्मक संवाद नाटकीय एवं सरस लगेंगे। कथा चाहे जैसी कही गई हो नायक को केशव ने सशक्त रूप प्रदान किया है, उसके पराक्रम तथा आत्म विश्वास का विधान भी अद्भुत है। इस प्रकार इस फीकी कथा का नायक केशव ने फीका नहीं पड़ने दिया है प्रत्येक परिस्थिति में उसका व्यक्तित्व कथा का साथ देता है। केशव ने राम द्वारा माँ को पतिव्रत धर्म का उपदेश राजश्री राजनीति का उपदेश दिलवाकर उसके व्यक्तित्व में थोड़ी कालिमा अवश्य लगा दी है लेकिन पराक्रम की पराकाष्ठा देखकर उन दोषों का भी विस्मरण हो जाता है।

---

१ जिस प्रकार केशव की रागात्मिका वृत्ति कथानक के भावात्मक स्थलों के चित्रण में पूर्णतः लीन नहीं दिखाई देती उसी प्रकार पात्रों के स्वरूप तथा प्रकृति के रमणीय दृश्यों एवं वस्तुओं के वर्णन में भी उनकी हृदयहीनता ही परिलक्षित होती है। डा० किरणचन्द्र शर्मा केशव जीवनी, कला और कृतित्व, पृ० १०५

महत्त्वपूर्ण व्यक्ति

'रामचन्द्रिका' मे राम का सम्पूर्ण जीवन लोक हिताय ही अर्पित है, उनका जन्म ही देवताओ तथा मानवो को अभयदान तथा ज्ञान प्रदान करने के लिए हुआ है। केशव ने आरम्भ मे ही राम की वन्दना म कहा है कि—

> जिनको जस हंसा जगत प्रसंसा मुनि जन मानस रता।
> लोचन अनुरूपनि, स्याम स्वरूपनि, अंजन अंजित संता।
> काल त्रय दरसी निर्गुन परसी होत विलम्ब न लागे।
> तिनके गुन कहिहै, सब सुख लहि है, पाप पुरातन भागे॥[1]

विश्वामित्र राम की अपार शक्ति, दिव्य-तेज को जानते है एव उनसे ताडका, सुबाहु, मारीच आदि का वध कराते हैं। वे गौतम की पत्नी अहिल्या का मार्ग में उद्धार करते हैं—

> गौतम की यह नारि, इन्द्रदोष दुर्गति भई।
> देखि तुम्हे नरकारि परम पतित पावन भई॥[2]

अपनी अपार शक्ति से वे धनुष को तोड देते हैं, परशुराम के गर्व को नीचा कर देते हैं, पिता के वचन की रक्षा के लिए वनवास स्वीकार करते है। लेकिन जब राम भरत के ऊपर राज्य संशय लक्ष्मण से व्यक्त करते है तो उनकी महानता को धक्का लगता है। दूसरी ओर वे ही भरत का गुणगान भी करते नही थकते। वे अपार राक्षसी शक्ति से लोहा लेते हैं फिर भी चिन्तामुक्त रहते हैं। वन म लक्ष्मण की मूर्च्छा देखकर उनका पौरुष उबल उठता है—

> करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट वसु।
> रुद्रन बोरि समुद्र करौं, गंधर्व सर्वपसु।
> वलित अबेर कुबेर, बलीहि गहि देउ इन्द्र अब।
> विद्याधरन अविद्य करौ बिन सिद्धि सिद्ध सब।
> निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाउ जल।
> सुनि सूरज सूरज अवतही करौं असुर संसार बल॥[3]

युद्धरत राम शत्रु-पक्ष से आये हुए विभीषण को शरणदान देते हैं तथा निर्मम कुम्भकर्ण तथा रावण का वध करते हैं। प्रचण्ड प्रतिनायक रावण के वध का एक उदाहरण लीजिए—

---

१ रामचन्द्रिका १।२०
२ वही ५।५
३ वही १७।४६

जेहि सर मधु मद मर्दि महा मुर मर्दन कीनो ।
मारयो ककस नरकासुर दति सखहु लीनो ।
निष्कटक सुर कटक करयो कटभ-वपु खड्यो ।
खर दूषन त्रिसिरा कबंध तरुखण्ड विहड्यो ।
कुम्भकरन जेहि सघस्यो पल न प्रतिमा तें टरों ।
तेहि बान प्रान दसकंठ के कंठ दसौ खण्डित करौं ।[1]

राम की शक्ति जयभार जसभार राजभार'[2] तीनों को प्राप्त कर असीम है। उनके अजर, अमर, अनन्त चरित्र को सुनकर सुर नर सिद्ध अचरज करते हैं।[3] वे अपने प्रताप से शिला को सुन्दर नारी का रूप प्रदान करते हैं। वे सवथा सवन सवग सवदा रस एक[4] रूप से ससार म एकमात्र रस-ब्रह्म हैं। अतिथि बन जाने पर वे शबरी के झूठे बेर भी खाने में नहीं हिचकते हैं।[5] केशव इस शायरन राम का इस प्रकार स्मरण करते है—

(१) होइ मुक्ति सो जाहि इनको भरत भाव नाम ।[6]

(२) सेष सभु स्वयम्भु भाषत नेति निगमन जासु ।
ताहि लघुमति बरन कैसे सकत केसवदास ।।[7]

केशव को विश्वास है कि इस शाश्वत महत्व के ब्रह्म का व्यक्ति आधार ग्रहण कर यमराज के सिर पर पाव रख कर ब्रह्मलोक पहुँच जाता है।

सासारिक मर्यादा के रक्षण के लिए वे सब कुछ कर सकते हैं। लोकापवाद के भय से वे निर्दोष सीता का भी त्याग कर देते हैं। न्यायी इतने हैं, प्रत्येक जीव के प्रति उनका न्याय समान रहता है छोटे से छोटा तथा बडे से बडा उनके लिए एक सा है। लोक मर्यादा के लिए वे आदर्श की स्थापना करते हैं। महाकाव्य का नायक युग-युग तक प्रेरणा देने वाला, सनातन आदर्शों का पुरुष होना चाहिए। इस दृष्टि से केशव का पुरुष सनातन' स्तुत्य है।[8]

---

१ रामचन्द्रिका १६।५१
२ वही २७।८
३ वही २७।१०
४ वही २७।१४
५ वही २७।१७
६ वही २७।२०
७ वही २७।२४
८ वही २७।२६

दृढ़ आत्म-शक्ति

यदि महाकाव्य के नायक में अपराजेय आत्म शक्ति देखनी है, तो केशव के राम उसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं। वे मुसीबतों से इतने ज्यादा परिचित हैं कि कठिनाइयाँ उनकी साथ बन गई हैं। पापिनी ताडका सुबाहु आदि का वध धनुष भंग तथा परशुराम के तेज को विजित करने की शक्ति, एक ही वाण में प्रबल योद्धा बालि का वध करते हुए वे कभी भी हिचकते नहीं हैं। केशव ने राम को वाल्मीकि के 'पुरुष सिंह' की तरह प्रस्तुत किया है। लक्ष्मण शक्ति लगने पर वे अधीर होकर भी धैर्यवान रहते हैं, वहाँ भी उनका पौरुष अपने बाँध तोड देना चाहता है, और वे समस्त सृष्टि को नष्ट कर डालने का सङ्कल्प कर लेते हैं। प्रचण्ड रावण की मायावी शक्ति तथा अपार शक्ति की तनिक भी चिन्ता नहीं करते एक बाण में ही चाप के उस पहाड को चूर चूर कर डालते हैं। अपनी दिव्य प्रवृत्तियों के कारण उनका रूप असाधारण है।[1] युद्ध-क्षेत्र में उनका आत्म-तेज लगातार विकास को ही प्राप्त करता रहता है। उनमें ब्रह्मत्व, पूर्ण नरत्व दोनों का ही तेज केशव ने मन खोल कर 'रामचन्द्रिका' के अनेक प्रसंगों में प्रस्तुत किया है। वास्तव में केशव पौरुष तथा अलौकिक तेज के पुजारी थे। यही कारण है कि 'रामचन्द्रिका' की एक ही ध्वनि है—राम की अपराजेय आत्म शक्ति का भक्ति के साथ लगातार गुणगान।

प्रतिनिधि चरित्र

तुलसी ने राम को आदर्श की उस उच्च चोटी पर पहुँचा दिया था, जहाँ तक मानव की पहुँच ही नहीं थी। राम मात्र आदर्शों के भण्डार बनकर रह गये थे। केशव ने राम को 'मानवत्व' रूप दिया। उनमें जीवन की हलचल प्रस्तुत की तथा वे मानवों के साथ, विशेष सम्राट की भाँति हमारे सामने प्रस्तुत किए गए। केशव ने राम को जीवन का प्रतिनिधि चरित्र बनाने के चक्कर में उनमें उग्रता, शृंगारिकता तथा स्त्रैणता का भी समावेश कर दिया है। राम के प्रेम का अमर्यादित रूप देख कर पण्डित कृष्ण शंकर शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि 'तुलसी के समान मर्यादा की रक्षा करते हुए संयम रूप से प्रेम का वर्णन करने की शक्ति उनमें न थी। एक आध स्थल पर यदि उन्होंने प्रयत्न भी किया है तो वे सीताराम को छोड कर बहुत कुछ राधा कृष्ण की ओर भटक गये हैं।[2] फिर भी मानव काव्य प्रणेता केशव ने मानव लीला करने वाले में मानव-सुलभ वृत्तियों के उतार चढ़ाव का दिखाते हुए भी उनके ब्रह्म-रूप को अक्षुण्ण बनाये रखने का उपक्रम किया है।[3]

१ डा० हीरालाल दीक्षित—आचार्य केशवदास पृ० १४०
२ केशव की काव्य कला, पृ० २६

राम हमारे जीवन में और निकट आ सकें इसलिए केशव ने राम में अनुकूल अवसर पर उग्रता अनुकूल अवसर पर भोग विलास आदि सब कुछ दिखाया है।¹ केशव के राम को प्रत्येक स्थल पर वाल्मीकि तथा तुलसी के राम की गम्भीरता तथा सौम्यता से नीचा दिखा देना उचित नहीं है। केशव ने राम का सहज रूप दिया एक बंधे बंधाए आदर्श के प्राचीन कटघरे से निराला तथा नवीन मनुष्य की भाँति आचरण करता हुआ दिखाया है। युद्ध तथा प्रेम दोनों ही परिस्थितियों में रमने की प्रवृत्ति के साथ प्रस्तुत किया। इस प्रकार केशव ने अपने नायक में आधुनिकता, सहजता भी उत्पन्न की तथा उन्हें जीवन के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में ढाला भी। राम सभी पूज्यों के प्रति चाहे वे दशरथ वसिष्ठ विश्वामित्र आदि कोई तापस मुनि हों नत हैं मर्यादा रक्षा भी उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है उनका मित्र प्रेम आदर्श है अनुजों के विभाजन के प्रति उनका बंधुभाव भी अनुकरणीय है आदर्श भाई की भाँति वे लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न सभी को अपने में समाए रहते हैं। सभी दृष्टियों से उनका चरित्र अनुकरणीय ही है।

दिव्य शक्ति से अलंकृत

केशव अनेक प्राचीन[1] उदाहरणों को देकर राम की दिव्य शक्ति को प्रदर्शित करते हैं। अपनी दिव्य शक्ति के कारण ही वे शाश्वत विजयी नायक हैं। अपनी दिव्य शक्ति के कारण ही वे पतित-पावन हैं, अपनी दिव्य शक्ति के कारण ही वे शम्भु ब्रह्मा, विष्णु, सुर, नर, मुनि सभी के गायन हैं। अपनी दिव्यता के कारण ही वे रूप अपार, मदन छवि मदन, जसपति तथा जगपति हैं। वे तो संसार में नर लीला अपनी दिव्य शक्ति का प्रसार करने के लिए ही करते हैं। लेकिन केशव के राम को अपनी शक्ति का गर्व नहीं है, वे शील निधि और शील समुद्र हैं। हाँ, उद्दाम क्रोध का आवेग, उन्हें कभी कभी विचलित अवश्य कर देता है लेकिन वहाँ भी धैर्य से ही कार्य करते हैं। उनकी दिव्य शक्ति के कारण ही हनुमान तथा अंगद उनके दूत बनने में ही अपना गौरव समझते हैं। इस प्रकार केशव ने राम में दिव्य शक्ति का वर्णन अनेक प्रकार से जी खोल कर दिया है।

विचारों की व्यापकता

केशव के राम शत्रु-मित्र के प्रति समदृष्टि रखते हैं। उनके चरित्र में प्रजा-वत्सलता लोकोद्धार की भावना ही प्रबल है। लोकोद्धार की इस भावना से प्रेरित होकर ही रावण का वध करते हैं तथा विभीषण को शरण देते हैं। राम भक्त में इतने रम जाते हैं कि परदारागामी बालि का वध करते हैं तथा सुग्रीव के दोषों को भी लगातार क्षमा करते रहते हैं। 'केशव' ने 'राज्यश्री' की निन्दा द्वारा भी राम के विचारों को प्रस्तुत किया है।

---

१ तुमहीं गुन रूप गुनी तुम ठाए। तुम एक तें रूप अनेक बनाए।
इक है जो रजोगुण रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची विधि नाम बिहारो ॥
१७ रा० च०
गुन सत्व धरे तुम रक्षक जाको। अब विष्णु कहैं सिगरो जग ताको।
तुम ही जग रुद्र स्वरूप सधारो। कहिये तिन मध्य तमोगुन मारो ॥ १८
तुमही जग हौ जग है तुम ही मे। तुम ही विरचो मरजाद दुनी मे ॥
मरजादहि छोडत जानत जाको। तबही अवतार धरौ तुम ताको ॥ १९
तुमहो नरसिंह को रूप सवारयो। प्रह्लाद को दीरघ दुख्ख निवार्यो ॥
तुम ही बलि बावन बेष छल्यो जू। भगुनन्दन ह्व छिति छत्र दल्यो जू ॥ २१
तुमही यह रावण दुष्ट सघार्यो। धरनी मह बूढ़त धर्म उबार्यो।
तुमही पुनि कृष्न को रूप धरोगे। दलि दुष्टन को भुवि भार हरोगे ॥२२
तुम बौध स्वरूप दयाहि धरोगे। पुनि कल्कि ह्व म्लेच्छ समूह हरोगे ॥
यहि भाँति अनेक स्वरूप तुम्हारे। अपनी मरजाद के काज सवारे ॥२३
रामचन्द्रिका १६।१७ २३

सामाजिक मर्यादा का आधार नर नारी के मधुर सम्बन्धो पर ही टिका है। केशव के राम न अधम अभागो कुटिल कुपति पति तज न नारी'[1] यह सन्देश कौशल्या के सम्मुख देकर अपने व्यक्तित्व की हानि की है। केशव ने राम को अनेक स्थानो पर उपदेशक बना दिया है। उन स्थलो पर राम का सही रूप छिप सा गया है। नारी-धर्म का पुराण पन्थी उपदेश राम को निश्चय ही शोभा नही देता है। केशव के 'राम' भरत से पवित्र चरित्र पर भी सन्देह करते हैं। इस सन्देह वृत्ति से राम के आन्तरिक विचारो की क्षुद्र झलक मिलती है। फिर भी केशव ने राम का चरित्र निर्दोष ही बनाने का प्रयास किया है। उनके शब्दो मे—

> अमल चरित तुम बरित मलिन करौ साधु कहैं साधु पन्दार प्रिय अति है।
> एक बन थिन मे बसत 'अगजानमध्य के सोनास' ही पन्थ प बहुपन्थ गति है ॥
> भूपन सकुल जुत सीस धर भूमि भार भूतल फिरत प अभूत भुवपति है।
> राखौ गाइ ब्राह्मननि, राजसिद्द साथ चिर रामचन्द्र राज करौ अदभुत गति है[2]।।

'राम' शवरी को अपनाते हैं, वे सभी अशरण व्यक्तियो को शरण देते हैं, उनकी राज-दृष्टि भी सकुचित नही व्यापक है। जो उनसे न्याय की माग करता है, वह उसके कष्ट निवारणार्थ अपना भरसक प्रयास करते है। अपनी परम उदारता त्यागवृत्ति के ही कारण 'यहै नरदेव दव दे गति हौ'[3] की चर्चा केशव ने रामचन्द्रिका' के प्रत्येक प्रकाश म की है। केशव ने राम को 'जगत के नाइ'[4] की भाँति चित्रित किया है। उनके राम म राजा की उदारता क्षत्रिय की क्षमा, ब्रह्म की पर माथ-दृष्टि के साथ विचारो की उदारता प्राय मिलती है।

कार्यो की उदात्तता

केशव ने रामचन्द्रिका' म राम के उदात्त कार्यों का आरम्भ से अन्त तक वर्णन किया है। लेकिन तुलसी का भक्त उनके कलाकार से ऊपर उठ गया है। अत श्रद्धा के अतिशय भाव न राम के दोष दर्शन का उन्हे अवसर ही नही दिया। 'केशव ने राम को ब्रह्मलोक' से उतार कर राज लोक' म देखा है। इसलिए राम के 'मानवत्व' को वे प्रकट कर सके हैं। यद्यपि उनके पाण्डित्य न कही कही उन्हे भटका दिया है तथापि केशव राम के उदात्त रूप को बड़े संयत भाव से प्रस्तुत करते हैं। लेकिन यहाँ राम के चरित्र का उदात्त पक्ष केशव ने तुलसी से भिन्न होकर प्रस्तुत

---

१ रामचन्द्रिका ६।१६
२ वही २७।१
३ वही २७।४
४ वही २६।२६

किया है। तुलसी लगातार राम की रामलीला का स्मरण कराते रहते हैं, केशव के राम सांस्कृतिक पुनरोद्धारक की भाँति कार्य करते हैं।[1]

> बलि वली न बच्यो पर खोरहि क्यों बचि हौ तुम आपनी खोरिहि।
> जा लगि छोर समुद्र मथ्यो कहि कैसे न बाधि है बारिधि थोरिहि।
> श्री रघुनाथ गनौ असमरथ न देखि बिना रथ हाथिन घोरिहि।
> तोरयो सरासन संकर को जेहि सो क्या तुव लंक न तोरहि॥[2]

अंगद रावण के समक्ष राम के अनेक उदात्त कार्यों का वर्णन करता है। वे रावण का विनाश कर लोक धर्म की स्थापना करते हैं। पाप वृत्ति में रमने वाले पापियों के लिए धर्म का उपदेश देते हैं। पितृ वचन का पालन वे तन मन से करते हैं। विभीषण जब 'रावण के अघ ओघ मे राघव बूडत हौं बरही गहि काढौ।'[3] यह विनय करता है, वे उसे शरण में लेते हैं, रावण का वध कर उसे राज्याधिपति बना देते हैं। अपने कार्यों की उदात्तता के कारण ही वे महामानव, सर्वशक्तिमान तथा भारतीय आदर्शों के प्रतीक बन गये हैं। किसी भी जाति के मंगल के लिए जिन उदात्त गुणों की आवश्यकता हो सकती है, वे गुण 'तुलसी' ने प्रस्तुत कर दिये थे। केशव ने राम का उतना भव्य रूप तो प्रस्तुत नहीं किया लेकिन कार्य-व्यापार की उदात्तता को रीतिकाल के घोर शृंगारी वातावरण में भी रक्षित करने का प्रयास किया। रावण, बालि, परशुराम अपने समय के तीन पराक्रमी योद्धाओं का गर्व वे चूर करते हैं। कार्यों की उदात्तता के अनुसार धर्मज्ञता, दृढ़ संकल्प असीम आत्म-शक्ति, पूज्यों के प्रति नम्रता, श्रद्धा, सत्यवादिता तथा आचरण की पवित्रता उनमें है। तुलसी के राम की तरह ही 'केशव' के राम आदर्श नायक, आदर्श योद्धा आदर्श शिष्य आदर्श राजनीतिज्ञ आदर्श पुत्र, आदर्श शत्रु मित्र सभी का उदात्त रूप प्रस्तुत करते हैं। वाल्मीकि के वीर नायक की भाँति केशव के राम वीर नायकों की ही श्रेणी में आते हैं। केशव के 'राम' पर विद्वानों[4] ने नारी-वध बालि वध, सूपनखा के नाक-

---

१ डा० सत्येन्द्र—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक—तात्विक अध्ययन, पृ० ४५१

२ रामचन्द्रिका १५।७

३ वही १५।२४

४ (i) 'केशवदास जी राम के इस रामत्व की रक्षा करने मे पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सके हैं। केशव के राम के चरित्र मे लक्ष्मण के ही समान उग्रता दिखाई देती है।"—पृ०१३६

(ii)"उग्रता के अतिरिक्त केशव के राम के चरित्र मे शृंगारिकता और किसी सीमा तक स्त्रैणता दृष्टिगोचर होती है।" पृ० १४०—डा० हीरालाल

कान का विच्छेद, कौशल्या को वनवास के अवसर पर नारी धर्म का उपदेश, सीता के साथ कामी पुरुष का व्यवहार, राज्याभिषेक के पश्चात विलासी राजा की भाँति आचरण, शालीनता का अभाव, शीघ्र ही परशुराम से क्रुद्ध होने का अपराध, लक्ष्मण शक्ति पर घोर अहंकार के वचन, भरत के चरित्र पर भी सन्देह[1], निरपराध सीता का त्याग आदि दोषों का आरोपित किया है।

विचार करने पर यह आरोप एक अंश को छोड़ कर बाकी सभी निराधार ही सिद्ध होते हैं। वाल्मीकि रामायण, मानस तथा 'रामचन्द्रिका' तीनों ही काव्यों में राम पर सीता, ताड़का तथा सूपनखा के प्रति दुर्व्यवहार का आक्षेप लगाया जाता है। तीनों ही काव्यों में ताड़का वध तपस्वी विश्वामित्र द्वारा औचित्य सिद्ध किए जाने पर किया गया है। तीनों ही काव्यों में सूपनखा का विरूपण मजबूरी में किया गया है। 'सीता निर्वासन' की घटना मानस में नहीं है लेकिन 'रामायण' में है। 'लोकापवाद' के पद तथा सीता के चरित्र की पावनता को सिद्ध करने के लिए राम ने ऐसा किया है। केशव ने भरत के द्वारा राम का प्रबल विरोध करवाया है—

> यह है असत्य जु, होहिगो अपवाद सत्य सु नाथ।
> प्रभु छाडि सुद्ध सुधानि पीबहु आपने विष हाथ॥[2]

राम ने भरत तथा लक्ष्मण को 'मोको हतो बहुरि बात कहो जु फेरि'[3] कह कर अपनी निर्दोषता को सिद्ध किया है। साथ ही विद्वानों ने कामी आचरण का दोष भी राम को व्यर्थ ही लगाया है। जो अपनी पत्नी को इतने त्याग के साथ छोड़ सकता है, वह कामी हो ही नहीं सकता। 'रामचन्द्रिका' के राम का स्वभाव लक्ष्मण की भाँति उग्र होना भी राजा के लिए औचित्य ही रखता है। अतः तुलसी के राम की तुलना केशव के 'राम' से प्रस्तुत करने पर उन्हें नीचा दिखाना ठीक नहीं है। परिस्थितिवश राम ने अपनी माँ को जो नारी धर्म का उपदेश दिया है उसे भी डा० गार्गी गुप्ता ने उचित ही ठहराया है।[4]

---

१ "वे उस मर्यादालु राजा के समान हैं जो राजपाट का परित्याग कर चौदह वर्ष के लिए वनगमन के समय भी भरत से भाई के प्रति सशंक हैं।" —डा० किरणचन्द्र शर्मा—केशव, जीवनी, कला और कृतित्व, पृ० १२६

२ रामचन्द्रिका ३३।३३

३ वही ३३।३६

४ डा० गार्गी गुप्ता—रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ३२१

राम के चरित्र में शृंगारिक भावनाओं का प्रदर्शन भी केशव ने उनकी 'मानव सहजता' को दिखाने के लिए किया है। दूसरे राजा राम भौतिक राजा की तरह आचरण करने पर भौतिक विलासों से घृणा करते तो उनका चरित्र विश्वसनीय न होकर बनावटी बन जाता है। राम में 'काम' का प्राधान्य दिखाना, जीवन्त पुरुष का ही लक्षण है। साथ ही राम एक पत्नीव्रत का नियम राजा होते हुए भी लोक मर्यादा के लिए पालन करते हैं। अतः राम की शृंगारी वृत्ति भी उनके चरित्र का दोष नहीं एक गुण ही कहा जाना चाहिए। भरत से साधु चरित्र पर सन्देह करना भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित ही है, क्योंकि पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चचला होय' समझ कर वे राजलक्ष्मी पर ही सन्देह करते हैं। यहाँ उनके चरित्र पर लगाये गये आरोप सर्वथा उचित नहीं हैं। इन सभी आक्षेपों से राम के उदात्त-पक्ष में कोई हानि नहीं हुई है। "वह परब्रह्म का स्वरूप हैं परन्तु मानवी गुण-अवगुणों के कारण अधिक अनुकरणीय हैं तथा जीवन को लोक के मध्य रहकर ही उन्नत बनाने की प्रेरणा देते हैं।"[1] इस प्रकार उनके कार्यों की उदात्तता हमारे जीवन का आदर्श है।

सम्पूर्ण 'रामचन्द्रिका' में राम के कार्यों की भूमिका ही महत्त्वपूर्ण है। पाठक की समस्त सहानुभूति उन्हीं को प्राप्त होती है। वे इतने पराक्रमी, साहसी, शक्तिशाली, स्वाभिमानी हैं कि उनका यह गुण ही उन्हें उच्चकोटि का नायक बना देता है। रीतिकाल के शृंगारी वातावरण में पौरुष के प्रताप से प्रदीप्त वीर-योद्धा ही समाज में सम्मान का स्थान पाता होगा[2], इसीलिए राम में केशव ने अथाह शक्ति का समूह दिखाया है। महान् योद्धा के लिए नैतिक मूल्यों का प्रश्न प्रच्छन्न ही था, प्रत्यक्ष नहीं। राम राजा रूप में, यही कारण है कि त्याग तथा भोग दोनों ही पक्षों को प्रस्तुत करते हैं। तुलसी ने मर्यादावश सीता राम के भोग पक्ष की उपेक्षा कर दी थी उसी कार्य को केशव ने पूरा किया। विलासी नायक की भांति आचरण करने पर भी युद्ध के मैदान में वे कभी पीठ नहीं दिखाते, बड़े-बड़े वरदानी योद्धा बालि तथा रावण को कुछ नहीं समझते तथा मर्दानगी से उनका मुकाबला करते हैं। इस प्रकार केशव ने राम में अलौकिक तेज तथा सम्राट् के चारित्र्य दोनों को मिलाकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

१ डा० गार्गी गुप्त—रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, पृ० ३३०

२ रामचन्द्रिका' के नायक राम के शौर्य की तुलना तो सम्पूर्ण विश्व में हो नहीं है।' —वही, पृ० ३५३

कथा के मूल भाव या रस का आधार

किसी भी कृति के नायक निर्णय मे कथा का मूल भाव या अगी रस का भी आधारग्रहण आवश्यक होता है । कथा म नायक की मूल चित्तवृत्तियो का प्रकाशन ही प्रमुख होता है अत नायक को पहिचानने का माध्यम अगी रस भी है। रामचन्द्रिका राम के पराक्रम की गाथा है, युद्ध उसमें प्रधान-स्वर पा गया है। अत कथा के समस्त कलेवर मे वीर रस अगी के रूप म दिखाई देता है। केशव चाहे सूक्ष्म भावो के वर्णन म सफल न हुए हो परन्तु राजसी वैभव, पराक्रम युद्धादि के वर्णन मे पारगत हैं । केशव ने जागति जाकी ज्योति जग, एक रूप स्वच्छन्द [1] कहकर रामचन्द्र की चन्द्रिका' को ही अपना आधार बनाया है। उन्होंने ताडका-वध से लेकर रावण वध तक राम को एक वीर विजेता के रूप म प्रस्तुत किया है।

तुलसी ने 'मानस' म आत्म सताप के लिए, राम का नायकत्व प्रस्तुत किया है। इसके विपरीत केशव ने 'परब्रह्म श्रीराम हैं अवतार अवतारमणि' [2] को 'जग हसा जगत प्रशसा, मुनीमानस हसा [3] कहकर तिनके गुन कहिहैं सब सुख लहिहैं पाप पुरातन भाग इस विचार स पापप्रक्षालनाथ गुणगान का विषय बनाया है। इस प्रकार यह कृति आत्म हित तथा लोकहित पर आधारित है। राम मुनियो के कल्याणार्थ यज्ञ रक्षा तथा राक्षस सुबाहु पापिनी ताडका का वध करते हैं अहिल्या को इन्द्र श्राप स मुक्ति देते है। वह जनक की पुरी म पहुँच कर राजा की प्रतिज्ञा को पूरा करते हैं। परशुराम के तेज को हतप्रभ कर उनके धनुष पर रस्सी चढा देते हैं। इस प्रकार उनका चरित्र पराक्रम का जयघोष है। इसी कारण से रामचन्द्रिका म धर्म-मूलक वीरत्व मिलता है ।

रीतिकाल म शृगार का बोलबाला होने पर भी तथा नायक है सिंगार' [4] मानकर भी केशव ने 'रामचन्द्रिका का अगी रस वीर ही माना है। विश्वनाथ ने महाकाव्य म शृगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते' [5] कहकर शृगार, वीर या शान्त म स किसी एक की प्रधानता पर बल दिया। केशव संस्कृत आचार्यों के इन लक्षणों के कायल थे अत उन्होंने आचार्य-पद्धति म ही रामचन्द्रिका म वीर रस

---

१ रामचन्द्रिका १।२१
२ वही १।१७
३ वही १।२०
४ केशव—रसिकप्रिया १।१०
५ विश्वनाथ—साहित्य दर्पण - महाकाव्य-लक्षण ।

को प्रधान तथा शृंगार, रौद्र, शान्त, भयानक आदि रसों को अंग रूप में स्थान दिया।

केशव ने प्रवृत्ति से ही राम को युद्ध प्रिय दिखाया है। 'रामचन्द्रिका' में राम रावण युद्ध तथा लव-कुश युद्ध को केशव ने बड़े विकट धरातल पर प्रस्तुत किया है। बस 'रामचन्द्रिका' के सभी पात्र वीर कोटि में ही आते हैं। वृद्ध दशरथ विश्वामित्र के समक्ष अपना वीरत्व प्रकट करते हैं। बाणासुर तथा रावण अपनी गाथा में तलवार लिए खड़े हैं। परशुराम का वीर-वेश अद्भुत है ही। केशव के भरत में भी परशुराम द्वारा राम-अपमान देख कर चंदन में आग निकल ही पड़ती है,[1] यह सोचकर क्रोध फूट पड़ता है। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम उद्दाम आवेग से उबल पड़ते हैं। राम रावण युद्ध में वीर धारा का एक उदाहरण देखिये—

सूरज मुसल नील पट्टिस परिघ नल जामवन्त असिहनू तोमर प्रहारे हैं।
परसा सुखेन कुन्त केसरी गवय सूल विभीषन गदा गज भिंदिपाल तारे हैं।
मोगरा द्विविद तार कटराकुमुद नेजा अंगद सिला गवाक्ष विटप बिदारे हैं।
अंकुस सरभ चक्र दधि मुख सेप सक्ति बान तीन रावन श्री रामचन्द्र मारे हैं॥[2]

इसी प्रकार लव-कुश युद्ध में वीर रस का प्रवाह प्रबल है।[3] 'केशव' ने रौद्र रस के चित्र भी प्रभावशाली प्रस्तुत किए हैं। राम क्रोध में 'करि आदित्य अदृष्ट नष्ट, जम करौं अष्टवसु'[4] कह कर अपना क्रोध व्यक्त करते हैं। रौद्र ने भी अंगी रस वीर रस का बहुत ही 'रामचन्द्रिका' में पोषण किया है। 'परशुराम प्रसंग' में भयानक रस लव-कुश युद्ध में हनुमान तथा जामवन्त जहाँ रक्त मारन की नदी देखते हैं वहाँ पर वीभत्स रस के चित्र हैं। 'रावण-बाणासुर' को देख कर नर-नारी अद्भुत तथा भयानक रस की उपलब्धि करते हैं। 'सूपनखा प्रसंग' में हास्य-रस

---

१ रामचन्द्रिका ७।२२

२ वही १६।४८

३ रोष करि बान बहु भाँति लव छंडियो। एक ध्वज, सूतजुग तीन रथ खण्डियो।
सस्त्र दसरथय सुत अस्त्र कर जो धरै। ताहि सियपुत्र तिल तूल सम खण्ड करै॥
वही ३५।१६

४ रामचन्द्रिका १७।४६

रामचन्द्रिका के नायक राम

का सफल विधान है। इस प्रकार केशव ने सभी रसों को स्थान दिया है। इस कृति में वीर के साथ शृंगार लगातार चलता रहा है। रावण के प्रासाद-वर्णन सीता की दासियों के वर्णन में शृंगार की प्रभावशाली अभिव्यक्ति है—

लोचन मनहु मनोभव जन्त्रनि। भृकुग ऊपर मनोहर मन्त्रनि।
सुन्दर सुगद सु अंजन अंजित। बान मदन विप सो जनु रंजित॥
सुगद नासिका जग मोहियो। मुक्ताफलानि युक्तन साहियो।
ग्रानन्लतिका मनहु सफूल। जनु सूंघि तजत ससि सकल फूल॥ १

इस दृष्टि से राम के जीवन में वीर तथा शृंगार दोनों का अद्भुत योग है। 'रामचन्द्रिका' का अंगी रस वीर है और यह वीर नायक की मूल चित्तवृत्तियों का ही प्रतिफलन है। इस दृष्टि से भी राम ही इसके नायक सिद्ध होते हैं। काव्य' का अन्त 'शम स्थायी भाव में है लेकिन आद्यन्त कथा में वीर धारा का ही उद्दाम वेग है।

कथा के अन्य पात्रों द्वारा राम के महत्त्व की स्वीकृति

केशव ने अपने राम को इतना यशवान पराक्रमवान तथा क्षत्रियत्व के तेज से मण्डित राजा का रूप दिया है जिनका महत्त्व कथा का प्रत्येक पात्र स्वीकार करता है। राम की त्याग वृत्ति को देखकर भरत उनके सामने नत हैं, वे कभी भी यह नहीं सोचते कि राम को भी कोई लोभ है। भरत सर्वथा निस्वार्थ चरित्र के अपने भाई की चरण-पादुकाएं लाते हैं उनकी पूजा करते हैं तथा साधु सा जीवन व्यतीत करते हैं। भरत सा निश्चल चरित्र भारतीय साहित्य में कोई दूसरा है ही नहीं। वह चरित्र जब राम के प्रति असीम श्रद्धा तथा विश्वास के साथ नत रहता है तब राम का रूप निखर आता है। राम भी भरत की निष्कपटता से परिचित हैं व व्यवहार के नीति पक्ष को लेकर ही 'रामचन्द्रिका में उनके चरित्र पर थोड़ी शंका करते हैं जो उचित ही है। इस शंका से राम के चातुर्य का ही स्पष्टीकरण होता है भरत पर कोई कलंक नहीं आता। भरत राम के सभी कार्यों से सहमत हैं लेकिन सर्वथा पवित्र सीता को गर्भिणी अवस्था में न्यायी राम अन्याय के साथ त्याग दें यह उन्हें स्वीकार नहीं है।२ इसीलिए रामचन्द्रिका में वे राम का विरोध करते हैं।

---

१ रामचन्द्रिका ३।१२,१३

२ प्रिय पावन प्रिय वादिनी पतिव्रता अति शुद्ध।
जग को गुरु और गुर्विणी छाड़त वेद विरुद्ध॥
वर माता वसे पिता तुम सो भया पाइ।
भरथ भए अपवाद के भाजन भूतल आइ॥—रामचन्द्रिका ३३।३४,३५

लक्ष्मण राम के शील तथा पराक्रम के ही कारण राम की सेवा में अपने को धन्य मानते हैं। उन्हें राम से इतना अपनत्व है कि वे माता, पिता राजसुख आदि सब कुछ छोड सकते हैं। राम के ऊपर वन में भरतागमन को सैन्य सहित आक्रमण समझ कर वे क्रोध से रौद्र रूप हो जाते है। वे 'सीताहरण' के बाद भाई के साथ रावण से युद्ध करते है। लेकिन जब रावण से पराजित होते हैं तो भाई से ही कहते हैं कि—

अब टर न टारो मर न मारो, हौं हठि हारो धरि सायक।
रावणहि न मारत देव पुकारत है अति आरत जग नायक॥[1]

राम पर उनका इतना विश्वास है कि प्रत्येक कठिन स्थिति में उन्हे उनका ही सहारा है। इस वीरचरित पर भी राम का महत्व छाया है। हनुमान, अंगद तथा सुग्रीव तो उनके दास बनकर ही धन्य-धन्य हैं। हनुमान उनके सौन्दर्य एवं शौर्य के कारण पाद सेवी हैं। अंगद राम के गुणों का बखान रावण के दरबार में करते हुए थकते नहीं। विभीषण मात्र हो राम की शरण में अभयदान पाता है तथा दिन-रात उनके गुणों में डूबा है। 'रामचन्द्रिका' का प्रतिनायक रावण भी राम के महत्व को मन ही मन स्वीकारता है, लेकिन उसकी राक्षसी हठ उसे राम के पर नहीं पकडने देती। इस प्रकार सभी पुरुष पात्रों के ऊपर उनका प्रभाव है।

ऋषियों, मुनियों, योगियों, तपस्वियों को भी राम के रक्षक रूप का बल है। विश्वामित्र राम की शक्ति को जानते हैं तथा उनसे अभयदान पाते हैं। वे जनक यज्ञ में राम के शौर्य से मान पाते हैं। परशुराम उनके समक्ष हतप्रभ हैं तथा वे ब्रह्म शक्ति से परिचित होने ही अपना अज्ञान समाप्त कर देते हैं। देवता, गन्धर्व, तथा राम कथा में स्वयं ब्रह्मा अपने श्रीमुख से राम के यश का वर्णन करते हैं—

तुम हो अनन्त अनादि सर्वग सर्वदा सर्वज्ञ।
अब एक हो कि अनेक ही महिमा न जानत अज्ञ।
अमियो कर जनलोक चौदहु लोभ मोह-समुद्र।
रचना रची तुम ताहि जानि जानत हौं न ब्रह्म न रुद्र॥[2]

दण्डक[3], इन्द्र[4], पिता[5], अग्नि[6] देवगण[7] ऋषिगण[8] किन्नर यक्ष[9],

---

१ रामचन्द्रिका १६।५०
२ वही २७।१
३ वही २७।२
४ वही २७।३
५ वही २७।४
६ वही २७।५
७ वही २७।७
८ वही २७।८
९ वही २७।१० २६

गे सब सभी उनकी वन्दना करते है।

केशव' की सीता, राम के प्रति आदर्श पत्नी रूप म समर्पित है। राम का कष्ट वे एक क्षण नही देख सकती, निरपराध अपन त्याग को भी वे उचित ही मानती हैं इसम सीता की उदात्त वृत्ति तो है ही पति क प्रति पत्नी की दिव्य निष्ठा का भी प्रमाण मिलता है। मन्दोदरी राम का अपन पति का शत्रु मानकर भी मन म स्मरण करती है। अहिल्या उन्हे ब्रह्मरूप म पूजती है। इस प्रकार केशव' के राम का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली है कि प्रत्यक पात्र पर उनकी महानता की छाप पडती है और वह उनका मित्र, भक्त या दास बन जाता है। उनकी इस महानता तथा पावनता के कारण ही देव तथा मनुष्य उनकी कीर्ति गाता हुआ नही थकता। केशव ने राम की इस प्रकार महानता के लिए ही पाप पुरातन भागे कहकर उनके यश का विराट गुणगान 'चन्द्रिका नाम से किया है।

इस प्रकार केशव ने राम क रूप म एक युग युग तक मानव को प्रेरणा देने वाले चरित्र को ही प्रस्तुत किया है। उनका नायक विषयक दृष्टिकोण रसिकप्रिया' में मिलता है—

> अभिमानी त्यागी तरुण, कोक, कलान प्रवान।
> भव्य क्षमी, सुन्दर, धनी, शुचि रुचि सदा कुलीन।
> य गुण केशव जाहि म सोई नायक जान॥[1]

इस लक्षण क सभी गुण राम के चरित्र म उपलब्ध हैं ही, साथ ही केशव ने एक ब्रह्म तथा एक महिमा महिम महामानव का नायकत्व रामचन्द्रिका मे वर्णित किया है।

प्रतिनायक

प्रबल प्रतिनायक की पराजय ही नायक को महत्त्वपूर्ण बनाती है। इस दृष्टि से केशव ने प्रतिनायक क मूर्त य रूप रावण को भी कुशलता स प्रस्तुत किया है। केशव न तुलसी की भाँति प्रतिनायक को त्याग की मूर्ति ही नही दिखाया, उसम प्रबल प्रतिनायकों क गुणों का विस्तार किया है। केशव क रावण पर वाल्मीकि के रावण का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। वाल्मीकि न रावण को राम स डट कर संघर्ष करने वाला प्रतिनायक तथा तुलसी न रावण को मात्र पराजय पानेवाला प्रतिनायक बना दिया है। केशव ने तुलसी का भाँति राम का भक्त बनाकर उसे मोक्ष प्राप्त करते नहीं दिखाया है। केशव न रावण म प्रतिद्वन्द्विता की भावना तथा मान बल

1 केशवदास—रसिकप्रिया, प० २, छन्द १—२ (पूर्वार्द्ध)

पर गर्व स्पष्ट झलकता है। रावण के ऐश्वर्य का वर्णन, कुलीनता, वीरता, विद्वता का वर्णन दुराग्रह मुक्त होकर किया है। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में धनुष यज्ञ के अवसर पर ही रावण-वाणासुर सम्वाद प्रस्तुत किया है। रावण वाणासुर से कहता है—

> बज्र को अखर्ब गर्ब गंज्यो, जेहि पर्वतारि जीत्यो है, सुपर्व सर्व भाजे लै लै अंगना।
>
> खण्डित अखण्ड आसु कीन्हों है जलेस पासु चन्दन सी चन्द्रिका सो कीन्ही चन्द बन्दना।
>
> दण्डक में कीन्हों कालदण्ड हू को मानखण्ड मानो कीन्ही काल की ही काल खण्ड खण्डना।
>
> 'केसव' कोदंड विषदण्ड, ऐसो दंड अब मेरे भुजदण्ड की बड़ी है विडम्बना।।[1]

अपने भुजबल के गर्व में चूर रावण, जिसने इन्द्र, वरुण, कुबेर को नीचा दिखाया है, वह शिव धनुष को कमल-नाल की भाँति तोड़ने की बात पूरे विश्वास से सभा के मध्य में कहता है। केशव ने वहीं पर 'रावण बाण महाबली जानत सब संसार'[2] कहकर सभी को उसके आतंक से आतंकित दिखाया है। रावण स्वयं अपनी प्रशंसा करते थकता नहीं। अचानक वह अपने प्रिय व्यक्ति की करुण पुकार सुनकर चला जाता है नहीं तो वह धनुष को तोड़ने में पूर्ण सक्षम था। केशव ने रावण को यहाँ अपमानित नहीं होने दिया, जैसा तुलसी ने उसे धनुष-यज्ञ में राजाओं के मध्य घोर अपमानित किया है।

केशव का वैभवशाली रावण भोग विलासी है। मदिरा से मस्त सुन्दरी किन्नरियाँ उसके यहाँ नृत्य करती रहती हैं—

> पिए एक हाला गुहै एक माला। बनी एक बाला नचै चित्र शाला।
>
> कहूँ कोकिला कोक की कारिका को। पढ़ावैं सुवा लै सुकी सारिका को।।[3]

रावण राजनीति, कूटनीति एवं भेदनीति में पटु है। वह अंगद को बालि वध का ध्यान दिलाकर मिलाना चाहता है।[4] रावण युद्ध का इतना योद्धा है कि

१ रामचन्द्रिका ४।६
२ वही ४।३
३ वही १३।५१
४ वही १६।१५

उसके बल से धरती कांपती है। राम के अतिरिक्त उसका सामना करने की शक्ति किसी और में नहीं है। लेकिन वज्र से कठोर इस रावण को केशव ने मेघनाद वध होने पर कोमल हृदय व्यक्ति भी दिखाया है। वह प्रतिज्ञा तथा बात का इतना धनी है कि जो कह देता है उस पर अटल रहता है। मन्दोदरी के अनेक बार सन्धि करने तथा सीता वापिस कर देने की विनय करने पर भी रावण अपने मत को नही बदलता है। वह हठी क्रोधी, प्रचण्ड पराक्रमी बली, छली कामी विलासी, घोर दम्भी सभी प्रतिनायक के गुणों से युक्त है। रावण का चरित्र केशव ने बडा निष्ठा से उभारा है, एकदम उसके साथ अन्याय नही किया। केशव के राम अपनी शक्ति में अद्भुत हैं तो रावण भी कम नहीं है। दोनों ही बेजोड़ योद्धा हैं। ऐसी स्थिति में प्रतिनायक की पराजय तथा नायक की विजय निश्चय ही बडी महत्त्वपूर्ण है। केशव ने प्रबल प्रतिनायक की पराजय से नायक की प्राणवत्ता तथा अटल महत्ता की स्थापना की है।

राम के नायकत्व का निर्धारण

इस प्रकार 'केशव' का नायक पाश्चात्य तथा भारतीय आचार्यों के लक्षणों से बनायी गयी कसौटी पर खरा उतरता है। राम-कथा के प्राणवान सूत्रधार कार्यों में उदात्तता, जीवन का प्रतिनिधि चरित्र मूल या रस या आधार आदि सभी दृष्टि से महाकाव्य के सफल नायक हैं। संस्कृत आचार्यों से केशव अधिक प्रभावित थे, उनके नायक पर उनका प्रभाव होना भी स्वाभाविक है। भामह, दण्डी तथा विश्वनाथ की कसौटी पर वह अविकत्थन क्षमावान धीरोदात्त गुणवंत' की कोटि में आते हैं। रुद्रट की प्रजा अनुरक्त दृष्टि विजिगीषु तथा सर्वगुण समन्वित नायक कसौटी पर भी 'केशव' के राम आदर्श नायक हैं। पाश्चात्य दृष्टि से भी वह महाकाव्य में महत् कार्य व्यापार करने वाला उदात्त नायक है।

राम में विलास एवं पौरुष का मणि-कांचन योग केशव ने प्रस्तुत किया है। कारण वे मानव जीवन का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ हैं। राज्याभिषेक राजा राम का विलास उनके चारित्रिक पतन का रूप न होकर मानवीय गुणों की सहजता का रूप लिए है। केशव के राम कल्पना के विराट ब्रह्म नहीं हैं जीवन के समीप रहते हैं। उनमें मानवत्व मनुजत्व, क्षत्रियत्व तथा लोक उद्धारक रूप की ही प्रधानता है। इस प्रकार रामचन्द्रिका के नायक की सबसे बड़ी आकर्षण है उनका प्रबल मानव पक्ष। उनका व्यक्तित्व भोगमूलक मधुर पक्ष को भी मुक्त-भाव से अपनाये है तथा युद्ध के विराट् पक्ष को भी। उसमें प्रेम एवं युद्ध दोनों का सन्तुलित विकास है। 'रामायण' के राम का अतिमानवीयता तथा तुलसी के राम की ब्रह्म

लीलापरक विस्तारवादिता रामचन्द्रिका' के राम मे नही है। उनमे दिव्य शक्ति के कारण महामानव के महत्तम गुण उपलब्ध हैं तथा भारतीय काव्य शास्त्रियो द्वारा निर्धारित 'धीरोदात्त नायक' की कसौटी पर वे पूर्ण सफल हैं।

तुलसी तथा केशव के नायक की तुलना

केशव के नायक को आलोचको ने तुलसी के नायक की तुलना मे लगातार हेय कहा है। सत्यता यह है कि तुलसीदास ने एक ऐसे अपराजेय व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है कि ऐसे चरित्र विश्व-साहित्य म कम ही होगे। जितने महान से महान गुणो की आदर्श रूप में कल्पना मानव-मस्तिष्क कभी भी कर सकता है उससे भी बडी ब्रह्म तथा मानव-लीला की शाश्वत-नायक मूर्ति को तुलसी ने प्रस्तुत किया है। नायक कल्पना मे उनके समक्ष हिंदी-साहित्य ससार का कोई भी नायक उनकी पहुँच तक पहुँच ही नही सका है। इसलिए तुलसी की तुलनात्मक परीक्षा से केशव के नायक को दुबल पाकर चौकना नही चाहिए। प्रत्येक कलाकार की अपनी सीमाए होती हैं। केशव' की परिस्थितिया को ध्यान मे रखकर तथा मानस के अपराजेय तथा अतुलनीय नायक को अपनी दृष्टि मे मुक्त कर केशव के नायक राम पर विचार किया गया होता, तो एसी भूल नही होती तथा केशव के साथ हम अधिक से अधिक न्याय कर सकते थे।

दूसर दोनों के नायक निरूपण को तुलनात्मक दृष्टि से देखने से पूर्व यह भी देखना आवश्यक है कि दोनों की मूल दृष्टि म भेद है। तुलसी भक्ति मे रमा समर्पित भक्त है जो लोक म सियाराम की दिव्य लीला के अतिरिक्त और कुछ देखना हा नही, देखना भी नहीं चाहता। भक्ति का उस दिव्य भूमिका पर तुलसी ने अपने दिव्य-नायक राम के रूप की झाँकी का दर्शन किया है जहाँ सामान्य कवि या कलाकार कभी भा पहुँच हा नही सकता। जो पूर्णत ब्रह्म म डूब गया, रम गया उस तुलसी के नायक-निरूपण को पाना असम्भव सा हा है। साथ ही तुलसी ने राम के चरित्र को कला तथा भक्ति की दृष्टि से इतना मधुर, दिव्य और भव्य विस्तार द दिया था कि उसम विकास की सीमाए भी कम रह गयी थी। दूसरी ओर केशव दरबारी कवि थे। राजा, राजाओ के कार्य-कलापो का उन पर प्रभाव था। उन पर वाल्मीकि 'रामायण' के राम का भी प्रभाव है। 'स्वप्न' के माध्यम से केशव ने यह बात अपनी कृति के आरम्भ म ही कह दी है। वाल्मीकि के राम महामानव हैं तथा वे राजा की भाँति ही उत्तरकाण्ड म आचरण करत हैं। लेकिन गुणो के वे अपार कोश हैं, व ससार स गम्भीर, हिमालय मे अचल, वसुधा से धैर्यशाली अनेक गुणो स युक्त हैं। परन्तु केशव के राम उभर कम पाते हैं। केशव ने उन्हें ब्रह्म कोटि का मानव दिखाया है जो राजाओ की भाँति वैभव का सुख भी भोगते हैं तथा प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए अपनी पत्नी का भी त्याग कर सकते

हैं। इस प्रकार केशव के राम सांस्कृतिक पुनरोद्धारक हैं। उनमें मानव का पक्ष प्रधान है। अतः तुलसी तथा केशव के नायक का अन्तर दोनों की मूल दृष्टि का ही परिणाम है। वैसे केशव के राम भी तुलसी के राम की तरह 'पुराण-पुरुष', अनादि, अनन्त, पुरुषोत्तम, पतित-पावन, ब्रह्म, लोक रक्षक आदि सभी हैं। फिर भी मूल दृष्टि के अन्तर से दोनों में बड़ा अन्तर पड़ गया है।

चतुर्थ अध्याय

कृष्ण के नायकत्व का स्वरुप-विकास

पृष्ठभूमि

समस्त भारतीय साहित्य मे कृष्ण सर्वाधिक प्रिय नायक हैं। उनके नायकत्व के समक्ष अन्य कोई नायक टिकता ही नहीं है। भारतीय मनीषा की अपार-शक्ति से यह नायक मूर्धन्य बन गया है। इस नायक पर कवियो ने जितना मन खोल कर लिखा है उतना किसी भी अन्य नायक पर नहीं। कृष्ण को आधार बनाकर हिन्दी का मध्ययुगीन साहित्य उनके लौकिक, लोकोत्तर तथा अलौकिक छटाओ से धन्य हो गया है। प्रेम और सौन्दर्य का यह नायक भारतीय जन-मानस के बहुत निकट रहा है। उन पर मुग्ध होकर विदग्ध मन से कवियो ने रीति-कोश न्योछावर किए हैं। हिन्दी के मध्यकाल मे मुक्तक पदो का अपार भण्डार है। गीत ही आत्मा साक्षात्कार के क्षण म प्रबल अन्तमन की आत्माभिव्यक्ति का समर्थ साधन हैं। मन के राग रंजित स्निग्ध उद्वेलन को उसम ही सहज मिठास एव मसृणता से प्रस्तुत किया जा सकता है। यही कारण है कि कृष्ण पर मन तरग के साथ मुक्तक पद लिखे गये हैं, विद्यापति एव सूर के पद इस मत को प्रकट करते हैं। मीरा अपने गीतो म प्रेम दीवानी होकर 'गगन मण्डल का सेज' सजाती है और रसखान मनुष्य, खग, पाहन तथा पशु बनने पर भी उन्ही का साहचर्य चाहते हैं। इन कृष्ण गीतों की अन्तरग दिव्यता और बहिरग रम्यता ने जनता को सहस्रो वर्षों तक मोहे रखा है।

मध्ययुग म ही धनुर्धरधारा मर्यादापुरुषोत्तम राम का नायकत्व आदर्शों से जकड गया था। भारतीय जीवन के समस्त उदात्त मात्र गुण आदर्श उनमें पुजीभूत कर दिए गए। परिणामस्वरूप उनका पुरुषोत्तमत्व और ब्रह्मत्व कवि के लिए कठिन पडा। साथ ही तुलसी ने अपने राम म आकाश पाताल के कुलावे मिलाकर कवियो के लिए सम्भावना भी कम ही रखी थी। आगे चलकर राम पर लिखने का साहस ही बहुत कम हो पाया। राम के मर्यादित रूप मे कवि-कल्पना के खिलवाड को जगह नहीं थी। उनके कृत्य भक्त भक्ति के सम्बन्धो म बधकर रह गय। दूसरी ओर कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत उन्मुक्त मिला उसका रसिकेश्वर लीला बिहारी रूप ऐसा था जिन पर साभाग्य और समर्थ दोनो ही कवि अपनी अपनी उडाने भरते रहे। उनके व्यक्तित्व का लचीलापन और फैलाव, ससीम एव असीम

के संयोग से भी कवियों के लिए आकर्षण का कारण रहा है। रीतिकाल का कवि तो उनके स्मरण के बहाने ही रमता रहा। एक आश्चर्यप्रद घटना यह भी हो गई कि 'नेति नेति' ब्रह्म विष्णु, वासुदेव एवं कृष्ण हो गया। उसमें ठोस सौंदर्य एवं आध्यात्मिक रूप अनेक युगों में अनायास मिल गये। उसमें वैदिक, अवैदिक, आर्य अनार्य सभी कुछ मिलकर मधुर ही होता गया। इस मधुरता का विकास इतना हुआ कि विष्णु भी कृष्ण से पीछे पड़ गये। वेदों का सर्वशक्तिमान इन्द्र इनसे गोवर्द्धन पर्वत की घटना में मात खा गया और उसके व्यक्तित्व को भी कृष्ण ने जीत लिया। इस प्रकार साहित्य का यह अपराजेय, असीम सम्भावनाओं से युक्त नायक लगातार वेदों से लेकर आधुनिक काल तक विकासोन्मुख रहा है। यह आभीर जाति का बाल देवता हो या कोई ऐतिहासिक महामानव विष्णु परिवर्तित रूप हो या यूनानी रस का शिव, पुराणों का दिव्य लीलावतारी देव हो या पाश्चात्य का क्राइस्ट रूप प्रभाव पुत्र अथवा कल्पना का कविकल्पवृक्ष हो कुछ भी हो इस नायक ने अपनी रस धार से साहित्य में जीवनी शक्ति को अवतरित कर दिया है।

कृष्ण को नाना पुराणों का जयगान मिला। भारतीय साधना के अनेक सम्प्रदायों का उपास्यदेव पद मिला। साथ ही शृंगार एवं भक्ति का परम-पद भी दिया गया। उसे अमर लोक, गोलोक तथा व्रजलोक मिला। लीला देख आनन्द विभोर हो कवियों की वाणी में सावन घन बन गया और प्रेम की हरीतिमा धरती पर बिखेरने लगा। व्रजभाषा काव्य की समस्त सौंदर्य मधुरता कोमलता भाव, भाषा कला शक्ति इस महान नायक में पूंजीभूत हो गई। इस प्रकार इस नायक का मधुर एवं विराट रूप साहित्य में अजेय हो गया। अब कृष्ण के अपार नायकत्व का विकास कैसे-कैसे होता रहा है इस क्रम को प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। इसमें उनके नायकत्व के रूप का क्रमिक विकास भी उद्घाटित होगा तथा युगीन ह्रास या सम्वर्द्धन की प्रक्रिया का भी स्पष्ट बोध सम्भव हो सकेगा कि हिन्दी के मध्ययुगीन रूप से पहिले उनका कैसा रूप था। मध्ययुगीन कवियों की आधार भूमि के प्रेरणा स्रोत कौन से रहे हैं इस तथ्य को भी स्पष्टता मिलेगी।

नायक श्रीकृष्ण का ऐतिहासिक स्वरूप विकास

प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक काल तक कृष्ण का व्यक्तित्व अनेक रूपों में पल्लवित होता रहा है। वेदों उपनिषदों में विद्यमान धारणाओं का स्फुरण, वृद्धि, परिवर्तन युगीन परिवेश के अनुकूल परिवर्तित होता रहा है। भारतीय साहित्य में उनकी मधुर और विराट सत्ता को देखकर विद्वान उन्हें भारतीय साहित्य का सर्वाधिक प्रख्यात व्यक्तित्व मानते हैं। उनमें आर्य अनार्य, भारतीय अभारतीय

अनेक तत्त्व घुलमिल कर एकाकार होते रह हैं, साथ ही भक्ति भावना की आध्यात्मिक धारा मे उनका रूप एव अखण्ड भाव-सत्ता ग्रहण कर लेता है। इस व्यापक भावना के अनन्त प्रसार को देखते हुए अनेक आलोचको को उनकी ऐतिहासिकता' पर सन्देह हुआ है तथा वे उन्हे शुद्ध कल्पना का पुन्ज मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान उन्हे इसी भाव सत्ता' में कल्पना का रूप ठहराते रहे हैं। किन्तु भारतीय विद्वानो की खोज ने सिद्ध कर दिया है कि कृष्ण एतिहासिक पुरुष हैं, जो लगातार परिवर्तित-परिवर्द्धित होते रहे हैं।[1] वैदिक काल म भागवत-काल तक अनेक कृष्णो के उल्लेख मिलते हैं वे सब 'कृष्णमय' होकर कसे समाविष्ट हो गय, यह प्रश्न आज भी विचारणीय है। जसे महाकाव्य विकसनशील महाकाव्य का रूप बदलता रहता है फिर स्थिर होता है। ऐसे ही विकसनशील नायक भी अनेक युगो की सजना से बनता है। ऋषियो की मेधा, तपस्वियो का तप, योगियो की साधना, भक्तों का भक्ति तथा साहित्यिको की कल्पना स ही ऐसा नायक उदित होता है। कृष्ण ऐसा ही प्रवहमान विकसनशील चरित्र है, जो हर युग मे नया जन्म लेता रहा है तथा प्रत्येक युग म अपना नाम पुराना रखते हुए भी नवीन दृष्टि-बोध, भाव-बोध, ज्ञान-बोध तथा युग-बोध को ग्रहण करता रहा है।[2] उनके चरित्र की निरन्तरता ही शाश्वत दृढ़ता की प्रतीक है। इस नायक के नाम, विकास क्रम को स्पष्ट करने के लिए ही समीचीन है कि वेदो से उसकी छानबीन आरम्भ की जाये तथा वेदोत्तर युगो म उसके नायकत्व के रूप पर विचार किया जाये।

वेदो मे कृष्ण

कृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद मे उपलब्ध होता है। ऋषि कृष्ण ही ऋग्वेद म अष्टम तथा दशम मण्डल के रचयिता हैं। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल म भी कृष्ण का उल्लेख है। यहाँ इन्द्र द्वारा मारे गये एव कृष्णासुर की चर्चा है।[3] इसी वेद म दूसरे तथा अष्टम मण्डल म भी इन्द्र तथा कृष्णासुर के सघष की चर्चा है।[4] प्रसिद्ध दशन वेत्ता डा० राधाकृष्णन ने इस कृष्ण को उस सेना का दवीकृत परम वीर पुरुष स्वीकार किया है।[5] विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण मे इन्द्र-

---

1 – Shri Bipin Chandra Pal — Shri Vishuna p 2

२ बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय—कृष्ण चरित्र, पृ० ४७, अनु० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

३ ऋ०—१ १३०, ८

४ (i) २, २०, ७ (ii) ८, २५, १३

५ इण्डियन फिलासफी जि० १, पृ० ८७

युद्ध विरोध देखकर पाश्चात्य विद्वान् इलियट ने उसे वन्य कृष्ण का रूप ही माना है।[1]

'ऋग्वेद' में ही उक्त ऋषि का कहा गया है और दूसरा रूप में कृष्ण आंगीरस ऋषि का नाम भी दिया गया है।[2] वे गोमवान के लिए अश्विनी कुमारों को आह्वान देते हैं। वर्णापकर्षवाचक रूप में कृष्णिय शब्द का प्रयोग भी एक, दो ऋचाओं में मिलता है।[3] 'कौषीतकी ब्राह्मण' में भी कृष्ण आंगीरस की चर्चा है।[4] 'ऐतरेय आरण्यक' में कृष्ण हारीत' नामक एक गुरु का उल्लेख है।[5] दूसरी ओर 'छान्दोग्योपनिषद्' में कृष्ण देवकी के पुत्र और आंगीरस के शिष्य कहे गये हैं।[6] डा० भण्डारकर ने 'पाणिनि अष्टाध्यायी'[7] में प्रयुक्त कृष्ण तथा 'रण' शब्दों के आधार पर इसका सम्बन्ध 'कृष्णायन गोत्र' से जोड़ दिया है।[8]

डा० कपिलदेव शास्त्री ने शब्द साम्य के आधार पर ऋग्वेद में कृष्ण तथा अर्जुन[9] तथा 'अथर्ववेद'[10] में राम और कृष्ण के उल्लेख को खोजा है किन्तु उनका मत है कि इनकी ऐतिहासिकता पर सम्भवतः अयथार्थ्य होने के कारण विद्वानों ने विचार नहीं किया।'[11] पीछे से विद्वान जे० गोद ने कृष्ण अर्जुन का तात्पर्य 'रात एवं दिन' से स्वीकार किया है।[12]

ऋग्वेद में एक स्थल पर 'कृष्ण' की चर्चा असुरराज के रूप में भी है। इन्द्र ने देवता बृहस्पति की सहायता से उसे पछाड़ दिया था।[13] कहीं-कहीं इन्द्र को कृष्णासुर की गर्भवती स्त्रियों का वध करने वाला कहा गया है।[14]

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर कृष्ण नाम की ऐतिहासिकता तथा कृष्ण नामक व्यक्ति का अस्तित्व निश्चय ही सिद्ध होता है। तीन प्रकार से कृष्ण सामने आते हैं—

---

१ हिं डुइज्म तथा बुद्धिज्म—पृ० १५५ (१९५४)

२ (i) डा० भण्डारकर—कलेक्टेड वर्क्स में संकलित व० शै० पृ० १५
(ii) ऋ०—८, ८५, ६८ ८७

३ (i) १, ११६, २३ (ii) ७३, ११७ ७

४ ३० ६ ५ ३, २, ३

६ ३, १७, ६ ७ ५४, १, ९८

८ व० शै०—पृ० १५

९ ६, ९, १ १० १, २३ १

११ मध्ययुगीन साहित्य में अवतारवाद, पृ० ५२१

१२ जे० गोद—ऐस्पेक्ट्स आफ अर्ली वष्णविज्म, पृ० १५८ (सं० १९५४)

१३ ऋ० ८—९६, १३-१५ १४ १ १०१, १

(१) मन्त्रों के रचयिता अंगीरस कृष्ण ।

(२) आर्येतर संस्कृति से सम्बद्ध कृष्णासुर कृष्ण ।

(३) अर्जुन के सहचर के कृष्ण । बाद में जिनका सम्बंध 'महाभारत' के अर्जुन कृष्ण से भी माना जा सकता है। छान्दोग्य' का प्रभाव गीता' पर बहुत है, इस दृष्टि से कृष्ण अंगीरस का सम्बन्ध गीता कृष्ण से भी स्थापित किया जा सकता है। इसी धारणा को गार्वे, ग्रियसन मजूमदार, राय चौधरी, वान थापडर आदि खोजी विद्वानों ने स्वीकार किया है।[१] लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक इस धारणा से सहमत नहीं हैं।[२] उनके मत से 'छान्दोग्य' तथा गीता का भाव साम्य मूल आधार (गीता) से सम्बद्ध नहीं है। डा० हरिवंश लाल शर्मा ने वैदिक कृष्ण को अवतार और देवता न मानकर भी भागवत का कृष्ण माना है।[३]

वैदिक कृष्ण का पुराणों के कृष्ण से एकीकरण जनश्रुतियों तथा लोक विश्वासों को लेकर हुआ होगा। लेकिन तीन कृष्णों में से कौन सा कृष्ण पुराण-कृष्ण हो गया, प्रमाणों के अभाव में कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। डा० केलकर ने ऋग्वेद के चार विष्णुपरक मन्त्रों के आधार पर विष्णु तथा कृष्ण को एक ही माना है। वहीं से विष्णु का गायों से सम्बन्ध देखकर उसे पशुपालक देवता विष्णु को सूर्य वंशी मानकर उसे पीछे के काल में कृष्ण मान लिया है। वेदों के बाद के विष्णु तथा कृष्ण का मेल पुराणों से मान लेते हैं।[४] रामधारीसिंह दिनकर ने 'कृष्ण' नाम की प्राचीनता तथा ऐतिहासिकता को वेदों से ही स्थापित किया है तथा उनका मत मान्य भी लगता है।[५]

---

१ (I) इनसाइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड ऐथिक्स, पृ० ५३५, भाग २
 (II) कल्चरल हेरिटेज आव इण्डिया—पृ० ११ १२, भाग ३
 (III) अर्ली हिस्ट्री आव वष्णव सेक्ट, पृ० ७८
 (IV) वैदिक इण्डेक्स, पृ० १८४, भाग १

२ गीता रहस्य, पृ० ५३८

३ सूर और उनका साहित्य, पृ० ११८

४ मराठी हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४५

५ "कृष्ण नाम के साथ गाय, चरवाहा, खेती और किसानों की क्याएं देख कर तथा यह देख कर कि उनके भाई बलराम हल लेकर चलते हैं, पश्चिम के विद्वानों ने यह अनुमान लगाया था कि पहिले कृष्ण फसल तथा वनस्पति के देवता रहे होंगे। मगर, भारतीय पण्डित इस अनुमान को नहीं मानते। कृष्ण नाम बहुत प्राचीन है।"

— संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ६१

पुराणो मे कृष्ण

वदिक कृष्ण तथा पौराणिक कृष्ण एक ही व्यक्ति हैं अथवा अलग अलग इस मत पर बहुत विवाद है। पुराणो के कृष्ण सात्वत कुल म उत्पन्न यदुवशी हैं। उन्हें चद्रवशी कहा गया है।[1] कुछ पुराणो म उन्हे सूयवशी कहा गया है जहाँ उनकी माँ का नाम देवकी तथा पिता का नाम वसुदेव है तथा ब्रह्मा विष्णु को वसुदेव के घर मे अवतरित होने की सलाह देते हैं।[2] इतना निश्चित है कि उपनिषद से लेकर पुराणो तक कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत विस्तृत हुआ है। पुराणो म कृष्ण को निश्चित आयाम मिलते हैं। कृष्ण के इस प्राचीन व्यक्तित्व म वष्णव भक्ति का नैकटय बहुत है। अत कृष्ण के नायकत्व के विकास मे वष्णवभक्ति का बहुत योग है।

महाभारत मे कृष्ण

महाभारत भारतीय जनजीवन को सम्पूण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाला विकसनशील महाकाव्य माना जाता है। इसके साथ व्यास का नाम विशेष रूप स सम्बद्ध होने पर भी यह एक कवि या सीमित काल का रचना नही है। प्रसिद्ध विद्वान विण्टरनित्ज ने ठीक ही कहा है कि महाभारत अपने आप म सम्पूण तथा समग्र साहित्य (होल लिटरेचर) है। शत शत वर्षों तक मूल कहानी म अनेक आख्यान मिलते रहे तथा मूल कहानी को पहिचानना आज कठिन है। महाभारत युग की ऐतिहासिक, सास्कृतिक, राजनीतिक सामाजिक कथाओ का विशाल कोष है।

'महाभारत के नायक कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत अदभुत है। पाण्डवो की ओर म युद्ध के सूत्रधार वे ही रहे। फिर भी महाभारत म वे भगवान के अवतार हैं, और उनके द्वारा अनुप्रेरित अन्यायाचरण को भी महाभारत म उनका अलौकिक चरित्र बताया गया है। महाभारत क अन्य पात्र युद्ध और राजनीति की आग म जल रहे हैं। सबके सब एक तूफान म स होकर गुजरे हैं। अपना रास्ता उन्होंने स्वय बनाया है और अपनी रची हुई विपत्ति की चिता म वे हसते हसते कूद गये हैं।[3] चरित्रो का यह विराट महासागर इतिहास, पुराण धम ग्रन्थ महाकाव्य आदि सभी कुछ है। महाभारत के नायक कृष्ण महान योगी वेजोड राजनीतिज्ञ तथा साक्षात ब्रह्म के अवतार हैं। यहाँ पर कृष्ण का रूप मधुर नही सम्पूण रूप से विराट रूप ही मिलता है। महाभारत का सम्पूण युद्ध उनके सकेत पर ही घूम रहा है। कृष्ण का यह रूप पुराणो के कृष्ण स भिन्न है अत गोपालकृष्ण तथा महाभारत कृष्ण दो भिन्न भिन्न दष्टियो के प्रतीक हैं। इस दष्टि का भिन्नता के कारण ही महाभारत

---

१ पार्जिटर एनसेण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन, पृ० १०२, १७ १४४
२ हरिवश पुराण का सास्कृतिक विवेचन-वीणा पाणि पाण्डेय, प० १५
३ हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, भाग १, पृ० ३१७

के कृष्ण गोपाल कृष्ण से कभी मिलाये नही जा सके। मध्य युग मे महाभारत के कृष्ण का नही, पुराण के कृष्ण का बोलबाला रहा है, इसका कारण है कि मध्ययुग पौराणिकता के प्रभाव मे अधिक दवा है।

कृष्ण तथा विष्णु

वैदिक विष्णु इन्द्र से बहुत छोटे देवता हैं। ब्राह्मण काल म यज्ञ का प्राधान्य था, अत वे यज्ञ रूप विष्णु बन गये। ऐतरय ब्राह्मण म विष्णु 'परम-देव' स्वीकार किए गये।[२] शतपथ ब्राह्मण मे विष्णु के वामन रूप की चर्चा है,[३] साथ ही वे यज्ञ-सम्बन्धी विग्रहो म विजयी होकर देवताओ मे महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। उन्ही की प्रत्यचा स उनका कटा सिर विष्णु बन जाता है। फिर वे विष्णु आदित्यो मे सवशक्तिमान हैं।[४] महाभारत के विष्णु को बारह अवतारो म सर्वाधिक तेजस्साकार कहा गया है।[५] उनके रूप धारण तथा सवशक्तिमान की कल्पना ने उन्हे चार आयुध (शख, चक्र, गदा पदम) से अलकृत कर मानव से अधिक बलवान दिखा दिया। इस प्रकार जावन-मरण के दु खो का त्राणकर्ता दवता विष्णु उदित हुआ तथा इन्द्र का तज उसके सामने पीछे पड गया। 'सूयलोक' के साथ 'गोलोक' मे भी उसका निवास हो गया।[६] विष्णु की चार भुजाओ का तज इतना बढा कि अन्य वदिक देवता, उनके सामने टिक नही सके, लोग उन्हें भूलने लगे। सभी कथाए विष्णु म मिलकर 'त्रिविक्रम विश्ववसु', 'राधानोपति' तथा 'भुवनस्यराजा' म समाहिति पा गयी 'सूयलोक' के परे 'गोलोक' के ब्रजमण्डल म भी 'गोमण्डली' समझी जाने लगी।

तत्तरीय आरण्यक मे विष्णु का एक प्राचीन ऋषि नारायण म समाविष्ट हो गये।[७] पाचरात्र धम म उपासना-परम्परा चल पडी। बाद म य सभी भावनाए वासुदेव कृष्ण में मिल गयी। तत्तरीय आरण्यक म एक स्थान पर वासुदेव, विष्णु तथा नारायण की समता का उल्लेख है।[८] के० एम० मु शी न पाणिनि के (ई० पू० समय ५०० शताब्दी) आधार पर जनसाधारण म विष्णु-पूजा को स्वीकार किया

---

१ आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १४३
२ ऐतरेय ब्राह्मण, १, ३०
३ शतपथ ब्राह्म ण १ २, ५
४ गीता—दसवा अध्याय श्लोक २१
५ महाभारत-१, ६५ १६ (कलकत्ता सस्करण, १९०९)
६ शतपथ ब्राण १, ५, ३, १४।
७ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० २५५
८ वष्णव धम, पृ० २१

पुराणो मे कृष्ण

वदिक कृष्ण तथा पौराणिक कृष्ण एक ही व्यक्ति है अथवा अलग अलग इस मत पर बहुत विवाद है। पुराणो के कृष्ण सात्वत कुल म उत्पन्न यदुवशी हैं। उन्हे चन्द्रवशी कहा गया है।[1] कुछ पुराणा म उन्ह सूयवशी कहा गया है जहाँ उनकी माँ का नाम देवकी तथा पिता का नाम वसुदव है तथा ब्रह्मा विष्णु को वसुदेव के घर मे अवतरित होने की सलाह देते हैं।[2] इतना निश्चित है कि उपनिषद से लेकर पुराणों तक कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत विस्तृत हुआ है। पुराणो मे कृष्ण को निश्चित आयाम मिलते हैं। कृष्ण के इस प्राचीन व्यक्तित्व म वष्णव भक्ति का नैकट्य बहुत है। अत कृष्ण के नायकत्व के विकास म वष्णवभक्ति का बहुत योग है।

महाभारत मे कृष्ण

महाभारत भारतीय जनजीवन को सम्पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाला विकसनशील महाकाव्य माना जाता है। इसके साथ व्यास का नाम विशेष रूप स सम्बद्ध होने पर भी यह एक कवि या सीमित काल का रचना नही है। प्रसिद्ध विद्वान विण्टरनित्ज ने ठीक ही कहा है कि महाभारत अपने आप में सम्पूर्ण तथा समग्र साहित्य (होल लिटरेचर) है। शत शत वर्षो तक मूल कहानी म अनेक आख्यान मिलत रह तथा मूल कहानी का पहिचानना आज कठिन है। महाभारत युग की ऐतिहासिक, सास्कृतिक राजनीतिक सामाजिक कथाओ का विशाल कोप है।

'महाभारत के नायक कृष्ण का व्यक्तित्व वस्तुत अद्भुत है। पाण्डवा की ओर मे युद्ध के सूत्रधार वे ही रहे। फिर भी महाभारत म वे भगवान के अवतार हैं, और उनके द्वारा अनुप्रेरित अन्यायाचरण को भी महाभारत मे उनका अलौकिक चरित्र बताया गया है। महाभारत के अन्य पात्र युद्ध और राजनीति की आग म जल रहे हैं। सबके सब एक तूफान म स होकर गुजरे हैं। अपना रास्ता उन्होने स्वय बनाया है और अपनी रची हुई विपत्ति की चिन्ता म वे हँसते हँसते कूद गये हैं।[3] चरित्रो का यह विराट महासागर इतिहास, पुराण धम ग्रन्थ, महाकाव्य आदि सभी कुछ है। महाभारत के नायक कृष्ण महान योगी बेजोड राजनीतिज्ञ तथा साक्षात ब्रह्म के अवतार हैं। यहाँ पर कृष्ण का रूप मधुर नही सम्पूर्ण रूप स विराट रूप ही मिलता है। महाभारत का सम्पूर्ण युद्ध उनके सकेत पर हो घूम रहा है। कृष्ण का यह रूप पुराणो क कृष्ण से भिन्न है अत गोपालकृष्ण तथा महाभारत कृष्ण दो भिन्न भिन्न दृष्टियो के प्रतीक हैं। इस दृष्टि का भिन्नता के कारण हा महाभारत

---

१ पार्जिटर एनसेण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन, पृ० १०२, १७ १८४

२ हरिवश पुराण का सास्कृतिक विवेचन-वीणा पाणि पाण्डेय, पृ० १५

३ हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर, भाग १, पृ० ३१७

के कृष्ण गोपाल कृष्ण से कभी मिलाये नही जा सके। मध्य युग मे महाभारत के कृष्ण का नही, पुराणो के कृष्ण का बोलबाला रहा है, इसका कारण है कि मध्ययुग पौराणिकता के प्रभाव मे अधिक दबा है।

कृष्ण तथा विष्णु

वदिक विष्णु इन्द्र से बहुत छोटे देवता हैं। ब्राह्मण काल म यज्ञ का प्राधान्य था, अत वे यज्ञ रूप विष्णु बन गये। ऐतरेय ब्राह्मण मे विष्णु 'परम-देव' स्वीकार किए गये।[२] शतपथ ब्राह्मण म विष्णु के वामन रूप की चर्चा है,[३] साथ ही वे यज्ञ सम्बन्धी विग्रहो म विजयी होकर देवताओ मे महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। उन्ही की प्रत्यचा से उनका कटा सिर विष्णु बन जाता है। फिर वे विष्णु आदित्यो मे सवशक्तिमान हैं।[४] महाभारत के विष्णु का बारह अवतारो मे सर्वाधिक तेजस्साकार कहा गया है।[५] उनके रूप धारण तथा सवशक्तिमान की कल्पना ने उन्हें चार आयुध (शख, चक्र, गदा पदम) से अलकृत कर मानव से अधिक बलवान दिखा दिया। इस प्रकार जीवन मरण के दुखो का त्राणकता देवता विष्णु उदित हुआ तथा इन्द्र का तेज उसके सामने पीछे पड गया। 'सूयलोक' के साथ 'गोलोक' म भी उसका निवास हो गया।[६] विष्णु की चार भुजाओ का तेज इतना बढा कि अन्य वदिक देवता, उनके सामने टिक नही सके, लोग उन्हें भूलने लगे। सभी कथाए विष्णु मे मिलकर 'त्रिविक्रम विश्ववसु', 'राधानोपति' तथा 'भुवनस्यराजा' म समाहिति पा गयी 'सूयलोक' के परे 'गोलोक' के व्रजमण्डल म भी 'गोमण्डली' समझी जाने लगी।

तत्तरीय आरण्यक मे विष्णु का एक प्राचीन ऋषि नारायण म समाविष्ट हो गये।[७] पाचरात्र धम मे उपासना परम्परा चल पडी। बाद मे ये सभी भावनाए वासुदेव कृष्ण मे मिल गयी। तैत्तरीय आरण्यक मे एक स्थान पर वासुदेव, विष्णु तथा नारायण का समता का उल्लेख है।[८] के० एम० मुशी ने पाणिनि के (ई० पू० समय ५०० शताब्दी) आधार पर जनसाधारण म विष्णु-पूजा को स्वीकार किया

---

१ आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १४३
२ ऐतरेय ब्राह्मण, १, ३०
३ शतपथ ब्राह्मण १,२,५
४ गीता—दसवा अध्याय श्लोक २१
५ महाभारत-१, ६५, १६ (कलकत्ता सस्करण, १९०९)
६ शतपथ ब्राह्मण - १ ५, ३, १४।
७ पोदार अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० २५५
८ वष्णव धम, पृ० २१

पुराणो मे कृष्ण

वैदिक कृष्ण तथा पौराणिक कृष्ण एक ही व्यक्ति हैं अथवा अलग अलग इस मत पर बहुत विवाद है। पुराणो के कृष्ण सात्वत कुल म उत्पन्न यदुवशी हैं। उन्हे चन्द्रवशी कहा गया है।[1] कुछ पुराणा म उन्हें सूर्यवशी कहा गया है जहाँ उनकी माँ का नाम देवकी तथा पिता का नाम वसुदेव है तथा ब्रह्मा विष्णु को वसुदेव के घर म अवतरित होने की सलाह देते हैं।[2] इतना निश्चित है कि उपनिषद मे लेकर पुराणा तक कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत विस्तृत हुआ है। पुराणा मे कृष्ण को निश्चित आयाम मिलते हैं। कृष्ण के इस प्राचीन व्यक्तित्व म वैष्णव भक्ति का नैकट्य बहुत है। अत कृष्ण के नायकत्व के विकास मे वैष्णवभक्ति का बहुत योग है।

महाभारत मे कृष्ण

महाभारत भारतीय जनजीवन को सम्पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाला विकसनशील महाकाव्य माना जाता है। इसके साथ व्यास का नाम विशेष रूप से सम्बद्ध होने पर भी यह एक कवि या सीमित काल की रचना नहीं है। प्रसिद्ध विद्वान विण्टरनित्ज ने ठीक ही कहा है कि महाभारत अपने आप म सम्पूर्ण तथा समग्र साहित्य (होल लिटरेचर) है। सात शत वर्षों तक मूल कहानी म अनेक आख्यान मिलते रहे तथा मूल कहानी को पहिचानना भी कठिन है। महाभारत युग की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक राजनीतिक सामाजिक कथाओ का विशाल कोष है।

महाभारत के नायक कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत अद्भुत है। पाण्डवो की ओर म युद्ध के सूत्रधार वे ही रहे। फिर भी महाभारत म वे भगवान के अवतार हैं और उनके द्वारा अनुप्रेरित अन्यायाचरण को भी महाभारत म उनका अलौकिक चरित्र बताया गया है। महाभारत के अन्य पात्र युद्ध और राजनीति की आग म जल रहे हैं। सबके सब एक तूफान म से होकर गुजरे हैं। अपना रास्ता उन्होंने स्वय बनाया है और अपनी रची हुई विपत्ति की चिन्ता म वे हँसते हँसते कूद गये हैं।[3] चरित्रो का यह विराट महाभारत इतिहास पुराण धर्म ग्रन्थ महाकाव्य आदि सभी कुछ है। महाभारत के नायक कृष्ण महान योगी चतुर राजनीतिज्ञ तथा साक्षात ब्रह्म के अवतार हैं। यहाँ पर कृष्ण का रूप मधुर नहीं सम्पूर्ण रूप म विराट रूप ही मिलता है। महाभारत का सम्पूर्ण युद्ध उनके इशारे पर ही घूम रहा है। कृष्ण का यह रूप पुराणो के कृष्ण से भिन्न है अत पुराणकृष्ण तथा महाभारत कृष्ण दो भिन्न भिन्न दृष्टियो के प्रतीक हैं। इस दृष्टि की भिन्नता के कारण ही महाभारत

---

१ पार्जिटर एनशण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडिशन पृ० १०२, १७ १४४

२ हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक विवेचन-वीणा पाणि पाण्डेय पृ० १५

३ हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग १, पृ० ३१३

के कृष्ण गोपाल कृष्ण से कभी मिलाये नही जा सके। मध्य युग मे महाभारत के कृष्ण का नही, पुराण के कृष्ण का बोलबाला रहा है, इसका कारण है कि मध्ययुग पौराणिकता के प्रभाव मे अधिक दबा है।

कृष्ण तथा विष्णु

वन्कि विष्णु इन्द्र से बहुत छोटे देवता हैं। ब्राह्मण काल मे यज्ञ का प्राधान्य था, अत वे यज्ञ रूप विष्णु बन गये। ऐतरेय ब्राह्मण म विष्णु 'परम देव' स्वीकार किए गये।[२] शतपथ ब्राह्मण मे विष्णु के वामन रूप की चर्चा है,[३] साथ ही वे यज्ञ सम्बन्धी विग्रहा म विजयी होकर देवताओ मे महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। उन्ही की प्रत्यचा से उनका कटा सिर विष्णु बन जाता है। फिर वे विष्णु आदित्यो मे सवशक्तिमान हैं।[४] महाभारत के विष्णु को बारह अवतारो म सर्वाधिक तेजस्साकार कहा गया है।[५] उनके रूप धारण तथा सवशक्तिमान की कल्पना ने उन्ह चार आयुध (शख, चक्र, गदा, पदम) से अलकृत कर मानव से अधिक बलवान दिखा दिया। इस प्रकार जीवन मरण के दु खो का त्राणकर्ता देवता विष्णु उदित हुआ तथा इन्द्र का तेज उसके सामने पीछे पड गया। 'सूयलोक' के साथ 'गोलोक' म भी उसका निवास हो गया।[६] विष्णु की चार भुजाओ का तेज इतना बढा कि अन्य वदिक देवता, उनके सामने टिक नही सके, लोग उन्हें भूलन लगे। सभी कथाए विष्णु म मिलकर 'त्रिविक्रम विश्ववसु', 'राधानोपति' तथा 'भुवनस्यराजा' म समाहित पा गयी सूयलोक' के परे 'गोलोक' के व्रजमण्डल म भी 'गोमण्डली' समझी जाने लगी।

तत्तरीय आरण्यक म विष्णु का एक प्राचान ऋषि नारायण मे समाविष्ट हो गये।[७] पाचरात्र धम मे उपासना-परम्परा चल पडी। बाद मे य सभी भावनाए वासुदेव कृष्ण मे मिल गयी। तत्तरीय आरण्यक म एक स्थान पर वासुदेव, विष्णु तथा नारायण की समता का उल्लख है।[८] के० एम० मु शी न पाणिनि के (ई० पू० समय ५०० शताब्दी) आधार पर जनसाधारण म विष्णु-पूजा को स्वीकार किया

---

१ आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १४३
२ ऐतरेय ब्राह्मण, १, ३०
३ शतपथ ब्राह्मण १,२ ५
४ गीता—दसवा अध्याय श्लोक २१
५ महाभारत-१, ६५, १६ (कलकत्ता सस्करण, १९०९)
६ शतपथ ब्राह्मण - १ ५ ३, १४।
७ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० २५५
८ वष्णव धम, पृ० २१

है।[1] अत पतंजलि के समय से पूर्व ही विष्णु की भावना वासुदेव कृष्ण में मिल गई होगी।[2] वासुदेव के साथ कृष्ण के संयोग की दो सम्भावनाएँ हो सकती हैं। 'पहिले तो यह कि कृष्ण एक वैदिक ऋषि थे जिन्होंने ऋग्वेद के अष्टम मण्डल की रचना की। छान्दोग्य में कृष्ण देवकी के पुत्र के रूप में आते हैं। ऋग्वेद के समय से छान्दोग्य उपनिषद् के समय तक कोई जनश्रुति (कृष्ण-सम्बन्धी) चली आयी होगी। इसी के आधार पर प्राचीन कृष्ण का साम्य वासुदेव से तय हुआ होगा जब वे देवत्व के पद पर प्रधिष्ठित हुए होंगे।'[3] दूसरा मत डा० रामकुमार वर्मा का है कि जातकों की कथा के भाष्यकार के अनुसार (कृष्णायन) कृष्ण एक गोत्र है, जिसकी चर्चा डा० भण्डारकर ने भी की है। वासुदेव इसी गोत्र के क्षत्रिय थे, इसीलिए वे वासुदेव कृष्ण कहलाये।[4]

वासुदेव कृष्ण

विद्वानों ने महाभारत के नायक वासुदेव कृष्ण के वासुदेव से सम्बन्ध का अनुमान, देवकी पुत्र कृष्ण से किया है।[5] डा० भण्डारकर ने जातक के कृष्णायन गोत्र की प्रमाण गाथा में स्पष्ट उद्घाटित किया कि वे गोत्र के कारण मात्र कृष्ण भी कहे जा सकते थे।[6] जो भी हो पर गीता में कृष्ण ने अपने को वृष्णियों में 'वासुदेव' कहा है।[7] महाभारत में विष्णु या नारायण के अवतार बनकर कृष्ण पर्याय बन गये हैं।

ऊपर हम कह चुके हैं कि पतंजलि पूर्व ही वासुदेव कृष्ण के साथ विष्णु नारायण की कल्पना हो गई थी। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत से 'ईसा से कम से कम चार सौ वर्ष पूर्व वासुदेव की पूजा चल पड़ी थी। धीरे धीरे वासुदेव और नारायण को एक ही समझा जाने लगा।'[8] बौद्धों के 'घट जातक' में देवगर्भ

---

१ गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर पृ० १२६, १२७
२ इण्डियन एंटीक्वेरी, ३ १६, जरनल आव रायल एशियाटिक सोसायटी पृ० १७२, सं० १९०८
३ पोद्दार अभिनन्दनग्रन्थ पृ० २६६
४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५६८
५ छान्दोग्य — ३, १७, ६
६ वैष्णविज्म शैविज्म पृ० १६
७ गीता १० ३७
८ सूर-साहित्य, पृ० १

तथा उपसागर के दो पुत्रों का नाम वासुदेव तथा बलदेव है।[1] जैनियों ने बाइसवें तीर्थकर 'नेमिनाथ' के साथ कृष्ण की चर्चा की है।[2] फिर भी उनके आधार स्पष्ट नहीं हैं। राय चौधरी ने अनेक प्रमाण देते हुए कहा है कि सातवीं शती ई० पू० से लेकर ई० पू० तक जिस कृष्ण और उनके धर्म का प्रचार हो चुका था, वे महाभारत के नेता वासुदेव कृष्ण ही हैं।[3] अत विण्टरनित्स का यह मत निराधार सिद्ध होता है कि पाण्डवों के सलाहकार कृष्ण, पौराणिक कृष्ण, गीता के उपदेशक कृष्ण तथा गोपाल कृष्ण विभिन्न व्यक्ति रहे हैं।[4] भारतीय विचार धारा पाश्चात्य विद्वानों की इस विचारधारा को भ्रमपूर्ण मानती है। क्योंकि कृष्ण के विभिन्न रूपों का समन्वय ही पूर्णावतार कृष्ण को जन्म देता है। 'फिर भी वैदिक कृष्ण, उपनिषद्-कृष्ण, महाभारत-कृष्ण, द्वारका-कृष्ण, गीता-कृष्ण और गोकुल-कृष्ण के ऐक्य, की समस्या एक स्वतन्त्र अन्वेषण की अपेक्षा रखती है।'[5] कृष्ण को अनेक रूपों का व्यापक समन्वय मानना ही उचित लगता है। पुराणों में कृष्ण-कथा का भण्डार है पर उसमें भी कल्पनात्मक, प्रतीकात्मक, रूपकात्मक और धार्मिक आवरण की जकड बन्दी है। अत सर्वाधिक प्राचीन हरिवंश पुराण के वासुदेव-कृष्ण ही आगे विकसित होते रहे। 'हरिवंश का कृष्ण चरित्र ही अनेक पुराणों के कृष्ण चरित्र' की पृष्ठभूमि है। यहीं से उनके नायकत्व के ठोस आधार अकुरित होने लगते हैं।

वासुदेव कृष्ण तथा गोपाल कृष्ण

डा० पुसलकर ने पौराणिक कथाओं की अनेक रूपों में व्याख्या करते हुए वासुदेव कृष्ण तथा गोपाल कृष्ण दोनों को एक ही ठहराया है।[6] वासुदेव कृष्ण तथा गोपाल कृष्ण के प्राचीन सम्बन्धों के अभाव को देखकर डा० भण्डारकर दोनों को एक नहीं मानते हैं।[7] श्री राय चौधरी ने 'जमिनीय ब्राह्मण'[8] में 'गोपाल-वार्ष्णेय' का उल्लेख किया है। उन्होंने गोपाल, गोपेन्द्र, गोविन्द के सम्बन्ध विकास का अनुमान 'विष्णुरगोप' से किया है। विष्णु का अन्तिम पद उस स्थान पर

---

१ भण्डारकर-कलेक्टेड वक्स, पृ० ४
२ पोद्दार अभिनन्दन ग्रथ पृ० ७०७
३ हिन्दी आव इण्डियन लिटरेचर-पृ० ४५६-५७, भाग १
४ डा० कपिलदेव मध्ययुगीन साहित्य मे अवतारवाद, पृ० ५२४
५ डा० वीणापाणि पाण्डे हरिवंश पुराण का सास्कृतिक विवेचन, पृ० ७०
६ दी ग्लोरी दट वाज गुजर देश, पृ० १२२, भाग १
७ कलेक्टिड वर्क पृ०४६, भाग ४
८ वही १, ६, १

निवास करता है जहा दौडने वाली, सीगो वाली गायें रहती हैं।[1] महाभारत म भी वासुदेव अपने को गोविन्द कहते हैं।[2] गीता म भी गोविन्द' शब्द मिलता है।[3]

नारायण पौराणिक ब्राह्मण काल म ही परम देवत्व' को प्राप्त हो गय थे। महाभारत काल म सात्वतो ने वासुदेव को परम उपास्य स्वीकार किया। वासुदेव और नारायण इस काल म एक हो गये और उन्हे एक ही देवता माना जाने लगा। आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि 'यहा तक आकर वासुदेव कृष्ण विष्णु और नारायण एक हो चुके थे। पर गोपाल कृष्ण का अब तक इनम कोई सम्बन्ध नही था। इस प्रकार कोई भी देवता का नाम न तो महाभारत के नारायणीय मत म आता है और न पातजल महाभाष्य म। नारायणीय वासुदेव के अवतार का उल्लेख है। इसम कस वध की भी चर्चा है। पर उसम गोपाल कृष्ण का नाम नही है। गोपाल कृष्ण द्वारा मारे गये राक्षसा का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।'[4]

ऊपर कह चुके हैं कि महाभारत काल तक वासुदेव कृष्ण सात्वत तथा भागवत धम मे परमदेव स्वीकार कर लिए गए थे। यह वासुदेव सम्प्रदाय ई० पू० द्वितीय शताब्दी तक स्वतन्त्र अस्तित्व ग्रहण कर चुका था। उत्तरा पथ मे ब्राह्मण धम के कम काण्ड का बोलबाला था तथा दक्षिण पश्चिम म वासुदेव भक्ति का प्रचार था। अत उत्तरा पथ म बौद्ध एव जन धर्मों का प्रचार अधिक था। बौद्ध एव जन धम की बढती हुई ताकता के समक्ष ब्राह्मण धम दुबल पड गया था। अत उसमें नवीनता लाने का प्रयत्न आवश्यक हो गया था। इन्ही प्रयत्नो के कारण गुप्त-काल तक वासुदेव कृष्ण का एक ही माना गया। एक बौद्ध जातक के अनुसार भी वासुदेव का नाम 'कृष्ण' कहा गया है।[5] वैसे गुप्त-काल म 'भागवत धम' की प्रतिष्ठा बन गई तथा शकारि राजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और उसके सभी उत्तरा धिकारी अपने को 'परम भागवत' कहने म गौरव समझत रहे।[6] इस प्रकार गुप्त काल मे विष्णु देवाधिदेव' और कृष्ण उनके पूर्णावतार रूप म गहण किय गये।[7] विद्वान इसी काल को पुराणो की रचना का काल मानत हैं। पुराणकारो

१ ऋग्वेद १, १५४, ६
२ महाभारत—१२, ३४२, ७०
३ गीता १, ३२ तथा २, ६
४ सूर-साहित्य, पृ० ४
५ कावेल जातक, पृ० ५० ५४
६ अलेक्जेण्डर-ब्याड्स आव दी गुप्ता एम्पायर।
७ श्री परशुराम चतुर्वेदी—वैष्णव धम, पृ० ४८

द्वारा कृष्ण को विष्णु का पूर्णावतार तथा राम को अंशावतार मानना तत्कालीन समाज मे वासुदेव कृष्ण की श्रेष्ठता ही सिद्ध करता है।[1] वासुदेव एव कृष्ण के इस एकीकरण के बाद उन्हे विष्णु का आठवाँ अवतार मान लिया गया तथा विष्णु के साथ लक्ष्मी की कल्पना के अनुसार ही कृष्ण के साथ राधा की कल्पना भी करनी पडी। राधा की कल्पना पर भी वैष्णव धर्म का ही हाथ मानना चाहिए। यही से राधा की कल्पना ने भक्ति मता मे अपार रूप ले लिया।

कृष्ण तथा विष्णु की एकता के बीज विष्णु पुराण की 'गोवर्धन कथा' मे भी मिलते हैं। यहा कृष्ण गोप जना म इन्द्र-पूजा' महोत्सव का विरोध करते हैं तथा गोवर्धन पूजा करवाते हैं। गोवर्धन ही गोपो की जीविका का साधन था इन्द्र पूजा नही। साथ ही इन्द्र का पशु चराकर जीवन-यापन करने वाले गोपो से कोई सम्बन्ध नहा था। 'निश्चय ही कथा मे अन्तर्निहित सत्य कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत का उठाया जाना न होकर कृष्ण द्वारा आभीर जाति मे प्रचलित विश्वासो का खण्डन एव उनके वास्तविक धर्म का निरूपण है। कृष्ण इन्द्र युद्ध तथा उसम इन्द्र का पराजित होकर कृष्ण को उपेन्द्र' की उपाधि स विभूषित करना, दो विभिन्न सस्कृतियो के अस्तित्व एव सधि का प्रतीक है। गत गोवर्धन की कथा से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृष्ण प्राचीन आभीर जन के नेता थे, जिनकी जीविका गोपालन पर निर्भर थी। ये जन घरो अथवा नगरो म न रहकर गायो के साथ जगलो एव मैदानों म भ्रमण किया करते थे। कृष्ण का व्रजवासी रूप जो सभी प्राचीन मूर्तियो म अकित हैं, इसी तथ्य का समर्थन करता है। वदिक देवताओ म गोपो की आस्था सूचित करती है कि य जन भारत के आदिवासियो मे स थे।[2]

आभीर जाति के सम्बन्ध पर भी विद्वाना म विवाद है। कुछ विद्वान् आभीरो को विदेशी मानते हैं।[3] डा० भण्डारकर ने भारत म आभीरो का प्रवेश ईसा की प्रथम शती स्वीकार किया है।[4] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उनके मत का खण्डन करते हुए आभीरो का विदेशी होना नही स्वीकार किया है, साथ ही 'गोपाल कृष्ण सम्बन्धी कथाओ का हरिवंश और वायु पुराण मे उपलब्ध' होना भी माना है। उन्होने भागवत पुराण मे कस-वध पूतना तथा अन्य राक्षसो के वधो की भी बात उठायी है। उनके मत से इनमे कसादि कृष्ण एव गोपाल

१ डा० र० श० केलकर—मराठी हिन्दी कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ४६

२ ए० पी० करमरकर—दि रिलिजन्स आव इण्डिया, प० १७२

३ वही, प० १७२

४ डा० भण्डारकर—वष्णविज्म शविज्म, पृ० ३६

कृष्ण को एक ही समझा गया है। इन ग्रन्थो के बनते समय गोपाल कृष्ण की कथा खूब प्रचलित हो गयी होगी।[1] अत डा० भण्डारकर का मत निराधार प्रतीत होता है। 'महाभारत' म आभीरो द्वारा कृष्ण-सहित अर्जुन पर आक्रमण का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] 'ब्रह्मसूत्र म आभीरा को दक्षिणवासी कहा गया है।[3] पदमपुराण' मे विष्णु आभीरा को मथुरा म अपना आठवा अवतार धारण करने के लिए स्वय अपने मुख स कहते हैं।[4] हरिवश विष्णु-पुराण आदि उन्ह यदुवशीय' मानते हैं।

साथ ही ऐसा लगता है कि कृष्ण के अनेक स्वरूपो का समावेश एक कृष्ण म हुआ। प्रारम्भिक पुराणो का अशावतार उत्तर पुराणो मे पूर्णावतार हो गया। उपनिषद महाभारत गीता का कृष्ण गोपाल कृष्ण म मिल गया। हरिवश तथा पुराणों म प्रारम्भ म गोपाल कृष्ण का स्वरूप दिखलाई देता है। दार्शनिक तथा सलाहकार कृष्ण का व्यक्तित्व इसी व्यक्तित्व के साथ समन्वित होता गया।[5]

डा० भण्डारकर ने बाल कृष्ण की भक्ति को विदेशी देन कहा है। उनके मत से सर्वप्रथम पश्चिम की भ्रमणशील जातिया इस सस्कृति को अपने साथ उत्तर-पश्चिमी भारत म लायी। डा० भण्डारकर के अनुसार यह आभीर जाति ही अपने साथ क्राइस्ट वेदना को अपन साथ लायी जिसे भारतीयो ने अपनी भाषा-प्रवृत्ति से कृष्ण बना लिया।[6] आज इस मत पर बडा विवाद है जिसका निर्णय हम बाद म करेंगे। पहिले हम 'आभीर जाति' के विचार सूत्र ही अपनायेंगे।

भारतीय विद्वानो ने अनेक तर्कों से सिद्ध किया है कि आभीर विदेशी नहीं थे। मेगस्थनीज ने (ईसा ४८० पूर्व) मथुरा म आभीरो के राज्य का उल्लेख किया है तथा वासुदेव एव कृष्ण की चर्चा की है। ये मत भी आभीरो की प्राचीनता कृष्ण की सात्वत ऋषियो का गोप-कन्या होना सिद्ध करता है तथा वासुदेव कृष्ण तथा गोपाल कृष्ण दार्शनिक धार्मिक सात्त्विक और सामाजिक धरातल पर एक हो गए। अत इन दोनो का एक मानना ही भारतीय साहित्य की एकता का आधार बन गया है।

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—सूर साहित्य पृ० ४

२ महाभारत—अध्याय ७

३ ब्रह्मसूत्र—१४। ११।१८

४ पद्मपुराण—सृष्टि खण्ड १७।१८

५ श्रीमती वा० राजलक्ष्मी पाण्डे—हरिवश पुराण का सास्कृतिक अध्ययन पृ० ११

६ डा० भण्डारकर—वैष्णविज्म शैविज्म पृ० ३७।३८

कृष्ण और क्राइस्ट का विवाद व्यूह

कुछ विद्वानो न जो भी इस देश म मिलता है उसके प्रेरणा स्रोत पाश्चात्य मे खोजना ही अपना ध्येय बना लिया है तथा वे अनेक अनुमानो को सगठित करने के पश्चात देशी देवता वस्तु या सस्कृति को विदेशी मानने मे ही अपना गौरव समझते है। ऐसे ही विद्वानो न कृष्ण कथा का ईसामसीह की कथा का रूपान्तर माना तथा 'कृष्ण' को 'क्राइस्ट' सिद्ध करन की कोशिश की है। इन विद्वानो म भण्डारकर [1] केनेडी [3] ग्रियसन तथा वेबर के नाम उल्लेख्य हैं। उन्होने सीरिया के ईसाइयो की कथा का 'चाइल्ड गाड विद एन अननोन फादर' अपना आधार बनाया है। जसे कस देवकी की सन्तान का वध कर देता था वसी ही कथाओ का साम्य खोजा है। लेकिन भारतवष म ईसाई धम के आगमन स पूव ही बाल कृष्ण की कथा प्रचलित थी, इसके ठोस प्रमाण मिलते हैं। मन्दीर की शिल्पकला से कृष्ण-लीला का सकेत मिलता है। सीरिया का प्रसिद्ध लखक जैनब मानता है कि आर्मीनिया देश म ईसा पूव तीसरी शताब्दी म कृष्ण कथा प्रचलित थी, मन्दिर मूर्तियाँ थी, जो ईसाइयो ने बाद मे तोड डाली है। अत क्राइस्ट पर कृष्ण का प्रभाव ही पडा होगा यही मानना चाहिए।

एम० एस० रामस्वामी अययर का मत है कि फिलिस्तान को भारतीयो न बसाया, बनाया। उन्होने एक बहुत क्रान्तिकारी मत दुनिया के सामने रखा है कि ईसामसीह तमिल के निवासी हैं। [5] दूसरी ओर कुमार स्वामी 'आभीर' शब्द को द्रविण कहते हैं तथा उसका अथ 'गोपाल' घोषित करते हैं। पर केनेडी न सत्य को भुलाने के लिए इन्हें 'सीथियन' कहा है। इस मत का खण्डन आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी स प्रबलता से किया है। 'कारण यह है कि सारा का सारा अनुमान एकमात्र आभीर शब्द पर अवलम्बित है जिसे किसी एक विद्वान ने द्रविण शब्द बताया है। मगर यह बात न भी हो, तो भी यह कसे माना जा सकता है कि कृष्ण क्राइस्ट के रूप हैं। यह तो मानी हुई बात है कि ईसा का जन्म एशिया के देश और जाति मे हुआ था। क्या यह बात सम्भव नही कि ईसा की जन्म कथा इन्ही सीथियन आभीरो के बाल देवता की जन्म कथा का अनुकरण हो? क्या ससार की अन्य जातियो की धम

---

१ वष्णविज्म शविज्म, पृ० ३८ ३९
२ ज० रा० ए० सोसायटी—'कृष्ण, क्राइस्ट और गूजर' (सन १९०७)
३ ज० रा० ए० सोसायटी—'कृष्णजन्माष्टमी', लेख जि० ३ ४
४ निशिर कुमार मित्र—दि विजन आव इण्डिया, प० १७४
५ एम०एस० रामस्वामी अययर—एपासल जास वष्णव नानम—लीडर—३-२ १९४१ इलाहाबाद।

कथाओ का प्रभाव भारतवर्ष की धार्मिक कथाओ पर ही पडता है ईसाइयो पर नही ? क्या ईसायत के जन्म के पूर्व ये आभीर और इनके बाल देवता थे ही नही ? क्या सामान्य भूल से ईसा तथा कृष्ण के विकास की पृथक बात सोची ही नही जा सकता ?[१] अत कृष्ण को क्राइस्ट का रूप मानना आज निराधार सिद्ध हो गया है।

बाल कृष्ण के साथ माता देवकी का उनके जन्मोत्सव पर पूजा भी क्राइस्ट का प्रभाव घोषित की गई है। वेबर ने इसाई धर्म की कल्पना मडोना एण्ड दि चाइल्ड को देवकी स्तन-पान कल्पना म मिलाना चाहा है।[२] वेबर का मत सर्वथा दूषित है भारतीय साहित्य म मा की गोद मे खेलते, दूध पीते शिशु की कल्पना के अनेक उदाहरण मिलते हैं जो बहुत प्राचीन है। राम ही रामायण मे माँ की गोद म लेटे हुए है।[३] 'छान्दोग्य' मे देवकी पुत्र' तथा पुराणो म इसके अनगिनत उदाहरण मिलते हैं, जिनके गिनाने की आवश्यकता प्रतीत नही होती। इस प्रकार कृष्ण-सम्बन्धी कल्पनाएँ भारतीय आधार पर ही टिकी हैं किसी भी पाश्चात्य विच धारा पर नहा। वासुदव कृष्ण, नारायण, विष्णु की कल्पनाएँ ही गोपाल-कृष्ण त परवर्ती काल म राधा कृष्ण म विकसित हुई तथा भारतीय सम्प्रदायो ने उनक बहुत अधिक विस्तार और विकास किया।

विष्णु की काव्य कथाओ का कृष्ण पर प्रभाव

विष्णु को वेदो म इन्द्र का सहायक पद मिलते हुए भी उन्हें परम तेजस्वी तथा आदित्य रूप म ग्रहण किया गया है। उपनिषद काल म विष्णु का महत्त्व बहुत बढ गया तथा वे इन्द्र से भी महान होकर परमधाम के अधिकारी घोषित किए तथा जगत नियन्ता के रूप म उनकी कल्पना की गई।[४] इन्द्र के समस्त विशेषण पीछे से विष्णु के साथ जोड दिए गए।[५] वैष्णव धर्म ने विष्णु की अपराजयता का शंखनाद किया तथा सभी देवता विष्णु के भण्डे के नीचे एकत्र हो गये। इन्ही विष्णु म 'नारायण' मिल गया। महाभारत म उस प्राचीन देवता कहा गया है। इन्द्र परम्परा विजयी विष्णु ब्रह्म परम्परा म सर्वोत्तम अनना पद को प्राप्त हुए। परवर्ती काल म विष्णु तथा नारायण मिल गए जिसका विवचन हम पाछले पृष्ठो म कर चुके हैं।

---

१ सूर साहित्य—पृ११
२ इण्डियन एण्टीक्वेरी पृ० २१
३ मैकडून—संस्कृति लिटरेचर पृ० ३०७
४ डा० दीनदयाल गुप्त—राधा-वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धात और साहित्य, पृ० ६
५ बी० के० गोस्वामी—भक्ति कल्ट इन एन्शेण्ट इण्डिया पृ० १०१

'विष्णु' के इस विस्तार मे 'शिव' भी समम्न थान हैं। बहुत बडे परिवर्तनो के बाद 'शिव-पद' पर 'विष्णु आसीन हो सके। शिव-पूजक अधिकतर असुर ही हैं तथा शिव के साथ अपार भयानक कल्पनाओ का कोश मिलता है, दूसरी ओर विष्णु के साथ कोमल से कोमल मधुर कल्पना को स्थान मिला। अत अनार्य (शिव) देवता तथा आर्य (विष्णु) देवता का दीर्घकालीन ऐतिहासिक सघर्ष मिलता है। रावण का समस्त देवताओ पर आतक 'शिव विजय' का प्रतीक हैं। शिव तथा विष्णु के मध्य भयकर युद्ध हुआ तथा ब्रह्मा ने मध्यस्थता की तथा दोनो को समान मानकर उनका समन्वय कराया।[1] शिव भक्त परशुराम तथा राम का विरोध भी ऐसा ही है। शकर अर्जुन युद्ध भी यही सकेत करता है। इस प्रकार शिव तथा विष्णु का भी युद्ध बहुत चला तथा वे पिछड गये और 'विष्णु' का प्राधान्य रहा। इस प्रकार 'ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिदेवो का समन्वय भी भारतीय समझौतावादी दृष्टि का ही परिणाम है।

'विष्णु' नारायण' रूप म मिलकर वासुदेव कृष्ण तथा गोपाल कृष्ण म कसे रूपातरित होते गये इसे स्पष्ट करने के लिए प्राचीन साहित्य पर पुन विचार करना पडेगा। क्योकि यह परिवर्तन हजारो वर्षों म हुए हैं तथा उनके पीछे सामाजिक धार्मिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक कारण भी दिये हुए हैं। डा० सत्येन्द्र ने इन कारणो की छानबीन करने के उपरात अपना मत 'शिव भागवत' की चर्चा के बाद स्थिर किया है कि 'नारायण, सात्त्वत, और शवो के सगम से नारायण हरि, वासुदेव, भगवद् पर्यायवाची हो गये और इनसे अभिप्रत था विष्णु। किन्तु वासुदेव सकर्षण का व्यूह तो मानव समूह का व्यूह था, जो नारायण, हरि, विष्णु की भाति देवता मात्र नहीं थे मनुष्यो की भाँति शरीरधारी थे। इधर भारत म आभीरो अथवा अहीरो का प्राधान्य हो उठा। ये आभीर उत्तर स दक्षिण और पूव स पश्चिम तक फले हुए हैं। इनका नाम तमिल भाषा का आभीर है जिसमें 'आ का अथ गाय है। आभीर अथवा अहीर तमिल शब्द आभीर म गोप ग्वाला का पर्याय है। अहीर को ब्रज म ग्वाला भी कहा जाता है। ये गोप ग्वाल आदि कृष्ण के पूजक हैं। कृष्ण इनका नेता था इसी प्रकार कृष्ण के साथ गाय और गोपी का घनिष्ठ सम्बध है। आभीरो के प्राबल्य के समय और वदिक कमकाण्ड अथवा यज्ञ विधान के शथिल्य के समय, उस व्यवस्था के विरोधी मत उन्नत हुए और क्योकि उनकी भूमि प्राय समान थी, अत वे परस्पर मिल गये। इस प्रकार वासुदेव ही कृष्ण हो गये।[2]

---

१ डा० सत्येन्द्र—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक सास्कृतिक अध्ययन पृ० ३७०

२ वही, पृ० ३७६

का मधुर रूप ही मध्ययुगीन साहित्य मे प्रधान तथा वीर रूप गौण रूप से ही मिलता है।

कृष्ण मे प्रेम की काम रूपासक्ति भी विष्णु से ही प्रभावित लगती है। विष्णु तथा कृष्ण के एकीकरण के फलस्वरूप विष्णु की काम लीलाओं का कृष्ण पर आरोपण किया गया सा प्रतीत होता है।[1] वैदिक साहित्य म विष्णु के काम परक उल्लेखो का अभाव नहीं है। वेदो का 'शिपिविष्ट'[2] शब्द भाषा विज्ञान की दृष्टि से 'पुरुष के परिवतनशील लिंग' का अर्थ देता है। यह लिंग विकसित तथा सकुचित होता रहता है।[3] इसी प्रकार श्राद्ध क्रिया म अग्न्यारोपण क्रिया को भी विद्वानो ने लिंग का ही प्रतीक स्वीकार किया है।[4] तत्तिरीय' की एक कथा मे विष्णु भूमाता म प्रवेश करते हैं।[5] यह प्रवेश क्रिया भी काम का सकेत मानी जा सकती है। इसी सहिता मे विष्णु की काम क्रीडा वाची अन्य शब्द भी मिलते हैं।[6] आर० एन० दाण्डेकर के मत मे अथववेद मे वर्णित स्थूल नितम्बिनी देवी से विष्णु का काम सम्बन्ध बहुत स्पष्ट है।[7] 'शाखायन-गृह्य-सूत्र' के अनुसार 'विष्णु योनिकल्पयतु' मन्त्र की ध्वनि से भी वे गभ रक्षक देवता हैं। अथववेद म उन्हे वीय-रक्षक मानकर उनका सम्बन्ध काम क्रियाओ स जोडा गया है।[8] 'विष्णु सहस्त्र नाम में विष्णु पौरुषहीन इन्द्र को वीय-वद्धनकारी औषधि देते हैं जिससे इन्द्र पुन वीयत्व को प्राप्त होते हैं।[9] 'पद्मपुराण' म विष्णु का व्यभिचारी रूप भी मिलता है, जहाँ वे तपस्वी रूप धारण कर जाल धर की पत्नी व दा का सतीत्व हरण करते हैं।[10] 'देवी भागवत' की कथा मे विष्णु शखचूड का रूप धारण करते हैं तथा उसकी पत्नी तुलसी के पातिव्रत धम का नष्ट करत हैं।[11] इस प्रकार विष्णु की इन विशेषताओ को कृष्ण पर आरोपित कर उनके रसिया' रूप का बीज डाला गया प्रतीत होता है।

१ डा० र० श० केलकर—मराठी—हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन पृ० ५२

२ ऋग्वेद ८ ११ ७

३ आर० एन० दाण्डेकर—विष्णु इन वेदाज, प० १०८

४ वही, प० १०८

५ तत्तरीय सहिता ६ २४, २

६ वही—६, २४ २

७ विष्णु इन वेदाज प० १०८

८ वही, पृ० १०६

९ वही।

१० पदमपुराण

११ देवी भागवत स० ८, अ० २४

उपास्य हुआ।[1] यही भाव इस लोक-नायक के रूप म साहित्य क्षेत्र म प्रतिष्ठित हो गया।

अवतारवाद

इस कल्पना ने भगवान को लीलावतारी रूप मे प्रतिष्ठित किया। प्रत्येक युग म लोक धम की स्थापना के लिए आदि शक्ति अवतार धारण करता रहता है। कृष्ण का अवतारी रूप लीला विभु इसी पर आधृत है। ऐतिहासिक कृष्ण अपनी लीला के लिए ही कभी चक्रधारी कभी राजनीतिज्ञ कभी रसिकेश्वर आदि रूपो को ग्रहण करते रहे ह। पुराणो ने अवतारवाद को जिनम विष्णु हरिवंश तथा भागवत-पुराण प्रमुख हैं विशेष महत्त्व से प्रस्तुत किया है। रामायण तथा महाभारत अथवा महाकाव्य नायको के अवतारी विकास न ही कम क्षेत्र क सौंदय का अनन्त एव दिव्य प्रसार उदघाटित किया है। महान पुरुष अथवा महामानव में दिव्यत्व, लोकोत्तरत्व तथा अतिनियत्व की भावना के योग न लीला ब्रह्म का चिन्मय शक्ति का द्वार खोल दिया। महामानव म शील, शक्ति एव सौंदय ने एक नवीन मूर्ति को ज म दिया जिसे भागवत लीला कहा गया। भागवत काल म अवतार वाद क सिद्धा त का भी अधिक व्यापक, वैज्ञानिक और शास्त्रीय वर्णन की प्रवृत्ति लक्षित होती है।'[2] मानवीकरण के विकास क्रम मे पूर्ण पुरुष की कल्पना की गई, जिसक शरीर म अखिल सृष्टि को समाहित किया गया। इस प्रकार कालान्तर म एक ऐसे विराट पुरुष (ऐंथ्रोपोमॅर्फिक मन) की सजना की गई जो ईश्वर की स्थूल अभिव्यक्ति का प्रतीक बना। विराट ब्रह्म, गीता म आदिदेव पुरातन पुरुष कहा गया है।[3] सांख्य दशन ने प्रकृति पुरुष का उद्भव, विकास दिखलाते हुए उसे युगल रूप मे ब्रह्माण्ड नियन्ता बना दिया। भागवत' के अनुसार ब्रह्म म सृष्टि इच्छा उत्पन्न हुई तथा उसने महात्तम रूप पुरुष रूप ले लिया। यही कारण कि है मध्ययुग म विष्णु,नारायण वासुदेव, गोपाल कृष्ण परमब्रह्म हो गय। भागवत की यही परम्परा मध्ययुग के साहित्य म प्राप्त होती है। वैष्णव सम्प्रदायो ने कृष्ण के नायकत्व का विकास अनेक रूपो में किया। विकास क्रम म यही पुराण पुरुष—पुराण प्रतीक बनकर पूर्णावतार बन गया। इसी म अंश कला, लीला व्यूह गुण, रस आदि रूप बन गय। कृष्ण का लीला नायक, युगल नायक तथा रस-नायक के रूप म मध्ययुगीन साहित्य म अत्यन्त विकास हुआ है।

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—सूर साहित्य पृ० २१

२ डा० कपिलदेव शास्त्री—मध्ययुगीन साहित्य मे अवतारवाद, पृ० ३१६

३ गीता—१० १२

सांस्कृतिक नायक कृष्ण की सबसे बड़ी विशेषता रही है कि उनमें व्यक्ति-चेतना, समाज-चेतना, इतिहास, जनश्रुति, जातीय, धार्मिक, सांस्कृतिक चेतना युगानुकूल रूप चेतना, साधना, उपासना सामान्य नायक-नायिका चेतना आदि सब कुछ मिलता रहा तथा व माधुर्य रूप में विस्तार ही प्राप्त करते गये हैं। इसी कारण से कृष्ण में भारतीय गार्हस्थ्य, कृषि देवता तथा सांस्कृतिक जीवन की चरम परिणति है। राम में वैयक्तिक गार्हस्थ्य तथा मर्यादा का रूप खिला तथा कृष्ण में समष्टि रंजनकारी स्वकीया परकीया के प्रेम का अबाध, असीम विस्तार हुआ। साथ ही प्रतिक्रिया स्वरूप, कृष्ण में वैदिक पौरोहित्य भोगवाद की चरम-सीमा पर, युगानुकूल पहुँच गया जिसका रूप जयदेव, विद्यापति तथा सूरदास में स्पष्ट झलक उठा है। कृष्ण ऐसे ही अवतार प्रतीक हैं जो युगान्तरकारी परिवर्तन, परिवर्द्धन की भावना से सम्बद्ध हैं। साथ ही वे सांस्कृतिक वीर ही नहीं प्रतिमान पुरुषोत्तम भी बना दिए गए।

ईश्वर तथा अवतार के अद्‌भुत रहस्य में कृष्ण 'पूर्णावतार' हैं। 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' में भी उनके साक्षात ब्रह्म होने की ध्वनि है। भगवतगीता के 'अज्ञेय पुरुष' में कलाओं का पूर्ण विकास है। उनका अवतारी रूप धरा पर प्रेम के माध्यम से मानवत्व का प्रतिष्ठा के लिए हुआ था। 'भक्त लोग अपना सर्वस्व समझकर, धार्मिक लोग धर्मरक्षक समझकर दार्शनिक गीता के प्रवक्ता समझकर, राजनीतिक नीति के पारगत समझकर, देशहितैषी देशोद्धारक समझकर और गोसेवक गोपाल समझकर समय-समय पर आपका स्मरण करते हैं।'[1] तथा वे परिस्थिति के अनुकूल अवतार धारण करते रहते हैं। साथ ही कृष्ण के साथ 'अवतारवाद' ने अत्यधिक दिव्यता तथा भक्तिवाद को जन्म दिया।

भारत ऐसे धर्मप्राण देश में वैष्णव धर्म अपनी विशेषताओं के लिए प्रख्यात है। यह धर्म समन्वय सामंजस्य के साथ एक विराट् उदारता का प्रतीक है। इस धर्म की उपजी व ग्रन्थ—श्रीमदभागवत गीता—आज भी भारतीय साहित्य में जीवन्त शक्ति का सन्देश दे रहा है। ललित कलाओं पर इस धर्म का प्रभाव गुप्तकाल से ही देखा जा सकता है। शेषशायी विष्णु की मूर्तियाँ उसका प्रमाण हैं। मध्ययुगीन

---

१ डा० बलदेव उपाध्याय—भारतीय दर्शन पृ० ३२९

२ भागवत पुराण—१ ३

३ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—श्रीकृष्णावतार पर वैज्ञानिक दृष्टि, पृ०६३०,३१

चित्रकला पर कृष्ण का एकछत्र राज्य है। उनके बिना मूर्तिकार की कला मानो सौंदर्य की अभिव्यक्ति में अधूरी रह जाती है। अतः यहाँ वह ललित कला का नायकत्व करते हैं। अनुभूत तथा अभिव्यक्ति के सभी चमत्कार उनके रस रूप में व्याप्त हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने वैष्णव धर्म की विजय गाथा पर देशी विदेशी प्रभावों का वर्णन विस्तार से किया है।[1] अतः उनकी पुनरावृत्ति यहाँ अपेक्षित नहीं प्रतीत होती।

कृष्ण के लोकरंजक रूप का इस धर्म में अबाध विस्तार किया गया है। 'मानव की कोमल रागात्मिका वृत्तियों की अभिव्यक्ति में कृष्ण भक्ति सर्वथा सक्षम तथा समर्थ होता है। वैष्णव धर्म के उत्कृष्ट प्रभाव से भारतीय साहित्य सौन्दर्य तथा माधुर्य का उत्स है, जीवन की कोमल तथा ललित भावनाओं का अक्षय स्रोत है, जीवन सरिता को सरस मार्ग पर प्रवाहित करने वाला मानसरोवर है।'[2] भागवत धर्म का उपास्य वासुदेव कृष्ण पान्चरात्र या सात्वत सम्प्रदाय के मेल से अधिक समृद्ध हो गया। पुराणों ने भगवान के प्रति पूर्ण समर्पित होने का आरम्भ किया तथा वह भक्तिधारा में सम्पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया गया।

वैष्णव देवता कृष्ण का नवीन उत्थान दक्षिण भारत के आलवार भक्तों नायकों आचार्यों तथा महन्तों ने किया। प्रसिद्ध है कि बारह आलवार भक्तों ने नवीन जीवन की दृष्टि को ही अपनाया जिससे परम्परा को बल मिला तथा सिद्धान्त का पुष्ट पोषण भी हुआ। इन भक्तों में भगवान तथा जनता के बीच निकट सम्पर्क स्थापित होने का प्रथम प्रयास हुआ और परवर्ती काल में यह ही प्रयास कृष्ण के नायकत्व से सम्बन्धित भक्ति-सम्प्रदायों के साहित्य में प्रकट हुए। रामधारी सिंह दिनकर ने 'गीता और भागवत तथा गीता और रामानुज के बीच की कड़ी' आलवार भक्तों को माना है तथा भक्ति प्रवर्तक ग्रन्थ भागवत पुराण ने मानकर 'तमिल

---

1 यवद्वीप या वल्लभ वैष्णव धर्म की संस्था की महती प्रचारक वह है। यह तत्कार के धर्मभाव वस्तु सम्पन्न मंदिरों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। बालि में अनेक हिन्दू देवताओं की उपासना प्रचलित है जिनमें भगवान् विष्णु की भक्ति विशेष महत्व रखती है।—आ० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय पृ० ७१२८

2 आ० बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय पृ० ३?

3 डॉ० रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय (तीसरा अध्याय), पृ० ?०

प्रबन्धम 'स्वीकार किया है। लेकिन इस मत का दोष यह है कि भागवत पुराण को प्रसिद्ध परम्परा के प्रति लेखक न सजगता नही व्यक्त की है। अत भागवत पुराण को ही कृष्ण भक्ति आन्दोलन का मूल उत्स मानना चाहिए। साथ ही समस्त वैष्णव सम्प्रदायो के परमभूषण कृष्ण' ही विशेष सन्दर्भों म मिलते हैं। रामानुजाचाय की वष्णव-दृष्टि का विस्तार हुआ तथा चार सम्प्रदायो म कृष्ण का स्वरूप भिन्न भिन्न रूप से प्रतिष्ठित हुआ।

भागवत सम्प्रदाय का योग

इस सम्प्रदाय म समन्वय, समपण प्रधान हो गया। कृष्ण के नायकत्व मे इस सम्प्रदाय का अपार योगदान है। वेदो का विष्णु, पुराणो का कृष्ण। इस धम म एकाकार हो गया। विष्णु नारायण वासुदव कृष्ण गोपाल कृष्ण का उपासक भागवत धम लीलाव तारी ब्रह्म म पूणत्व खोजने लगा। अन्य धर्मों का प्रभाव अपने मे समेट कर विष्णु का भक्तिपरक रूप इसम बहुत व्यापक हो गया। भागवत-सम्प्रदाय के सगुण ब्रह्म (नायक) को उस समय बहुत धक्का लगा, जब शकराचाय का निगु ण सिद्धान्त मायावाद के रूप म जीव तथा ब्रह्म के अद्वत का लेकर उपस्थित हुआ। सगुण के स्थान पर निगु ण, निराकार का योग, ज्ञान, तपस्या तथा चिंतन का रुझान मिल गया। कृष्ण का अवतारी रूप छिपन लगा तथा निगु ण ब्रह्म का प्रभाव बढने लगा। ज्ञान योग से भक्ति योग की पराजय हुइ। लेकिन शकर का निगु ण ब्रह्म चिन्तनात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित होन के कारण जन धरातल को स्पश न कर सका। उसमे लीलात्व की कमी होन से जीवन का सारस्य एव सौन्दय नही था। रूप-हीन ब्रह्म, रूप-लोभी मानव को आकृष्ट नहा कर सका। साथ ही लीला-हीन होने पर उसकी सामाजिक तथा वयक्तिक उपयोगिता भी समाप्त होन लगी। ऐसे मे दक्षिण भारत के कृष्ण भक्ति आन्दोलन ने महत्वपूण काय यह किया कि कृष्ण के मधुर तथा मोहनरूप की पुन प्रतिष्ठा ने जन मान को आकृष्ट कर लिया। आलवार भक्तो के साथ कृष्ण का रूप मुखर हो गया तथा सामाजिक एव सास्कृतिक धरातल पर उनकी उत्तरोत्तर बढने लगी। दाशनिक सिद्धान्तवाद न ग्यारहवी सदी म उन्हें नया रूप मिला। वष्णव-नायक कृष्ण क साथ चतु सम्प्रदाय की दृष्टि का समावेश हो गया। इन चतु: सम्प्रदायो मे उनका ब्रह्मत्व स्थापित किया गया। डा० विजयेन्द्र स्नातक के मत से आधुनिक युग म जो चार सम्प्रदाय प्रचलित हैं उन के प्रवत्त क श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनकादि चार दवता माने जाते हैं। ये चारो देवता सम्प्रदाय सस्थापन के निमित्त कभी धराधाम पर अवतीण हुए और उन्होने अपने किसी विशिष्ट सिद्धान्त का प्रतिपादन कर अपने नाम स सम्प्रदाय प्रवर्तित किया। ऐसा कोई प्रमाण न होने पर भा धार्मिक विश्वास म परम्परानुमादित यह बात चली आ रही है अत इसे पुराण

कोटि म स्थान मिलने लगा है।'[1] इन चार सम्प्रदायो म कृष्ण के प्रति विशेष दृष्टिकोण प्रतिपादित हुए हैं। अत उनकी संक्षिप्त चर्चा यहाँ समीचीन है।

श्री सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक रामानुजाचार्य हैं। प्राय रामाश्रयी सम्प्रदाय को भी इसी म समाविष्ट किया जाता है। डा० विजयेन्द्र स्नातक जी ने रामानुजाचार्य के सिद्धान्त तथा रामाश्रयी सम्प्रदाय म पार्थक्य के संकेत दिए हैं साथ ही दोनो का सम्बन्ध 'रामोपासना' से स्थापित किया है।[2] साथ ही दोनो सम्प्रदायो म 'विशिष्टाद्वैत' सिद्धान्त ही मान्य है। जो ब्रह्म संसार के मूल म है, वह चित् अचित् का समन्वित रूप है।[3] ईश्वर ही जगत का कारण भी है तथा कार्य भी। वासुदेव के पाँच रूप इसम द्रष्टव्य हैं। (१) परम ब्रह्म नारायण (२) चतुर्व्यूह जिसम वे वासुदेव, संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूप म प्रकट होते हैं (३) विभव—जिसम अवतारो के रूप म प्रकट होते हैं, (४) अन्तर्यामिन् इसम सबके हृदय म निवास करते हैं तथा योगियो द्वारा देखे जा सकते हैं (५) प्रतिमा (अर्चावतार) रामानुज के अनुसार भक्ति, उपनिषद् म वर्णित उपासना का रूप है।[4] इस सम्प्रदाय म राम की उपासना का जयनाद है। यहाँ कृष्ण एक अवतार मात्र दिखाई देते हैं।

माध्व तथा गौडीय सम्प्रदाय—गौडीय वैष्णव समाज म कृष्ण का स्थान परम उपास्य के रूप म है। वे विष्णु या ब्रह्म के अवतार न होकर स्वयं भगवान हैं—

स्वयं भगवान कृष्ण कृष्ण परतत्त्व।
पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥[5]

वे अनन्त वैकुंठो के अनन्त अवतारो के और अनन्त ब्रह्माण्डो के आधार हैं। यही व्रजेन्द्र व्रजनन्दन हैं। सर्वशक्तिमान सर्वरस पूर्ण, सर्वैश्वर्यशाली तथा सच्चिदानन्द हैं। ये व्रजेन्द्रकुमार व्रज म गोलोक सहित निवास करते हैं। ये कृष्ण ज्ञान-योग, भक्तियोग तथा कर्म योग से वश म हो जाते है। चैतन्यदेव परमात्मा को

---

१ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, पृ० ३७
२ वही, पृ० ४२
३ आ० बलदेव उपाध्याय—भागवत धर्म, पृ० २६१
४ डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ—हिन्दी साहित्य मे कृष्ण, पृ० ३६
५ चैतन्य चर्या० आदिलीला, परि० २, पृ० ११

भी कृष्ण का एक अंश मानते हैं।[1] कृष्ण की अनन्त शक्तियां हैं। इनमें चिच्छक्ति, मायाशक्ति और जीव शक्ति तीन प्रधान हैं। इन्हें ही अन्तरंग, बहिरंग तथा तटस्था शक्ति भी कहा जाता है। स्वयप्रकाश्य कृष्ण द्वापर में प्रकट होते हैं। कृष्ण के प्रभाव विलास सकर्षण, वासुदेव प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। सृजन के लिए पुरुषावतार होता है। गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु एव शिव तीन हैं। साक्षात् रसमय भगवान की सभी लीलाओं में नरलीला सर्वश्रेष्ठ है। वे चारों युगों में शुक्ल, रक्त, कृष्ण और पीतवर्ण धारण कर अवतार लेते हैं।

मध्वाचार्य का द्वैतवाद ब्रह्म को सगुण तथा सविशेष मानता है। जब जीव सूक्ष्म तथा परमात्मा का सेवक है। विष्णु स्वतन्त्र तत्त्व है तथा जीव और जगत् अस्वतन्त्र हैं। भेद को सत्य मानकर मायावाद का नकार दिया। ध्यानयोग के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है।

इस प्रकार दोनों सम्प्रदायों में पार्थक्य बहुत है। हाँ, गौडीय सम्प्रदाय ने कृष्ण के रसेश्वर रूप का विस्तार किया जिसका कृष्ण भक्ति काव्य पर बहुत प्रभाव पड़ा है।

रुद्र सम्प्रदाय—इसी सम्प्रदाय में विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय को स्थान दिया जाता है। डा० दीनदयाल गुप्त ने महाराष्ट्र का भागवत धर्म, जो पीछे से वारकरी सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ, विष्णुस्वामी के मत का ही रूपान्तर स्वीकार किया है।[2] डा० गुप्त ने एक जनश्रुति के आधार पर यह निर्णय दिया कि इन्होंने कृष्ण के बाल रूप की मूर्ति की स्थापना की। नवीं शताब्दी में आविर्भूत यह सम्प्रदाय तेरहवीं सदी में संत नामेश्वर द्वारा स्वरूप को प्राप्त होता है। कृष्ण ही उपास्य नायक हैं किन्तु राधा के स्थान पर रुक्मिणी का महत्त्व है।[3] वैष्णव सहजिया भी इसमें योगदान करते रहे हैं।

विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में ईश्वर का प्रधान अवतार नृसिंह है। इन का कोई विशिष्ट दर्शन नहीं है। उसका दार्शनिक आधार भी वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद पर आधृत है। अतः वल्लभ सम्प्रदाय में इस पर विस्तार से विचार करेंगे।

शुद्धाद्वैतवाद तथा वल्लभाचार्य—इन्होंने विजयनगर में राजा कृष्णदेव राय की सभा में नास्तिकों को परास्त किया तथा शंकर के मायावाद का खण्डन किया। अपने सिद्धान्त के निर्माण में इन्होंने सगुणवाद की प्रतिष्ठा की है। 'अणु भाष्य'

---

१ डा० रत्नकुमारी—१६वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, पृ० १६०

२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ४२

३ एस० बी० दाण्डेकर—वारकरी सम्प्रदाय का इतिहास, पृ० २१

पूर्व मीमांसा भाष्य, तत्वदीप निबंध, सुबोधिनी पाण्टपग्रन्थ आदि ग्रन्थों के द्वारा अपने मत की पुष्टि की है। इन्होंने शंकर के 'अद्वैत' से अपने सिद्धान्त की भिन्नता दिखाने के लिए ही 'अद्वैत' से पूर्व 'शुद्ध' शब्द का प्रयोग किया है। अद्वैत में माया से युक्त ब्रह्म जगत का कारण है किन्तु शुद्धाद्वैत में ब्रह्म माया से रहित जगत् का कारण है।

सच्चिदानन्दमय शरीरधारी कृष्ण ही पूर्ण परम ब्रह्म है। अनन्त शक्तियों से सब की आत्मा में रमण करते हैं, अतः वे आत्माराम हैं।[1] पुरुषोत्तम रूप में वे अगणितानन्द तथा परमानन्द रूप हैं। अनन्त शक्तियों से अलंकृत वे 'वैकुण्ठ' में भक्तों के हितार्थ नाना लीला करते हैं। लीला के लिए उनकी समग्र परिवार तथा लीला सेवक अवतीर्ण होते हैं। निर्गुण सच्चिदानन्द ब्रह्म ही अविकृत भाव से जगत् रूप में परिणत हो जाता है। इसे ही 'अविकृत परिणामवाद' का नाम दिया गया है। इन्होंने जगत को सत्य तथा मर्यादा संसार को असत्य माना है। आचार्य ने पुष्टि-मार्ग, प्रवाह मार्ग तथा मर्यादा मार्ग की चर्चा की है जिसमें भक्ति मार्ग के लिए पुष्टि-मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है। लीला पुरुष अपनी लीला के हेतु इस सृष्टि का सृजन करता है। 'अनुग्रह' भी उसकी लीला का रूप ही है। सभी को पूर्ण निष्ठा के साथ कृष्ण का भजन करना चाहिए।

> सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः
> स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यः क्वापि कदाचन ॥[2]

भक्त को तनुजा, वित्तजा तथा मानसी सेवा का विधान है। प्रेम की तीन अवस्था—स्नेह, आसक्ति तथा व्यसन को दृढ़ता के लिए महत्त्व दिया है।

इन्होंने 'बालगोपाल कृष्ण' की पूजा को अक्षुण्ण भाव से अपनाया तथा अपने शिष्यों में उसका प्रसार किया। पीछे से विट्ठलनाथ जी ने युगल किशोर उपासना का विधान भी चला दिया। नवधा भक्ति के सभी तत्त्व कृष्ण को लेकर प्रतिष्ठित किए गए। इस प्रकार उस सिद्धान्त ने कृष्ण को लीला पुरुष या लीला नायक के रूप में अमर कर दिया। साहित्य में इसी रूप का बोलबाला रहा है। नायक कृष्ण में 'बाल कृष्ण' की प्रतिष्ठा हुई तथा आभीरों का नाद देवता यहां पर रूप-परिवर्तन के साथ 'बाल कृष्ण' के रूप में उपास्य बन गया। अष्टछाप के कवियों ने तथा विशेष रूप से सूरदास ने बाल रूप के लालित्य को शाश्वत रूप प्रदान कर दिया।

---

१ आ० बलदेव उपाध्याय—भागवत सम्प्रदाय, पृ० ३७८
२ चतुःश्लोकी—श्लोक १ (भागवत सम्प्रदाय से उद्धृत), पृ० ३८६

धीरे धीरे कृष्ण का दार्शनिक रूप विलुप्त हो गया तथा लीलाधर रूप ही प्रधान हो गया। अत वल्लभाचार्य ने ही लीला नायक के रूप में कृष्ण की सच्ची प्रतिष्ठा की है। कृष्ण के इस रूप म लोक हृदय डूब गया भक्त को परम आराध्य रसिको का रसेश्वर, सामाजिका का सौन्दर्य देव तथा गोपियो का लीला-ब्रह्म सब कुछ इनम प्राप्त हो गया।

निम्बार्क-सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के संस्थापक निम्बार्काचार्य हैं। उनके समय के विषय मे विद्वान कुछ भी निश्चय नही कर सके है। निम्बार्क जीव तथा ब्रह्म के सम्बन्ध को लेकर द्वैताद्वैत के प्रतिपादक हैं। इनके मत से परमार्थ एक भी है तथा अनेक भी, लेकिन ब्रह्म रूप म एक है। इन्होंने सगुण सवन, साकार ब्रह्म की कल्पना की है। वह प्राकृत दोषो से पूर्ण उन्मुक्त तथा कल्याण-गुणो का अक्षय कोश है। परमात्मा की ही परब्रह्म, नारायण पुरुषोत्तम, पूर्ण पुरुष तथा भगवान कृष्ण आदि सज्ञाएँ हैं। भक्तो के लिए भगवान के पदारविन्दो की अर्चना के अतिरिक्त कोई साधन ही नही है। कृष्ण ही पूर्णब्रह्म है, जिनकी वन्दना ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव करते हैं। उनकी अपरम्पार शक्तियां हैं। भक्ति से ही कृष्ण प्राप्त होते हैं—जिनमे शान्त, सख्य, दास्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल रूपो का विधान है। सर्वेश्वर कृष्ण है तथा राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति है। उनका स्वरूप कृष्ण के अनुकूल ही है। विष्णु तथा लक्ष्मी की कल्पना ही इस सम्प्रदाय मे कृष्ण तथा राधा की कल्पना के रूप मे प्राप्त होती है। यह सिद्धान्त पूर्ण प्रेम पर आधारित अनुरागात्मिका परा भक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप है।

अन्य सम्प्रदाय—इसके अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायो म भी कृष्ण को स्थान मिला है। सखी सम्प्रदाय हरिदासी सम्प्रदाय आदि। राधा-वल्लभ सम्प्रदाय म राधा का प्राधान्य है लेकिन कृष्ण का प्रेम रूप वहाँ भी विद्यमान है। यहा कृष्ण के अन्य सम्प्रदायो को इतना ही विवेचन समीचीन लगा अत अन्य सम्प्रदायो का सकेत मात्र किया गया है। इस प्रकार कृष्ण के सम्प्रदाय-वाद की दृष्टि से चार रूप स्पष्ट है—

(१) कृष्ण के पूर्ण ब्रह्मत्व की स्थापना तथा भक्ति रूप म असीम अभिव्यक्ति।

(२) कृष्ण का लीला विहारी रसिकेश्वर रूप की स्थापना।

(३) धर्म रक्षक की स्थापना तथा लीलाओ मे वीर धर्म नायक का रूप।

(४) कृष्ण के साथ राधा की अटूट कल्पना—निम्बार्क मत का प्रभाव। यहाँ कृष्ण का रस-रूप राधा के बिना फीका है।

सम्प्रदाय-वाद में कृष्ण का स्वरूप विकास

कृष्ण से सम्बंधित मूल सम्प्रदायों के संक्षिप्त परिचय के पश्चात उनका सम्प्रदायों में स्वरूप विकास देखना यहाँ नितान्त अपेक्षित है। श्रुतियों का परम तत्व वल्लभ सम्प्रदाय में परब्रह्म माना गया है। बैकुंठवासी होने पर वे पुरुषोत्तम तथा लोक के प्रकट रूप में श्रीकृष्ण हैं। पुराणों का परमात्मा यहाँ पुष्टिमार्ग का रसरूप कृष्ण है। इस प्रकार आनन्द रूप कृष्ण ही यहाँ सत्ता है। कुरुक्षेत्र में प्रेरणा देने वाले, दुष्टों का नाश करने वाले कृष्ण यहाँ धर्म वीर-नायक हैं तथा बाल रूप में क्रीडा करने वाले अवतारी नन्द यशोदा के लाडले माखन चोर, ग्वाले गोपी वल्लभ रसिया कृष्ण यहाँ पूर्ण रसावतार नायक हैं। इस नायक की आल्हादिनी शक्ति ही राधा है।

निम्बार्क-सम्प्रदाय में भी रस रूप कृष्ण ही का रूप है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध उन्हीं के स्वरूप अन्य रूप हैं। उनकी नवधा-भक्ति का यहाँ प्रसार अधिक है। कृष्ण की अष्टयामी मानसी सेवा को यहाँ प्रधानता मिली है। चैतन्य तथा गौडीय सम्प्रदायों में भी कृष्ण सर्वाश्रय तथा सर्वेश्वर हैं। वे समस्त मायताओं के प्राण वल्लभ हैं। राधा पूर्ण शक्ति तथा कृष्ण पूर्ण शक्तिमान। यहाँ प्रकृति-पुरुष उनकी राधा कृष्ण में साम्य दर्शन से युक्त कल्पना प्रधान है। कृष्ण का चरम प्रेमी रूप परकीय भाव में व्यक्त है तथा कृष्ण ही अंतिम साधना के पूर्ण तत्व हैं। हरिदासी सम्प्रदाय के कृष्ण माधुर्य व पावन के माधुर्य भाव में विभोर हैं तथा उन्हें बाललीला मथुरा तथा द्वारिका से कोई प्रयोजन नहीं है।

राधा-वल्लभ-सम्प्रदाय के कृष्ण राधा के कारण स्मरणीय हैं। राधा, सम्प्रदाय की इष्ट हैं। ये कृष्ण प्रेमस्वरूपा राधा में इतने निमग्न हैं कि विशुद्ध प्रेम देव का स्वरूप उपासक की भाँति लेकर रह गये हैं। विहारी कृष्ण राधा को मानने में मस्त रहता है तथा काम-भोग ही उनका रति का धर्मधाम है। धर्म धामी सम्प्रदाय, सखी आदि के ललित सम्प्रदाय तथा मीरा-सम्प्रदाय में कृष्ण की चर्चा भी डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने उनके स्वरूप के लिए अपेक्षित मानी है।[1] किन्तु यह कृष्ण का स्वरूप भी परम्परा का पुनरावर्तन है इसमें कुछ भी नया नहीं जोड़ा गया है। वल्लभ-सम्प्रदाय के परब्रह्म कृष्ण रस रूप कृष्ण, भक्ति के आलम्बन कृष्ण, गोपी वल्लभ कृष्ण ही अनुकरण में पुनरावर्तित प्रतीत होते हैं। निम्बार्क के राधा-कृष्ण तथा राधा-वल्लभ कृष्ण के अवतारी स्वरूपों का दर्शन है तथा कृष्ण का रसात्मक

1. हिन्दी-साहित्य में कृष्ण पृ० १०० ११०

स्वरूप यहा पूर्णता से अभिव्यक्त हुआ है। रामेश्वर कृष्ण की कल्पना भी आनन्द के परमदेव का ही रूप मात्र है। नित्य विहारी, भक्त कामनापूरक, सर्वेश्वर कृष्ण ही यहा सत्ता है। पुराण पुरुष कृष्ण का दार्शनिक ब्रह्मत्व, यहा लीला रूप म व्यक्त है।

भारतीय ललित कलाओं में कृष्ण

मध्ययुग से पूर्व ही भारतीय ललित-कलाओ मे कृष्ण का अकन उनके लोक व्यापी नायकत्व का प्रमाण देता है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि ईसा की पहली-दूसरी शताब्दियो म शक और कुषाणवशी राजाओ का राज्य मथुरा म स्थापित हुआ, पर उससे भारतीय कला अभिभूत होने के स्थान पर और भी अधिक तेजस्वी बनकर प्रकट हुई। भारतीय कला के इस प्रभावशाली अस्तित्व के कारण ही आगन्तुक शक यवन संस्कृति और कला की गुणमयी विशेषताए उसम पच गयी। ईरानी यूनानी भारतीय—इन तीनो संस्कृतियो और कलाओ के मिलन की पहली त्रिवेणी मथुरा की समन्वय प्रधान भूमि मे प्रकट हुई।[1] साथ ही ब्राह्मण-धर्म, बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म का भी समन्वय प्रधान रूप वहाँ पनपता र। प्रथम अथवा दूसरी सदी के एक मूर्तिफलक म वासुदेव कृष्ण को सूप म रख कर यमुना पार करते हुए चित्रित हैं। ग्वालियर के विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में भी कृष्ण जीवन के आरम्भिक भाग चित्रित है।[2] भाण्डीर नामक स्थान मे प्राप्त चित्रो म कालिय मदन, गोवर्धन धारण तथा धेनुक-वध के चित्र मिले हैं। खजुराहो स्थित मन्दिर मे कृष्ण कथा के अनेक चित्र अकित है।[3] ग्यारहवीं बारहवी शताब्दी मे बने कम्बोडियो का प्रसिद्ध अगकोर मन्दिर अोकारवाद मे महाभारत युद्ध के वीर-नेता कृष्ण के अनेक लीला दृश्य अकित हैं। इस प्रकार चित्रकला तथा मूर्तिकला म इनका प्राचीन लोकव्यापी प्रसार मिलता है।

भारतीय सगीतकला म भी कृष्ण का अपार योग है। उनके इस नायक प्रभाव के कारण ही गवया यदि रागो का अभ्यास करता है तो कृष्ण ही उसकी वाणी म आते हैं। शायद ही कोई अभागा गायक होगा जिसने कृष्ण के पद न गाये हो। होली के गीता म वे अमर रसिया हैं। स्त्रियो की जीभ पर गीत आते ही उनका नाम आता है। आलवार गायक भक्तों की परम्परा के साथ देखें या जयदेव का 'गीत गोविन्द परम्परा म विद्यापति के पद हो अथवा अष्टछाप के कवियो के

---

१ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ७८३

२ आर्कलाजिकल सर्वे रिपोर्ट—१९३१, पृ० १०२४

३ ललित कला, सख्या ७, पृ० ८२

पद, मीरा के तन्मय गान हों या रसखान के सवैया कृष्ण वहाँ मधुर से मधुर हैं।

काव्य-कला में कृष्ण

काव्य ललित-कलाओं का सर्वाधिक सूक्ष्म रूप प्रस्तुत करता है। काव्य में कृष्ण के रूप अपार हैं। संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं के साहित्य में उन पर पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। संस्कृत ने कृष्ण कथा को नाटकों, महाकाव्यों तथा मुक्तक श्लोकों के माध्यम से बहुत मधुर रूप दिया। प्राकृत कथाओं ने उनके रस-नायक रूप का जम कर प्रसार किया। अपभ्रंश में उनका रूप जन-सुलभ होता हुआ भी प्रादेशिकता में चला गया। तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी तक उन पर बहुत लिखा जा चुका था। मराठी, गुजराती, बंगला ब्रजबुलि में वे सभी कवियों के परम गान बन गए थे। हेमचन्द, जयवल्लभ तथा जयदेव ने नवीन लालित्य प्रदान किया तथा कृष्ण का 'सप्तशती' रूप भी नवीन जीवन बोध में ढल गया। उनके नायकत्व में जीवन का माधुर्य पक्ष समाहित हो गया तथा लोक-परम्परा का इतना उदात्त प्रेम नायक कोई भी भारतीय साहित्य में वैसा दृष्टिगोचर नहीं हुआ।

सर्वप्रथम अश्वघोष ने प्रथम शताब्दी ई० में 'बुद्धचरित' नामक अपने काव्य में कृष्ण-लीला पर संकेत दिए हैं। लोक में उनकी गाथाएं प्रचलित रही होंगी और वे प्रेमी-नायक के रूप में लोक-ख्याति प्राप्त कर चुके होंगे। प्रथम शताब्दी ई० में मुक्तक गाहाकारों ने अपनी दृष्टि इधर भी लोक-श्रुतियों पर केन्द्रित की तथा हालसातवाहन ने गाहासप्तसई नाम से प्राकृत गाथाओं को संग्रहीत किया। इन मुक्तक गाथाओं में शृंगार का वैभवमुक्त रूप भी मिलता है। गोपियों के समक्ष यशोदा के कहने पर कि कृष्ण अब भी बालक हैं, गोपियाँ व्यंग्यपरक हास्य में मग्न होती हैं।[२] यहां कृष्ण की उन्मत्त प्रेमकला के शत शत सन्दर्भ प्राप्त हैं। इनमें वे पूर्ण शृंगारी नायक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। यहां उनके साथ भक्ति या आध्यात्मिकता की चर्चा नहीं है शुद्ध पार्थिव धरातल पर रासलीला का विधान है।

दूसरी ओर आलवार भक्तों में कृष्ण का नायकत्व शृंगार की पार्थिव भूमि पर न होकर दिव्यत्व की अपार्थिव भूमि पर किया है। इन भक्तों का समय

१ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ७६६

२ बुद्ध चरित—१ ५

३ गाहासत्तसई—२-१२

जयदेव का गीति गोविन्द—कृष्ण शृंगारी नायक

बारहवीं शताब्दी में निम्बार्क के शिष्य पीयूषवर्षी जयदेव ने अपने हृदय के उद्दाम शृंगार का कृष्ण राधा के आश्रय से व्यक्त किया। इन्होंने कृष्ण का स्वरूप ही बदल दिया। भागवत का अलौकिक कृष्ण 'गीत गोविन्द' में लौकिक नायक बन गया। जयदेव का शृंगारी दृष्टिकोण कृष्ण को रसेश्वर तथा रसिया बना देता है। हाल की गाथा सप्तशती में राधा कृष्ण का प्रेम मिलता है। गोपी कृष्ण तथा शिव-पार्वती के मिथुन अभिधान पर भी यहाँ यत्र-तत्र मिलते हैं। वैष्णव धर्म में स्त्रीत्व को महत्त्व मिला है तथा एक आठ पांचरात्र संहिताओं में तान्त्रिक प्रभाव झलकने लगा था। धीरे-धीरे कृष्ण का लीला-पुरुष रूप बन गया। साथ ही प्रेम कहानियाँ भी गोपियों के नाम से जोड़ी गई। सातवीं तथा नवीं सदी में विरचित भागवत पुराण में कृष्ण का भक्तिपरक रूप प्रतिपादित है। कृष्ण तथा गोपियों के आधार पर वैष्णव सम्प्रदाय में देवदासी प्रथा चल पड़ी तथा ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी में यह शृंगार लीला का रूप प्रबल बन गया। 'धोयी' ने अपने 'पवनदूत' में कृष्ण मन्दिर की देवदासियों का वर्णन इसी आधार पर किया है। समसामयिक लेखों, शिलालेखों में भी सैकड़ों देवदासियों के शारीरिक सौंदर्य का मुक्त वर्णन है।[2] उनके मत से भी यह देवदासी प्रथा तान्त्रिक प्रभाव का खुला प्रकाश है। यह युग राजनैतिक तथा सांस्कृतिक विघटन का युग था। धार्मिकता में काम भोग घुस गया था तथा वामाचार का प्रभाव बहुत था। तन्त्रकारी नारी के भोग को उच्छृंखल रूप से अपनाने लगे थे। ऐसे समय में रामानुज मध्वाचार्य तथा निम्बार्क ने भक्ति भाव का महत्त्व स्थापित किया। इन परिस्थितियों में भक्ति तथा शृंगार का मेल अपेक्षित ही था। जयदेव में इन्हीं परिस्थितियों के कारण कृष्ण में शृंगारी रूप प्रधान तथा भक्ति रूप अप्रधान गौण बन गया है। उन्होंने हरि स्मरण के साथ विलास कला का कौतूहल से सुनने की चर्चा अपने श्लोक में की है—

> यदि हरि स्मरणे सरस मनो यदि विलास कलास कुतूहलम्।
> मधुरकोमलकान्त पदावली शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।[3]

इस प्रकार भक्ति तथा शृंगार का कृष्ण में योग समसामयिक परिवेश का परिणाम था। उन्होंने कृष्ण को भगवदलीला गान की परम्परा में भी अपना लिया

---

१ श्री हरिदत्त वेदालंकार—भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० १००
२ एन० सी० मजूमदार—इन्सक्रिप्शन्स आफ बंगाल, पृ० ३५
३ गीत-गोविन्द १ ३

तथा अपने युगानुकूल शृंगार परम्परा म भी रंग दिया। गोपाल कृष्ण म सम्बंधित कथाओ की चर्चा हम 'हरिवंश पुराण' के सन्दभ म कर चुके हैं। यह पुराण भी अपार सौन्दय से युक्त तथा कृष्ण तथा गोपियो से सम्बंधित है। इस म पूतना-वध तथा शकटासुरवध मे उनका दिव्यत्व प्रकट हैं। कृष्ण म बाल लीला का समावेश आभीरो के देवता का दान रूप है। भागवत म महाभारत मे पुराण काल तक के सभी रूप रक्षित हो गये और व पूर्णावतार मान लिए गये—

एतचाश कला पुंस कृष्णस्तु भगवान स्वयम।[1]

भागवत के रास-वर्णन तत्व जयदेव म प्रकट हुए है। श्रीमदभागवत का रास शरद् रास है तथा गीत गोविन्द म 'विहरति हरिरिह सरस वसन्त'[2] के आधार पर वसन्त रास है। कृष्ण की वेणु से राग रंजित गोपिया को पातिव्रत धर्म का उपदेश भागवत म है फिर भी, लेकिन यहा कृष्ण रमण करने म तल्लीन हैं, धर्म की चर्चा भी नही करते हैं। गीत गोविन्द का रासासक्त कृष्ण अभिसारी कृष्ण रतिगमन करने के पश्चात भी राधा से पुन प्रार्थना करता है। भागवत की नामरहित विशिष्ट गोपी ही यहाँ शायद राधा बन गई है। भागवत के रास म सभी गोपियाँ भाग लेती हैं, लेकिन गीत-गोविन्द के कृष्ण एकान्त म राधा के ही साथ प्रेमाभिसार रत हैं। जयदेव नाम स्मरण मे बहाने कृष्ण को अलौकिक तत्व देते अवश्य रहे हैं किन्तु उद्दाम, अपार सुरत की क्रीडाओ की कल्लोल उन्हें कामी, भोगी, शृंगारी नायक बना देती है। योगेश्वर यहा पूर्ण भोगेश्वर बन गया है। इस प्रकार भागवत का दिव्य लीला पुरुष यहा पूर्ण विलासी नायक बन कर लौकिक धरातल पर स्थापित है तथा वे लौकिक प्रेमी नायक हैं।

विद्यापति के कृष्ण

गीत-गोविन्द के शृंगारी नायक कृष्ण का पूर्ण प्रभाव विद्यापति के कृष्ण पर है। जयदेव की यह रचना मध्यकालीन मनोवृत्ति के इतनी अनुकूल जची कि वह न केवल वैष्णव भक्त कवियो के लिए अपितु शुद्ध शृंगार की दृष्टि से काव्य रचना म प्रवृत्त होने वालो के लिए भी आदर्श बन गई।[3] विद्यापति दरबारी कवि थे, राजा रानी का मनोविनोद करना उनका प्रधान ध्येय था। डा० रामकुमार वर्मा ने विद्यापति के सम्पूर्ण काव्य का मन्थन करते हुए यह स्पष्ट घोषणा की है कि उनका भक्त रूप उनकी वासनात्मक कल्पना म छिप गया है। उन के राधा-कृष्ण साधारण स्त्री-पुरुष हैं, उनमे शारीरिक भूख उद्दाम रूप स है। विद्यापति के इस बाह्य ससार म भगवत भजन कहाँ इस वयःसंधि म ईश्वर स संधि कहाँ, सद्य

१ श्रीमदभागवत—१ ३ २८।
२ गीत गोविन्द—१
३ डा० शिवसिंह—विद्यापति ठाकुर पृ० १९

स्नाता म ईश्वर से नाता कहाँ, और अभिसार म भक्ति का सार कहाँ। विद्यापति का संसार ही दूसरा है। वहाँ मदव कोकिलाएं ही कूजन करता हैं, फूल खिला करते हैं, पर उनम काटे नही होत। राधा रात भर जागा करती हैं। उनक नत्रो मे ही रात समा जाती है। शरीर म सौन्दय के सिवाय कुछ भी नही है। पथ हैं, उसम भी गुलाब है, शय्या है, उसमे भी गुलाब हैं, शरीर है, उसम भी गुलाब। सारा संसार ही गुलाबमय है। उनके संसार म फूल फूलते हैं, काटो का अस्तित्व ही नही है। यौवन शरीर के आनन्द ही उनके आनन्द हैं।'[1] इस सौन्दय लोक म रहने के कारण ही उन्हें कवि अभिनव जयदेव तथा अभिनवजयन्त भी कहा जाता है। उन्होंने अपनी भावुकता को साहित्यशास्त्र के ढाचे म ढाल कर राधा-कृष्ण के चरित्र को नायक-नायिका भेद का अनुकरणीय जाल बना दिया। विद्यापति के राधा कृष्ण रचना के राधा और कृष्ण न रहकर काम शास्त्र मे निपुण नायिका और नायक हो गये।[2] इस प्रकार कृष्ण मूर्तिमान यौवन तथा राधा मूर्तिवती वासना युक्त नायिका है। डा० शिवप्रसाद ने इस कृष्ण को 'महाप्राणवान कृष्ण' कहा है।[3] चरणो की चपल गति सद्य स्नात, यौवनोन्मत्त राधा को देख कर कृष्ण अधीर हो जाते हैं। उनके प्राचीन सभी रूप वहाँ लुप्त हो गए हैं तथा व दरबारी राजाओ की भाँति घोर विलासी, कामी तथा रस लोलुप हैं। उनम ब्रह्मत्व नहीं कामत्व ही कामत्व है। विद्यापति ने कृष्ण को एकागी रूप दिया, उनका पौरुष्पत्व इनके कृष्ण म नही है। भारतीय साधना ने शील, शक्ति एव सौन्दय तीनो की समन्वित दृष्टि को नायक म पाने का सदैव प्रयास किया है। लेकिन इस दृष्टि से हम विद्यापति क कृष्ण हताश ही करते हैं, उनम केवल 'सौन्दय' का अति विस्तार है शेष रूप नही मिलते हैं।

सूर के कृष्ण

सूर के कृष्ण, एक अत्यन्त समृद्ध भक्ति धारा क परिणाम है। उन पर उपनिषदो, पुराणो तथा लोक प्रचलित पद्धतियो की छाप अत्यधिक है। उनक नाय म महाभारत के कृष्ण वासुदेव कृष्ण, गोपाल कृष्ण, हरि नारायण विष्णु, राम सभी कुछ मिल कर कृष्णमय हो गया है। वल्लभाचाय भक्ति-परम्परा के गण्यमान्य नेता थे। उन्होने कृष्ण की उपासना का विधान भक्तो म प्रचारित किया तथा 'पुष्टि

---

१ डा० रामकुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ५०६

२ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २७०

३ डा० शिवप्रसाद सिंह—विद्यापति, पृ० ८६

मार्ग के द्वारा उसका प्रसार किया। सूर ने इस सम्प्रदाय की दृष्टि विशेष को भी अपने कृष्ण में पल्लवित किया है। विनय के पदो में वे वल्लभ मत से थोडे मुक्त रह, वहाँ उनका आत्म निवेदन शक्ति न दास रूप से कृष्ण की आराधना को अपनाया है। जैसे भागवतकार ने कृष्ण के परम पुरुषत्व नारायणत्व तथा ब्रह्मत्व का प्रतिपादन किया है वैसे ही सूर ने उन्हें परम पुरुष, अनन्त अखण्ड, अविनाशी, लीला विहारी रसिकेश्वर, दीनदयाल सुरनायक जनसुखदायक, घटघटवासी, अज अद्वैत, अन्तर्यामी, सर्वसौन्दर्यशाली, परम उद्धारक, विष्णु, राम, हरि आदि सब कुछ माना है। वे यशोदा की गोदी में बालक, ग्वालिनो मे माखन चोर, चित्त चोर, रास लीला मे रसिक शिरोमणि, राधा तथा अन्य गोपियो मे रति नायक तथा आनन्द विहारी, कुंजविहारी हैं। पुष्टि मार्ग के अनुकूल वे नित्य विहारी परमपुरुष हैं। सूर ने जयदेव तथा विद्यापति की भाँति कृष्ण को शृंगारी नायक नहीं बनाया, उन्हें लोक-लीला पुरुष का रूप दिया है।

लोक लीलापुरुष-जननायक

सूर के कृष्ण अवतारी लीलावपुधारी, भक्तउद्धारक असुरसंहारक तथा लोक-नेता हैं। वे गोवर्द्धन उठाकर इन्द्र को पराजित करते हैं, चक्र सुदर्शन से सभी का वध करते हैं पापियो का प्राणदण्ड देते हुए अघाते नहीं हैं। फिर भी पूर्ण पुरुष बाल देव गोपाल कृष्ण ही उनके सर्वस्व है। वे अनेक प्रकार के वर्णन करते हैं भक्त का प्रलाप अलापते हैं, लेकिन अपने इष्टदेव का विराट तथा मधुर दिव्यता को कभी भी दृष्टि से ओझल नहीं होने देते हैं। सूर के लीला धाम में-गोलोक मे कृष्ण के अतिरिक्त अन्य पुरुष का अस्तित्व ही नहीं है। सूर के कृष्ण सम्प्रदायो के उपास्य इष्ट हैं प्रेम के अपार सागर तथा सौन्दर्य के सर्वस्व हैं। सूर ने कृष्ण को पूर्ण मानव तथा पूर्व-ब्रह्म दोनो ही रूपो में देखा है।

डा० हरवंशलाल शर्मा ने ठीक कहा है कि 'परन्तु सूरदास जी का मुख्य उद्देश्य भागवतकार की भाँति कृष्ण के चरित्र की अलौकिकता चित्रित करना नहीं है। उन्होंने तो कृष्ण के मानव रूप को ही प्रधानता दी है। यही कारण है कि सूर के चित्रण में कृष्ण के अति प्राकृत और लोकातीत तथा मानवीय रूप की दो धाराएँ समानान्तर रूप से बहती हुई चलती हैं'[1] कृष्ण में शृंगार, भक्ति तथा माधुर्य की घनिष्ठता है तथा वे हजारो नायिकाओं से एक एक रात विहार करने के कारण जार-नायक की ओर भी झुके हैं। फिर सूर का काव्य या नायक भागवत का अनुवाद या नकल

---

१ सूर और उनका साहित्य, पृ० १६३

नही है। सूर ने उसमे कथौचित्य का ध्यान म रखकर परिवर्तन करा लिए हैं। अनेक गोपियो से उनका प्रेम होना भी उनके प्रेम का सामाजीकरण ही है। कोई भी भक्त जब कभी उन्हें हृदय से पुकारता है, वे प्रकट होते हैं तथा उद्धारक रूप म आते हैं। सूर ने कृष्ण के बाल रूप को बाल-सौदर्य की स्निग्धता गोपी भाव के प्रेम की अपार रम्यता तथा रक्षक रूप को भौमासुर सकटासुर-तेजस्विता से युक्त किया है। 'जो कृष्ण एक दिन चोली-बन्द तोडते हैं, वे ही दूसरे दिन कस का वध भी करते हैं। अपने समय के सबसे बडे पराक्रमी और नृशस नृपति का नाश क्या साधारण काम था ? यही नही जो कृष्ण आज गोपियो के साथ विनोदपूर्ण क्रीडाए कर रहे हैं वे ही कल वहाँ चले जायेंगे जहाँ से निकट होते हुए भी वे उनके पास कभी नही आयेंगे।'[१] सूर के कृष्ण का जन्म दिव्य आचरण अलौकिक अवतरित होने पर मायापति हैं, पर भक्तो को माया से मुक्त करते हैं। सूर की प्रतिज्ञा कृष्ण के चरित्र को अनुकरणीय बनाने की नही थी उनकी सच्ची प्रतिज्ञा तो निर्गुण ब्रह्म के निरवलम्ब रूप को छोड कर सगुण साकार के प्रति पूर्ण समर्पित होने की थी। श्रीकृष्ण न केवल काव्य के प्रधान नायक हैं, वरन कवि के इष्टदेव भी। उनके स्वभाव की यह विशेषता है कि उन्हे जो जिस भाव से भजता है, उसे वे उसी भाव से प्राप्त होते है फलत भक्ति भाव की विविधता के अनुरूप उनका व्यक्तित्व भी उनके रूपो मे प्रकट हुआ है। अपने कवि ने इष्टदेव के प्रति दास्य, सख्य वात्सल्य और माधुर्य भाव की व्यजना की है।'[२] अस्तु कवि की कल्पना ने कृष्ण को सौदर्य-सागर राधा-वल्लभ गोपी वल्लभ ब्रज वल्लभ भक्त वल्लभ बनाकर सर्वजनवल्लभ जननायक बना दिया है। उनके गुरो के समग्र सस्कृत आचार्यों का नायक 'धीरोदात्त गुणान्वित' बहुत कम है। सूर न उनके ब्रह्मत्व की लोकव्यापी प्रतिष्ठा की है जिससे वे पूर्ण अवतारी तथा लोक-नायक बन गये हैं।

सूर ने पौराणिक तथा धार्मिक परम्परा का रूप भी अपने नायक म अक्षुण्ण भाव से ग्रहण किया है तथा जयदेव एव विद्यापति का रति-नायक दृष्टि को भी अपनाया है। उन्होने राधा-कृष्ण को सामान्य नायिका-नायक का रूप भी दिया तथा प्रकृति-पुरुष सम्बन्ध म दिव्य रूप भी दिया। सूर ने कृष्ण के सर्वांगीण रूप का सकेत अवश्य दिया किन्तु प्रधानता भक्ति प्रधान माधुर्य को ही दी है। 'तो इन सारी बातो के पीछे एक व्याकुल उत्सुकता चीत्कार कर उठती है—'छबीले

---

१ डा० नन्ददुलारे वाजपेयी महाकवि सूरदास, प० १२७

२ डा० ब्रजेश्वर वर्मा-सूरदास, पृ० ३४३

मुरली नकु बजाई'। राधिका के वनरस म, गापियो की तनातनी म, पनघट की छेड़छाड़ मे, दान लीला के सवाल-जवाब म, एक अति भीनी भनकार उठा करती है—'छबीले मुरली नकु बजाइ'। रासलीला की यह आनन्द केलि जिसकी तुलना ससार म नहा है, केवल एक मेरुदण्ड के चारा ओर चक्कर लगा रही है। 'छबीले मुरली नकु बजाई।[1] इस प्रकार सूर ने सौंदय विहारी कृष्ण को सवजन वल्लभ जननायक का रूप दिया है।

अष्टछाप में कृष्ण

अष्टछाप के कवियो म सूरदास की चचा हम ऊपर कर चुके हैं। सूरदास ने कृष्ण के समस्त चरित्र को प्रस्तुत किया है। उनका कथाक्रम 'सूरसागर' म मुक्तक प्रकृति का रहा है। प्रबधत्व के साचे मे नायक को रूप मिल सकता था सूरदास की अतिशय माधुय पूर्ण दृष्टि ने वसा नहीं किया। अष्टछाप के सभी कवि परमानन्ददास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गाविन्दस्वामी, कुम्भनदास, नन्ददास आदि सभी का दृष्टिकोण रागात्मक रहा है। अधिकाश कवि उनके माधुय रूप की ही भक्ति भाव से अचना करते रहे हैं। कृष्ण के प्रेमी तथा प्रेमी-वत्सल रूप की सभी ने चर्चा की लेकिन उनका वीतरागत्व तथा अनासक्ति का रूप जिस आध्या-त्मिकता तक पहुँचा, उसे सूर के अतिरिक्त अन्य कोई भी कवि स्पश न कर सका। सूर न कृष्ण के असुर-सहारक रूप को सविस्तार दिया, अन्य कवि केवल एकांगी बने रहे। कृष्ण की राधा उनकी दृष्टि म परमपुरुष तथा परमप्रकृतिरूपा ही बन पाई हैं। नन्ददास के रास पचाध्यायी, गोवधनलीला, सुदामाचरित्र, रुक्मिणि मगल आदि मात्र खण्डकाव्य के रूप म हैं। अधिकाश म भक्त कवियो का रागात्मक जनगीतो म ही आत्माभिव्यक्ति पा सका है।

कृष्ण का चरित्र महाकाव्य की समस्त विशेषताओं से युक्त था। वे धीरोदात्त धीरललित आदि किसी भी प्रकार के नायक सहज ही हो सकते थे। सांस्कृतिक गौरव के समस्तपक्ष उनम उभारे जा सकते थे। किन्तु उन्होंने ऐसा नहा किया तथा आत्मराग का पूर्ण स्वच्छन्द होकर तरग के क्षणों मे पदरूप मे दिया है।

अन्यस्थ कृष्ण—कृष्ण पर मध्ययुग म परिवा काव्य वेलिकाव्य (चाचाहित-वृन्दावनदास) अष्टयाप, वारहमासा, वारहखडा काव्य, सम्याबाची काव्य लिखा है।[2] लेकिन सभी म भक्तिपरक प्रेम ही कृष्ण के प्रति है। उनका कोई अन्य रूप नहीं उभरा गया है।

---

१ आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—सूर साहित्य, पृ० १२६

२ हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृ० ९६

अनुवाद—भक्तो ने श्रीमद्भागवत, महाभारत तथा गीता के अनुवाद भी किए। लालचदास का 'हरिचरित्र' श्रीमदभागवत का अनुवाद ही है। सबलसिंह चौहान ने 'सम्पूर्ण महाभारत का अनुवाद किया।

इन सभी ने मगल काव्य, भ्रमरगीत बधाई काव्य अष्टछाप के द्वारा कृष्ण को रस-नायक या शृ गारी नायक के रूप मे ही लिया है। कृष्ण से सम्बन्धित सभी सम्प्रदायो मे जिनकी चर्चा यहाँ अपेक्षित नही है उनके विषय मे यही कहा जा सकता है कि उनको लीला माधुर्य का रूप तथा रसिकेश्वर का रूप ही प्राधान्य पाता रहा है।

मध्ययुग के कृष्ण चित्रकला, मूर्त्तिकला वास्तुकला सगीतकला तथा काव्यकला सभी ललित कलाओ मे अदभुत रूप से प्राप्त होते हैं। समस्त मध्ययुगीन साहित्य कृष्णमय दिखाई देता है। शास्त्रीय सगीत के नायक रूप मे उनकी प्रतिष्ठा इतनी रही कि उनको आधार बनाकर राग-रागिनियो का कोश तयार हो गया।

मुसलमान कवियो के कृष्ण

मुसलमान अपने धम म घोर कट्टर होते हुए भी कृष्ण के समक्ष अपनी धर्मान्धता छोड बठे हैं। इस्लाम का नारा प्रेम ही ईश्वर है', कृष्ण म पूरा होता है। कबीर तथा जायसी ने राम-रहीम को लेकर यह खाई पाटनी चाही थी किन्तु 'कबीर का राम' मुसलमान अपना नही सके और जायसी का रहीम हिन्दू नही अपना पाये थे। प्रेम-तषित मुसलमान कृष्ण के अपार प्रेम सागर म सहज भाव से डूब गया। अपने मन का समस्त धन इन कवियो ने मुक्त होकर दिया। रसखान ता पत्थर, पशु सब कुछ उनके प्रेम म दीवाने बन कर ही बनने को तयार हो गये। उनका प्रम समपण सम्पूर्ण यक्तित्व का समपण है। अकबर ऐसा महान सम्राट कृष्ण के माधुय मे काव्य सजन करता रहा। जहागीर ने गोप-कृष्ण का 'अद्भुत गोप रूप बरना न जाय कहकर अपना मत उडेल दिया। शाहजहा ने व्रजभाषा म काव्य लिखकर 'पिया तुम बहु नायक' कह प्रेम व्यक्त किया। गायक तानसेन की तान कृष्ण पर हो टिक सकी। रहीम खानखाना कृष्ण रूपी चन्द्रमा के चकोर बन कर प्रगट हुय।

प्रेमी कवि रसखान इतने रसमय होते रह कि कृष्ण की लकुटी पर तीनो लोक, आठ सिद्धि या नवो निधियाँ त्यागने म गव का अनुभव करत रहे। उन्होंने 'छछिया भर छाछ पर नाचने वाले कृष्ण को अपना सब कुछ द दिया, वे इतने तन्मय हो गय कि कृष्णमय हो गये। भावना का इतना विस्तार बहुत कम कृष्ण भक्तो में उपलब्ध है। मध्ययुग म ताज कवि, खानखाना कवि आलम बाधा शेख न मा

कृष्ण पर काव्य सृजन किया। वल्लभ-सम्प्रदाय के अनेक कवि, कृष्ण पर काव्य मुसलमान होते हुए भी लगातार लिखते रहे हैं।[१]

निर्गुण धारा मे कृष्ण

भारतीय धर्म तथा सौंदर्य भावना का यह नायक कबीर पन्थी तथा जायसी पथ दोनों ही कवियों में मिलता है। भक्तिकाल के प्रत्येक काव्य पर उनकी छाप कहीं न कहीं अवश्य मिलती है। कबीर ने कहा विष्णु सोई जाको विस्तारा। सोई कृष्ण जिनि कियो ससारा।।[२] रैदास, पीपा, धना भी 'हरि' मे रमे रहे। सन्त कवि, गुरु गोविन्द सिंह ने 'कृष्णावतार' नामक युद्ध-काव्य लिखा, जिसमे उनके वीर नायकत्व का महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा की है।

भारतीय स ता के अतिरिक्त विदेशी प्रभाव से फारसी प्रभाव के सूफी कवि इस लोकनायक का स्मरण करते रहे हैं। जायसी ने कृष्ण-कथा को बहुत स्मरण किया है।[३]

रामभक्ति शाखा में कृष्ण

मर्यादा पुरुषोत्तम के उपासक कवि तुलसीदास ने 'कृष्णगीतावली' मे उनका लोकरंजन माधुर्य पक्ष अपना कर अपना राग समर्पित किया है। माखनचोरी, गोपी विरह तथा वात्सल्य प्रियभाव से सिक्त हैं। कृष्ण का नन्दनन्दन तथा गोपाल रूप उन्हें भाया है। तुलसी की गोपियां मर्यादावादी हैं तथा उद्धव की खिल्ली नहीं उड़ातीं, मात्र अपना आत्मनिवेदन करती हैं।

लोक गीत तथा कृष्ण

ब्रज के समस्त लोक-गीतों में कृष्ण ही हैं। उनका लोक-नायक रूप वहाँ ही मधुरतम हो गया है। लोक धुन में कृष्ण लोक-सम बन गया। इस प्रकार लोकगीतों में भी कृष्ण का 'रसिया रूप' ही प्रमुख रहा।[४] हिन्दी का रास-काव्य इसका प्रमाण रूप ही है।[५]

इस प्रकार मध्ययुग का कृष्ण ब्रजलीला, द्वारिकालीला तथा मथुरा लीला का महालीला नायक है। राक्षसों का सहारक, मुरलीवादक, राधाप्रेमी, गोपी-वल्लभ,

---

१ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ

२ सन्त कबीर, पृ० १५४

३ लेइगा कृष्णहिं गरुड अलोपी। कठिन बिछोह जियहिं किमि गोपी।।
जायसी ग्रन्थावली, नागमती खण्ड, दो० १

४ हरिवंश पुराण-नील कंठ टीका, पृ० १९० ९८ (श्री कृष्णदत्त पालीवाल)

५ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ८८१

माखनचोर, चितचोर, चारचोर, नन्दनन्दन, राधा कृष्ण विवाह रासलीला अक्रूर के साथ मथुरा में कृष्ण कुब्जा तथा सुदामा के कृष्ण, म सद्ता गोपी विरह के प्रताक कृष्ण यहाँ मिलते हैं। द्वारिका लीला म रुक्मिणी हरण उद्धारक महारक तथा महाभारत के कृष्ण का रूप भी आया है। कृष्ण चरित्र म भी इसी ब्रह्म मुहुत की झलक है। सौ-सौ विरह क्रन्दन उठाकर द्वारिकाधीश न विश्व जीवन के समुद्र तट पर लोक धम का जयनाद किया। कृष्ण ने आज मिचौनी खेल कर बतला दिया कि देखो, खिलाडी ऐसे खेलते हैं, प्रेम म व मोहासक्त हैं कर्त्तव्य म निर्मोही हैं। व निमम ममतालु हैं, वे प्रेम-जोगी हैं।"[1] इस प्रकार कृष्ण समस्त साहित्य का भाव सत्ता के नायक है। कृष्ण काव्य मानवजीवन का भाव योग है, जिसे नित्य योग क कारण दिव्य-नायक या लोक-नायक ही रहना चाहिए।

रीतिकालीन काव्य में कृष्ण लौकिक शृंगारी नायक

भक्तिकाल, आध्यात्मिक विकास की दृष्टि स धम युग है। कृष्ण का जो स्वरूप वदिक उपनिषद् महाकाव्य युग बौद्ध युग शकर युग म विकसित होता रहा था, उसका पूर्ण विकास पूर्णावतार रूप म भक्तिकाल म हुआ। आरम्भ में ही कृष्ण-भक्ति धारा ने वैराग्य को दाद नहीं दी अभिनव मर्यादा म अपने को बद्ध नहीं किया। निवृत्ति म प्रवृत्ति या अनासक्ति म आसक्ति का दवावरण लेकर कृष्ण का नायकत्व विकसित हुआ। जीवन की सघषपूर्ण कठोरता से ऊबा हुआ मन राम की ओर न जाकर कृष्ण की ओर अधिक झुक गया क्योंकि उनम रागात्मक भाव सत्ता की अपार मानवीय शक्ति रक्षित थी। सन्तों ने समाज म आध्यात्मिकता की जमाने का काय भक्तिकाल म कृष्ण द्वारा पूरा किया। भक्ति आन्दोलन न मन देह, प्राण सब को कृष्ण की चिन्मय लीला दृष्टि म लगा दिया। निराकार ब्रह्म साकार हो कर मानव रूप धारण कर जग-साक्षात्कार करने लगा तथा जन रक्षण में असुर सहारक-गोवद्ध नधारक तथा रसस्नि उद्धारक बना। उन्होंने मन, देह धम प्राण की सभी प्रक्रियाओं को भावपरक म बाँध लिया तथा मानव होकर भी दिव्य पुरुष पुरुषोत्तम बने रहे। कृष्ण पर सम्प्रदाय प्रधान आध्यात्मिकता का जो तोल कर रंग चढ़ाया गया। लकिन साधना का कृष्ण पूजा अचना म ठहर नहीं सका भक्तों की अन्तर्दृष्टि का दूध पचा नहीं, उसकी वर्तियाँ रगण हो गयी और उनने कृष्ण पर लौकिकता का रग चढ़ा दिया।[2]

---

1 श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी—साकारिणी, पृ० १२ १३
2 डा० मीरा श्रीवास्तव—मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण भक्तिधारा और चतन्य सम्प्रदाय, पृ० २९७

भक्तिकाल में बना कृष्ण का लालित्य मधुराक्रान्त हो गया तथा मधुराधिपति जीवन की मूल-कामना रति (लिबिडो) का प्रतीक हो गया। भक्तिकाल का अपार्थिव प्रेम रीतिकाल में पार्थिव वासना बन गया। रीतिकाल के कवि की भाव, भाषा, शक्ति सब कुछ नायक-नायिका के परिरम्भण चुम्बन, आँख मिचौली, विहार, अभिसार मान, मदन, कटाक्ष आदि में लिपट गयी। सूर का कृष्ण छिपने लगा, विद्यापति का कृष्ण रूप बदल कर रीतिकालीन नायिकाओं में घुस पड़ा। कृष्ण का वह स्वरूप जो अभी तक आध्यात्मिक साधना का पाक था, ताक पर रख दिया गया। यहाँ मानव की पार्थिव रति ने अपार्थिव रति को करारी मात दी। कृष्ण राजा तथा 'रसिया' हो गया। साथ ही राजाओं की समस्त विलासी चेष्टाओं का उन पर आरोपण किया गया। कृष्ण के रूप में रीतिकालीन राजा की मनोवृत्तियाँ आज हम स्पष्ट समझ सकते हैं।[1] कृष्ण का पराजित अध्यात्म, भौतिक शरीर धारण कर तुन्दिल हो उठा, वे कामी, व्यभिचारी, छिछोरे, लम्पट, अगभोगी तथा रतिभोगी हो गये।

नायक सदैव युग की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और साहित्यिक चेतना का प्रतिनिधि रूप होता है। इस दृष्टि से युग की परिस्थितियों का प्रभाव उस पर पड़ना सहज ही है। राजनैतिक दृष्टि से १७०० से लेकर १६०० तक का यह काल विहार तथा विलास का काल है। व्यक्तिवादी निरकुश राजतन्त्र का यह समय राजा को युग चेतना का नियामक मानकर ही जमा है।[2] फारसी इश्क में रगा राजा और दरबार का मर्मानुपुरों की भनकार से झूमता था। स्फटिक शिलाओं से निर्मित इन महलों का वैभव चाँदनी रात में दूध के फेन की भाँति उद्वेलित हो उठता है। शीशमहल में लगे हुए अगणित मूल्यवान दर्पणों का क्या कहना। उन दर्पणों में पड़ते हुए राजाओं के प्रतिबिम्ब ऐसे दीप्तिमान होते थे मानो कामदेव ने समस्त

---

१ वैभव तथा विलास का सहज सम्बन्ध है। अतिशय वैभव का यह युग अतिशय विलास का भी युग था। मुगल अन्तःपुरों में हजारों स्त्रियाँ रहती थीं। शिक्षा प्रायः आशिकाना गजलों, फारस की अश्लील प्रेम-कहानियों आदि की होती थी। 'अमीरों तथा राजाओं के महलों में शृङ्गारिकता का नग्न नृत्य हो रहा था। सैनिक शिविरों में भी वेश्याओं का जमाव था—मुगल सेना की सहायता के लिए काम देव की बृहत सेना चला करती थी।

—डा० नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १२

२ डा० नगेन्द्र रीतिकाल—हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, पृ० ३

संसार को जीतने के लिए काम व्यूह बनाया हो।'[3] नैतिक दृष्टि से पतित इस काल में शृंगार शारीरिक धरातल पर उतर आया था जिसे डा० नगेन्द्र ने आध्यात्मिक या धर्माचरण के रूप से दूर महज आकृष्ट स्त्रीपुरुष का ऐन्द्रियपक्ष' उचित ही माना है।[4] धार्मिकता का पतन हुआ, धर्म की यह विकृति 'राधा कान्ह सुमिरन को बहानो' मात्र बन गई। प्रत्येक स्त्री अपने को राधा तथा प्रत्येक पुरुष अपने को कृष्ण समझने लगा। भगवान का आश्रय लेकर मुक्त भोग चल पड़ा। बिहारी, देव, मतिराम घनानन्द सभी रीतिमुक्त तथा रीतिसिद्ध कवियों में नायक-नायिकाओं का जमघट है। लाल तथा गोवर्द्धनाचार्य का शृंगारी साहित्य, फारसी काव्य धारा की इश्कमजाजी, वात्स्यायन का काम-सूत्र, विद्यापति का विलास, समयानुकूल हो नायक-नायिका रस में आ गया। राधा-कृष्ण के चरित्र से पवित्रता जाती रही। झूठी नकाब भक्ति की डाल दी गई।' कविता में प्रेम का स्थान वासना ने ले लिया। सभी कवि प्रेमी नहीं रसिक हो थे। केशव को भी मृगनयनी द्वारा 'बाबा' कहने का कष्ट था तथा बिहारी को शोभा के भार से सूधे पैर न धर पाने' की पीड़ा बनी रही। राजदरबार का एक चित्र पद्माकार के जगतविनोद से देखिए—

गुलगुली गिलमें गलीचा हैं, गुनीजन हैं चान्नी है, चिक है, चिरागन की माला है।
कहैं 'पद्माकर' त्यों गजक गिजा है सजी, सेज है सुराही है सुरा है और प्याला है।
शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं जिनके अधान ऐतउदित मशाला हैं
तान तुक ताला हैं विनोद के रसाला है सुबाला हैं, दुशाला हैं विशाला चित्रशाला हैं।

---

१ डा० बच्चनसिंह—रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ० १०

२ डा० नगेन्द्र—देव और उनकी कविता।

३ 'वास्तव में यह भक्ति भी उनकी शृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते होंगे तो राधा-कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्म भीरु मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरण भूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। तभी तो यह किसी न किसी तरह उसका आंचल पकड़े थे। रीतिकाल का कोई कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है, हो ही नहीं सकता था, क्योंकि भक्ति उनके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए भी, उनके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करते, या उसका सैद्धान्तिक निषेध करते।'

डा० नगेन्द्र—रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १८०

इस प्रकार अपार विलास की गूज इस साहित्य मे है। ऐसे युग म कृष्ण की दिव्यता नष्ट हो गई वे मानव मात्र रह गये। मानव कामी निकृष्ट, व्यभिचारी रूप उन्ह दिया गया। भर भुवना म वे नयना स काम क्रीडा की बातें करन लगे। पलक पीक, अजन अधर की रति चोरी म पकड जान लगे। वल्लभाचाय का लीला-विहारी दिव्य कृष्ण यहाँ गली गला म नायिका विहारी हो गया। कृष्ण के इस नायकत्व मे समसामयिक बोध जुडा हुआ है। इस प्रकार रीतिकाल म उनकी लौकिक विलासी नायक के रूप म प्रतिष्ठा हुइ, उनका पराक्रमी रूप भुला दिया गया। इसे कृष्ण का लौकिक रति-नायक रूप भी कह सकते हैं।

आधुनिक चेतना तथा कृष्ण का नायकत्व

आधुनिक काल का आरम्भ जागरण के शख-नाद से होता है। उन्नसवी शताब्दी विश्व इतिहास म सर्वाधिक महत्त्वपूण है क्योंकि इस युग म राजनीतिक चेतना का स्वरूप बदल गया, धम दशन म नया परिवतन आया। विनान ने बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा की। प्राचीन रूढिया को ढहाने का प्रयास किया गया। परम्परा से लिपटकर जीने का मोह भग हुआ और काव्य म मानव तथा प्रकृति को नवीन रूप म ग्रहण किया गया। भारतवष म आधुनिक काल विदेशी शासन से युद्ध की उद्घोषणा करता हुआ आता है। असफल मुगलो की राज्य व्यवस्था से विलासिता का अत हो गया। साहित्य शृगार की कम सुधार की चर्चा अधिक करने लगा। भारतदु के समय म पूणत अग्रेजों का आधिपत्य था। १८५७ की क्रान्ति असफल अवश्य हो गई थी किन्तु भारतीय चेतना म इस पराजय का आक्रोश समाप्त नही था। ईसाई धम प्रचारक सक्रिय थे जिनसे बचाने का प्रयत्न ब्रह्म समाज, आय समाज तथा रामकृष्ण मिशन आदि के सुधारक प्रबलता से कर रहे थे।[1] अग्रजो के प्रभुत्व का रोकने की राजनीतिक चेतना ने काग्रेस आन्दोलन का सूत्रपात किया। राष्ट्र एव राष्ट्रीयता के माध्यम से मानव-मूल्यो मे पराधीनता से मुक्त जीवन की चर्चा हो उठी।[2] भारतवष की आत्मा म रमे वाल्मीकि, व्यास, कृष्ण, गौतम, महावीर कपिल, कणादि, तुलसी सूर कबीर मृतप्राय नही हुए थे। भारतीय जनता को सन्देश देने के लिए उनके पास अपार शक्ति थी। पाश्चात्य विचारा का प्रभाव, शासक की विजयी भाषा का प्रभाव पड रहा था, उधर लोकनायक कृष्ण

---

१ डा० रामधारीसिह दिनकर—सस्कृति के चार अध्याय, पृ० ५८०

२ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ११

रीतिकालीन कवियो की वासना से आशक्त हो गया था। इन सास्कृतिक नायको के स्वरूप को नवनिर्मित करने प्रश्न था। जाति को आदश नायक के माध्यम से उभारने का प्रश्न था। सास्कृतिक नायक ही किसी भी जाति की चेतना के आधार स्तम्भ होते हैं। उनके उदात्त काय ही जागरण लाते हैं।[1] इसी दृष्टि स राम तथा कृष्ण को पुन साहित्य म रूप बदल कर लाया गया। कृष्ण पर लगा कलक हटाना आवश्यक था। अत उनका रूप परिवतन भी आवश्यक था। भक्तियुगीन अवतार वाद म बुद्धिजीवी अविश्वासी हो गया था। 'आय समाज अवतारवाद के विरुद्ध झडा उठाये हुए था। इसका फल साहित्य पर भी पडा और अयोध्यासिंह उपाध्याय और रामचरित उपाध्याय ने कृष्ण तथा राम को यथासम्भव मानव चरित्र के रूप म चित्रित किया।[2] इस प्रकार कृष्ण से रीतिकालीन शृगारिकता का कलक हटाया गया और उन्हे लोकसुधारक के रूप म प्राण प्रतिष्ठा दी गई।

भक्ति-काव्य के काय-व्यूह मे सम्प्रदायवाद तथा सकुचित कमकाण्ड घुस पडा था, परिणाम स्वरूप शृगार के विलासपरक परिवेश म भागवत धम का कृष्ण सामान्य नायक के रूप म दष्टिगत हुआ। आधुनिक ब्रजी के कवियो ने मुक्तक परम्परा म कृष्ण के 'रसिया' रूप को वल्लभ सम्प्रदाय का नाम लेकर जीवित रखा है लकिन जगन्नाथदास रत्नाकर न कृष्ण की अश्लील शृगारिकता स निकाल कर पुन भक्ति भावना म ढाल दिया। कृष्ण यहा हल्के प्रेमा जाव नही उन्नतभाव के प्रेमी हैं। वियोगी हरि न भी कृष्ण की भक्तिपरक ब्रह्म भजक प्रेम शतक म प्रस्तुत की। हरिऔध जी ने युग की आवश्यकता को पहिचान कर कृष्ण का रूप बदल दिया उन्हे आदश जननायक के रूप म चित्रित किया। 'प्रियप्रवास' क कृष्ण भक्तिकालीन श्रीकृष्ण की भाँति क्रीडा कौतुकप्रिय अलौकिक लीलाधारी अलौकिक पुरुष ही हैं, उनका चरित्र एव आदश जन-नायक का चरित्र है। इन्द्र का दमन कर, असुरो का सहार कर तथा अपनी अपौरुषेय शक्ति से नही वल्कि अपनी बुद्धिमत्ता और नीतिकुशलता स लोक जीवन के युग द्रष्टा बनकर कल्याणकारी काय कर वे अपने युग प्रवतक और नायक होने का प्रमाणित करते हैं।[3] इसी बात से कृष्ण को यहाँ पौरुषत्व गौरव-गरिमा और महानता प्रदान कर उन्हें आधुनिकता म नया नायक-बोध मिल गया।

---

१ डा० श्रीकृष्णलाल—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ४६

२ वही, पृ० ४६

३ स० डा० धीरेन्द्र वमा—हिन्दी साहित्य कोष, पृ० ९६, भाग २

द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने 'कृष्णायन' म कृष्ण को नवीन युग के सन्दभ मे राजनीतिक नता बना दिया। अट्टूट जीवट के कृष्ण वीर राजनीति के योद्धा बन गए। यह कृष्ण का रूप गीता के कृष्ण का आधुनिक अवतारी सस्करण ही है। कृष्ण यहा स्वतन्त्रता सग्राम की राजनीतिक से प्रभावित हैं। मिश्र जी स्वय स्वतन्त्रता-सग्राम के राजनीतिक-योद्धा हैं, अत उन्होंने कृष्ण को सच्चे अर्थों मे लोकनायक बना कर प्रस्तुत किया है। कृष्ण पर प्रियप्रवास तथा 'कृष्णायन' के रूप मे प्रबन्ध-परम्परा चल पडी तथा महाकाव्य के धीरोदात्त नायक का आसन उन्ह राम की कोटि मे लाने लगा। मथिलाशरण गुप्त जी ने द्वापर' 'जयद्रथवध', विरहिणी ब्रजाटना (अनुवाद) नामक काव्यो की रचना की लेकिन कोई नवीन उदभावना वे कृष्ण के नायकत्व म नही कर सके। रामचरित उपाध्याय ने 'देव-द्रोपदी' म कृष्ण का उदार रूप सममामयिकता के अनुकूल ग्रहण किया।

छायावादी काव्य अशरीरी तथा रोमानी काव्य था। उसन कृष्ण का विसमरण कर दिया। कभी-कभी अनजाने उनका नाम गीता मे आता रहा लेकिन उस पर कुछ भी गम्भीर नही लिखा गया। दिनकर जी का ध्यान कृष्ण के निरन्तर तथा चिरतर नायकत्व पर गया और रश्मिरथी म गीता का कृष्ण बोल उठा है। कृष्ण के माध्यम से यहा युग-बोल पडा, जाति का प्रेरणात्मक नायक जसे जागरण नाद कर उठा। नये प्रयोगो के काव्य म जीवन को पुन तलाशा-तराशा गया। कथा, कहानिया तथा नाटक परखे गए और धमवीर भारती ने 'अन्धायुग' नामक गीति नाट्य (ओपेरा) म कृष्ण का नवीन मान्यताओ तथा खोय मानव मूल्यो को प्रतिष्ठित करन वाल युग-पुरुष के रूप म प्रस्तुत किया। कनुप्रिया का प्रणयी कृष्ण भी आत्मा के आन्दोलन का युगीन परिणाम ही है। इधर इन पर नवीन-काव्य म अनेक सिद्ध प्रयोग हो रहे हैं तथा कृष्ण का चक्र नवीन चेतना के जागरण चक्र का प्रतीक बन कर प्रतिष्ठित हो गया।

इस प्रकार वेदो से लेकर आधुनिक काल तक कृष्ण का नायकत्व अनेक रूपो म विकसित हुआ है। युगानुरूप परिवर्तित स्थितियो की अपार दिशा, दशा सम्भावनाए आती रहीं। शाश्वत प्रेम, चिरतनसत्य, चिरसौन्दय को अपना कर अपार साहित्य लिखा गया। अत लोक-जीवन का इतना महान लोक-नायक भारतीय जीवन म कोई भी दूसरा दिखलाई ही नहीं देता। उनके नायकत्व के विकास मे सम्पूर्ण भारतीय -सस्कृति के विकास को अखण्ड भावसत्ता के रूप मे देखा जा सकता है।

मध्ययुगीन कृष्ण-काव्य

पूर्व मध्यकाल का कृष्णकाव्य धार्मिकता तथा भक्ति भावना से समन्वित काव्य है। आधुनिक भाषाओं में पन्द्रहवीं शताब्दी तक कृष्ण काव्य के उदाहरण प्राप्त नहीं हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में कृष्ण लीलाओं को काव्य का विषय बनाया गया तथा विद्यापति बंगला में चण्डीदास गुजराती में भीम तथा भलण ने कृष्ण पर काव्य सृजना आरम्भ की। मध्ययुग का धर्म प्रेरित कृष्ण भक्ति साहित्य साम्प्रदायिक भक्ति का निरूपण तथा सिद्धांतों के प्रचार प्रसार के लिए लिखा जाता रहा है। कवियों ने सिद्धान्त के व्यावहारिक पक्ष को अपनाकर काव्य सृजन किया है। भागवत के आधार पर अनेक रचनाएं लिखी जाने लगी तथा कृष्ण भक्ति आन्दोलन आचार्यों तथा कवियों के द्वारा पोषित होने लगा। अष्टछाप के कवियों में साम्प्रदायिक छाप स्पष्ट रही तथा अन्य कवि भी जाने अनजाने इस छाप में आ गए हैं।

कृष्ण का लीला बिहारी नटनागर जनमनरंजन रसिक राधाय नागर तथा माधुर्य रूप का ही अधिक प्राधान्य रहा। यह माधुर्य रूप शायद प्रबन्ध काव्य के लिए उपयुक्त नहीं था। कृष्ण-काव्य का स्वतन्त्र प्रबन्धात्मक रचनाओं में कृष्ण के लीला विहारी माधुर्य रूप की अपेक्षा ऐश्वर्य रूप ही प्राधान्य पाता रहा। भारतीय प्रबन्ध काव्यों के नायक ने आभिजात्य-वर्ग का उदात्त चरित्र ही स्वीकार किया है उस में जीवन का प्रतिनिधित्व तथा जातीय गौरव की पूर्ण रसात्मक शक्ति होनी चाहिए। कृष्ण की मधुर लीलाओं में यह शक्ति कम थी हृदय को रमाने की शक्ति अधिक रही। अतः उन पर गान या पदों की सम्भावना अधिक दिखाई दी। सकता न किया भी ऐसा हो तथा उन पर स्वतन्त्र पद या गीत सवैया लिखे हैं। सूरदास जैसा महान कवि भी प्रबन्ध-क्षेत्र में असफल रहा तथा सूरसागर सागर होते हुए भी छन्द का तरंगित कोष ही बन गया उसे महाकाव्य नहीं बनाया जा सका। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सूरसागर को गीतात्मक महाकाव्य कहा है लेकिन अन्य सभी विद्वान आचार्य शुक्ल के मत से असहमति व्यक्त करते हैं। वास्तव में यह प्रबन्ध काव्य कहा ही नहीं जा सकता। इसमें उन्मुक्त गायक के मुक्तक-छन्दों का ही संपादन है जिसमें महाकाव्य की पद्धति का अभाव है।

प्राय कृष्ण न काव्य म परम्परागत प्रव ध न्प को नही अपनाया है। नन्ददास का रुक्मिणी मगन एक अपवाद है, उनका भवर गीत, रास पाचाध्यायी, 'स्याम सगाई' आदि लघु प्रबन्धात्मक रचनाएँ हैं, लेकिन प्रबन्धत्व का पूर्ण चारुत्व उनमे भी नही है। 'रूप मजरी नामक काल्पनिक कथा प्रबन्ध कृष्ण भक्ति के महात्म्य के लिए ही लिखा प्रतीत होता है।[1] अन्य कृष्ण भक्त कवियो म ध्रुवदास नागरीदास, हित वृन्दावनदास, नरोत्तमदास आदि न छोटे-बडे बहुत कथा प्रबन्ध लिखे हैं लेकिन काव्यत्व की दृष्टि से ये रचनाएँ विशेष महत्त्व की नहीं बन पाई हैं। राधा-वल्लभी हित वृन्दावनदास के 'लाड सागर' तथा 'व्रजप्रेमानन्दसागर' म कृष्ण की कुछेक लीलाओ का प्रसगगत वर्णन मात्र है। इनकी दृष्टि कृष्ण की आनन्द लीला के मधुर पक्ष तक हा सीमित रही। इन कवियो न कृष्ण को इतना विहारी तथा रसिक रूप दिया कि कृष्ण काव्य सूरदास तथा नन्ददास के बाद इहलौकिकता से आक्रात हो कर आध्यात्मिकता से शून्य होता गया। कृष्ण की रसिक लीलाओ ने परवर्ती कवियो के लिए अनजाने ही एक द्वार घोर शृगार का खोल दिया, जिसमे विलासी राजाओ, सामन्तो तथा धनवानो क मन बहलाव का साधन उपलब्ध हो गया। सूरदास ने गीति पद्धति के द्वारा प्रबन्ध की थोडी नीव डाली थी, परवर्ती कवि उस पद्धति को भी भला प्रकार नही निभा सके। कवियो की कल्पना कृष्ण से सम्बन्धित छोटे छोटे प्रेम प्रसगो म ही रम कर रह गई। परमानन्द दास न 'परमानन्द सागर म कृष्ण-लीला के अगणित मुक्त पदो को स्थान दिया, कुम्भनदास भी स्वतन्त्र पद लिखते रहे कृष्णदास अधिकारी अपन पदो को सूर की होड मे ही लिखत रह। चतुर्भुजदास गोविन्दस्वामी तथा छीतस्वामी भी पदो म रमे रहे। रसखान मीरा भी प्रेम म उन्मत्त मुक्त भावो का प्रकाशन स्फुट गीतो मे ही ढाल कर करत रहे हैं। इस पद परम्परा म कृष्ण चन्द गोस्वामी दामोदरदास, सहचरि सुख, कल्याण पुजारी, रसिकदास, हित अनूप कृष्णदास भावक हित रूपलाल गोस्वामी प्रेमदास लाडिलीदास आनन्दीबाई प्रियादास आदि अनक भक्ति-पद रचयिताओ के नाम हैं लेकिन प्रबन्धत्व इसम एक भी नही है।

निम्बार्क मतावलम्बी श्रीभट्टजी, हरिव्यास रूप रसिकदेव तथा तत्व वेजा दव ने भी कृष्ण काव्य को आध्यात्मिकता में डुबा दिया लेकिन काव्यत्व इन कृतियो म बहुत अल्प है।

रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास ने कृष्ण गीतावली लिख कर 'कृष्ण भक्ति को मात्र आदर दिया उन पर श्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य की रचना नही की। तुलसी मे

---

१ स० डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य, भाग २, पृ० ३६०

प्रबन्धत्व की अपार शक्ति थी, लेकिन कृष्ण के नायकत्व पर प्रबन्ध काव्य लिखने में वे भी मौन ही रहे।

रीतिकाल के सामन्तीय वातावरण में कृष्ण के साथ कामदेव की सेनाएं चल पड़ीं तथा भक्ति नायक कृष्ण घोर शृंगारिकता में डूब गया। फिर भी इस काल में मुक्तक कृष्ण काव्य का बोलबाला होते हुए भी 'कृष्णचरित' पर छोटे प्रबन्धकाव्य लिखे जाते रहे। आचार्य चिन्तामणि ने 'कृष्णचरित' नामक लघु प्रबन्ध काव्य लिखा जो भागवत पर आधारित है। 'महाभारत' के कथानक में भी कृष्ण का महत्त्वपूर्ण योग रहा तथा उनका राजनीतिक व्यक्तित्व वहाँ बहुत विराट रूप में है। 'महाभारत' को आधार बनाकर भी कृष्ण पर रचनाएँ लिखी जाने लगीं, धर्मदास का 'महाभारत' (सं० १७११) ऐसी ही प्रथम रचना है।[1] सबलसिंह चौहान ने 'महाभारत' (सं० १७१८) का अनुवाद किया, यह पद्यबद्ध अनुवाद यदि थोड़ा मौलिक होता तो महाकाव्य बन सकता था परन्तु कवि ने इसमें मौलिकता का स्थान नहीं दिया, परिणामस्वरूप यह मात्र अनुवाद बनकर रह गया। श्रीपति नामक कवि ने 'कर्ण-पर्व' (सं० १७१८) नामक लघु कथा प्रबन्ध लिखा।[2] कुलपति मिश्र ने 'संग्राम सार' (सं० १७३३) में 'महाभारत' के द्रोण-पर्व पर एक खण्ड-काव्य रच डाला। केशवराम मिश्र ने 'पाण्डव यशेन्दु चन्द्रिका' (सं० १७६०) नामक एक सुन्दर खण्ड-काव्य लिखा, महाभारत' का आधार बनाकर छत्रसिंह कायस्थ ने 'विजय मुक्तावली'[3] नामक छोटा किन्तु सुन्दर प्रबन्ध काव्य लिखा है। हंसराज ने 'महाभारत' तथा दिग्गज कवि ने 'भारत विलास' में कवित्व शक्ति का परिचय दिया।[4] मुरलीधर मिश्र ने सोलह विलासों में 'नलोपाख्यान'[5] (सं० १८१४) नामक खण्ड काव्य को जन्म दिया।

इसी काल में शिवराम ने 'महाभारत' अश्वमेध में बभ्रुवाहन कथा, लालमन ने 'महाभारत', चिरंजीव कवि ने 'महाभारत', नारायणसिंह ने 'पाण्डवाश्वमेध'[6] तथा दुलीचन्द ने 'महाभारत' की रचना की। इन कवियों में कथावस्तु का आधार

---

१ नागरी प्रचारिणी खोज विवरण, प० ३३, १९१७

२ वही, प० ४४१ १९२०

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २५८

४ नागरी प्रचारिणी खोज विवरण, पृ० ३० १९०३

५ वही, पृ० १४८ १९१७

६ वही पृ० १६० १९१० ११

प्रभाव तथा इतिवृत्त मात्र मिलता है। स्वरूपदास ने 'पाण्डव यशेन्दु चन्द्रिका'[१] (स० १८९२) का सृजन किया। राम कवि ने 'नलोपाख्यान को' आधार बनाकर बाइस सर्गों की 'नल चरित'[२] (स० १८९८) नामक कवित्वहीन विशाल रचना को जन्म दिया। प्रबन्धकाव्य होती हुई भी यह रचना वर्णना के अम्बार में, महाकाव्य नहीं बन सकी है। नरोत्तमदास के अनुकरण पर कलीराम ने 'सुदामा चरित' (वि० १७३१) लिखा। देवीदास कवि ने अनूप कृष्ण-चन्द्रिका में कृष्ण लीलाओं का गान किया, लेकिन यह काव्य भी बहुत फीका है। कृष्णगढ नरेश राजसिंह ने 'बाहुविलास', क्षेमकरण मिश्र ने 'कृष्ण चरितामृत,' रामप्रसाद ने 'कृष्णचन्द्रिका', सूरतमिश्र ने कृष्ण चरित' खण्डन कायस्थ ने 'सुदामा चरित्र, मेदिनी मल्ल ने 'कृष्ण-प्रकाश' नामक खण्ड काव्यों को जन्म दिया। कवि नगदीश ने माघ के महाकाव्य 'शिशुपाल-वध' का मधुर अनुवाद किया।[3]

उन्नीसवीं शताब्दी में कृष्ण पर छोटे बडे प्रबन्ध काव्य लिखे जाते रहे। चन्द्रहास ने 'कृष्ण विनोद (१८०७ वि०) साहबसिंह ने कृष्णविलास, मण्डन मिश्र ने कृष्णायन[२] देवदत्त ने 'वीरविलास' नामक लघु काव्य लिखे हैं। इसी समय ब्रजवासी दास ने 'ब्रजविलास (स० १८२७) नामक एक अद्भुत काव्य लिखा, जिसमें प्रबन्धत्व की पूर्ण रक्षा हुई। कवि ने कृष्ण-कथा को 'मानस' की दोहा चौपाई शैली में सूरदास के अनुकरण पर लिखा है। इसका कवित्व सशक्त तथा माहक है। उसे महाकाव्य मानने में आज कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि यह महाकाव्य की सभी अनिवार्य शर्तों को लगभग पूरा करता है।

गुमान नामक कवि ने 'कृष्ण चन्द्रिका' नामक एक विशाल प्रबन्ध-काव्य उत्कृष्ट शैली में लिखा। यह (४९) प्रपताशा (सर्गों) में लिखी हुई रचना है। कथानक भागवत के दसमस्कन्ध पर आधारित है तथा कवि परीक्षित के सपदश के शाप पर पाप मुक्ति हेतु इस कथा को पद्य बद्ध सुनाया है। इसके नायक श्रीकृष्ण सदवंशोद्भव गुणान्वित क्षत्रिय हैं, साथ ही पूर्ण ब्रह्म के अवतार भी। इस ग्रन्थ में शास्त्रीय महाकाव्य के लक्षण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। डा० इन्द्रपालसिंह ने

---

१ नागरी प्रचारिणी खोज विवरण प० १४५६-१९२८

२ वही, प० १७२—१९११

३ राजस्थान में हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज—प्रथम भाग, पृ० ५

४ नागरी प्रचारिणी खोज विवरण, प०८७,१९०९

५ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १६, प० ३७०, स० १९९२

इसे निर्भ्रान्त शब्दों में 'महाकाव्य' स्वीकार किया है।[1]

इन ग्रंथों के अतिरिक्त जगन्नाथ का कृष्णायन राधा-कृष्ण की 'कृष्ण चन्द्रिका', गोपाल राम का 'सुदामाचरित' अमरसिंह का 'सुदामा चरित', महाराज जयसिंह की 'कृष्ण-तरंगिणी' रघुवरदास का 'कृष्ण चरितामृत गीता' कवि गंग का सुदामा चरित्र विशेष उल्लेखनीय हैं।[2] इस प्रकार इन सभी कवियों ने कृष्ण को काव्य का नायक बनाया है तथा लघु काव्य उन पर प्रस्तुत किये हैं।

मध्ययुगीन कृष्ण-काव्य पर लिखे गये प्रबन्धों की इस विशाल परम्परा में दो काव्य-ग्रन्थ ही विशिष्ट स्थान के अधिकारी ठहराये जा सकते हैं—ब्रजवासी दास का 'ब्रजविलास' तथा गुमानमिश्र की 'कृष्ण चन्द्रिका'। इन विशाल प्रबन्ध-काव्यों में महाकाव्यत्व की पूर्ण शक्ति मिलती है। अतः अगले पृष्ठों में पूर्व निर्धारित महाकाव्य के मानदण्डों के आधार पर इनके महाकाव्यत्व की परीक्षा करते हुए इनके नायकत्व पर विचार करेंगे।

ब्रजविलास

कृष्ण चरित्र पर मुक्तक-काव्य का एक अपार भण्डार मध्ययुगीन साहित्य में उपलब्ध होता है। सूरदास का सूर सागर भी मुक्त पदों में रचित गीति सागर ही है। साथ ही प्रबन्धत्व का अभाव उसमें है। कृष्ण चरित्र पर एक श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य लिखने का श्रेय ब्रजवासीदास का ही है। उन्होंने कृष्ण कथा के लोक विश्रुत पौराणिक आख्यानों को चुनकर, उनकी पूर्वापर प्रसंगों के आधार पर क्रम बद्ध योजना की है। कथान्विति को रखने के कारण कथा सूत्र कथात्मक पद्धति से प्रवाहित रही है और कथा की निरन्तरता भंग नहीं होने पायी है। कथा की पुनरावृत्ति से भी यही काव्य मुक्त है। कथा का आयाम विस्तृत संकुचित अवश्य होता रहा है लेकिन अन्तरंग कथा बन्ध कहीं भी खण्डित नहीं हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने इसे तुलसीदास जी के अनुकरण पर बनाया हुआ प्रबन्ध काव्य उद्घोषित किया है।

आचार्य शुक्लजी ने इस सरस-काव्य को महाकाव्य शब्द से सम्बोधित नहीं किया लेकिन स्पष्ट लिखा "इस ग्रंथ में कथा भी सूरसागर के क्रम से ली गई है और बहुत से स्थलों पर सूर के शब्द और भाव भी चौपाइयों में रख कर के रख दिये

१ रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध-काव्य, पृ० ४१७
२ नागरी प्रचारिणी खोज विवरण, पृ० १०६, १९००

गये हैं। ब्रजविलास म कृष्ण की भिन भिन्न लीलाओं का जन्म से लेकर मथुरा गमन तक का वर्णन किया है। भाषा सीधी सादी सुव्यवस्थित और चलती हुई है। व्यर्थ के शब्दों की भरती न होने से उसम सफाई है।[1] इससे स्पष्ट है कि वे इस कृति से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। उन्होंने रामचरितमानस की तुलना म इस ग्रन्थ को अवश्य हीन कहा है, यह ठीक भी है। तुलसी का उदात्त प्रतिभा ने समस्त भारतीयता को आत्मसात कर लिया था। उनकी तुलना म यदि कोई कवि छोटा पड़े तो आश्चर्य क्या। उनकी टक्कर का कवि हिन्दी मे ही नही समस्त भारतीय साहित्य के मध्ययुग मे नही हुआ। फिर 'मानस' महाकाव्य से भी ऊपर की कोटि की अद्भुत उपलब्धि है।[2] शुक्ल जी के मत का परवर्ती आलोचकों ने गलत अर्थ लगाया तथा कृति से प्रथम तो वे उदासीन ही रहे और यदि देखा भी तो अलसाय मन से उसे न्याय नही दिया। शुक्ल जी का मत है कि यह सब होने पर भी इसम वह बात नही है जिसके बल से गोस्वामी जी के रामचरितमानस का इतना देशव्यापी प्रचार हुआ। जीवन की परिस्थितियों की वह अनेकरूपता, गम्भीरता और मर्मस्पर्शिता इसम कहाँ जो रामचरित और तुलसी की वाणी म है। इसम तो अधिकतर क्रीडामय जीवन का ही चित्रण है।' आचार्य शुक्ल के मत पर विचार करने से पहले दोनों कवियों के दृष्टिकोणों को समझ लेना अनिवार्य है। दोनों ही भक्त हैं। एक भक्तिकाल के परम प्रकाश मे सृजनरत रहा और दूसरा शृंगार परक पतित परम्परा के रीतिकाल म जीवित रहा। परिवेश का प्रभाव भी कृतियों पर पड़ा ही है। दूसरे तुलसी ने राम के 'आदर्श' का धरती से आसमान तक विस्तार कर दिया, उनकी दृष्टि बहुत व्यापक और पैनी रही। दूसरी ओर ब्रजवासीदास मे तुलसी की दृष्टि और पैनापन नही था। इसलिए तुलसीदास ऐसे अद्भुत कवि से प्रथम तो उनकी तुलना ही अनुचित है दूसरे तुलना करने पर फीका लगना स्वाभाविक भी है। साथ ही इस तुलना मे 'ब्रजविलास' का सौन्दर्य निखर ही नही पाता। कृतिकार ने सूरदास तथा तुलसीदास का अनुकरण किया, नकल नहीं। अनुकरण को अरस्तू जीवन की मूल प्रवृत्ति मानता है।[3] साथ ही 'छोड़ मोटे की गहिए' नामक लोक गान से भी यह अनुकरण सराहनीय ही है। दोनों कृतियों का प्रभाव ग्रहण करने के कारण कृति म साधारण पाठक के लिए अद्भुत सुविधा हो गई है। न तो तुलसी के दर्शन परक जटिल स्थल इसमे हैं और न चुनौती देने वाली दृष्टकूट की सरणियाँ। यह तो कथा का सहज वर्णन है।

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३६६

२ वही पृ० ३६७

३ डा० नगेन्द्र—अरस्तू का काव्य शास्त्र।

खडी बोली काव्य के प्रथम महाकाव्यकार हरिऔध जी ने इस काव्य को महाकाव्य माना है 'उन्होंने स्थान स्थान पर कथाओं को सगठित रूप में इस सरलता के साथ कहा है कि उसमें विशेष मधुरता आ गई है। यह उनकी भावमयी तथा सरस प्रकृति का ही परिणाम है। उन्होंने गोस्वामी जी का अनुकरण किया लेकिन उनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, जिसमें सरसता टपकी पडती है। उनके ग्रन्थ का शब्द विन्यास इतना कोमल है और उसमें कुछ ऐसा माधुर्य है कि स्वभावत सहृदयों को अपनी ओर खींच लेता है। उनके इस ग्रन्थ का प्रचार भी अधिक है।[1] आज भी यह ग्रन्थ कृष्ण भक्तों की वैजयन्ती बना हुआ है। यह प्रेमेश्वर की शाश्वत महत्ता के कारण अपनी जीवनी शक्ति अक्षुण्ण रखे है। साथ ही 'राम तुम्हारा चरित स्वय ही काव्य है' की भाँति 'कृष्ण तुम्हारा चरित स्वय ही काव्य है'[2] बनकर महाकवियों का प्रिय विषय बना। पीछे चल कर ब्रजवासीदास की इसी प्रबन्ध परम्परा को 'प्रिय प्रवास' तथा 'कृष्णायन' मे नया रूप मिला। भक्त उद्धारक नायक का लोक-नायकत्व समयानुकूल प्रतिष्ठित किया गया। इस प्रकार इस प्रबन्ध-काव्य को हिन्दी में कृष्ण चरित्र पर प्रथम महाकाव्य मानना चाहिए। कृष्ण-कथा को व्यवस्थित रूप से कवि ने प्रथम बार प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है, जो स्तुत्य है।[3] इस दृष्टि को अधिक पुष्ट रूप में प्रस्तुत करने के लिए पूर्व निर्धारित महाकाव्य की कसौटी से उसके महाकाव्यत्व पर विचार अपेक्षित है।

व्यापक परिधियुक्त सुगठित कथानक

सम्पूर्ण कथाख्यान कृष्ण की प्रख्यात कथा पर आधारित है। भगवान की लीलाओं के 'मानस' की भाँति स्थान-स्थान पर आध्यात्मिक सकेत हैं। कथा मे

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३४६

२ मैथिलीशरण गुप्त साकेत।

३ 'ब्रजविलास अपने ढग का अनूठा काव्य ग्रन्थ है। इसका सृजन समन्वय की उत्कट प्रेरणा का परिणाम है। ग्रन्थ रचना स०१८०६ वि० में प्रारम्भ हुई। इस समय तक काव्य के क्षेत्र में रीति और भक्ति काव्यों का समन्वय पूर्णत प्रतिष्ठित हो चुका था। प्रबन्ध के अन्तर्गत कवि ने कथा प्रसग को लीलाओं मे विभक्त किया है काण्डों और सर्गों मे नहीं। अस्तु, फारसी की मसनवी शैली का प्रभाव नहीं है। भगवान कृष्ण की लगभग अस्सी लीलाओं को कवि ने भागवत की भाँति पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में सकलित किया है।'

—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ३४६

लौकिक दृष्टि का अप्राधान्य है। यह कथानक समन्वय साधना का सुपरिणाम है। इसमें पुराण, भागवत, मानस, सूरसागर तथा नन्ददास के भवरगीत तथा रासपंचाध्यायी का भी समन्वय है। कवि ने काव्य का आधार सूरसागर के दशमस्कन्ध का पूर्वार्द्ध लिया है —

श्री शुकदेव कही हरि लीला। सुनी परीक्षित सब गुणशीला॥
सूरदास सोई हरि सागर गाया। यह विधि परम उजागर॥
विविध प्रकार चरित हरि केरे। तामहि बरणे सूर घनेरे॥
सो वह प्रीति रीति सुखदाई। मेर मन अतिशय करि भाई॥
ताम ब्रज विलास सुखदाई। सो कुछ कहिहौं करि चौपाई॥[1]

कृष्ण की कथा तो अपार है उसका वर्णन कवि अकेला कर भी कैसे सकता था। व्यक्ति की भी एक सीमा होती है, इस सीमा में कवि ने उनकी कथा का लोकरुचि के अनुकूल पाकर वर्णित किया है।

कथा में निरन्तरता, सरसता तथा सहज-बोध है। लम्बे लम्बे उबा देने वाले वर्णन इसमें नहीं हैं। कवि भक्त था और कथा के मार्मिक स्थलों को ही उसने चुना है। कथा का 'प्रबंध' मानकर लिखते हैं —

ताते निज मन की रुचि जानी। इहि विधि करौं प्रबन्ध सुबानी॥[2]

यह प्रबन्ध' अपने क्रम का श्रीमद्भागवत के आधार क्रम पर रखता है। सूरसागर तथा ब्रजविलास के कथा क्रम की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए डा० इन्द्रपाल सिंह लिखते हैं "जो कुछ भी हो नागरी प्रचारिणी सभा के सूरसागर के संस्करण और ब्रज विलास की घटनाओं के क्रम में पर्याप्त अन्तर है, जो ऊपर

---

१ ब्रजविलास, पृ० ५०७

२ वही, ५०९

उदात्त नायक पुरुष-पुरातन

परमब्रह्म, आदि, अनादि, सनातन, विष्णु, नारायण, वासुदेव, हरि-श्रीकृष्ण 'ब्रजविलास' के नायक हैं। वे धराधाम पर आनन्द क्रीड़ा तथा भक्त-उद्धारक रूप धारण कर अवतार लेते हैं। कवि ने उनकी लीलाओं के असाधारणत्व को कविता में ढाला है। ये कृष्ण ब्रह्मत्व तथा मानवत्व के अपूर्व योग से बने हैं। निर्गुण होते हुए सगुण अवतार धर धरणी पर लीला-पुरुष हैं—

> अलख अगोचर अज अविनाशी। पुरुष पुरातन विश्वनिवासी ॥
> जाको भेद न शिव मुनि जाने। ब्रह्मा पढ़ि-पढ़ि वेद बखाने ॥[1]

ये कृष्ण गोपीवल्लभ हैं। इन्द्र का गर्व चूर करते हैं, पर्वत उठाते हैं, पूतना पछाड़ते हैं और राक्षसों का नाश करते हैं। प्रेम-लीला करते हुए अघाते नहीं, प्रेम वश विश्व रमिया हैं। ब्रजविलास' के कृष्ण में व्यक्तित्व के मधुर तथा विराट प्रेम और युद्ध सभी की चरमसीमा है। गोपियों को रिझाते रीझते हैं, नाचते नचाते हैं। मुरली धर मुरली की माया में सबको बाँध लेते हैं, रूप में कामदेव तुच्छतर हैं। यादव कुल भूषण तथा विश्व विलोचन चोर हैं। कोटि उपमाएं उनके समक्ष फीकी हैं, वे गुणसागर, रूपसागर आनन्द-सागर हैं। उनमें शील, शक्ति एवं सौन्दर्य का समन्वित रूप मिलता है जिसका विस्तार से विवेचन आगे करेंगे। समस्त 'ब्रजविलास' नामक काव्य की एक ही ध्वनि है कृष्ण के व्यक्तित्व का मुक्त गान। कवि ने कृष्ण की दिव्यता को घटनाओं की भव्यता से उदारता प्रदान की है। 'धीरोदात्त गुणान्वित' से भी अपार रूप में वे गुणों के भण्डार हैं। अतः इस काव्य में वे मात्र महाकाव्य के अनुकूल धीरोदात्त नायक ही नहीं, उससे भी महत्तीय कोटि के नायक कहे जा सकते हैं। वे लोक, लोकोत्तर, अलौकिक तीनों के सर्वमान्य श्रेय नेता हैं।

रसात्मकता

भाव-या रस

इस काव्य में भक्ति भाव का प्रसार है। भगवद्‌रति का प्राधान्य होने के कारण इस काव्य का अंगीरस भक्ति-रस स्वीकार करना चाहिए। व्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण उसके नायक हैं। वैष्णव आचार्यों ने भक्ति को भाव न मानकर रस स्वीकार किया तथा उसे अन्य रसों से ऊँचा माना है। भक्ति की दृष्टि से रूप गोस्वामी ने 'भक्ति

---

१ ब्रजविलास, प० ४२

रसामृत सिंधु में' उसको रस मानकर उसकी व्याख्या की। इनके मत का समर्थन बहुत हुआ तथा शृंगार को भक्ति में समाविष्ट कर लिया गया। शृंगार का स्थायी भाव रति भक्ति में भगवद्रति नामक स्थायी भाव मान लिया गया। इस प्रकार वैष्णव आचार्यों ने भक्ति रस की न केवल प्रतिष्ठा ही की वरन उसे ही पूर्ण रस घोषित किया।[1] वैसे दण्डी ने भक्ति रस का अनजाने ही संकेत किया था[2] भक्तिमात्र समाराध्य सुप्रीतश्चततो हरि ॥[3]' बाद में परम्परापृथिन नवरसों के अतिरिक्त प्रेयस्-वात्सल्य, भक्ति, स्नेह श्रद्धा लौल्य, मृगया, अक्षव्यसन, दुःख सुख, उदात्त, उद्धत, स्वतन्त्र पाखण्ड क्रीडनक, कार्पण्य माया आदि रसों की भी चर्चा हुई[4] लेकिन रसों में भक्ति रस को विशिष्ट पोषण तथा प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। भक्ति रसात्मक सिन्धु में अनेक अवतारों का धारण करने वाले होने के कारण कृष्ण को 'अवतारावली बीज' कहा है।[5]

कृष्णस्य पूर्णतमता व्यक्ता भूद्गोकुलान्तरे।
पूर्णापूर्णतरता द्वारका मथुरादिषु ॥७८॥

स पुनश्चतुर्विध स्याद धीरोदात्तश्च धीरललितश्च।
धीरप्रशान्तनामा तथैव धीरोद्धत कथित ॥ ७६ ॥

'वैष्णव भक्ति-पद्धति में मूल स्थायी भाव वह अनुभूति है जो कृष्ण को आलम्बन रूप में स्वीकार करती है अर्थात श्रीकृष्ण विषयक रति ही स्थायी है। साहित्य शास्त्र के नौ स्थायी भावों का श्रीकृष्ण विषयक रति के आधार पर ही भाव जाना है।[6] कृष्ण में धीरोदात्त नायक के सभी गुणों को बतलाया गया है।

रस के आलम्बन, नायक चूडामणि कृष्ण, रति के विषय हैं वे व्रज में पूर्णतर मथुरा में पूर्णतम तथा द्वारिका में पूर्ण हैं। स्वकीया, परकीया गोपियाँ कृष्ण-वल्लभा हैं, कृष्ण भी जनरंजन तथा पूर्णावतार रूप में रसराज आनन्दकन्द प्रेमघन हैं। व्रजविलास में सर्वत्र कृष्णलीला का सूरसागर की भाँति प्रसार है।

---

१ डा० नगेन्द्र—रस सिद्धान्त, पृ०२६२

२ डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित—रस सिद्धान्त-स्वरूप विश्लेषण, पृ० २६८

३ दण्डी—काव्यादर्श २।३३

४ डा०उदयभानुसिंह—तुलसी दर्शन मीमांसा पृ० ३७८

५ सं० डा० नगेन्द्र—हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु पृ०१५९

६ वही पृ० १६४

७ वही पृ०२१ (भूमिका डा० विजयेन्द्र स्नातक)।

सम्पूर्ण काव्य भक्ति-सागर से हिल्लोलित है। कवि ने 'विघ्न विनाशक', 'दुष्टशासक, कृष्ण को अनेकश स्मरण किया है—

> कहत सुनत समुझत मन भाई। घ्यान रूप मय कथा सुहाई।।
> कम, धम, नहि नीति बखानी। केवल भक्ति प्रेम सुखदानी।।
> जानि कृष्ण के चरित पुनीता। कहि हैं सुनि हैं सन्त सुप्रीता।।
>
> + + +
>
> बिघन विनाशन सुमकरन, हरनताप त्रय मूल।
> चक्ति ललित नन्दनन्द के, सकल सुखन को मूल।।
> चरण कमल उर धार, श्री राधा नन्दलाल के।
> सुदर रस आगार, ब्रजविलास अब वर्णि हैं।।[1]

कृष्णचरित्र के मगलकरण, भवभयहरण, प्रजापालक, जनतारक, परम उद्धारक तथा असुर सहारक रूप के कारण सम्पूर्ण काव्य मे भक्ति रस अगी रूप में मिलता है। अ ग रसो के रूप म शृ गार, वात्सल्य, भयानक, रौद्र, अद्‌भुत आदि सभी रसा की योजना भी कवि ने प्रसगानुकूल की है। वात्सल्य का प्रबल वेग शिशु मन मोहन के वणन मे अनेक स्थला पर मिलता है—

> लगे चलन घुटरुवन आगन। लगे मात सा माखन मागन।।
> खेलत मणिमय आँगन माही। देखि रहत लखि निज परछाई।
> कबहुँ तात कहि पकरन धावै। जनु पाणि विचरत छवि पाव।।
> कबहु किलकि अनत उठि भाजै। गिरत परत घुटवन छवि छाजै।।[2]

कृष्ण द्वारा राक्षसो के वध तथा मानवेतर लीलाओ म अदभुत रस का परिपाक है। पूतना वध, वानासुर वध, मुख में ब्रह्माण्ड दिखाने वाली अनेक घटनाओ की इस काय म भरमार है। माटी खाते कृष्ण को माता रोकती है तथा कृष्ण मुह खोल देते हैं जिसम सृष्टि बसी है।

> दीनो बदन उघारि, नयन मु दि मात निकट।
> देखि चकित नद नारि, तन की सुरति रही नहीं।।[3]

इद्र कोप मे रौद्र दावानल वणन म भयानक, उद्धव-उपदेश म शान्त तथा राधा-कृष्ण प्रसग म श गार रस मिलता है। फिर भी कवि का मन भक्ति की ओर

---

१. ब्रजविलास, पृ० १२, १३
२ वही पृ०४७
३ वही, पृ० ६३

प्रवृत्त है और उसने 'रामचरित मानस' के राम की भाँति कृष्ण का भक्ति भाव रूप से पूरा वर्णन किया है।

उद्देश्य की ज्योति

व्रज-विलास का उद्देश्य है पतितों का उद्धार करना। सांसारिक प्राणियों के चित्त को कृष्ण में लीन करना तथा उन्हें आनन्द-साधना की ओर प्रवृत्त करना। यह काव्य रीतिकाल में लिखा गया जिस समय घोर शृंगारिकता का प्राधान्य था तथा राधा एवं कृष्ण गलियों में, राजदरबारों में, छेड़छाड़ में व्यस्त सामान्य नायक तथा नायिका रह गये थे। कवि ने इस घोर पतन के युग में भी कृष्ण के पावन चरित्र का गान किया तथा जनता को सत्प्रवृत्ति की ओर प्रवृत्त किया है। उसने राधाकान्ह सुमिरन के बहाने कथा न कहकर, लोकहिताय कथा को प्रस्तुत किया है। कृष्ण धेनु धरती, मानव तथा लोक धर्म की प्रतिष्ठा के लिए अवतारी रूप में वहाँ भी वर्णित हैं।[1] कवि का उद्देश्य मानसकार की भाँति अपनी कविता को जनप्रिय बनाकर एक महच्चरित्र की दिव्य घटाओं का गान है। तुलसी के 'मानस' के अपार तथा बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर ही कवि के मन में कृष्ण को भी वैसा ही चित्रित करने की प्रेरणा ने जन्म लिया। राम की समस्त विशेषताएँ उन्होंने कृष्ण में आरोपित की हैं अतः इस सम्पूर्ण कृति में कवि ने भक्ति की प्रबलता भक्ति रस की निरन्तरता तथा लोक मंगल की साधना को प्रधानता दी है। कृष्ण को लम्पट या छिछोरा की तरह चित्रित नहीं किया जैसा रीतिकाल में हुआ है उन्होंने कृष्ण को धर्मपालक आदर्श लोक नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

अभिव्यंजना शिल्प

कवि ने सर्वजनसुलभता को सर्वत्र अपनाया है। भाषा में शब्द अर्थ छन्द, अलंकार का कोरा चमत्कार नहीं है, झूठा रीतिकालीन वाग्वदग्ध्य तथा उक्ति-वचित्र्य की कलाकारी नहीं है। इस शिल्प में स्वच्छता सरसता तथा सरलता का प्राधान्य है। सूर की भाँति यह भी 'ब्रजभाषा' का काव्य सागर है। सूर की कोमल बिमल मधुर रस सानी[2], बानी का कवि पर बुरी तरह प्रभाव छाया है। उसने अपनी शिल्प के लिए कहा भी है—

> ताते निज मन की रुचि जानी। इहि विधि करौ प्रबन्ध सुबानी।
> द्वादस चौपाई प्रति दोहा। तह पुनि एक सोरठा सोहा॥
> कहूँ कहूँ सुभ छन्द सुहाई। भाषा सरलन अर्थ दुराई॥[1]

---

१ व्रजविलास पृ० १६

२ वही, पृ० १२

कवि ने स्वय भाषा की सरलता तथा ग्रथ की प्रसाद गुण शक्ति की उद्घोषणा की है। मिश्रबन्धुओ ने 'ब्रजविलास' की भाषा में 'वैसवाडी का प्राधान्य'[१] कह दिया था, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने मिश्रबन्धुओ के मत का प्रबल खण्डन किया। उनके मत से 'भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। इसमे कही अवधी का या वैसवाडी का नाम तक नही है। जिनको भाषा की पहिचान तक नही, जो वीर रस वर्णन की परिपाटी के अनुसार किसी पद मे वर्णों का महत्त्व देखकर उसे प्राकृत भाषा कहते हैं, वे चाहे जो कहे—भाषा सीधी सादी, सुव्यवस्थित और चलती हुई है। व्यर्थ शब्दो की भरती न होने से उसमे सफाई है।'[३] इसमे ग्रामीण तथा तद्भव शब्दो की भरमार तथा विदेशी शब्द खसम, सजाई आदि कम हैं। भाषा लोकोक्ति तथा मुहावरो से मधुर बन गई है। सकटाप्रसाद सिंह ने ठीक कहा है, 'सम्पूर्ण काव्य मे कवि का उद्देश्य उपमा तथा रूपको के काव्य को अनुरजित करना न होकर वस्तु को ही वास्तविक तथा प्रभविष्णु रूप से उपस्थित करना है। यही कारण है कि कवि ने रूप-सौन्दर्य की तीव्रता और प्रभावोत्पादकता के लिए अलकारो की विशेष योजना पर ध्यान नही दिया।'[४] अलकारो की लादी यहाँ नही है। पौराणिक शैली मे सब कुछ स्पष्टता से कहा गया है। कवि ने अपने शिल्प को जनप्रियता के आधार पर प्रस्तुत किया है, यही कारण है कि ब्रजविलास' आज भी कृष्ण भक्त सन्तो के कठ का हार बना हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ब्रजविलास' का महाकाव्य न मानना कवि के प्रति अन्याय होगा। इसका कथाफलक कृष्ण जन्म से मथुरागमन तथा उद्धव उपदेश से मथुरा आने तक का आख्यान है। इसका कथानक विस्तार मे महाकाव्य का है नायक चूडामणि कृष्ण हैं जो धारोदात्त से भी ऊपर की कोटि मे आते हैं। रसत्व, प्रभावत्व तथा शैली का चारुत्व इसे पौराणिक पद्धति का सफल महाकाव्य सिद्ध करता है। प्रबन्धात्मकता इसमे सराहना योग्य है। अत इसे 'भक्ति प्रधान खण्डकाव्य'[५] अथवा 'प्रबन्धात्मक एकार्थ काव्य'[६] न मानकर भक्तिपरक पौराणिक महाकाव्य ही मानना उचित प्रतीत होता है।

---

१ ब्रजविलास पृ० १२

२ मिश्रबन्धु विनोद, भाग ३, पृ० ३९७

३ आ० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास, प० ३६७

४ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ३५४

५ डा० शकुन्तला दुबे—काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास, प० १३०

६ डा० इन्द्रपालसिंह—रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध काव्य, पृ० ३८१

ब्रजविलास के कृष्ण—विकसनशील चरित्र

समस्त भारतीय नायकों में कृष्ण सर्वाधिक लोकप्रिय नायक हैं। भारतीय साहित्य की सम्पूर्ण सौन्दर्य चेतना, लोक चेतना एवं लोक दृष्टि को इस नायक में पाया जा सकता है। सौन्दर्य देव दिव्य प्रेम की विलक्षण लीला पुरुष रूप धारण कर साहित्य में अवतरित हुआ। कृष्ण के नायकत्व के उद्गम स्रोत तथा विकास की चर्चा करते हुए उपर्युक्त विवेचन में उनके विकसनशील चरित्र की झाँकी को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। राम का चरित्र मर्यादा की लक्ष्मण रेखाओं में इतना बाँध दिया गया कि उन पर मनमानी मौज में लिखना तुलसीदास के बाद असम्भव हो गया। कृष्ण के चरित्र में आरम्भ से ही एक विशेष प्रकार की काव्यात्मक लचक रही और कवियों ने प्रत्येक युग में उनको युगानुरूप प्रस्तुत किया। प्रत्येक कवि दार्शनिक तथा साधक भक्त ने उसमें अपने ढंग से परिवर्तन किये। कृष्ण में परिवर्तन का क्रम इतना बढ़ा कि वेदों का कृष्ण, पुराणों का कृष्ण, भागवत का कृष्ण, महाभारत का कृष्ण तथा सम्प्रदायों का लगातार एक 'विशेष' परिवर्तन के साथ मिलता रहा। परिवर्तन का चक्र इतना प्रबल रहा कि प्रत्येक युग का रंग उन पर चढ़ता है। एक ओर भक्तिकाल का कृष्ण पूर्णावतारी कृष्ण है और दूसरी ओर रीतिकाल का कृष्ण सामान्य राजाओं के रसिया चरित्र की भाँति रति विहारी सामान्य नायक हैं। आधुनिक काल में लोकसुधारक तथा लोकरक्षक बनकर प्रियप्रवास तथा कृष्णायन आदि महाकाव्यों में प्रतिष्ठित हुए। कृष्ण के चरित्र में आरम्भ में यह गुण है कि कृष्ण को नाना पुराणों का क्षेत्र मिला, बहुत से सम्प्रदायों में उपास्यदेव पद मिला, काव्य-कला [illegible] मूर्तिकला आदि समस्त ललित कलाओं में स्थान मिला, उसे [illegible] विहार-स्थल के रूप में प्राप्त मिला, वह सम्पूर्ण साहित्य में ललित-नायक के रूप में [illegible] हो गया। मुकुट [illegible] तथा [illegible] पर [illegible] हुई है। इस प्रकार कृष्ण के चरित्र का उपर्युक्त विवेचन के आधार पर विकासशील चरित्र ([illegible]) कहना ही समीचीन है। [illegible] महाकाव्य [illegible] होता है, वह ही विकसनशील चरित्र [illegible] का परिणाम होता है। [illegible] रहा है। [illegible] के साथ मिल जाता है। [illegible] है उसका चरित्र [illegible] के द्वारा [illegible] चरित्र का विकसनशील चरित्र [illegible] है। [illegible] चरित्र का विकास हुआ है। उसका निखार

व्यक्तित्व जब कवि पेशा वाली जातियों की सामूहिक सम्पत्ति बन जाता है तो उसके साथ-साथ नवीन घटनाएँ तथा कथाएँ बनती, मिटती रहती हैं। उस चरित्र का मूल रूप इतना परिवर्तित तथा परिवर्द्धित हो जाता है कि उसे पहिचानना कठिन हो जाता है। कृष्ण ऐसा ही चरित्र है, जिसमें विकसनशील चरित्र की सम्पूर्ण विशेषताएँ मिलती हैं। डा० सत्येन्द्र ने कृष्ण कथा पर विस्तार से विचारोपरान्त अपना निर्णय दिया है कि 'कृष्ण कथा का यह रूप सिद्ध करता है कि यह कथा लोक-कथा के रूप में प्रचलित थी और इसके कई रूपान्तर समय समय पर हुए, जिनमें से जो रूपान्तर जिसे मिला उसका उपयोग उसने अपनी दृष्टि से किया।'[1]

नायक कृष्ण

इस महाकाव्य की सम्पूर्ण कथा के आधार स्तम्भ भक्तों के लीला विहारी कृष्ण हैं। ये कृष्ण गुणों की खान हैं, सर्वेश्वर, वासुदेव भगवन्त हरि हैं। कंस ऐसा प्रबल प्रतिनायक भी उनके समक्ष एकदम फीका है। राक्षसों का वध करने में उन्हें अपार शान्ति मिलती है, उनका जन्म आनन्द का प्रसार तथा पापी दानवों के विनाश के लिए हुआ है।[1] वे अलख अगोचर, अज, अविनाशी, पुराण-पुरुष हैं,[2] परन्तु भूमि पर आनन्द का दान करने के लिए गीता में कहे गये अपने कथन को पालन करते हैं तथा अवतार धारण करते हैं। 'व्रजविलास' के कृष्ण प्राचीन परम्परा से चले आते हुए शत शत गुणों से अलंकृत नायक हैं। उनकी लीला लोकप्रियता में अद्भुत है।

सम्पूर्ण 'ब्रज विलास' में 'मानस' तथा 'सूरसागर' की भाँति भक्ति रस का अखण्ड प्रवाह है। भक्ति के आलंबन कृष्ण का व्यक्तित्व आन्तरिक तथा बाह्य रूप में अत्यन्त दिव्य है। वे व्रजेन्द्रनन्दन सच्चिदानन्द रूप सर्वैश्वर्यशाली पूर्ण भगवान तथा पूर्णावतार हैं। वे अनन्त ब्रह्माण्डों के आधार होते हुए भी यशोदानन्दन हैं। व्यक्तित्व को परखने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी द्वारा निर्धारित 'शील, शक्ति तथा सौंदर्य'[4] तीन महागुणों की कसौटी विद्वानों में सर्वमान्य हो गई है। कृष्ण के व्यक्तित्व में इन तीनों का मेल किस सीमा तक मिलता है इस पर अगले पृष्ठों में प्रकाश डालेंगे।

शील तथा शक्ति तत्व

कृष्ण का चरित्र मर्यादाओं से नियन्त्रित नहीं, पूर्ण मुक्तक पुरुष का चरित्र

---

१ डा० सत्येन्द्र—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन, पृ० ४०७
२ व्रजविलास, पृ० १
३ वही, पृ० ३१
४ आ० रामचन्द्र शुक्ल—चिंतामणि, प्रथम भाग, पृ० २१८

है। 'शील-तत्त्व' की दृष्टि से राम तथा कृष्ण दो भिन्न भिन्न प्रतीक हैं। राम के चरित्र में अपार मर्यादा है कृष्ण के चरित्र में मुक्त भागवाद। एक मर्यादा का प्रतीक है, दूसरा लीला की सहजता का प्रतीक है। कृष्ण का चरित्र एक लीलामय चरित्र है, अत रसमय एवं रंगों से भरा पड़ा है, उसे किसी भी सामित कोण से नहीं नापा जा सकता है। व्रजविलास में कृष्ण में मर्यादामूलक नैतिक मूल्यों की अवहेलना अधिक नहीं है, फिर अनेक गोपियों के साथ विहार का वर्णन तो पर्याप्त मिलता है—चकई भँवरा खेलन जाना[1] राधा जू के प्रथम मिलन को जाना[2], पनघट लीला[3], चीरहरण लीला[4], गोपियों के प्रेम की उन्मत्त अवस्था लीला[5] स्नानलीला[6], बाट में मिलन की लीला[7] सारी के घर मिलन की लीला[8], रास लीला[9] आदि अनेक लीलाओं का विस्तार ही उनके पूर्ण शील का उद्घाटन करता है। लीला स्थल की दृष्टि से कृष्ण लीला तीन स्थानों पर—व्रजलीला, मथुरा लीला तथा द्वारिका लीला का सम्मिश्रण है। व्रजलीला को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, जिनमें लौकिक तथा अलौकिक दोनों प्रकार का चरित्र दृष्टिगत होता है। कृष्ण के चरित्र में शीलशक्ति दोनों ही इतने मिल गये हैं कि उनके लीलात्मक चरित्र से उनको अलग नहीं किया जा सकता है। उनको अलग करने से दोनों का रूप उभर भी नहीं पाता, अत इस दृष्टि को ध्यान में रखकर ही शील तथा शक्ति तत्त्व का साथ साथ निरूपण किया गया है। इस शील तथा शक्ति-तत्त्व का स्पष्ट करने के लिए 'व्रजविलास' में निरूपित लीलाओं का सर्वेक्षणात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है।

गोकुल में घटित अलौकिक लीला

व्रजवासीदास' ने कृष्ण लीलाओं का पूर्णावतार का अलौकिक लीलाओं के रूप में गान किया है। यथा—

> जनरंजन भंजन कलुष, राधा नंद कुमार।
> गुप्त प्रगट लीला करत, ब्रज मे युगल विहार ॥[10]

पापों से संसार का भार उतारने के लिए भगवान को अवतार धारण करना है। विघटन कालीन परिस्थितियों में पापित कृष्ण कथा भारत की संस्कृतियों का *उज्ज्वल प्रतीक है। कृष्ण ने अपने प्रबल पापी प्रतिनायक कंस को पराजित करने*

---

१ व्रजविलास, पृ० ११६ — २ वही, पृ० १२२
३ वही, पृ० १८९ — ४ वही, पृ० २०४
५ वही, पृ० २८८ — ६ वही पृ० ३१६
७ वही, पृ० ३३९ — ८ वही, पृ० ३५२
९ वही, पृ० ३६९ — १० वही, पृ० १२७

से पूर्व उसके सहायकों का वध किया एवं अपनी अपार दैवी शक्ति का परिचय दिया।

पूतनावध

भागवत पुराण में पूतना को 'कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी' बताया गया है। पुराण 'ब्रह्मवैवर्त' में उसे कंस की 'भगिनी' कहा गया है।[2] सुन्दर कपटकारी कामिनी वेश तथा उरोजों मे विषलेपन का वर्णन सभी ने किया है। कंस कृष्ण-वध के लिए पूतना को भेजता है—

> इहाँ पूतना ब्रज मे आई। रूप मोहनी प्रकट बनाई॥
> गरल बाटि कुचसों लपटायो। ऊपर सुभग शृंगार बनायो॥
> अति ही कपट छबीली मोहै। जो देख ताको मन मोहै॥[3]

पूतना विषयुक्त स्तन छलकपट से कृष्ण के मुख में देती है और कृष्ण पयपान करते हुए उसके प्राणों को हर लेते हैं।[4] सूरदास ने पूतना-वध के बाद 'सिद्धर ब्राह्मण' के वध की चर्चा की है।[5] किन्तु ब्रजवासीदास ने इस घटना को छोड़ दिया है।

बाणासुर वध

भागवत में कागासुर कथा नहीं है, किन्तु ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण में इसके वर्णन हैं। सूरदास ने इस घटना को विस्तार दिया।[6] नन्ददास मौन रहे। ब्रजवासीदास ने इसका वर्णन किया है। काकरूपधारी इस असुर को कृष्ण पालना में लेटे लेटे ही चोंच पकड़ कर फेंक देते हैं और वह बेहाल होकर कंस के पास जाकर गिरता है।[7]

तृणावर्त वध

भागवत में इस विशाल दैत्य के रूप की चर्चा है।[8] सूर[9] तथा नन्ददास के

१ भा० १० ६ २
२ ब्रह्म वैवर्त्त पुराण, अ० १०
३ ब्रजविलास, पृ० ३८
४ वही, पृ० ३६
५ सू० सा०, पृ० १३४
६ वही, पृ० १६५
७ ब्रजविलास, पृ० ३६
८ भागवत, १० ७ २०
९ (क) सू० सा०, पृ० १३८ (ख) नन्ददास पृ० २१६

अनुसरण पर 'ब्रजविलास' में भी यह घटना मिलती है। कंस द्वारा भेजा गया तृणावर्त कृष्ण को लेकर आकाश में चला गया। वहाँ तृणावर्त का—

तृणावर्त को हरियो कीन्हो। ग्रीव लिपट तिहि नीचे लीन्हो ॥
कठिन शिला पर ताहि गिरायो। ताके ऊपर आपुन आयो ॥
चूर चूर करि ताके गाता। कीन्ह मुक्ति मुक्ति के दाता ॥[३]

गोकुल में घटित लौकिक लीला

नामकरण तथा अन्नप्राशन—नामकरण लीला में भागवत का आधार है। इसमें गर्ग मुनि आते हैं। सूरसागर में भी दो पद इसी प्रसंग के हैं।[४] गर्ग बलराम तथा कृष्ण का नामकरण करते हैं तथा कृष्ण के लिए कहते हैं—

रूप रेख जाके नहीं, अलख अनादि अनूप।
सो भक्तन हित अवतरयो निज इच्छा अनुरूप ॥
इनते बडो न कोय, ये कर्ता सब जगत के।
जो य करें सो होय, तुम सो हम साँची कहें ॥[६]

अन्नप्राशन का आधार भागवत न होकर ब्रह्मवैवर्त है।[७] ब्रजविलास में उसका विस्तार से वर्णन है।[८] कृष्ण की बाल छवि यहाँ अद्वितीय है—

कर चूरा पग पैजनी तन रंजित रज पीत।
उर हरिनख कटि किंकिणी मुख मण्डित नवनीत ॥[१]

इसके साथ साथ वरस गाँठ लीला[२] ब्राह्मण-भोजन लीला, चन्द्र प्रस्ताव लीला कर्ण छेदन माटी खान लीला, वृन्दावन लीला का भी वर्णन चरित्र की शोभा है। इनमें चन्द्र प्रस्ताव लीला तथा माखन चोरी अत्यन्त प्रभावशाली हैं।

वृन्दावन में घटित अलौकिक लीला

वृन्दावन विहारी की ये लीलाएं अपार शक्ति का उद्घाटन करती हैं। भागवत की कथा का आधार यहाँ है तथा वे बकासुर, वत्सासुर तथा अघासुर का वध करने

---

१ ब्रजविलास पृ० ४३
२ सूरसागर, पृ० १३६, १४०
३ ब्रजविलास, पृ० ५०
४ वही, पृ० १३, ४७
५ वही पृ० ४५
६ ब्रजविलास पृ० ५७
७ वही पृ० ५३, ५५ ५७, ५६ ६०, ६०, ६६
८ वही, पृ० ११६ १२०, १३३

हैं।[3] धेनुकासुर वध भी यही आता है।[4] पुलम्बासुर-वध भी उनकी अपार शक्ति का प्रतीक है।[5]

कालीदह लीला

यह कृष्ण से सम्बन्धित बहुत लोक प्रसिद्ध घटना है। इसका वर्णन भागवत, ब्रह्म विष्णु पद्म ब्रह्मवैवर्त तथा हरिवंश पुराण मे मिलता है। किन्तु इस प्रसग को कंस से सम्बंधित करते हुए सूर ने इसे पुराणो से भिन्न रूप दिया।[6] 'ब्रजविलास' म सूर सागर का ही पूरी तरह से अनुकरण है।[4] वे कालीदह मे कूद कर कंस द्वारा प्रेरित इस नाग को वश म करते हैं। नाग भी कृष्ण के परो म गिर कर बिनती करता है।

दावानल पान

भागवत मे कृष्ण द्वारा दावानल पान का वर्णन है,[1] पर यहा दावानल के पान का कारण स्पष्ट नही है। सूर ने अपनी मौलिकता से इस घटना को कंस से सम्बंधित कर दिया। 'ब्रजविलास' मे भी यह घटना कंस से प्रेरित है—

दावानल सुन तप की बानी। चल्यौ रिसाय गव उर आनी ॥
करो भस्म इक पल मह जाई। सहित गोद नन्द सुवन कन्हाई ॥[7]

ऐसे प्रबल दावानल के शक्ति रूप का वे पान कर जाते हैं तथा सब की रक्षा करते हैं।

गोवर्द्धन लीला

इस लीला के द्वारा कृष्ण इन्द्र का मद चूर चूर कर देते है तथा अपनी अपरिमेय शक्ति का परिचय देते हैं। यह प्रसग भी पुराणो की घटना पर आधारित है। नन्ददास ने इस घटना पर 'गोवर्द्धन लीला' नामक स्वतन्त्र रचना की। 'ब्रज-विलास' मे इन्द्र पूजा की चर्चा है। सभी ब्रजवासी सुरपति इन्द्र की सदा पूजा करते रहे हैं। ब्रज म इन्द्र का आतक देखकर कृष्ण अपनी मा से उनकी पूजा का कारण पूछते हैं तथा इन्द्र-पूजा का घोर विरोध करते हुए गोवर्द्धन, जो सबकी जीविका का माध्यम था, उस पर्वत की पूजा का महात्म्य बतलाते हैं। इन्द्र घोर वर्षा करते

---

१ ब्रजविलास पृ० १५७
२ वही, पृ० १८७
३ सूरसागर, २६६
४ ब्रजविलास, पृ० १६३
५ भा०—१०, १७ २५, १० १६ १२
६ ब्रजबिलास, पृ० १८२
७ वही,

है—अब वह गुणगान करना गिरधर उन को है।[1] इन्द्र उनका शक्ति का लोहा मानकर कहता है—

> करहु छमा अपराध तुम नहिं मानव जगदीश प्रभु ।
> मैं भूल्यो अभिमान आपनो कर अपराध नाथ ॥[2]

वृन्दावन में घटित लौकिक-लीला

वृन्दावन में सम्पादित लीलाओं में साधारण चीरहरण लीला का विशेष महत्व है। कृष्ण के साथ स्नान करती गोपियों के वस्त्रों को चुराए तथा यह स्वीकार कि उनके सभी अपराध हम सब कर सकते हैं। पश्चिम के विद्वानों ने यह अनुमान लगाया था कि कृष्ण पश्चिम और बंगाल से दयाल हुए।[3] भारतीय पण्डित यह विश्वास नहीं करते, परन्तु कृष्ण के साथ साथ सब विविध लीलाओं का प्रचार हो चुका है। अतएव अलौकिक लीलाओं को साधारण से साथ जोड़ दिया गया। कृष्ण के चरित में 'अद्भुतरस' का पूर्ण समावेश इन लीलाओं में है। ब्रजभाषा के सभी कवियों ने इस कथा विषय पर विस्तार से लिखा है। सूरदास ने इस लीला में अपार तन्मयता प्राप्त की है।[4] ब्रजविलास में इस लीला का वर्णन नहीं है। कवि ने गोदोहन लीला आदि में इसका संकेत किया है। भागवत तथा 'ब्रह्मवैवर्त' की चीरहरण लीला को सूरदास ने रुचिरता से रच दिया। ब्रजविलास में सोलह सहस्र बालाएं कृष्ण के साथ प्रेमाधिक्य प्रकट करते हुए तप करती हैं। गोपियाँ शिव पूजा के द्वारा कृष्ण को पति रूप में चाहती हैं।[5] अन्तर्यामी कृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं—

> इस नम यह प्रेममय गोपिन को गोपाल ।
> भय प्रसन्न कृपाल चित जनहित दीन दयाल ॥[6]

कृष्ण स्नान करती गोपियों की पीठ मलते हैं, जिससे गोपियाँ बहुत लज्जित हो धिक्कारती हैं। कृष्ण चीर-हार चुराते छिपाते हैं। गोपियाँ कृष्ण की यह शिकायत यशोदा से करने की झूठी धमकी देती हैं तथा यशोदा से कहती भी हैं पर यशोदा 'बिना भीति नहिं चित्त लहेरो' कहकर उनकी बात मानती नहीं हैं।[7] पुन कृष्ण-

---

१ ब्रजविलास पृ० २४५ २४६ २४७ २४८ २४९
२ वही, पृ० २५१
३ रामधारीसिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ७८
४ सूरसागर, पृ० ५२९ ५३४, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६
५ ब्रजविलास, पृ० २०५
६ वही, पृ० २०५
७ वही, पृ० २०७

दर्शन की लालसा गोपियों में जागृत रहती है। दूसरा बार स्नान को जाती हैं तथा वस्त्र घाट पर रख कर यमुना में केलि करती हैं। 'कामातुर कुमारियाँ कृष्ण का ध्यान धरती हैं, अंतर्यामी प्रकट हो जाते हैं तथा वस्त्र लेकर 'नीम' पर लटका देते हैं। अंत में गोपियों की अनुनय विनय पर भक्त-वत्सल प्रसन्न हो जाते हैं।

कृष्ण का चरित्र मर्यादाओं को ललकारने वाला चरित्र है। प्रेम के शाश्वतमूल्य की स्थापना के लिए लोक वेद मर्यादा को तोड़ना उन्होंने आवश्यक समझा। जहाँ राम शील तथा शक्ति की मर्यादाओं में बंध कर विकसित होते हैं वहाँ कृष्ण जीवन में सहजता, स्वच्छंदता अपना कर प्रकटित दिखाई देते हैं। फिर भी वे अपनी शक्ति तथा शील के आचरण में दिव्य लीला नायक हैं। 'जहाँ प्राकृतिक पराप्राकृतिक, मानवीय अतिमानवीय विरोधी शक्तियाँ इस सम्पूर्ण मनुष्य की गति को बाधित करती, वहीं कृष्ण की लोकोत्तर शक्तियाँ उदित होकर उनको निस्तेज कर देती हैं—चाहे वे इन्द्र के रूप में आयें, चाहे ब्रह्मा के रूप में, चाहे यश के रूप में हों, चाहे शास्त्रीय आदर्श के रूप में। उनका मर्यादाभंग जीवन के नवीन आयामों और गति की नवीन संभावनाओं के अन्वेषण और उनकी स्थापना की भूमिका बनाता है।[1] अतः कृष्ण के चरित्र में 'शील' रूप अन्य नायकों से भिन्न मिले तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। उनकी प्रेमामृत तथा रमामत की लीला पूर्ण पुरुषोत्तम की दिव्य लीला उन्हें पूर्ण पुरुषोत्तम का दिव्य लीलाधर भूमिका में उपस्थित करती है। स्रष्टा भी विशुद्ध लीला के उदात्त रूप में महान है। प्रो० जगदीश पाण्डेय ने निबंध शृंखला में उदात्त के सैद्धान्तिक पक्ष को सामने रखते हुए कहा है कि "जो आलम्बन हमारे चित्त को मात्र आकर्षित कर उसका उन्नयन या उत्कर्षण करता है— वह उदात्त कहलाता है।"[2] यह मान्यता कृष्ण पर खरी उतरती है, वे अपनी लौकिक तथा अलौकिक लीलाओं से केवल आकर्षित ही नहीं करते, अपितु चित्त का उन्नयन करते हैं।

कृष्ण तथा सौन्दर्य तत्त्व

कृष्ण का जन्म प्रेम रस का प्रसार करने तथा प्रेम की शाश्वत प्रतिष्ठा के लिए हुआ है। सौन्दर्य के प्रति प्रबल आसक्तिमय उनके समान हिन्दी संसार में दूसरा नायक नहीं है। उनके सम्पूर्ण चरित्र में सौन्दर्य की एकान्त तथा शाश्वत प्रतिष्ठा है। आर्यों की सौन्दर्यवादी तथा आनन्दवादी जीवन दृष्टि ने कृष्ण में दिव्य, अनिन्द्य तथा दिव्यादिव्य सौन्दर्य को साकार करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि वह कला में अपराजेय सौन्दर्य के नायक हैं। ललित कलाएं तो मानो कृष्ण के कारण ही

---

१ सूर साहित्य नव मूल्यांकन पृ० १३४, डा० चन्द्रभान रावत

२ 'साहित्य' पत्रिका, पृ० १५

जीवित रही। भगवान तथा सौन्दर्य का यह साक्षात्कारपूर्ण तादात्म्य भागवतयुग में प्रथम बार हुआ। सम्पूर्ण भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का मूर्तिमन्त रूप कृष्ण के प्रेम में प्रकट हुआ। यहाँ नारायण, विष्णु इत्यादि सब पूर्ण भगवान में स्थित हो गए हैं।[1] कृष्णावतार का मुख्य हेतु प्रेम रस का आस्वादन करना है तथा आनुषंगिक हेतु असुरों का संहार करना है। राधा भाव या गोपी भाव वाली मधुरिमा ने ही इस सौन्दर्य में प्राण फूँक दिए हैं। कृष्ण के मदनमोहन, नागर, रसिक शिरोमणि, रसिया, ललित विहारी, रतिनागर, राधा-वल्लभ, गोपी-वल्लभ आदि रूप का वर्णन जम कर हुआ है, बोध का सागर मन-रास प्रसंग-वश कृष्ण-कथा में आ गया है।[2]

'सौन्दर्य' की कोई एक परिभाषा विद्वान् आज तक नहीं कर सके हैं। वैसे कला, सौन्दर्य का ही पर्याय है। परम सौन्दर्य ईश्वर में ही निहित है।[3] वही सौन्दर्य परमात्मा द्वारा लोक में अभिव्यक्त होता है। सौन्दर्य में रमणीयता, विस्मय, आह्लाद, प्रतिक्षण नवीनता का भाव निहित रहता है। सौन्दर्य शास्त्र के आचार्यों ने सौन्दर्य (काण्ट, हीगल, क्रोचे आदि) के अन्तरंग एवं बहिरंग पक्षों पर विचार करते हुए उसे जीवन-बोध स्वीकार किया है।

'कृष्ण पूर्ण रूप से सौन्दर्य प्रेम और कला के नायक हैं। उनके व्यक्तित्व का बहिरंग और आन्तरिक सौन्दर्य लोक-सौन्दर्य के अन्तर्गत भारतीय आचार्य मानते रहे हैं। कृष्ण में दिव्य और मानवीय सौन्दर्य लीलाओं के माध्यम से हमें मिलता है। कृष्ण में दर्शन तथा कला दोनों का सौन्दर्य बोल पड़ा। 'दर्शन' अपना सम्पूर्ण दायित्व कला को सौंप कर निश्चिंत हो गया। काव्य शास्त्र को एक अभूतपूर्व 'रस' मिला। 'काम-कला' को आध्यात्मिक सन्दर्भ मिला। ये ही सब कारण हैं कि कृष्ण की लीलाओं के अभिप्राय सभी ललित कलाओं के संस्थानों में अनिवार्य हो उठे। भारत का कवि-कंठ वात्सल्य की अनुकृतियों से भर गया।[4] कृष्ण प्रस्तरों खण्डहरों, वंशी की ध्वनि, गायक की तान, राधा गोपी मान सब में व्यक्त हुआ।

कृष्ण के साथ प्रेम-कथाओं की भरमार ने उन्हें जीवन की मूल चेतना रति से सम्बद्ध कर दिया। कृष्ण को मध्यकालीन आचार्यों ने प्रेम ब्रह्म के रूप में ग्रहण किया। बंग देश में चैतन्य तथा उत्तरी भारत में वल्लभाचार्य ने परम भाव की उस

---

१ डा० रत्नकुमारी—१६ वीं शती के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि, पृ० १८२

२ डा० र० श० केलकर—मराठी और हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन पृ० १५८

३ क्रोसे एस्थेटिक्स, प० २६३

४ डा० चन्द्रभान रावत, सूर साहित्य नव मूल्यांकन, पृ० १५०

आनन्द विलायनी कला का दर्शन जनता को कराया जिसे प्रेम' कहते हैं।[1] ब्रजभूमि रस भूमि या लीला भूमि बन गयी। भक्तों के भगवान ने वहां अवतार ले लिया, पराजित जाति की निराशा नष्ट होने लगी। आचार्यों तथा सगुण कृष्ण भक्त कवियों ने माधुर्य भक्ति का द्वार खोल दिया। 'उन्होंने भगवान का प्रेममय रूप ही लिया, इससे हृदय की कोमल वृत्तियों के ही आश्रय और आलंबन खड़े हुए। आगे जो इनके अनुयायी कृष्ण भक्त हुए, वे भी उन्हीं वृत्तियों में लीन रहे। मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर इन कृष्णोपासक वैष्णव कवियों ने जीवन के प्रति अनुराग जगाया, या कम से कम जीने की चाह बनी रहने दी।"[2] आचार्य शुक्ल जी का यह मत बहुत महत्वपूर्ण है और कृष्ण के साथ ऐसा ही हुआ।

ब्रजवासीदास ने सूरदास के कृष्ण का सौन्दर्य-वर्णन में पूरी तरह से अनुकरण किया। यही पर यह भी कहा जा सकता है कि सूर के कृष्ण का सौन्दर्य ही ब्रजवासीदास के कृष्ण का सौन्दर्य है।

याम कछुक बुद्धि नहिं मेरी। उक्ति युक्ति सब सूरहि केरी॥
कियो सूर रस सिन्धु अपारा। ताम प्रेम तरंग अपारा॥[3]

सूर द्वारा कही गयी मुक्तक कथा को कवि ने प्रबन्ध कथा में 'मानस' की शैली पर प्रस्तुत किया है। कृष्ण जन्म से 'मोहन' हैं। उनके सौन्दर्य को देखकर सब रीझते हैं। उनकी छवि सागर रति नागर तथा कामदेव से अधिक कहा गया है, व कोटि-कोटि कामदेवों को अपने सौन्दर्य में पीछे छोड़ते हैं। अरुण कमलदल नैन, पीताम्बर, वंशीधर धारी हैं—

शीश मुकुट जल कुण्डल कानन। शरद मयंक सरल शुभ आनन॥
चारु चरण पंकज दल लोचन। चितवनि सुखद ताप त्रय मोचन॥
कुटिल अलक भ्रू मेचक ताई। जनमन हरण परम सुखदाई॥
पीतवसन तन श्याम तमाला। उर श्री वत्स चारु मणि माला॥
भुजा विशाल मनोहर धारी। शंख चक्र गद अम्बुज धारी॥
अंग अंग सब भूषण नीके। परम विचित्र भावते जीके॥
चरण सरोज उदित नख जोती। कमल दलन राखे जनु मोती॥
परम प्रताप सुभग शिशु देखा। अद्भुत रूप देवकी देखा॥

---

१ आ० रामचन्द्र शुक्ल—भ्रमर गीत सार की भूमिका, पृ० १
२ वही, पृ० १
३ ब्रजविलास, पृ० १२

देखि भ्रमित छबि चकित मति, प्रतिढिग लिये बुलाय।
दम्पति परमानन्द मन परे हृषि सुत पाय ॥[1]

उनके अधर अरुणारे, कच घूघर वाले हैं। अपनी छबि म वे अद्वितीय हैं—

तनक कपोल अधर अरुणारे। तनक तनक कच घुघर वारे॥
कुटिल भृकुटि की रेख सुहाई। मसि बिन्दुक तापर सुखदाई॥
नयन नासिका भाल विशाला। कलबल बोलन परम रसाला॥
अल्प दशन चिबुकदर ग्रीवा। तन घनश्याम मृदुल छबि सीवा॥[2]

उनकी शोभा विचित्र है, उनकी बाल छबि देखकर देवताओं का मन मोहित होता है। सभी स्त्रियां उन्हें देखकर मोह लेने को तरसती हैं। उनकी वेशभूषा भी बहुत आकर्षक है—

नील जलज तन सुन्दर श्यामा। सुभग अंग सब छबि के धामा॥
अरुणतरुण नख ज्योति सहाई। कोमल कमल चरण सुखदाई॥
रुनझुनु पजनि पायन बाजै। मनसिज यंत्र सुनत उर लाजै॥
कटि किंकिणी जटित रवकारी। पीत झगुलिया सुभग सवारी॥

\+ \+ \+

अरुण अधर मधि दशन द्युति प्रकट हसन मे होति।
मानहु सुन्दरता सदन रूपरत्न की ज्योति ॥[3]

चन्द्रमा के लिए मचलते कृष्ण का सौन्दर्य अद्भुत है। उन्हें देखकर कामदेव लज्जित हैं।[4] राधा उन्हें देखकर ठगी सी रह जाती है। गोपियाँ रात दिन उन्हें देखना चाहती हैं। सुर, नर, मुनि उनके दर्शन से धन्य हो जाते हैं। दानव भी उनके सौन्दर्य को देखकर नत सिर होते हैं। उनके सौन्दर्य के समक्ष संसार की सभी उपमाएं झूठी हैं। मुरली के साथ उनकी त्रिभंगी छबि विस्मयकारी है। संसार का समस्त सौन्दर्य उनके मोर मुकुट से भूषित है। इस प्रकार कृष्ण का सौन्दर्य सभी प्रकार से अलौकिक है।

ब्रजवासीदास ने कृष्ण में शील शक्ति एवं सौन्दर्य को 'बहुजनहिताय' प्रदर्शित किया है। उनमें प्रधानता सौन्दर्य की है, परन्तु उनका व्यक्तित्व, शील तथा

---

२ ब्रजविलास, पृ० २१
१ वही, पृ० ४६
२ वही, पृ० ४८
३ वही, पृ० ५१

शक्ति से भी रहित नही। सूर के कृष्ण की भांति ब्रजवासीदास के कृष्ण भी प्रेम-सौन्दय के अक्षय भण्डार हैं। उनका लीला विहारी रूप ही प्रमुख है, अवसर पडने पर, जन कल्याणार्थ वे असुरो का सहार करते हैं। इस प्रकार उनका सौन्दय, एव शील एव शक्ति से भास्वर है।

अवतारी कृष्ण

ब्रजविलास' के कृष्ण, पूर्ण ब्रह्म प्रकट अविनाशी तथा पूर्णावतार हैं। आनन्दघन मनमोहन हैं। वसे भी कृष्ण मध्यकालीन साहित्य मे दो रूपो मे मिलते हैं। प्रथम मे वे पुरुष, नारायण तथा विष्णु के अवतार हैं, तथा द्वितीय मे हरि या उपास्य, ब्रह्म के अवतार हैं। उपास्य ब्रह्म का अवतार भू भार हरण के लिए होता है। पृथ्वी गाय का रूप धारण कर भगवान के पास जाती है और दुदशा का वणन करती है।[1] कृष्ण उसे अवतार लेने का वचन देते हैं।[2] उनकी समस्त लीलाओ का प्रयोजन जन कल्याणार्थ ही है। त्रयतापमोचन, अमित फलदाता, जग वल्लभ, करुणासागर, दीनदयाल आदि शब्दो का कृष्ण के साथ ब्रजवासीदास ने अनेका बार प्रयोग किया है। भक्त कवि ने 'अखिल लोकपति जनसुखदायक'[3] रूप मे अपनी भावना का प्रकाशन अनवरत किया है। यथा—

> ज कृपाल आनन्द वरुथा। बन्दन चरण सकल सुरभूपा।।
> जपुरुषारथ अमित अनूपा। महापुरुष सचराचर भूपा।।[4]

'ब्रजविलास' के ये अवतारी कृष्ण महाभारत के वासुदेव कृष्ण तथा पुराणो के गोपाल कृष्ण से मेल खाते हैं। श्रीमदभागवत से कृष्ण का अवतारीवादी रूप बहुत प्रसिद्ध हो चुका था।[5] अवतारवाद मे कृष्ण एक ओर तो विष्णु के अशावतार

१ ब्रजविलास, प० १९
२ वही, पृ० १०
३ वही, प० ७१
४ वही, प० २०
५ 'कृष्ण प्राब्लेम' शीषक निबन्ध मे 'ब्रह्म' 'विष्णु', 'पद्म', 'हरिवश', 'ब्रह्मववत्त', 'भागवत' 'वायु', 'देवी भागवत' अग्नि, और लिंग पुराण' के आधार पर कृष्ण के अवतारों की व्यापक चर्चा है।
ए० बी० ओ० आर० आी० १०

के रूप में प्रसिद्ध हुए और दूसरा और उन्हें भगवान और ब्रह्म से भी अभिन्न किया गया।[1] उनके मत से समस्त मध्यकालीन सम्प्रदाय एवं साहित्य पर राधा-कृष्ण के साथ गोपाल कृष्ण का प्रभाव पड़ा है।[2] डा० दीनदयाल गुप्त कृष्णावतार में चतुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक कृष्ण के दोनों रूपों का एकीकरण स्वीकारते हैं।[3] अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्णावतार के सर्वांग व्यापकता से लिए हैं। 'ब्रजविलास' में चतुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक कृष्ण के दोनों रूपों का वर्णन है। असुरनिकन्दन भक्तों के हित ब्रज में मनुज अवतार धारण करते हैं।[4] कृष्ण के जन्म पर कवि ने मानस के कवि की भांति 'भए प्रगट कृपाला दीनदयाला'[5] प्रार्थना की है। गुरसिद्ध मुनि, सामान्य मानव इस आनन्दसागर के अवतार से धन्य धन्य हो गए। जिसे 'नेति नेति' कहते हैं, वही यशोदा की गोद में पलने लगा।[6] अवतारी कृष्ण प्रसन्न कार्य व्यापारों की दिव्यता से लौकिक लोकोत्तर तथा अलौकिक हैं। इस प्रकार 'ब्रजविलास' में कृष्ण के पूर्णावतार रूप में उपनिषदों पुराणों तथा मध्ययुगीन साहित्य के रूपों का अधिक प्रभाव मानना चाहिए। सभी में वासुदेव तथा देवकी-पुत्र के अवतार की चर्चा है।[7] इस प्रकार 'ब्रजविलास' में कृष्णावतार के हेतु अनेक हैं—

(१) असुरों को नष्ट करने के लिए अवतार धारण करना।
(२) वसुदेव तथा देवकी को मुक्ति देना।
(३) घोर पापी कंस से पीड़ित जनता को नव्य जीवन देना तथा उसका मद चूर्ण करना।
(४) लीलावतार रास लीला आदि में।
(५) इन्द्र के प्रताप को नष्ट करना तथा गोवर्द्धन-पूजा की प्रतिष्ठा करना।
(६) भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करना।

---

१ डा० कपिलदेव पाण्डेय—मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, पृ० ५२६
२ वही, पृ० ५२७
३ डा० दीनदयाल गुप्त —अष्टछाप तथा वल्लभ सम्प्रदाय, प० ४०४ भाग २
४ दो० ब्रज को सुख को कहि सके सुख भो बढ़ो अपार।
सुखनिधान भगवान जह, लियो मनुज अवतार।।
सो० प्रगटे गोकुलचन्द सन्त कुमुद बन मोदकर।
तमकुल असुरनिकन्द, ब्रजजनचारु चकोरहित।। ब्र०वि०, प० ३१
५ रामचरित मानस, पृ० ३२
६ योगी जेहि ध्यावें ध्यान में पावें करि करि योग विरागा।
जो वेद न जानें नेति बखानें सो सुत ह्वै उर लागा।। ब्र० वि०, पृ० २७
७ यद्यपि हरि वसुदेव कुमारा। उदर देवकी के अवतारा।। ब्र० वि०, प ५७७

कृष्ण पूर्ण लीलावतारी तथ असुर-संहारक सगुण ब्रह्म हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कृष्णावतार के दो रूप ही मुख्य माने हैं—'श्रीकृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं। एक में वे यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, राजा हैं, कंसारि हैं। दूसरे म वे गोपाल हैं, गोपीजन वल्लभ हैं, राधाधारसुधापान शालि-वनमालि हैं।"[1]

नायक निर्धारण

कृष्ण का चरित्र युगो-युगो से प्राप्त परम्परित विकसनशील चरित्र है, ऐसा हम ऊपर कह चुके हैं। वेदों से लेकर मध्यकालीन साहित्य तक उन प्रत्येक युग अपना प्रभाव डालता है। भारतीय सांस्कृतिक धरातल पर कृष्ण का व्यापकत्व इतना बढ़ा कि तन्त्र मन्त्र, प्रेम मण्डलियो म, आध्यात्मिक परिषदों में, योगियो ज्ञानियो की बाना म, सत्ता के सगुण सरस उपदेश मे भक्ति आन्दोलन मे उनका रूप निखर उठा। प्रेम का जीवन मे अनन्त विस्तार है, वह ही जीवन का मूल है अत प्रेम कथाओं को कृष्ण के साथ साधनासिद्ध तथा आचार, अष्ट भक्त दोनो ने अत्यधिक मनोहर ढंग से सम्बद्ध कर दिया है। 'ब्रजविलास' में उनकी अनेक कथाओं का जमघट दृष्टिगोचर होता है। प्रबन्ध-रूप मे कृष्ण-कथा को भक्त ने विस्तार के साथ लिखा है तथा दिव्य लीला के दर्शन किए हैं। कृष्ण के नायकत्व का 'ब्रजविलास' में रखने के लिए हम पूर्व निर्धारित मानदण्डो से विचार करते हैं।

कथा का सूत्रधार

नायक कथा में रीढ की हड्डी का काय करता है। उसका काय-व्यापार ही कथा है, उन काय-व्यापारो में ही जीवन झलक उठता है। प्राच्य एव पाश्चात्य दोनो देशो के आचार्यों ने नायक को कथा का प्राणवान सूत्रधार माना है। कृष्ण रसिक-शिरोमणि रसेश्वर तथा सौन्दर्य के अक्षय भण्डार हैं, कवि ने उनकी कथा को भक्ति-माग म ढाल लिया है। कथा का रूप अक्षर अक्षर भक्तिमय विश्वास तथा आस्थामय है। ब्रजविलास' मे कवि ने पुराणो की कथा को सूरदास के माध्यम से सीधा ग्रहण किया है। यह कथा पूरी-पूरी सूरदास की अनुकृति है।[2] कवि ने इस

---

१ मध्यकालीन धर्म साधना, पृ० १२८

२ (क) कहिहु सकल चरित विस्तारी। भव भय भजन मंगलकारी॥
सो द्वारिका चरित्र सुहाये। प्रकट पुरानन में सब गाये॥ ब्र०वि०११

(ग) यामें कछुक बुद्धि नहि मेरी। उक्ति युक्ति सब सूरहि केरी॥
कियो सूर रस सिंधु उधारा। तामें प्रेम-तरंग अपारा॥
हरि के चरित रतन विधि नाना। ब्रजविलास सो सुधा समाना॥
पद रचना करि सूर बखान्यो। कोमल विमल मधुर रस सान्यो॥

कथा का उद्देश्य कम, धम या नीति न मानकर सुखदानी भक्ति माना है।[1] 'सूर सागर' की घटनाओं के क्रम मे यहाँ कवि ने प्रबन्धानुकूल परिवतन कर लिए हैं। घटना-क्रम सूरसागर' के आधार पर होन हुए भी भागवत पुराण की ओर अधिक है। डा० मु शीराम शर्मा ने अनेक तर्कों से यह सिद्ध किया है कि सूरसागर' भागवत का अविकल अनुवाद नही है। वह एक स्वतन्त्र रचना ह। बालिका राधा, बालक कृष्ण राधा के साथ खेलने के प्रसग और भ्रमरगीत की व्यग्यमयी उक्तियाँ भागवत मे ढूढने पर भी नही मिलेंगी। भागवत म उद्धव कथा आती है, पर उनके पहुँचने पर गोपियाँ उन्हें चिढाती नही। सूरसागर मे वल्लभ के दशन की भी छाया है, इसका पूर्ण प्रतिबिम्ब नही।' उन पर अन्य आचार्यों की भी छाप है। सूर किसी का अनुगामी नही, क्रान्तिदर्शी भक्त कवि है। तरग पर तरग लीला पर लीला की दिव्यता ही 'सागर' की महानता है, कवि की महानता है। ऐस पुष्टि-माग के जहाज तथा भक्ति के समुद्र सूर का ब्रजविलास म अनुकरण हितकर ही सिद्ध हुआ। 'छोटे मोटे की गहिये' नामक कहावत ही यहा चरिताथ होती है। सूरसागर के दशम स्कन्द का पूर्वार्द्ध ही ब्रजविलास है। वसे भी सूर के कवित्व की कोमलता, कमनीयता और कला भागवद भक्ति भावुकता और भव्यता, वलक्षण्य, विलास व्यग्य और विदग्धता सब का स्रोत यही तो है जहा से ये भिन्न भिन्न भाव धारायें फूट कर सागर मे समाविष्ट होती हैं एव उसके नाम को चरिताथ करती है।[2]

'ब्रजविलास' की कथा क कृष्ण प्रेममयी साधना की चरम सीमा है। दिव्यता उनके आगे समाप्त हो जाती है। भक्त जनो के सच्चे आनद हैं विश्रामधाम

---

१ समै सम के राग सुहाये। अति विस्तार भाव मन भाये॥
ताको स्वाद कह यो नहि जाई। कहत सुनत श्रवनन सुखदाई॥
अतिशय करि मोहत मनहि, गथय गुणन के सग॥
कहते जन ताम नहीं, क्रम सो कथा प्रसग॥
मेरे मन अभिलाष प्रभु प्रेरित ऐसो भयो
कहि हौं यह रस भाव क्रम सों कथा प्रसग सब॥ ब्र०वि० १२

२ कहत सुनत समुझत मन भाई। ध्यान रूप मय कथा सुहाई॥
कम धम नहि नीति बखानी। केवल भक्ति प्रेम सुखदानी॥ ब्र० वि० १२

३ सूर सौरभ, प० १०७

४ वही, प० १३३

हैं। अलग, अरूप होते हुए सगुण साकार हैं।[1] असुरों का संहार करने वाले, यमुना की उपवन-श्रेणियों में विहार करने वाले, व्रजनागर, गोपांगनाओं में आसक्त रहने वाले, वन्दावन के इन्द्र, ग्वालिनियों के साथ प्राणनायक, कामशेखर यमुना के नाविक, गोपी रूपी समुद्र में विहार करने वाले, राधा के अवरोध करने में रत व्रज स्त्रियों के निरन्तर प्रिय गोपियों के नेत्रों के तारे, आनन्द के रसिक, अलक्षित कुंजकुटीर में रहने वाले राधा के सर्वस्व सम्पुट, अत्यन्त गूढ रस के पण्डित, गोपियों के चित्त को आनन्दित करने में चन्द्रमा के तुल्य क्रीडा ताण्डव के पण्डित, कंदर्प कोटि लावण्य नवीन मधुर स्नेह वाले, राधिका रति लम्पट तथा रास के उल्लास में मदोन्मत्त श्री कृष्ण उनके इष्ट देव हैं।[2] यह सकल कथाधर कृष्ण ही 'व्रजविलास' की कथा के मेरुदण्ड हैं। कथा भक्ति रस या मधुर रस से ओत प्रोत हो गयी है। परम पुरुषोत्तम शास्त्रों का सार, उपासना का अमृत, साधना का फल, सच्चिदानन्द-मय, रसमय, मुरलीधारी लोक छलिया ही संसार की सुन्दरता का विकास है एवं सौन्दर्य, प्रेम एवं साधना का अक्षय भण्डार है।[3] पुराण पुरुष कृष्ण अपनी आह्लादिनी शक्ति राधा तथा अन्य शक्ति रूपा गोपियों के साथ विहार करने के लिए ही आता है। सम्पूर्ण कथा का झुकाव कवि ने आनन्द-कला के प्रसार की ओर ही किया है।

कथा-नायक ने राक्षसों का वध किया। पूतना वध स्तनपान में किया। तृणावर्त का पटक कर मार डाला। यशोदा को मुंह खोल कर सम्पूर्ण विश्व दर्शन दिया। बकासुर, अघासुर, वत्सासुर आदि का हनन किया। कालिया की फूत्कार पर शक्ति प्रकट की तथा मर्दन किया। धेनुकासुर, प्रलम्बासुर, अरिष्ट व्योम तथा केश का भी दृढ़ता से वध किया। गोकुल का प्रतिवार्षिक 'इन्द्रोत्सव' बन्द करके कृष्ण ने वहाँ गोवर्द्धन उत्सव कराया। मल्लविद्या की कीर्ति सुनकर कंस

---

१ अलाप अरूप अनीह अज, प्रभु अद्वैत अनादि।
गर्भवास सो देवकी, कौतुक निधि सर्वादि॥ ब्र० वि०, पृ० २०

२ डा० श्यामनारायण पाण्डेय—हिन्दी कृष्ण काव्य में माधुर्योपासना, पृ० ६३

३ सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वद्युताम्बरम्
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्॥ १०
गोपगोपी वातीत सुरद्रुम तलाश्रितम्,
दिव्यालकरणोपेत रत्नपंकज मध्यगम्॥ १०
कालिन्दी जल कल्लोलसंगि मारुत सेवितम्।
चिन्तयश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृते॥ १२
—गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद्—५२, ५३ श्लोक

बन गया । 'राधा कान्ह सुमिरत को बहानो' इसी पतित परम्परा का नारा है ।

कृष्ण भारतीय परम्परा म सर्वाधिक व्यापक नाम हैं । साहित्य म वे धरती से आसमान तक फल हैं । उनका अनत मुखी विलक्षण व्यक्तित्व निरन्तर कवियो को प्रेरणा देता रहा है । यह हम ऊपर विस्तार से विचार के साथ कह चुके हैं । डा० व्रजेश्वर वर्मा ने ठीक कहा है कि 'उसमे प्रत्येक युग के अनुरूप परिवतन की असीम सम्भावनाए प्रकट हुई हैं । फिर भी भक्त कवियो ने इसम जिस शाश्वत प्रेम चिरन्तर आनन्द, असीम सौन्दय और अलौकिक रसवत्ता का समावेश किया था, वह किसी-न किसी रूप म निरन्तर वतमान रही है । वस्तुत कृष्ण प्रेम तथा आनन्द के प्रतीक बन गये हैं ।'[1] अत व्रजविलास' के कृष्ण प्रेम प्रतीक ही हैं ।

'व्रजविलास कृष्ण कथा का प्रेम सागर है । लीलाओ मे लीला-पुरुष की दिव्यता फूट पडी है । लीला विस्तार के पीछे उनकी स्वेच्छा ही है । भगवान की प्रकट अप्रकट लीला ही व्रज लीला है । प्रेम की रास लीला जीवन लाला का वरदान है । इसका म भक्ति का उद्वेलन तथा मानव के महामानवत्व का विस्तार है । रस काव्य का प्राण तत्व है साहित्य का शाश्वत धम है, वह रस भी कृष्ण का दान ही है वह स्वय रस रूप ही है । उनका अवतार भी लोक मगल के निए हुआ है । कृष्ण जो करत हैं, उसम अभिमान का गन्ध नही । उनमे अपनी कथनी-करनी' को सबसे कहन की तुच्छता नही । गम्भीरता, शालीनता, उदारता तथा वीरोचित धर्मिता है । कारागृह म ले निय जन्म, सब को बन्धन मुक्त बना दिया । अलौकिक आनन्द लीला मे रस का सागर उमड पडा । कवि ने स्थान-स्थान पर उनकी मानवीय लीलाओ की सहजता तथा चारुता दिखाते हुए महानता का उद्घोष किया है । अत राम का भाति ही कृष्ण शाश्वत महत्त्व के व्यक्ति हैं । राम शील के प्रतीक है और कृष्ण अक्षय सौन्दय विस्तार के प्रतीक हैं ।

दृढ आत्म शक्ति

चक्रधारी असुरसहारक, वेद मर्यादा की उपेक्षा करने वाले भक्त वत्सल, राधा मनमोहन, गोपीवल्लभ तथा पीताम्बरधारी कृष्ण म अद्भुत अपरिमेय तथा दिव्य-कोटि की अपराजय आत्मशक्ति है । जयदेव तथा विद्यापति के कृष्ण शृ गार की लीला म जमे रह हैं, रग भरा ससार ही उनका ससार है । सूरदास तथा अष्ट छाप के कवियो ने कृष्ण के मधुर तथा विराट दोनो ही रूपा की चर्चा की है वे बाल लाला तथा राम लीला भी करत हैं तथा अवसर पडने पर पूतनादि का वध और

1 प्र० स० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६७, भाग २

गोवर्द्धन भी उठा लेते हैं। लेकिन इन सभी के काव्यों में भी उनके मधुर पक्ष की ही प्रधानता है। ब्रजवासीदास ने कृष्ण को थोड़ा गतिशील रूप देना चाहा है। वे राम की भाँति लोक मंगल की प्रतिष्ठा हेतु अवतार धारण करते हैं, गौ, ब्राह्मण, गरीब से दानवीय बर्बरता के रक्षक हैं। समाज में प्राचीन मूल्यों को हटा कर नवीन मूल्य सामने लाते हैं जैसे इन्द्र पूजा के स्थान पर गोवर्द्धन पूजा का आरम्भ कराना, क्योंकि इन्द्र की अपेक्षा व्यावहारिक रूप में गोवर्द्धन ही गोपों के जीवन में अधिक निकट तथा हितकर था। अतः बड़ा परिवर्तनकारी रूप वहाँ मिलता है। कृष्ण का चरित्र कवियों का साम्प्रदायिक रूप से इष्ट रहा, सभी माधुर्य-साधना के साधक उन्हें माधुर्य स्वामी ही मानते रहे। नायक के प्रख्यात रूप में महाकाव्य का नायक बनने योग्य सभी गुण विद्यमान हैं पर इन कवियों ने उसे आदर्श-नायक बनाने की कल्पना भी नहीं की। वे उनके मधुर मानव रूप के प्रति ही अपनी भावनाओं के उन्नयन में लगे रहे।"[1] यह मन अपना स्पष्टता में आदर्श नायक की कमी कृष्ण में पाता है।

आदर्श नायक

भक्तिकाल या रीतिकाल में कृष्ण आदर्श नायक नहीं चित्रित किये गये, इस तथ्य के पीछे सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि भी है। कृष्ण को प्रत्येक सम्प्रदाय ने अपने अनुकूल रूप देना चाहा, भक्तों ने अपने अनुकूल ढालना चाहा। भक्तिकाल तक राम का आदर्शवादी रूप इतना जम गया कि भक्तों को मन विराम के लिए कोई नायक चाहिए था और वह कृष्ण ही हो सकता था। उनके प्रतिपाद्य का स्वरूप ही सौन्दर्यपरक है। इसलिए कृष्ण में मुक्त आत्माभिव्यक्ति का अवसर मिला। तन तथा मन से डूब कर रम्य-लोक में भक्तों ने कृष्ण नाम के साथ विहार किया। जीवन का मुक्त भोग तथा उद्दाम आनन्द भावना कृष्ण लीला दिव्य प्रेम प्रसंग में प्रस्फुटित हुई। कृष्ण के एक ही रूप को द्रौपदी का चीर बनाया गया, शेष रूप या तो नकार दिए या कभी-कभी चर्चा में घुस पैठ गये। रीतिकाल के कवि ने उन्हें अपना अस्त्र बनाया। पतित होती जाति ने कृष्ण तथा राधा को माध्यम बना कर खूब मन बहलाया है। आश्चर्य है कि रीति काल में होते हुए भी ब्रजवासीदास के कृष्ण रीतिकाल के अपार विलासी कृष्ण से एकदम भिन्न हैं तथा भागवत और महाभारत की परम्परा के समृद्ध रूप हैं। प्रत्येक विपत्ति को झेलते हैं तथा रंगभूमि के खेल को खेलते कभी खिन्न नहीं होते उसमें नायक की स्थिरता का गुण अत्यधिक है। आधुनिक काल के कवियों ने जिनमें हरिऔध जी तथा द्वारिका प्रसाद जी मिश्र प्रियप्रवास तथा 'कृष्णायन' के लेखक प्रमुख हैं कृष्ण को लोक नायक बनाकर

---

१ डा० सावित्री सिन्हा—ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति-काव्य में अभिव्यंजना शिल्प पृ० ४५६

आदश चरित्र बना दिया है। यह सकेत कि कृष्ण का आदश नायक चित्रित करना चाहिए, शायद उन्ह 'व्रजविलास' से ही मिला हो। क्योंकि 'व्रजविलास' में कृष्ण 'हल्के' जीव नही अपार जीवट के आदश चरित्र हैं।

इन सभी गुणो के पीछे उनकी अपार आत्म शक्ति की तजस्विता ही है। कभी भी किसी भी दानव से भी घबराते नही, नाग कथा म भी वे कही घबराय चित्रित नही हैं अय लोग बहुत घबराये हैं पर कृष्ण सदव निश्चित दीख पडे हैं। कस ऐसा भयँकर, दुष्ट तथा मायावी प्रतिनायक भी उन्ह डरा धमका नही सका है। इसके पीछे उनकी अपार आत्म शक्ति ही है।

प्रतिनिधि चरित्र

'व्रजविलास' के कृष्ण को 'आदश चरित्र' अभी हम स्वीकार कर चुके हैं। आदश' सवहितकारी प्रेरणा शक्ति है। महाकाय के नायक म भारतीय आचार्यों ने अनेक गुणो की कल्पना की है। यह उन्होने सवमान्य सिद्धान्त बना दिया है कि वह महान या महत्तम होना ही चाहिए। वह दिव्य हो या दिव्यादिव्य चरित्र आदश हो तथा जातीय आदर्शों का रक्षक पर प्रेरणा देने वाला होना चाहिए। इस प्रकार 'आदश चरित्र ही महाकाव्य का नायक हो सकता है। लकिन आदश चरित्र की सीमा पाश्चात्य जगत के नायको मे नही है। बियोवुल्फ तथा पराडाइज लास्ट' के नायक आदश चरित्र नही हैं तथा न ही उन्ह भारतीय कसौटी से 'धीरोदात्त गुणान्वित' कहा जा सकता है फिर भी वे महाकाव्य के नायक हैं। लकिन महान उद्देश्य के लिए बलिदान त्याग तथा सेवा की भावना उनम है। कृष्ण शास्त्रीय महाकाव्यो मे ढग का आदश चरित्र वाला नायक नही हैं, लेकिन उनम चारित्रिक वशिष्टय सवत्र है। अदम्य त्याग, असीम साहस तथा अपार प्रेम म यह वशिष्टय दखा जा सकता है।

इस प्रेम म निश्चल उन्मुक्तता है। आरोपित मर्यादा कृष्ण म नही है, बधी हुई लीक वाली मर्यादा का तोडना ही उनके चरित्र की विशेषता है। मर्यादाओ के बधन म जकड कर जीना, उस दिव्य लीला पुरुष न सीखा हा नही, सिखाया भी नही। जीवन की प्रेमपरक सहजता तथा सरल मानवीय मूल्यो म उन्ह आस्था है, मर्यादाओ के आडम्बर म नही। उनका चरित्र जीवन का प्रतिनिधि चरित्र इसीलिए है कि सम्पूर्ण मनुष्य' उनकी दृष्टि से ओझल नही हुआ, पूर्ण मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा लोक प्रेम के प्रसार से होता है और कृष्ण ने यही किया। जीवन का मुक्त होकर जीने का भोगपरक सन्देश दिया। मर्यादा आवरण बनकर मूल मन को रोकती है पर मूल मन रह नही पाता, अपनी अभिव्यक्ति करता है। चीर लीला हरण का प्रसग इसका प्रमाण है। परकीया प्रेम एव पत्नीव्रत के आदश की अवहेलना करता

हुआ कितना ऊचा हो गया। प्रेम म मनुष्य तथा पूर्ण जगत बध गया है। 'जहाँ प्राकृतिक पराप्राकृतिक, मानवीय प्रतिमानवीय विरोधी शक्तियाँ इस सम्पूर्ण मनुष्य की गति को बाधित करती, वहाँ कृष्ण की लोकोत्तर शक्तियाँ उदित हो कर उनको निस्तेज कर देती हैं—चाहे वे इन्द्र के रूप म आयें चाहे ब्रह्मा के रूप म, चाहे यम के रूप मे, शास्त्रीय आदेश के रूप म[1] उनका मर्यादाभग जीवन का नवीन गति तथा सम्भावना है। जीवनेच्छा का उत्कट प्रमाण है।' इस रसात्मक नवीन पद्धति म चैतन्य विह्वल हो उठे। चण्डीदास के स्वरो म रस उमड पडा। सूर न इस अमन को लोक सुलभ बनाया। इन्ही मूल्यो के सहारे कृष्ण का व्यक्तित्व हमारा वैश्विक चेतना के इतना निकट हो जाता है। उन्होने 'सवेदना तथा अनुभव को नैसर्गिक रूप म ग्रहण किया।[2] कृष्ण इसी कारण अवतार पुरुष प्रतीक, लीला पुरुष प्रतीक आध्यात्मिक प्रतीक रासलीला म कामोन्नयन के प्रतीक बन गये हैं। इन सभी न उनको जीवन का प्रतिनिधि चरित्र बना दिया है। यहाँ उनके इन रूपो पर भी सक्षिप्त प्रकाश डालेंगे।

अवतार प्रतीक

स्वातन्त्र्य का उद्घोषक कारागार मे अवतरित हुआ। कारागार तथा रात्रि की कालिमा दोनो ही अत्याचार की प्रतीक हैं। अत्याचारो से मुक्ति हेतु ही वे अवतरित हुए। व्रजविलास के कृष्ण का लीलाधार भी लोक पीडा की मुक्ति हेतु ही है। कृष्ण का अवतार प्रतीक भी उनके काय व्यापारो का 'दिव्यत्व उजागर करता है।

लीला नायक का प्रतीक

दिव्यभावधर लीलामय है तथा लीला का विस्तार दिव्यता का ही विस्तार है। उनकी लीला अनेक ज मो के असीम फलो के पुण्य रूप म देखने को मिलती है। पुराणो में लीला के श्रवण से ही मोक्ष प्राप्त होता है, इस प्रकार की अनेक बार घोषणा है। यह लीला विस्तार लोक मगल के लिए ही है। सूर के कृष्ण की भाँति व्रजविलास के कृष्ण भी लीला विहारी तथा विलासी हैं। भक्त हृदय म रस प्लावनहेतु 'स्वेच्छा' से यह लीलावतार होता है। व्रजवासीदास कहते हैं कि घटघट वासी चिर अविनाशी सनातन आदि ब्रह्म जो आगम तथा निगम के परे हैं, वह भक्तो के हेतु यशोदा की गोद म खेलत हैं।[3] निराकार साकार होकर घर घर में गोरस चुराता है चार बनता है रसिक रसिया, छलिया बनता है।[4] व्रजविलास'

१ डा० चन्द्रभान रावत—सूर साहित्य नव मूल्यांकन, पृ० १३४
२ वही पृ० १३५
३ व्रजविलास पृ० १६ २८ ८०
४ वही, पृ० २६५

मे तो कवि ने प्रत्येक कथा को लीला' कहा है तथा पचास लीलाओं का विस्तार से गान किया है। सभी लीलाए भक्तो को परमानन्द की खान हैं। स्पष्ट रूप म ब्रजवासीदास न लीलावतारी कृष्ण का ही भक्तो के लिए गान किया है। यह लीला प्रतीक ही जीवन का प्रेम-लीला का प्रतीक है।

रास लीला का प्रतीक

कृष्ण का व्यक्तित्व इतना गतिशील तथा लोक के लिए आवश्यक है कि उसे किसी भी फार्मूले से नहीं देखा जा सकता है। उनकी रासलीला पर विचार करते हुए विद्वान आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक पद्धति से विचार करते रहे हैं। कृष्ण किसी एक परम्परा के साचे ढले व्यक्ति नहीं, अनेक परम्पराओं के मिश्रित रूप हैं। इस दृष्टि से उन्हें आभासिक संस्कृति की उपज कह सकते हैं। अपने सौंदर्य का विस्तार वे रासलीला के द्वारा करते हैं। व्रज भूमि रासलीला भूमि है जिसमे नारी नर तथा प्रकृति-पुरुष से सम्बन्धित यह महापर्व भगवान द्वारा मनाया जाता है।

ब्रजविलास' मे 'रासलीला' का वर्णन करते हुए कवि ने श्री रस राशि नायिकानायक [1] कहकर राधा कृष्ण की वन्दना सर्वप्रथम की है तथा राधा जी को 'रसरासविलासी' कहा है।[2] व्रजधाम की शोभा का निर्माण स्वय कामदेव ने किया है। जमुना, कूलकछार, मञ्जुभग कान्तिमय रेती, विपुल रंगी वसन से यह धाम रसरूप धाम है।[3]यहा वेदा म नेति नति अति अदभुत लावण्यनिधि रसिक नवल नन्द नन्द, पूर्ण ब्रह्म हरि, पूर्णावतार कृष्ण, रसरासपति रूप म अवतार लेता है।[4] कृष्ण वहा आनन्द की वर्षा मुरली बजाकर करते हैं तथा त्रिभुवन मन मोह लते है। गोपियाँ मुरली की तान पर सुध बुध खो देती है।[5] रसखान ने दूधदुहो पद मे जसा वर्णन किया है, वसा यहाँ वर्णन है।[6] कृष्ण गोपियो को वद-पथ' के त्याग के

१ ब्रजविलास पृ० ३६६

२ वही पृ० ३६६

३ वही, पृ० ४००

४ वही पृ० ४१०

५ सुनतहिं बौरीसी भई बिसरीं सब सयान।
लगीं ठगोरी सी मनहु मुरली को धुनि कान॥
रह्यो न उर मे धीर बानी बाजी कहिं उठीं।
आकुल विकल सरीर, सुनि मुरली ब्रज की तरणि ॥ ब्र० वि०, पृ० ४०३

६ पटदश सहत गोपिका गोरी। मुरली सत भई सब भोरी॥
रहि न सकीं धुनि मुरली सुनि अकुलाई। जो जसे तसेई ध्याई॥ ब्र० वि०,

कारण पातिव्रत धर्म का उपदेश देते हैं[1] तथा अन्तर्धान हो जाते हैं। गोपियाँ विरह विह्वल होकर ढूँढने लगती हैं कृष्ण प्रकट होते हैं तथा रास-लीला करते हैं।[2] गोपियों के इस सौभाग्य को देवता सराहते हैं।[3]

इस रास में 'ब्रह्म' की मुक्ति तथा आनन्द का विस्तार है। भावुक भक्त तो इस लीला को तरसता है तथा वेदान्ता भी इसे रहस्यमय आनन्द मानते हैं। वल्लभाचार्य ने तो ब्रह्मानन्द के लिए उच्चतर रूप रास ही माना है,[4] सरस देह का नहीं मन का अनुभव है। वल्लभ ने अनुकरणात्मक रास नित्यरास तथा अवतरित रास रास के तीन रूप माने हैं। नित्य वृन्दावन में नित्य रास आनन्द प्रसारिणी शक्ति के साथ होता रहता है। रास लीला में दो दृष्टियाँ हैं। अन्तरंग दृष्टि से यह परमानन्द है तथा बहिरंग से यह 'काम विजय' है। कृष्ण आनन्द विहारी हैं व्यभिचारी नहीं। नायक योगीश्वर तथा कामजयी है, गोपियाँ ब्रह्म विसर्जित उत्सगमयी हैं। इस कथा का कामानयन की लीला विद्वान मान चुके हैं।[5]

आध्यात्मिक प्रतीक

सम्पूर्ण ब्रजविलास में कृष्ण आध्यात्मिक प्रतीक के रूप में दृष्टिगत होते हैं। वे पूर्ण ब्रह्म हैं, वेदों पुराणों उपनिषदों का वे ही सार हैं। कर्म योग तथा ज्ञान योग भक्ति-योग तीनों का समाहार उनमें किया गया है। कृष्ण लीला भी प्रतीक योजना का समृद्ध भण्डार है। कंस कलियुग या घोर पापी तथा आततायी का प्रतीक है। गोपीयाँ आत्मा की वस्तु आश्रिता, चीरहरण आदि सभी प्रतीक हैं। उपनिषदों का आनन्दवाद भक्तिवाद में इन प्रतीकों ने ही बाँध दिया है। भाव प्रतीकों में बाल लीला ब्रज लीला निकुंज लीला गोदोहन लीला आदि प्रमुख हैं। शक्ति प्रतीकों में राक्षसों का वध तथा कालिय दमन लीला प्रमुख हैं। कृष्ण स्वयं पुराण प्रतीक या सांस्कृतिक प्रतीक हैं।[6]

---

१ ब्रजविलास पृ० ४०५

२ हसत करत बहुरस चरित, युवति वृन्द लिये संग।
गये जमुन तट स्याम तब क्रीडत कोटि अनंग ॥ वही पृ० ४०७

३ वही पृ० ४०६

४ *ब्रह्मानन्दात्समुद्धृत्य भजनानन्द योजयेत।*
लीला या युज्यते सम्यक सातुर्ये विनिरुप्यते ॥ आ० व० सुबोधिनी।

५ आ० बलदेव प्रसाद मिश्र—रासलीला का आध्यात्मिक तत्व कल्याण,
वर्ष ६ (अगस्त १९३१)

६ सांस्कृतिक प्रतीकों में व्यक्ति, इतिहास जन श्रुति युग चेतना सांस्तकृतिक एवं जातीय काव्य-कलाप सांस्कृतिक साहित्य साधना उपासना प्रायः सभी का अन्तर्भाव होकर समष्टिगत भाव की अयवता का ज्ञापक भाव समाहित हो जाता है।'—डा० कपिलदेव—मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, पृ० ६८४

पुराण प्रतीक या सांस्कृतिक प्रतीक

इतिहास की दृष्टि से (वेदों में कृष्ण, पुराणों में कृष्ण महाभारत में कृष्ण वासुदेव कृष्ण गोपाल कृष्ण द्वारका कृष्ण, राधा के कृष्ण) आदि प्रमुख हैं। कृष्ण पुराण प्रतीक शैली में विशिष्ट युग तथा संस्कृति रूप के प्रतीक हैं। पुराण प्रतीक किसी विचारक या ज्ञानी के मन में आते हैं तथा विशाल परम्परा या उनके अनुयायी उनका प्रचार करते हैं। प्रसार तथा परिवर्द्धन होने के साथ साथ पुराण प्रतीकों के मूल रूप में परिवर्तन आ जाता है कृष्ण का चरित्र इसका उदाहरण है। कृष्ण में प्रसंगोद्भावकत्व बहु आख्यानकता आदि अनेक विशिष्ट इसी कारण उत्पन्न हुए हैं। कृष्ण धीरे धीरे सांस्कृतिक प्रतीक बन गए तथा 'ब्रज विलास' तथा इससे पूर्व कृष्ण-भक्ति के कवियों ने उनकी सांस्कृतिक उपासना के प्रतीक रूप में गान किया।

कृष्ण ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बद्ध व्यक्तित्व हैं। महाभारत पुराण आदि में उनके कथन युग बोध को सामने लाते हैं। श्रीमद्भागवत गीता में उनका उपासनापरक रूप ही युग की देन है। इन्द्र पूजा के स्थान पर गोवर्द्धन पूजा भी उसी के अन्तर्गत आती है। कृष्ण भारतीय साधना के परिवर्तन ह्रास प्रगति के इतिहास से निर्मित है। राम की भाँति वे ही श्रेष्ठ सांस्कृतिक प्रतीक हैं।

कृष्ण को जीवन के अनेक क्षेत्रों में अग्रणी पाकर उनको जीवन का प्रतिनिधि चरित्र मानना चाहिए। कृष्ण जीवन के प्रतिनिधि चरित्र ही नहीं, हमारी संस्कृति के बहुत बड़े नेता हैं।

दिव्य शक्ति से अलंकृत

भक्त कवियों ने कृष्ण का दिव्य-व्यक्तित्व के रूप में ही प्रस्तुत किया है। उनके सभी कार्य व्यापार दिव्यता से ओत प्रोत हैं। वे पूर्णावतार तथा पूर्ण ब्रह्म हैं, यह संसार उनकी इच्छा का विस्तार तथा लीला क्षेत्र है। सूरदास ने इस दिव्य की कृपा से 'बहरा सुने गूंगों का बोलना रंक का राजा होना आदि अनेक रूपों से विनय की है। माटी खाते कृष्ण के मुख में तीनों लोकों का दिखाई देना भागवत अष्टछाप के कवियों तथा ब्रजवासीदास' सभी में है।[१] आंख मूंद कर खेलते कृष्ण माता को मुंह खोलकर भौंचक्का कर देते हैं।[२] उसमें नभ शशि रवि, सागर गिरिकानन सुर, सुरनायक शिव, चतुरानन, सकल लोक नायक यम पूर्ण सृष्टि जाल दिखाई देता है।[३] पूतना का वध तथा राक्षसों का वध इस दिव्यता का

---

१ ब्रजविलास, पृ० ६२

२ वही, पृ० ६१

३ ब्रजविलास, पृ० ६३

उदाहरण है। कालियदमन तथा गोवर्द्धन धारण भी लीला का अंग है। यह प्रभाव प्रतिपादक रूप को बताता है कि वह बड़े योद्धाओं को मल्ल-युद्ध में पराजित करता है। कृष्ण पूर्ण शक्ति धारक हैं। समस्त सिद्धियाँ उनके संकेत पर हैं।

विचारों की व्यापकता

महाकाव्य का नायक जातीय जीवन का प्रतिनिधि चरित्र होता है अतः उसके माध्यम युग युग के मानव को प्रेरणा प्रदान करने वाले होने चाहिये। उसके विचारों में सीमित प्रतिबद्धता का स्थान नहीं है। कृष्ण का व्यक्तित्व ही ऐसा है कि उसमें युग-युग की चेतना का मूर्तिमन्त रूप मिलता। भक्तों ने कृष्ण में असीम सम्भावनाओं को पाकर ही अनवरत गाया है। राधा तथा कृष्ण अतिमानव होते हुए भी पूर्ण मानव हैं।[1] ब्रजवासियों ने भक्ति के आलम्बन को सर्वांगता से ग्रहण नहीं किया। बाल-कथा काम कथा पार-कथा सभी में उदात्त जीवन के पक्षों को ग्रहण किया है। डा० सत्येन्द्र ने अनेक प्रमाणों से कृष्ण को लोक मानस की श्रेष्ठ उपज स्वीकार किया है।[2] कृष्ण पूर्णतः भक्ति सागर हैं। वे दीन-हीन गरीब तथा अमीर सभी को एक समान मानते हैं। उनके विचार सभी के प्रति एक समान हैं। वे सब को प्रिय हैं तथा सब उन्हें प्रिय हैं। भक्ति का विकास लोक-तत्वों के समन्वय का परिणाम है। भक्ति आन्दोलन वस्तुतः लोक-वेद तत्व के समझौते के लिए नहीं खड़ा हुआ था वरन लोक-तत्व को बौद्धिक मान्यता प्रदान कराने के लिए हुआ। यही कारण है कि भक्ति को पहले स्वीकार किया गया। बाद में उसके लिए प्रमाण ढूंढ़ गये या गढ़ गये। यह भक्ति तत्व जब सगुणत्व के साथ-साथ उत्कर्षवान हुआ, तब इसने लौकिक नायकों को वरण किया। कृष्ण मूलतः लोक नायक हैं। साथ ही उनका भक्ति का स्वरूप लोक-कथाओं के माध्यम से पूर्णता को प्राप्त हुआ है।[3] कृष्ण का दृष्टिकोण ही जन जन को अपनाने का है।

कार्यों की उदात्तता—विष्णु के अवतारों की शृंखला बहुत बड़ी है। अवतार-वाद के मूल में ही कार्यों की उदात्तता निहित है। भगवान् उदात्त कार्यों के लिए ही जन्म धारण करता है। विष्णु के समस्त अवतारों और उनकी विभूतियों तथा उनके अदभुत रूपों और व्यापारों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनके समस्त रूप केवल रमणीय ही नहीं अपनी समस्त शक्ति शील और अदभुत कार्यों की क्षमता से पूर्ण होने के कारण उदात्त भी हैं।[4] प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वान्

---

१ डा० मुन्शीराम शर्मा—भारतीय साधना और सूर साहित्य, पृ० ३३३
२ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन पृ० ३९५
३ वही पृ० ३९७
४ डा० कपिलदेव पाण्डेय—मध्यकालीन साहित्य मे अवतारवाद पृ० ६००

न 'उदात्त' पर गम्भीरता से विचार किया है। विचारक वर्क और काण्ट सुन्दर' तथा 'उदात्त' में भेद मानते हैं। सौन्दर्य 'रूप' से सम्बन्धित है तथा उदात्त में विद्रूपता अरूपता भी निहित है। पाश्चात्य विचारक लांजाइनस ने 'उदात्त' के स्वरूप पर तीसरी सदी के लगभग सैद्धान्तिक रूप से प्रकाश डाला है। उसके मत से उदात्त अभिव्यक्ति की सक्षमता तथा विशिष्ट उत्कृष्टता का नाम है जिससे श्रोता भावाक्रान्त हो जाता है।[1] हिन्दी में 'उदात्त' का प्रयोग सीमित अर्थ में होता है। वैसे भारतीय नाटककारों ने 'नाटक' के साथ 'उदात्त' को अपनाया है। प्राचीन साहित्य में अभिजात्य वर्ग से ही नेता का चयन होता था। नेता में धीरता' का अनिवार्य गुण सभी ने स्वीकार किया है। कठिन से कठिन संघर्ष में भी डिगता नहीं है। इस प्रकार वीरता, सहनशीलता, अतिमहत्ववान महागम्भीर आदि गुणों को 'उदात्त' कहा गया है।[2] इस प्रकार 'उदात्त' का विकास भारतीय परम्पराओं वीर नायकों की चारित्रिक विशेषताओं को लेकर हुआ। उदात्त' में अनेक प्रकार के अभिजात्य गुणों का समावेश है।

कृष्ण सौन्दर्य की दृष्टि से समस्त मध्ययुगीन चेतना पर छाये हुए हैं। उनका रमणीयता सुकुमार सौम्यता तथा चापल्यपरक लालित्य का लगातार कवियों ने वर्णन किया। ब्रजवासीदास ने कृष्ण की सक्रियता, महान् कार्य, सर्वपरक, अभयजीवन से युक्त पाप से जूझने में निर्भय, जाति के कल्याणार्थ अनवरत सचेष्टता तथा महान् सांस्कृतिक लक्ष्य उनमें चित्रित किया है। राक्षसों का वध तथा इन्द्र से जनता को मुक्त करने के उपाय इसके प्रमाण हैं। कंस के पास निर्भयता से जाना उसे पराजित करना मल्ल युद्ध में पछाड़ना सबको प्रेम का सन्देश देना उनकी उदात्त प्रकृति का प्रमाण है। उनमें उच्चतम कोटि की मनुष्योदात्त, वीरोदात्त शान्तोदात्त प्रेमोदात्त तथा धीरोदात्त रूप मिलता है। वे केवल धीरोदात्त नायक नहीं लोक नायक हैं। सूर के कृष्ण या ब्रजवासीदास के कृष्ण को काव्य शास्त्र (धीरललित अधिकांश में वे धीरललित स्वीकृति हैं) या धीरोदात्त की कोटि में रखने का साहस नहीं कर सकता। वे इन कोटियों से बहुत आगे की कोटि के लोक मानस में विहार करने वाले लोक नायक हैं।

---

१ डा० नगेन्द्र—काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ० १२

२ (क) महासत्वो ति गम्भीर क्षमावान विकत्थन ।
स्थिरो निगूढ़ाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढ़व्रत ॥ सा०द०, पृ० १३६

(ख) औदार्यहिनाम सर्वोत्कर्णेवृत्ति, तच्चविजिश्रीषुत्व एवोपपद्यते ॥
-द० रू० पृ० ७६

कथा का मूल भाव रस का आधार

सम्पूर्ण काव्य की कथा कृष्णमय है। कृष्ण ही कथा के केन्द्र हैं। सभी घटना व्यापार कार्य व्यापार उन्हीं से सम्बन्धित हैं। वे भक्तों के लिए 'लीला' करते हैं उनमें लीला नायक का [illegible] रूप ही प्रधान है। ब्रजविलास भक्ति सागर है कवि भक्त बार बार यह घोषणा करता है। भक्ति रस के आलम्बन कृष्ण पूर्णावतारी तथा [illegible] है। भक्ति काव्य में ही निर्गुण ब्रह्म को अवतारवाद के रूप में ऐसी कल्पना की गई कि वह भक्ति भावना का वास्तविक आलम्बन बन सका। निश्चय ही भक्ति-काव्य में भावना का जो विस्तार भारतीय साहित्य में मिलता है उससे इतर रूप भक्ति को रस में स्वीकार करना वस्तु स्थिति की उपेक्षा करना है। ब्रजविलास में भक्ति रस अंगी रस बनकर आया है शेष सभी अंग रस इसके पोषक रहे हैं।

भक्ति को रस माना जाय या भाव यह समस्या बीसवीं शताब्दी तक व्यापक और जटिल हो गई। भरत (३२१ ई० पू०) से लेकर सत्रहवीं शताब्दी में पण्डित राज जगन्नाथ तक किसी ने रस शास्त्र के अन्तर्गत भक्ति रस को मान्यता नहीं दी। अभिनवगुप्त ने नवें रस शान्त को स्वीकार करते हुए भी भक्ति रस का निषेध किया। स्वयं जगन्नाथ ने भक्ति रस के विभाव अनुभाव संचारी भाव तथा स्थायी भाव की चर्चा की। फिर नव रस रूढ़ि का पालन करते हुए उसे शान्त रस में अन्तर्भाव दे दिया।[1] तत्पश्चात भक्ति के आचार्यों ने गीता उपनिषद भागवत के रसमय ब्रह्म का आश्रय लेकर शाडिल्य भक्ति सूत्र नारद भक्ति-सूत्र मधुसूदन सरस्वती के भक्ति रसायन रूपगोस्वामी कृत 'हरि भक्त रसामृत सिन्धु' में विस्तार के साथ भक्ति पर विचार किया एवं इसे भक्ति रस स्वीकार किया गया। सभी अन्य रसों से उत्कृष्टता के आधार पर भक्ति रस को पराकोटि तथा अपराकोटि का स्वीकार किया गया। उधर चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से बंगाल के गौडीय भक्ति सम्प्रदाय में भक्ति रस का विशद विस्तार हुआ। इधर भक्तिकाल के कृष्ण भक्त तथा राम भक्तों ने इस रस को चरम शिखर पर पहुँचा दिया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में उत्तर यही है कि इसका प्रधान रस साहित्य शास्त्र की कोटि में नहीं आता-वह अलौकिक रस है। यद्यपि साहित्य शास्त्र सब रसों का आनन्द अलौकिक मानता है किन्तु सूर के काव्य का आलम्बन अलौकिक से भी अलौकिक है। यह आनन्द किसी अन्य कारण से नहीं सूर की कृष्ण भावना के कारण अलौकिक है। तुलसी के राम सूर के कृष्ण भक्त कवियों के जो जो नायक हुए हैं

---

१ रस गंगाधर पृ० ५४ ५५

इनने काव्य जगत की प्रचलित विधियों का अतिक्रमण सा कर दिया है। इन कवियों की यह अद्भुत कला है कि वे अपने स्वतन्त्र अधिकार से ऐसे नायक का अवतरण करते हैं, जो चराचर नायक हैं। कृष्ण के चरित्र और राम के चरित्र में राम और कृष्ण सम्पूर्ण काव्य का नायक, उपनायक, सब पात्रों सब घटनाओं का एक सूत्र से संचालन करते हैं।[1] ब्रजविलास के कृष्ण ऐसे ही हैं जो सचराचर नायक हैं। समस्त कथा में उनकी व्याप्ति देख कर उन्हें ही मूल भाव या रस का आधार मानना चाहिए।

'ब्रजविलास' का प्रधान रस शृंगार भी कहा जाता रहा है। यहाँ भी शृंगार तथा वात्सल्य का सामंजस्य सूर की भांति हुआ है।[2] यह कृति भागवत तथा सूरसागर का अनुकरण है इसलिए इन दोनों रसों पर कवि ने सम्पूर्ण भक्ति मन से अपने को न्योछावर किया है। सूरदास के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्पष्ट कहा है कि '*वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर* ने अपनी बन्द आँखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का कोना-कोना वे झांक आये। उक्त दोनों रसों के प्रवर्तक रतिभाव के भीतर की जितनी मानसिक वृत्तियों और दशाओं का अनुभव और प्रत्यक्षीकरण सूरदास कर सके, उतनी का और कोई नहीं। हिंदी साहित्य में शृंगार का रस राजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने।"[3] सूर की वर्णन शक्ति का ब्रजवासीदास' में अभाव है, उनकी वाग्वदग्ध-पटुता व्यंग्यपरक उक्तियों तथा कथ्य की प्रा[क्]रूपता भी इनमें नहीं है।

शृंगार के दोनों पक्ष संयोग तथा विप्रयोग-का यहां वर्णन मिलता है। राधा मिलन रास-लीला, गोपियों की छेड़छाड़, मुरलीवादन लीला, गोदोहण लीला आदि के स्थलों पर संयोग शृंगार का रंग जमा है। 'बाटमिलन की लीला' का एक संयोग चित्र देखिए—

> इततें प्यारी जमुनहिं जाई। उततें आवत घरहिं कन्हाई॥
> नीलजलज तन शोभित आछे। नटवर केशकाछनी काछे॥
> दूरहिं ते दखत ही जायो। जीवन प्राण तुरत पहिचायो॥
> रही मनोहर वदन निहारी। कोटि मदन जा पर बलिहारी॥
> 　मन आनन्द हुलस्यो हियो, रोम पुलक दृग बारि।
> 　बोली गद गद वचन मुख, तन बिह्वल सम्हारि॥[4]

---

१ महाकवि सूरदास, पृ० ८६
२ डा० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'—रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध काव्य, पृ० ३७५
३ भ्रमरगीतसार (भूमिका), पृ० २
४ ब्रजविलास, पृ ३३८

रास, मिलन के साथ साथ राधा विहार के भी मनोरम रूप यहाँ पर हैं—

नागर स्याम नागरी स्यामा । सोभित कुंज कुटी छबिधामा ॥[1]

प्रथम राधा मिलन का चित्र बड़ा मनोहर है—

औचक दृष्टि परी तहँ राधा । प्रेम रासि गुन रूप अगाधा ॥
नयन बिसाल भाल दिए रोरी । नील बसन तन की छबि गोरी ॥
बेनी पीठ परत कटि भोरा । अति छबि पुंज किरन की पोरी ॥
संग सहेलिनी आवत ढरी । चित रहे मुख रोके निमेखी ॥
ठाढ़ि रहे घनस्याम कन्हाई । अनुपम छबि लखि रहे सुभाई ॥
नयन नयन मिलि परी ठगोरी । बूझत स्याम कौन तू गोरी ॥
कहाँ रहति काकी है बेटी । अबलौं नहिं कबहूँ ब्रज भेंटी ॥
नाहिं न हम ब्रजतन आवें । खेलत रहे आपने गावें ॥
सुनत रहत श्रवनन सदा नन्द ढोटा ब्रज माहि ।
घर घर तें नित चोरि कै माखन दधि ले खाहि ॥
बिहँसि कह्यो घनश्याम तुम्हरो कहा चुराइ है ।
आवहु किन ब्रज धाम नितहि खेलिये संग मिलि ॥[2]

वियोग में पूर्वराग मान एवं प्रवास की व्यंजना बहुत समर्थ है। राधा का दर्दश बहाना पूर्व राग के अन्तर्गत है। विरह तो 'ब्रजविलास' में उत्तरार्द्ध में व्याप्त ही है। कृष्ण के मथुरा जाते ही उद्धव आगमन के साथ इसका वेग दर्शनीय है। मान पर गुरु मानलीला[3] मध्यम मान लीला[4] की चर्चा ही अलग है। 'विरह' के चित्र देखिये—

ऐसे मनगुण सुनि गोपाला । भई विरह वश सब ब्रजबाला ॥
अति हो कठिन भयो दुख मन में । व्यापी दसई अवस्था तन में ॥
ज्यों चकोर बिनु चन्द दुखारी । जैसे ही वारिज बिनु वारी ॥[5]

विरह की समस्त कामदशाएँ सूर की भाँति वर्णित हैं। वात्सल्य में कृष्ण-छेडन लीला माखन चोरी लीला आदि में हृदय रमता है। युद्धादि में रौद्र वीभत्स आदि सभी रस इस काव्य में विद्यमान हैं लेकिन प्रधान रूप से भक्ति भाव की ही प्रधानता है। कृष्ण आलम्बन हैं तथा आनन्द विषयक रति ही स्थायी भाव है,

१ ब्रजविलास, पृ० २६८
२ वही, पृ० १२३
३ वही, पृ० ४६१
४ वही पृ० ४४२
५ वही, पृ० ५५६

लीलाएँ उद्दीपन हैं तथा राधा, गोपियाँ, भक्त सभी आश्रय हैं। इस काव्य का प्रधान रस भक्ति रस को मानना चाहिए क्योंकि कथा की धुरी कृष्ण पर ही आधारित है।

अन्य चरित्रों द्वारा महत्ता की स्वीकृति

कृष्ण का व्यक्तित्व इतना अपराजेय तथा प्रभावशाली है कि 'ब्रजविलास' के सभी पात्र उनके गुणों का गान करते हैं। वे मानव तथा ब्रह्म के अपूर्ण समन्वय होने के कारण स भी अपनी महत्ता रखते हैं। एक ओर माखन चुराते, मुरली बजाते, गोपियो के सग रास लीला रचाते नत्य करते, झूमते हुलसते, राधा के साथ क्रीडा करते उसके चरणो पर सिर रख कर मनाते, चीर हरण करते हैं, दूसरी ओर राक्षसो का वध करते, कालियदमन करते तथा कस एसे प्रबल दुष्ट को विना प्रयास सहारते हैं। उनम मान्वीयता तथा अलौकिक्ता दोनो ही चरमसीमा पर हैं। उनकी सवजनप्रिय लीलाएँ ही उन्ह जन मन वल्लभ बनाती हैं। राधा नट नागर रसिक-शिरोमणि छलिया पर अपना सवस्व वार देती है। गोपियाँ उनकी मुरली पर अपने कुल की आन' छोड कर घर से भागती हैं तथा रासलीला करती है। यशोदा मिट्टी खान खाते कृष्ण के मुख मे ब्रह्माण्ड देखती है। वाल लीलाओ म उनकी हठ तथा उदण्डता भी उसे मुग्ध करती है। नन्द को वे इतने प्रिय हैं कि मथुरा स अकेले लौटते समय उनका हृदय फटन लगना है। गोवद्ध न उठाकर व्रज की रक्षा करने के कारण जन-जन के मुह पर उनका गुणगान रहता है। मथुरा चले जाने पर समस्त व्रज उनके विरह मे शोकाकुल रहता है। गोपियाँ, मधुवन जमुना पपीहा चाँद आदि सभी को कोसती हैं, कुब्जा को धिक्कारती हैं। उसके नाम से आक्रोश व्यक्त करती हैं। उद्धव द्वारा निगुण की वकालत को वे मानती नही हैं तथा अपने प्रेम-नायक सगुण कृष्ण मे अपनी घोर आस्म निष्ठा का परिचय देती हैं। उद्धव स्वय गोपियो के अपार प्रेम से प्रभावित होकर उनकी भाँति ही विभोर हो जात हैं—

'उधो ल माथे पर लीनी। लखि शुभ प्रीति दण्डवत कीनी॥
गया याग की नाव बडाई। ह्व गयो आप गोप व्रज आई॥
उधो पग पद शीश नवायो। प्रभु सादर ह्व कण्ठ लगाया॥'[1]

उद्धव कृष्ण से व्रज की विरह-दशा का वणन करते हुए वहाँ के निवासियो की प्रेम-कथा विस्तार से कहते थकते नहीं हैं तथा 'करुणानिधि' स शीघ्र जाने की विनय करते हैं—

---

१ ब्रजविलास, पृ० ६०७

निगम कहत वश भक्त के, पूरन सब सुख साज।
करि सुहाई ब्रज पेखिए गहो विरह की लाज।
अतिहि दुखित तन क्षीन, अजवासी तुम विरह वश।
तुम तन धन मनलीन रटत चातकी लो सबी॥
कहा कहो गति प्रभु राधा की। जसी व्यथा विरह बाधा की।
भूपन जिनु अति क्षीण शरीरा। बसन मलीन स्रवत दग नीरा॥[1]

समस्त ब्रजलोक म कृष्ण के प्रति प्रेम ही प्र म पाकर उद्धव कृष्ण को ऐसे ब्रजलोक का छोड देने पर उलाहना देते हैं।

शत्रु कृष्ण की शक्ति का लोहा मानते हैं। असुर कृष्ण के नाम से कापते हैं स्वय कस असुरो को लगातार कृष्ण द्वारा मरता हुआ देख कर भयभीत हो जाता है। कृष्ण क गुणो का गान देवता करते हैं—

जय धुनि गगन सुर गण बखानी सुमन की वर्षा भई॥
कहत सब हरि कस मारयो हरि यह त्रिभुवन गई॥
ब्रह्मादि सुरमुनि सिद्ध गध्रव मुदित मन अस्तुति भनी॥
भूमि सुर उपकार दिन अवतार धुनि त्रिभुवन धनी॥
धन्य गज धनि मल्ल मारे धन्य कसासुर अनी।
परसि तन अनुपम लही गति जात नहि महिमा गना॥
धन्य अलग्न ब्रह्माण्ड नायक भक्त हित नरतन धरयो।
धन्य ब्रजवासी सकल जिन प्रेम करि तुम सब करयो॥

ब्रजविलास का ऐसा कोई पात्र नहीं है जिस पर कृष्ण के महान् व्यक्तित्व की छाप न हो।

नायक तथा प्रतिनायक—कस कृष्ण-कथा का सर्वाधिक प्रख्यात प्रतिनायक है। वह मथुरा क महाराज उग्रसेन का क्षत्रज तथा दानवराज का बीजज पुत्र था। मां का नाम ऋतुस्नान बताया जाता है। कस के लिए प्रसिद्ध है कि बड होकर उसने मगधराज जरासन्ध का अस्ति तथा प्राप्ति नामक दो कन्याओ का पाणिग्रहण किया था।[2] उसने अपने पिता को राजच्युत करके राजसिंहासन हथिया लिया था। अपनी भगिनी देवकी का पुत्री का विवाह वासुदेव स किया था। अपार अत्याचारी कस ने सभी सन्त एव शान्ति प्र। देवकी के आठवें पुत्र द्वारा अपने वध क आकाशवाणी सुनकर उग्रसेन देवकी तथा वासुदेव को कैद कर लिया था। साथ ही आत्मरक्षा क अन्य

१ ब्रजविलास पृ० ६११
२ स० डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ५६ (भाग २)

उपाया मे भी वह चुका नही। 'ब्रजविलास' की सम्पूर्ण कथा के असुर उसी के द्वारा भेजे हुए हैं। उसने कृष्ण वध के लिए पूतना श्रीधर, कागासुर सकटासुर तृणावर्त, बकासुर अघासुर धेनुक प्रलम्ब शखचूड, वृषभासुर, केशी रजक व्यामासुर कुवलया (हाथी) आदि अनेक विघ्नो को भेजा था। व सभी के सभी कृष्ण के समक्ष घोर असफल हुए। अपनी असफलताओ का लगातार देख कर गूढमति कस अपार दुखी था। सूरदास न भी इन घटनाओ का वणन खूब किया है।[1] अपनी अपार भयकरता तथा पापवृत्ति के साथ साथ वह भी रावण की भाति कृष्ण का भक्त था। सूर ने कृष्ण उपासना के कारण ही उस भी परम पद दिया।[2]

माधुय भाव के परिपोषक न होने के कारण कस का चरित्र निम्बार्क-सम्प्रदाय, चतय सम्प्रदाय, राधावल्लभ सम्प्रदाय और हरिदासी सम्प्रदाया म कृष्ण कथा के अन्तगत कस घोर उपेक्षित पात्र हैं।[3] वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो म सूर तथा ब्रजवासी दास ने ही कस का सविस्तार चरित्र चित्रण किया है। सम्पूण कम कथा के सन्दभ म कस को खलनायक की सज्ञा दी जाती है।

कस के द्वारा ही कृष्ण का ब्रह्मत्व चमक उठा है। कस के दुष्ट कर्मों न ही उनकी शक्ति को ललकारने की भरसक चेष्टा की लकिन लीला विहारी कृष्ण न उनका दमन किया। लीलावतारी कृष्ण के अलौकिक, अतिप्राकृत तथा दिव्य व्यक्तित्व की व्यजक समग्र सामग्री प्रस्तुत करन म उनका स्थान महत्वपूण है। लेकिन वह रावण की कोटि का पवन प्रतिनायक नही है। अपनी अपार शक्तियो म रावण कस मे अत्यधिक बडा है। कस कोरा दम्भी, धूत तथा मूर्ख है रावण विद्वान् राजनीतिज्ञ तथा शिव का उपासक भक्त है। रावण जानबूझ कर कि अगर भगवान हाग तो उनके हाथ मरना श्रेयस्कर है यदि मानव हैं तो उनसे डरना नहीं चाहिए इस नीति स लडता रहता है। रावण मायावी, प्रचण्ड योद्धा धीरोद्धत तथा अपने शौय पराक्रम क लिए प्रख्यात है कस केवल दुष्टताओ के लिए स्मरण किया जाता है। वह मात्र आसुरी प्रवृत्तिया का पोषक प्रतीत है। रावण के समक्ष उसका असुरत्व छोटा पडता है। मानस म राम रावण का युद्ध अपनी भयकरता म दूसरी मिसाल नही रखता कस तथा कृष्ण का युद्ध वणन तथा युद्ध भी साधारण बन पडा है। कवि ने कस तथा कृष्ण के वणन का बहुत सशक्त चित्रण नही किया वह केवल कृष्ण की दिव्यता के समक्ष ही नतशिर रहा है। परिणाम स्वरूप कस का

---

१ सूरसागर, पद ६६६, ६८०
२ वही, पद २६९६, ३७०१
३ स० डा० धीरेन्द्र वर्मा — हिन्दी साहित्य कोश, प० ५७

व्यक्तित्व खलनायक के रूप मे बहुत चमक नही सका है। युद्ध-वर्णन म तेजी नहीं आ सकी—

क्षण बठत क्षण उठत अधीरा। मारे असुर सबल दोउ बीरा॥
अति बलवन्त नन्द के बारे। तब सकोप नप ओर निहारे॥
गय मचान मचकि चढ दोऊ। बाज झपट देखत सब कोऊ॥
ह्व गयो चकित नृपति भय मान्यो। आयो बाल निकट यह जान्यो॥
रहि गयो लियो खड्ग कर माही। हरि को मारि सक्यो सो नाही॥
तब ही श्याम लात एक मारी। गिरि गयो मुकुट शीश ते भारी॥
दीन ढकेल मच तें भू पर। कूद परे हरि ताके ऊपर॥
तहा चतुर्भुज रूप दिखायो। सो सरूप द स्वर्ग पठायो॥
मारयो कस कहत सब बानी। जय मुनि सुर गन गगन बखानी॥[1]

कृष्ण तथा कस युद्ध मे प्रबल प्रचण्डता नहा आने पायी। इस दृष्टि से कृष्ण ऐसे नायक के समक्ष कस धीरा प्रतिनायक है।

नायक तथा नायिका

'राधा' व्रजविलास' की नायिका है। इसका व्यक्तित्व कृष्ण के समक्ष बहुत उभर नही सका। नायक के प्रेम प्रसगो म सूरदास की भांति ही उनकी चर्चा आती रही है। वह कृष्ण पर ही आधारित चरित्र है। यह राधा प्रमिका आराध्या तथा पूर्ण समर्पिता अनेक रूपा म यहा चित्रित है।

नायक कृष्ण क साथ राधा-कृष्ण प्रेम का आख्यान व्यापकता लोकप्रियता तथा मनोहरता क साथ प्रख्यात है। बिना राधा कृष्ण की कल्पना ही अपूरी है उनका लोक नायकत्व सिद्ध ही नहीं हो पाता। राधा प्रकृति है कृष्ण पुरुष हैं। राधा पूर्ण सनातन शक्ति का प्रतीक है। कृष्ण पूर्ण सनातन ब्रह्म का प्रतीक है। फिर भी कृष्ण के साथ राधा की कल्पना परवर्ती युग की ही उपज है। आभीरों की प्रेम देवी का कब कृष्ण स सयोग हो गया यह अलग शोध का विषय है।[2] उन्होंने राधावाद का बीज भारतीय शक्तिवाद मे स्वीकार किया है।

भागवत मे राधा का नाम तक नही है। कृष्ण की भांति राधा क सम्बन्ध म प्राचीन उल्लेख प्राप्त नहीं होत परन्तु यह अनुमान होता है कि गोपजनों या आभीर जाति म प्रचलित गाथियों क साथ गोपाल-कृष्ण की लीलाए गीतों क रूप म उन्हीं

---

1 व्रजविलास पृ० १३०
2 डा० शशिभूषण दास गुप्त—श्री राधा का क्रम विकास, पृ० १४

समय से प्रचलित रहीं जब से कि सात्वता की वासुदेवोपासना के प्रमाण मिलते हैं। कृष्ण की प्रेयसी एव प्रेमिका गोपियो मे निश्चय ही एक विशेष गोपी का उल्लेख होता रहा है यही गोपी आगे राधा के नाम से प्रसिद्ध हुई जान पडती है। राधा सम्बन्धी प्राचीन संकेता में तमिल के आलवार सन्तो की नाप्पिन्नाइ को 'राधा' ही माना गया है। कृष्ण की यह प्रियतमा तमिल मे अत्यन्त सुन्दरी तथा लक्ष्मी का अवतार है। कदाचित दाक्षिणात्य कृष्ण भक्ति की यह 'नाप्पिन्नाई' गोपी उत्तर भारत की राधा है।[1] राधा की प्रथम उल्लेख सातवाहन द्वारा संग्रहीत गाहा सत्तसई म मिलता है। विद्वान् इसे सातवी शताब्दी की रचना मान कर राधा-कृष्ण कथा का इसस पूर्व अनुमान करते हैं। वैष्णवों में तीन ख्यात पुराण हरिवंश, विष्णु और भागवत मे राधा का नाम न पाकर गहरा विवाद विद्वानो म उठता रहा है कि राधा नाम आया कहा से ? और फिर बालक कृष्ण के साथ राधा की आमेल जोडी मिला दी गई ? माधव तथा भागवत सम्प्रदाय राधा को मानते ही नही। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी न बहुत खोजबीन के पश्चात एक महत्वपूर्ण मत दिया है कि 'गाथा सप्तशती म पचतन्त्र म और ध्वन्यालोक म राधा' नाम आया है पर कृष्ण की सर्वाधिक प्रिया गोपी के रूप म उनका नाम भागवत्तोत्तर साहित्य म ही अधिक है। ब्रह्म ववर्त पुराण मे राधा प्रमुख गोपी है। पर यह पुराण बहुत पुराना नही कहा जा सकता और जिस अंश म राधा कृष्ण के नित्य विहार की चर्चा है वह तो निस्सन्देह परवर्ती है। नित्यानन्द प्रभु की छोटी पत्नी जाह्नवी देवी जब वृन्दावन गयी, तो उन्हे यह देखकर बडा दुःख हुआ कि श्रीकृष्ण के साथ नाम की मूर्ति की कही पूजा नही होती थी। घर लौट कर उन्होंने नयनभास्कर नामक कलाकार से राधा की मूर्तियाँ बनवायी और उन्हे वृन्दावन भिजवाया। जीव गोस्वामी की आज्ञा से यह मूर्तिया श्रीकृष्ण के पार्श्व म रखी गयी और तब स श्रीकृष्ण के साथ राधिका की भी पूजा होने लगी।'[2] राधा के सम्बन्ध मे डा० रामधारी सिंह दिनकर का कहना है 'इसलिए यह बहुत सम्भव दीखता है कि आर्यों के वैष्णव धर्म मे कृष्ण की बाल लीला और राधा से उनसे प्रेम की कल्पना किसी आर्येतर जाति से आयी हो।'[3] वे दक्षिण के आर्येतर समाज की कोई प्रेम देवी का ही राधा मानते हैं। कुछ भी हो, राधा तथा कृष्ण की प्रेम लीलाओ का आधार गाहा सत्तसई ही है। वही से वे 'रोमाण्टिक' रागों म सामने आती हैं। जयदेव न राधा का निकुंज लीला म मुग्ध माधुरी बिखेर दी। परवर्ती राधा के चित्र 'गीत गोविन्द' की ही उपज लगत हैं। राधा पर तान्त्रिक तथा वामाग

१ स० डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४६२ ६३ (भाग २)
२ माध्यकालीन धर्म साधना प० १३६
३ संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ८१

का भी प्रभाव पड़ा था तथा नग्न वर्णन चल पड़े। हिन्दी कृष्ण-काव्य में भक्त कवियों ने विशेषकर सूरदास ने राधा को साक्षात सौन्दर्य देवी, परमशक्ति माना है। राधा, कृष्ण से अभिन्न, मायारूपिणी, आल्हादिनी शक्ति के रूप में चित्रित है। सूर परवर्ती सभी कवियों ने राधा के चरित्र को बना ही अपनाया। कुछेक ने राधा को कृष्ण से भी अधिक महत्व दे डाला। इस दृष्टि से 'ब्रजवासीदास' सूरदास के अनुवर्त्ती हैं। राधा का प्रथम मिलन सूर के कृष्ण की भांति यहां भी मोह लता है।[1] राधा सम्बन्धी सभी कुछ उनका सूरदास की नकल है। अतः इनकी राधा में सौन्दर्य की देवी परम आराध्या तथा मानवी रूप तीनों का सूर की भांति मिश्रण है। राधा-गोपी प्रसंग से कृष्ण के प्रेम पक्ष का विस्तार हुआ तथा नायक के चरित्र को दिव्य प्रेम की दृष्टि से सामने लाने में नायिका का विशेष हाथ रहा है। दिव्य नायिका राधा ने भी कृष्ण को लीला की दृष्टि से दिव्यता की देन दी है।

कृष्ण को नायक कोटि का निर्णय

ब्रजविलास के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म अविनाशी पूर्णावतार, लीलावतार तथा ब्रह्माण्ड नायक हैं। सूर के कृष्ण तथा ब्रजवासीदास के कृष्ण एक ही है। सूर ने मुक्तक पदों में जो कथा कहा है वही यहाँ प्रबन्धत्व में लिखी गई है। 'ब्रजविलास' के अनेक स्थल सूरदास के पदों के मूल रूप में भरपूर हैं। दोनों की भक्ति भावना भक्ति के शीर्ष शिखर पर पहुंचा हुई है। 'ब्रजविलास' के लिए यही कहना उचित है जो आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने सूर के कृष्ण के लिए कही है कि "उत्तर यही है कि इन का प्रधान रस साहित्यशास्त्र की कोटि में नहीं आता वह अलौकिक रस है। यद्यपि साहित्य शास्त्र सब रसों का आनन्द 'अलौकिक' मानता है, किन्तु सूर के कृष्ण का आनन्द अलौकिक से भी अलौकिक है। यह आनन्द किसी अन्य कारण से नहीं सूर की भक्ति भावना के कारण अलौकिक है। तुलसी के राम, सूर के कृष्ण भक्त कवियों के जो नायक हुए हैं सब ने काव्य जगत की प्रचलित विधियों का अतिक्रमण सा कर दिया है। इन कवियों की यह अद्भुत कला है कि वे अपने स्वतन्त्र अधिकार से ऐसे नायक का अवतरण करते हैं, जो चराचर नायक है।"[2] इस चराचर नायक पर साहित्य शास्त्र के सभी मानदण्ड निरर्थक हो जाते हैं। कृष्ण भक्ति-काल तथा रीतिकाल में अधिकांश धीर ललित नायक माने गये हैं। रीतिकाल के आबरू खोय नायक (कृष्ण) अनुकूल दक्षिण, शठ तथा धूर्त नायक भी दिखायी देते हैं। दिव्य अदिव्य तथा दिव्यादिव्या की नायक कोटियों में भक्तिकालीन खण्ड-काव्यों में भ्रमरगीत सुदामाचरित्र आदि में दिव्यादिव्य नायक है। सूरदास के काव्य में कृष्ण

---

१ ब्रजविलास

२ महाकवि सूरदास, पृ० ८६

को नया विस्तार तथा नया जीवन मिला। साहित्य शास्त्र के प्राचीन बंधनों को तोड कर कविता नवीन वस्त्र धारण करके प्रकट हुई। उसने साहित्यशास्त्र की आँखें खोल दी एव ससीम के स्थान पर असीम का प्रतिष्ठित किया। इस कृष्ण को साहित्य शास्त्र धीरोदात्त नायक की कोटि मे भी रखने का साहस नही कर सकता है। 'ब्रजविलास के कृष्ण को धीरोदात्त कहना असीम को ससीम करना है, उनका अपमान करना है। उनकी नायक कोटि के निर्धारण म साहित्य शास्त्र साथ नहीं दे पाता उसकी सभी निर्धारित कोटियां उनके सामने बहुत तुच्छ लगती हैं। वे नायकों के नायक हैं। सभी रसो के आधार हैं। कृष्ण जन-जन को प्रिय लोक-नायक हैं। भक्ति के आलम्बन ब्रह्माण्ड नायक हैं, सचराचर नायक हैं।

निष्कर्ष रूप म कह सकते हैं कि कृष्ण युग-युग की साधना से प्राप्त युग नेता हैं। जो प्रत्येक युग के अनुकूल बदलते रहने है। ब्रजविलास' के लीलावतारी कृष्ण पुराण पुरुष है जिन्हे राम की भांति सास्कृतिक नायक मानना चाहिए। राम मर्यादा के प्रतीक सास्कृतिक नायक हैं और कृष्ण प्रेम-सौन्दय के मुक्त भोगी लीला प्रतीक सास्कृतिक नायक हैं और कृष्ण प्रेम-सौन्दय के मुक्त भोगी लीला प्रतीक सास्कृतिक नायक हैं।

कृष्णचन्द्रिका

कवि परिचय

कृष्ण काव्य परम्परा की इस अमूल्य रचना के रचयिता का जीवन अभी तक विवाद ग्रस्त है। उनका कवि परिचय अनुमान पर ही आधारित है। कोई कवि का नाम गुमान त्रिपाठी[1], कोई गुमान मिश्र[2] तथा कोई गुमान तिवारी[3] कहता है। डा० प्रताप नारायण टण्डन ने गुमान मिश्र तथा गुमान त्रिपाठी को एक ही कर दिया है तथा नैषध चरित के अनुवादक तथा कृष्णचन्द्रिका के लेखक को एक ही स्वीकार किया है।[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[5] तथा रामनरेश त्रिपाठी[6] ने भी दोनो को भ्रमवश एक ही स्वीकार किया है जबकि दोनो मे पर्याप्त अंतर है। एक

---

१ डा० किशोरीलाल गुप्त—सरोज सर्वेक्षण, पृ० १३२
२ मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ७३३
३ प्रा० विश्वप्रकाश दीक्षित बटुक—हिन्दी साहित्य का नूतन इतिहास।
१ हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास, पृ० २८२, खण्ड १ (पद्य)
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३५६
३ कविता कौमुदी, पृ० ४९३ (प्रथम भाग)

हो। गणेश के भी कवि थे सिंह गुमान ने नैषध चरित का अनुवाद किया था। ज्ञात है तथा गुमान मिश्र ने कृष्णचन्द्रिका की रचना की होगी। कृष्णचन्द्रिका साधुओं की सम्पत्ति रही अतः जनता में इसका प्रचार कम हुआ तथा कवि के विषय में पाठक को जानकारी की भी आवश्यकता नहीं पड़ी।

कवि गुमान मिश्र महोबा (चरखारी) बुन्देलखण्ड के निवासी थे। इनके पिता का नाम 'गोपालमणि त्रिपाठी' था। कृष्णचन्द्रिका में लिखा है कि—

नगर महोबा बसत है द्विज त्रिपाठी जात।
तिन में द्विज गोपाल मनि प्रभु पद में अनुरात॥[1]

गोपाल मणि त्रिपाठी के दीपमणि, गुमान, अमान तथा खुमान नामक चार पुत्र थे। गुमान ने कृष्णायन तथा गुमान ने कृष्णचन्द्रिका की रचना की। एक लघु तथा दूसरा बड़ा प्रबन्ध काव्य है। एक में भागवत की शैली तथा दूसरे में रामचन्द्रिका की शैली का अनुकरण है। गुमान मिश्र की एक कृति छन्दाटवी भी कही जाती है, किन्तु कवि का यश कृष्णचन्द्रिका से ही रहा है। उमाशंकर भट्ट ने इस कृति का सम्पादन करते हुए 1935 में इसको लाहौर से प्रकाशित भी कराया था। कृष्णचन्द्रिका उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ की रचना है जिसका रचना समय कवि ने चैत्र शुक्ला नवमी गुरुवार सं० १८३८ स्वीकार किया है।[2]

"कृष्णचन्द्रिका केशव की रामचन्द्रिका के अनुकरण पर लिखी हुई विविध छन्दों से युक्त चमत्कारिक रचना है। भाव पक्ष की अपेक्षा काव्य में मधुर नाद सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। केशव की भाँति ही इसे कवि ने सत्ताईस प्रकाशों (सर्गों) में लिखा है। केशव के इसी आदर्श को मानकर गुमान ने विविध छन्दों में कृष्णचन्द्रिका का निर्माण किया। कोई भी परवर्ती निर्माता अपने समय तथा विचारशील है तो अनुकरण पूर्ववर्ती में जो स्पष्ट त्रुटियाँ लक्षित होती हैं उनसे वह निश्चय ही बच सकता है। कृष्णचन्द्रिका' इसी प्रकार का प्रयास दिखाई पड़ता है।"[3] कृष्णचन्द्रिका बड़ा प्रबन्ध काव्य है एवं इसमें विस्तार पूर्वक कृष्णचरित्र का वर्णन है।[4] कृष्ण पर प्रबन्ध काव्य लिखने की परम्परा मध्यकाल में अत्यल्प रही है। कृष्ण सम्बन्धी जो भी प्रबन्ध काव्य लिखे गये उन सभी में 'कृष्णचन्द्रिका' ही मुख्य स्थान का अधिकारी है। डा० शम्भूनाथ सिंह इस कृति को महाकाव्य न मान कर भी बहुत महत्वपूर्ण प्रबन्ध कृतियों में आदर का स्थान देते हुए लिखते हैं कि "कई

१ कृष्णचन्द्रिका, पृ० १०

२ वही, पृ० ११

३ आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० ८१८ (भाग २)

४ वही, पृ० ८१८

दृष्टियो से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण काव्य है। यद्यपि 'कृष्णचन्द्रिका' का उतना प्रचार नहीं हुआ है, पर यदि निष्पक्ष भाव से विचार किया जाए तो पदमावत और राम चरित मानस के बाद प्रबन्धत्व और रसात्मकता की दृष्टि से मध्यकालीन प्रबन्ध काव्यो मे उसे सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जाना चाहिए। गुमान मिश्र ने 'कृष्णचन्द्रिका' मे रामचरित मानस तथा रामचन्द्रिका की शैली का सुन्दर समन्वय किया है।" यह सफल प्रबन्ध कृति उस युग की महान् उपलब्धि के रूप मे अभी तक स्वीकार नहीं की गई है। विद्वानो ने उस पर कृपा ही नही की तथा यह श्रेष्ठ रस सिद्ध कृति अभी तक उपेक्षित ही है। इसमें श्रीमद भागवत को आधार बनाकर कृष्ण-जन्म से लेकर कंस-वध तथा राज्य प्राप्ति तक की कथा बहुत विस्तार से कही गई है। पौराणिक शैली म लिखी गई इस रचना म पौराणिक महाकाव्य की सभी विशेषताए एक साथ मिलती हैं अत यहाँ पर इस कृति के महाकाव्यत्व की चर्चा भी अनिवाय प्रतीत होती है।

महाकाव्यत्व

यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि इस रचना के विषय म विद्वानो को जानकारी प्राय न के बराबर रही है। भक्ति से आप्लावित यह रचना साधुओं की सिद्धिगोटिका रहा है। विद्वानों ने प्राय इसे मार्मिक या सफल प्रबन्धकाव्य कह कर भी अपनी उदासीनता व्यक्त की है। सत्ताइस प्रकाशो म विभक्त पौराणिक शैली की इस विशाल कृति म इतिवृत्त के पूर्ण निर्वाह प्रवाह के साथ अखण्ड रसात्मकता मिलती है। कृष्ण से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का शृंखला-सूत्र अटूट है तथा कथा लगातार जिज्ञासा का जन्म देती हुई गतिशील रहती है। इस प्रकार इसका बेजोड प्रबन्धत्व देखकर इस कृति के प्रति आकर्षण का बढ जाना स्वाभाविक ही है। पुराण-पुरुष कृष्ण के भक्त अवतारी रूप को प्रधानता देकर इस पौराणिक महाकाव्य की रचना की गई है। कृष्णचन्द्रिका' पृथ्वीराजरासो' या आल्हाखण्ड की भांति का विकसनशील महाकाव्य नहीं है। विकसनशील महाकाव्यो की भांति अतिप्राकृत तत्व, निजन्धरा कथाओ पुरा कथाओ अदभुत लीलाओं आदि की भरमार होने पर भी यह कृति भगवान पुराण शब्द इतिहास के अर्थ मे मिलती है। पीछे से कृष्ण धारा को यहाँ पर नया रूप दिया तथा पौराणिक शैली में पुराण-कृष्ण की समस्त विशेषताओ को इस महाकाव्य म प्रस्तुत किया है। महाकाव्य के पूर्व निर्धारित लक्षणो की कसौटी पर यहा उसके महाकाव्यत्व पर दृष्टिपात करेंगे।

---

२ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ६८१

कृष्णचन्द्रिका का काव्य रूप

कृष्णचन्द्रिका पर भी प्रथम प्रश्न 'मानस' की भाँति ही यह उठता है कि यह महाकाव्य है अथवा पुराण काव्य ? भारतीय आचार्यों ने पुराणों को काव्य के अन्तर्गत स्थान नहीं दिया। पाश्चात्य विद्वान भी पुराणों को काव्य नहीं मानते हैं। 'पुराण' शब्द से नये का यह का बोध नहीं होता प्राचीन परम्परा से प्राप्त धार्मिक भावना का बोध होता है। पौराणिक शैली के महाकाव्य तथा पुराण-काव्य में पर्याप्त अन्तर है। पौराणिक शैली के महाकाव्य तो मानस पउमचरित तथा महापुराण भी हैं पर वे मात्र पुराण नहीं हैं उनमें उच्च कोटि की साहित्यिकता भी मिलती है। प्राचीन साहित्य में कृष्ण का लीला गान है। कवि ने अत्यन्त प्राचीन काल से आती हुई पुराण इतिहास के नाम के धार्मिक प्रथा को पुराण कहा है। विण्टरनित्स ने पुराण का एक व्यापक लक्षण घोषित किया है कि इसमें किसी न किसी देवता को आधार बनाकर या अवतार का आश्रय लेकर संकीर्ण मतवाद या किसी सम्प्रदाय विशेष की संकीर्णता के साथ प्रचार होता है।[1] डा० शम्भूनाथ सिंह ने महाकाव्य तथा पुराण काव्य में पर्याप्त अन्तर दिखाते हुए पुराणों के लिए लिखा है कि— पुराण साहित्य एक भिन्न प्रकार का ही साहित्य है जिसके ये पाँच आवश्यक लक्षण माने गये हैं—(१) सर्ग (२) प्रतिसर्ग (३) ऋषियों तथा देवताओं का वंश वर्णन (४) मन्वतरों का वर्णन, (५) वंशानुचरित अर्थात राजवंशों का वर्णन। इस तरह उनमें सृष्टि की उत्पत्ति कथा से लेकर अनेकानेक राजवंशों के राजाओं तक का इतिहास मिलता है।[2]

पुराण-काव्य की इन विशेषताओं के आधार पर 'कृष्णचन्द्रिका' को देखने पर स्पष्ट है कि वह पुराण काव्य नहीं है। उसमें सर्ग उपसर्ग तथा मन्वन्तर का वर्णन नहीं है। उसमें पुराणों की भाँति सृष्टि कथा, भूगोल, शकुन विद्या आयुर्वेद धनुर्वेद मंत्र-तंत्र तीर्थ पूजा कथा गल्प आदि भी नहीं है। उसमें नायक के वंश का भी वर्णन नहीं संकेत मात्र है। कृष्ण के साथ पुराणों की हजारों गाथाएं जुड़ी हैं जिन को छोड़ दिया गया है। 'भागवतपुराण' को सूरदास तथा व्रजवासीदास की भाँति आधार बनाकर भी कवि ने कृति में काव्यात्मकता कलात्मकता तथा रसात्मकता की सृष्टि की है। अतः पुराण काव्य के तत्व इसमें नगण्य हैं, काव्यत्व की दृष्टि से इसका महत्व बहुत होना चाहिए।

---

१ एम० विण्टरनित्स—ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर प० ५२२
२ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ४८८ (प्रथम भाग)

व्यापक परिधियुक्त सुगठित कथानक

'कृष्णचन्द्रिका' का कथानक प्रबन्धत्व की अखण्ड शक्ति के कारण बहुत समय बन गया है। कथानक का आधार सूरसागर, परमानन्दसागर, ब्रजविलास की भाँति ही श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध पर आधारित है। कवि ने आरम्भ में श्रीमद्भागवत की कथा सुनाने का संकेत किया है—

नव प्रसंग मुनिन्द कहि वन्दि नरिन्द बहोरि।
प्रेमाकुल गहबर गरे, प्रश्न करो कर जोरि॥[1]

पुराण-कथा के अनुसार कवि ने राजा परीक्षित को सर्पदंशन का शाप मिलने तथा पाप से मुक्ति हेतु इस कृष्ण-कथा को श्री शुकदेव द्वारा कहलवाया है। भागवत के दशम स्कन्ध की पूर्वार्द्ध कथा, जो उनचास अध्यायों में वर्णित है, उसे सत्ताइस प्रकाशों में वर्णित किया है। लेकिन यह कथा भागवत का अनुवाद नहीं है। कवि ने मौलिकता से घटनाओं का चयन किया है। उसने कृष्ण-जन्म के कारण कृष्ण जन्म की कथा से लेकर अक्रूर द्वारा पाण्डवों की कथा ज्ञात करने तक इसका विस्तार किया है।

इसका कथानक 'रामचन्द्रिका' की भाँति सर्गों में विभक्त न होकर प्रकाशों में है तथा प्रत्येक प्रकाश में कथ्य घटना की सूचना कथारम्भ में ही मिलती है। प्रथम प्रकाश में कवि ने तुलसीदास की भाँति वन्दना-पद्धति को अपनाया है तथा गणेश सरस्वती, शिव, कार्तिकेय, प्रद्युम्न, दशावतार, अनिरुद्ध वासुदेव दुर्गा, सूर्य, नवग्रह, राधाकृष्ण, कृष्ण द्वैपायन गरुड़ हनुमान तथा मार्तण्ड की स्तुति के साथ काव्य रचना की दृढ़ प्रेरणा का उल्लेख किया है। द्वितीय प्रकाश में परीक्षित कथा मिलती है। तृतीय प्रकाश में पृथ्वी गो-रूप धारण कर ब्रह्मलोक में जा कर अपनी व्यथा सुनाती है। भगवान धर्म स्थापना हेतु गीता तथा मानस की भाँति यहाँ अवतार लेने का वचन देते हैं। यहीं पर कवि ने कंस देवकी की कथा भी कह दी है। चतुर्थ प्रकाश में कृष्ण का जन्म उनका चतुर्भुज रूप वासुदेव का गोकुल पहुँचना यशोदा की कन्या लाना, कंस द्वारा रजक से कन्या को शिला पर पटकवाना, कन्या के मरते ही कंस वध की आकाशवाणी होना आदि कथायें हैं। पंचम प्रकाश में कृष्ण जन्मोत्सव, पूतना, शकटासुर तृणावर्त आदि राक्षसों के वध की चर्चा है। छठे सर्ग में कृष्ण मिट्टी खाते हुए मुँह फाड़ कर ब्रह्माण्ड दिखाकर यशोदा को चौंकाते हैं। सप्तम प्रकाश में बाल लीला गोचारण वत्सासुर बकासुर वध, सर्परूपधारी अघासुर वध तथा गोकुल से वृन्दावन प्रस्थान का वर्णन है। अष्टम प्रकाश में

[1] कृष्णचन्द्रिका, पृ० १७

ब्रह्मा गायों का हरण करते हैं तथा कृष्ण उनका मोह भंग करते हैं। नवम प्रकाश में धेनुकासुर वध तथा कालीन्ह लीला है। दशम प्रकाश में बलराम द्वारा प्रलम्बासुर वध तथा कृष्ण द्वारा दावानल पान का वर्णन है।

एकादश प्रकाश में कृष्ण का मधुर रूप उमड़ पड़ा है। वे वंशी बजाते, गोप गोपियों के साथ क्रीडा करते हैं। द्वादश प्रकाश में स्नान करती गोपियों का रसिया कृष्ण चीर-हरण करते हैं।

त्रयोदश प्रकाश में कृष्ण इन्द्रपूजा का विरोध करते हैं। कृष्ण द्वारा इन्द्र के कोप करने पर गोवर्द्धन उठाने का वर्णन है तथा इन्द्र के महत्त्व को नष्ट करते हुए गोवर्द्धन पूजा चलाते हैं। चतुर्दश प्रकाश में गोप गोपियों द्वारा अपने आराध्य के गुणों का विशद गान है। पंचदश प्रकाश में कृष्ण की मुरली का प्रभाव तथा गोपियों की अनन्य कृष्ण भक्ति का संकेत है। षोडषप्रकाश में रास लीला का मुक्त प्रसार है। सप्तदश प्रकाश में कृष्ण दम्भी गोपियों का मद चूर करते हुए उनकी प्रेम-परीक्षा लेते हैं। अष्टादश प्रकाश में यमुना कूल पर कृष्णमय गोपियों की कथा है। एकोनविंशति प्रकाश में गोपियों के साथ रास लीला का भरपूर वर्णन है। विंशति प्रकाश में नन्द की सर्पदंश घटना है। एकविंशति में कृष्ण कंस कथा मिलती है तथा बलराम वृषभासुर का वध करते हैं। द्वात्रिंश प्रकाश में ब्रज से कृष्ण अक्रूर जी के साथ मथुरा जाते हैं तथा गोप-गोपी विरह आरम्भ होता है। त्रयोविंश प्रकाश में कृष्ण रजक का वध करते हैं कंस की सेना को मारते हैं सुदामा माली का आतिथ्य तथा कुब्जा कथा है। चतुर्विंशप्रकाश में कुव लियापीड हाथी को युद्ध क्षेत्र में पछाड़ते हैं। यहीं कंस वध करते हैं। बलराम कंस के आठ भाइयों का हनन करते हैं। कृष्ण-बलराम की इस विजय पर देवतागण प्रफुल्लित होते हैं। पंचविंशति प्रकाश में कृष्ण उग्रसेन को गद्दी देकर माता से भेंट करते हैं। षड्विंश प्रकाश में उद्धव गोपी संवाद है। सप्तविंश प्रकाश में कृष्ण अक्रूर जी को पाण्डवों के पास भेजते हैं, अक्रूर समाचार लाते हैं। इस कथा के महात्म्य को घोषित करते हुए कवि कथा की इति करता है—

कृष्णचन्द की चन्द्रिका जे नर करहिं हैं गान।
पाइ परम पद प्रथम ही ब्रह्म सौरूप को जान॥[1]

इस कथा के माहात्म्य को कवि ने तुलसीदास की रामकथा की भाँति स्थान स्थान पर स्मरण कराया है। कृष्ण भगवान या साक्षात ब्रह्म होते हुए भी धर्म हेतु नर-लीला कर रहे हैं यह विस्मरण कवि नहीं होने देता है। इस विस्तृत कथानक में कवि ने वर्णनों में सहजता स्वाभाविकता तथा गत्यात्मकता को स्थान दिया है। कथा की धुरी कृष्ण पर केन्द्रित है तथा समस्त कथावद्ध इन्हीं के कार्य व्यापारों

१ कृष्णचन्द्रिका।

को लेकर गतिशील रहना है। इसमे 'रामचन्द्रिका' का अनुकरण होते हुए भी केशव का घोर पाण्डित्य तथा कृत्रिमता नही है। कथा मे 'मानस' जैसा भावबोध तथा रस-बोध सहज ही प्राप्त है। रीतिकाल के इस कवि ने रीतिकाल की प्रवृत्ति से बच कर कृष्ण के शृंगार का वर्णन करते हुए भी उन्हें लौकिकता मे डुबाया नही है। भक्तो की तन्मय पद्धति पर यह कथा धारा मधुर-मधुर बहती रहती है। छद परिवर्तन ने कथा की एकरसता को दूर किया है तथा कथा मे इतना आकर्षण है कि पाठक उसमे रम जाता है। इस कथा मे परम्परा से आता हुआ कृष्ण का मधुर रूप प्रधान तथा वीर रूप सहायक बन कर आया है। कथा महाभारत के योगी राजनीतिज्ञ कृष्ण से पूरी तरह दूर है, लेकिन इससे कथा पर कोई प्रभाव नहीं पडा है। भागवत पर आधारित काव्य का यह कथानक, व्यवस्थित संगठित तथा प्रभावशाली है।

अतिप्राकृत-तत्त्व

कृष्णचन्द्रिका' लीलानायक कृष्ण की कथा है। कृष्ण के साथ शत शत चमत्कारिक कथाएं स्वतः ही जुडती चली आई हैं। अत इन चमत्कारिक कथाओ से कवि बच भी कैसे सकता था। यही कारण है कि कथानक दैवी घटनाओ, निजधरी कथाओ तथा अतिमानवीय घटनाओ से पूर्ण हो गया है। कृष्ण के मुख मे ब्रह्माण्ड-दर्शन दावाग्नि-पान, रजक द्वारा कन्या मारने पर आकाश-वाणी, गोवर्द्धन धारण, गुरु के मृत पुत्र को जीवित करना, शक्तिशाली असुरो का पछाडना, नाग नाथना[1] आदि अनेक विस्मयकारक घटनाओ का यह कथानक 'सूरसागर तथा व्रजविलास' की भांति ही केन्द्र है।

प्रासगिक कथाएं — समस्त काव्य मे कृष्ण के कार्य-व्यापारो का प्रसार है। मूल कथानक को सजीव आकर्षण युक्त सरस जीवन्त बनाने के लिए कवि ने वसुदेव देवकी का वृत्तान्त नारद का कथा मे प्रवेश, नलकूबर मणि ग्रीव[2] का शाप देने की घटना आदि प्रासगिक कथाओ की भी योजना की है। इन कथाओ से मूल कथा के विशिष्ट सन्दर्भों को स्पष्टता मिली है तथा कथा मे अन्य पात्रो का प्रवेश भी साधक लगने लगा है। कवि ने आकाश-वाणी की चमत्कारिक योजना तथा नारद कथा से भी कथानक को नवीन चेतना प्रदान की है।[3]

---

१ कृष्णचन्द्रिका पृ० ५ ३२ ४५ ५४, ५६ ८६, ६०, ६१, ६६-१२०, १२१ १४५

२ वही पृ० ४२ ४३, ७५ ७६, ७७, ११३, ११४ २०७, २०८

३ वही पृ० २१९

वस्तु वर्णन तथा प्रकृति वर्णन—इस कथानक में कवि ने अपार कवि शक्ति का परिचय दिया है। जिस वर्णन में कवि रम जाता है उसे रसमिक्त करता हुआ उसका द्वार निकाल देता है। कृष्ण के बाल्य तथा यौवन के चित्र सौंदर्य से जगमग तथा सौंदर्य बिम्बों से अनुपम बनाये हैं।[१] 'रास-लीला' में गोपियों का मधुर चित्र देखिए—

लेती गति जमक ठमक चौका की चिलक चमक
भूषन भकमकत भमक, फल भन,भन भग।
भरपत उछ्गात गात, बिरकत अध घर बिरात।
भ्रमत भाव जनु अलान, लजित छवि अनग ।।[२]

प्रकृति का अनुरागी कवि गुमान उसके बहुरंगी चित्र अंकित करता है। कभी कभी प्रकृति की भयंकरता के चित्र[३] नहीं तो सदैव मोहक चित्र आँके हैं। कालिन्दी तट का चित्र देखिए—

कालिन्दी के रही है तट छुहरि छटा नीर कल्लोल ही की।
फूली फूली महा हैं, वह पुलिन लसे मालती चरस नीकी।।
दौरे दौरे भ्रमे यो मधुप मधु रसीले गुंज गुंजार साज।
सीरी सीरी चले है पवन परसती माकरंदे विराज।।[४]

संयोग वियोग के अनुरूप कवि का प्रकृति-वर्णन बडा समृद्ध है।

कवि ने जीवन का व्यापक चित्र भी युद्ध मंत्रणा सन्ध्या, प्रभात, नदी यज्ञ प्रेम भक्ति आदि के द्वारा प्रस्तुत किया है। इस प्रकार शास्त्रीय महाकाव्य के कथानक की समस्त विशेषताएं इस कथानक में सहज ही मिल जाती हैं।

उदात्त नायक

इस काव्य के नायक दिव्यभावधर लीला सहचर कृष्ण हैं। वे नायकों के नायक तथा साक्षात ब्रह्म के अवतार हैं। अनन्त गुणों से युक्त पूर्ण ब्रह्म के अवतार कृष्ण को धीरोदात्त नायक कहने में संकोच होता है। साहित्य शास्त्र की किसी भी कसौटी से उनका नायकत्व नहीं आंका जा सकता क्योंकि शत शत धीरोदात्त नायकों की शक्ति उनसे ही प्रकट होती है। अपने शील शक्ति एवं सौंदर्य तीनों में वे अनुप

१ कृष्णचन्द्रिका ३८ ७९
२ वही पृ० १८२
३ वही पृ० १२१
४ वही, पृ० ६०

मेय है । गोवर्द्धन उठाना, कालीदह लीला तथा राक्षसों को मारकर उनकी शक्ति नया लोक बसानी है । सौन्दर्य की सत्ता सृष्टि में उन्हीं के सौन्दर्य से है रास लीला मुरली लीला, बाल लीला, गोचारण लीला आदि में यह सौन्दर्य निखरा पड़ा है । राक्षसों के वध में पाप की छटा को फाड़ कर उनके सौन्दर्य के पुण्य का उदय होता है । उनके शील से ही सृष्टि कायम है तथा वे गो, ब्राह्मण तथा धर्म की रक्षा हेतु ही वे अवतार धारण करते हैं । साक्षात विष्णु के अवतार कृष्ण के समक्ष देवताओं की विनय 'मानस' के 'जय जय सुरनायक, जन सुखदायक'[1] की याद दिलाती है । कृष्ण वचन है कि—

हौं धरौ अवतार ल दुज दीन गोकुल पालि हौं ।
भूरि मारन भूमि को खल मारि स सहारि हौं ॥[2]

सष्टि नायक अवतारी रूप में लीला का विस्तार करता है, अनेक राक्षसों का वध करता है । उसके महत्त्व से अभिभूत जन, नारद, अक्रूर, इन्द्र, उसकी वन्दना करते हैं ।[3]

कृष्णचन्द्रिका' के कृष्ण नायक की दृष्टि से निष्कलुष सुन्दर, बलिष्ठ, शत्रु जयी, धमन, लक्ष्मीवान, प्रतापवान, नीतिमान, वाग्मी, प्रजाहितषी, जीव लोक के रक्षक नर, नारायण, परम ब्रह्म तथा आदर्श वीर पुरुष हैं । उनका रसिक तथा प्रेमी रूप अपनी कोई बराबरी नहीं रखता है । 'कृष्णचन्द्रिका' नाम से ही ध्वनित है कि कवि ने कृष्ण का कीर्ति कथा को विस्तार से कहा है । इस कथा में कृष्ण का व्यक्तित्व इतना छा गया है कि प्रतिनायक कंस का व्यक्तित्व उभर ही नहीं सका अन्य पात्र भी सूचना मात्र बन कर रह गये ।

प्रतिनायक के साथ कवि ने न्याय नहीं किया । कंस को अधिक बलशाली दिखाकर वध कराने में ही कृष्ण का महत्त्व है, कवि ने इस तथ्य को भुला दिया है । यद्यपि कंस से पीड़ित पृथ्वी विष्णु के पास जाकर पुकारती है तथापि कवि ने उसकी प्रचण्डता भयंकरता बर्बरता तथा हृदयहीनता का वर्णन नहीं किया है ।

बलराम का चरित्र भी कृष्ण का सहायक मात्र है । उन्हें शेषनाग का अवतार कह कर भी उनके चरित्र की अन्य विशेषताओं के प्रति उपेक्षा दिखाई देती है । यशोदा को वात्सल्य मूर्ति दिखाकर भी सफल मातृत्व में उसे महान् आदर्श नहीं बना सका । राक्षसों के चरित्र भी सूचना मात्र हैं उनके पापों का वर्णन नहीं है । उद्धव-यशोदा अक्रूर नन्द देवकी सभी पात्र मात्र कथा के अंग बनकर आये हैं । उनका अलग

१ मानस—बालकाण्ड ।
२ कृष्णचन्द्रिका पृ० २५
३ वही पृ० ७५, ६५, १११, १५५, २३०, २४६, ३०२

व्यक्तित्व नही प्रकट हुआ है। प्रेमरत अनेक गोपियो की चर्चा करता हुआ राधा को कवि भूल गया है। नायिका' के प्रति इस भूल से पाठक को ठेस लगती है। गोपियो को 'कृष्णमय' दिखाकर भी कवि ने केवल कृष्ण-काव्य परम्परा का ही पालन किया है। उसका उद्देश्य केवल नायक कृष्ण के महत्त्व का अपार भक्ति भाव के साथ स्थापित करना ही रहा है।

रसात्मकता

'कृष्णचन्द्रिका' हरिकथा या भागवत कथा है। उसमे भक्तिपरक वन्दना हरिविमुख निन्दा भक्ति-साधन नाम महिमा, आत्मज्ञान भगवान का मधुर तथा विराट रूप के साथ ही भावात्मक पद्धति से कथा का विस्तार है। कथा ऐसी है जिसके सुनने मात्र से (मानस की राम-कथा की भाँति) पापो का नाश आत्मज्ञान का उदय तथा भक्ति का स्रोत फूट पडता है। कृष्ण कथा का लम्बा इतिवृत्तात्मक वर्णन भक्ति भाव की प्रतिष्ठा के लिए ही हुआ है। नायक कृष्ण के कार्य-व्यापारो को देखते हुए इस काव्य का अगीरस शृगार प्रतीत होता है, लेकिन कथा के प्रतिपाद्य की दृष्टि से इसका अगीरस भक्ति है। लौकिक अलौकिक दोनो स्तरो पर कथा भक्ति भाव मे ही विनिमज्जित है। गोपिया बासुरी सुनकर वेद विधि शास्त्र अनुशासन, लोक मर्यादा किसी भी बाधा को स्वीकार नही करती हैं। लीलाब्रह्म, रसेश्वर, रस रूप रसिया अपने माधुर्य मे आनन्द का प्रसार करता है। कृष्ण, सामान्य मानव नही, साक्षात सगुण ब्रह्म हैं वे कवि के काव्य नायक ही नही, परम उपास्य तथा लोक रक्षक, लोकनायक है। विपत्ति मे इन्द्र को ललकार कर उसका गर्व चूर करते हैं गोवर्द्धन पूजा कराते हैं। पापो से धरती को मुक्त करने के लिए अनेक राक्षसो का वध करते हैं, कस को मारकर प्रजा को नया जीवन देते है। धर्म तथा काम की प्रतिष्ठा के लिए कृष्ण सर्वोच्च आसन पर विद्यमान हैं। निष्कर्ष यह है कि भाव धारा की दृष्टि से यह कथा लोकोत्तर लीला तथा अलौकिक वातावरण मे पनपी है। भागवत की कथा को आध्यात्मिकता के प्रगाढ रग मे रग कर भक्ति भाव को प्रधानता दी गयी है, जिससे इसका अगीरस भक्ति रस बन गया है।

सूरदास ने 'सूरसागर' मे भक्ति आन्दोलन तथा वल्लभ के प्रभाव से भक्ति रस को अमर कर दिया। भक्ति रस के क्षेत्र मे बगाल ने बडा कार्य किया, उन्होने माधुर्य भाव का प्रसार भक्ति के अनुरूप किया। भक्ति रस की शास्त्रीय रूप रेखा पर 'कृष्णचन्द्रिका सफल उतरती है। कृष्ण भक्ति के स्थायी भाव हैं मान, प्रणय, राग विराग उसके महाभाव। आलम्बन कृष्णादि, वशी, नारद आदि उद्दीपन हैं। अनेक सात्त्विक अनुभावो से पुष्ट हो भक्ति रस की निष्पत्ति होती है। कथानक का प्रेम

तथा माधुर्य पर स्थित होने के कारण श्रृंगीरस भक्ति ही ठहरता है। रीतिकालीन इस रचना में रीतिकालीन शृंगार की धारा नहीं है। कवि ने शृंगार के पक्ष को मर्यादित तथा शालीनशृंग से वर्णित किया है। गोपियों के प्रेम में परकीयत्व के होते हुए भी आल्हादक लोक-मर्यादा है। मुरली की ध्वनि को सुनकर मूच्छित होने में, घर से निकल भागने में, रासलीला में कुंज-केलि में, यमुना स्नान में, आध्यात्मिकता[1] का पुट अवश्य विद्यमान रहा है। घोर लौकिक पद्धति पर इन वर्णनों को कवि ने स्थान नहीं दिया है। संयोग शृंगार के वर्णन में हाव हेला, कटाक्ष, हास अनुभाव, सभी के चित्र अंकित करते हुए कवि ने गोपीप्रेम में पवित्रता की रक्षा की है।[2] गोपियों का कृष्ण के अन्तर्ध्यान हो जाने पर वियोग बहुत मार्मिक है—

अकुलाई उरन कुरग ननिन बन मुख कछु आवही।
सुख दन बिन नहि चन, छन छन मन अधम सतावही॥
कज्जल कलित दग ललित आँसू ढरत व्याकुल है यहा।
गह्वर गर पूछत फिर खग मग विटप बेलिग तहा॥[3]

इस विरह में गोपिया नन्ददास की गोपियों की भाति 'फाटि हिय रयो चल्यो'[4] वह कर कृष्णमयी हो जाती हैं। सूर की भाँति ही गुमान ने भक्ति तथा शृंगार की धारा को मुक्त मन से प्रवाहित किया है।

इस काव्य में वात्सल्य रस भी बहुत सफलता से व्यक्त है। कृष्ण की बाल क्रीडाएँ तथा माँ का हृदय यहाँ खुल कर सामने आया है। कृष्ण पर दानवी सकट की आशका से यशोदा बहुत व्यथित है। मथुरा चले जाने पर कृष्ण लौटने का नाम ही नहीं लेते, यशोदा पुत्र वियोग में जीवन का समस्त आनन्द छोड़े पागल सी दिखाई देती है।[5]

कृष्ण ने राक्षसों का वध किया तथा भूमि का पापों से उद्धार किया। भीमकाय दानवों के हनन में भयकर तथा रौद्र[6] रस के छीटे हैं। मुह खोलकर सफाई देते कृष्ण माँ को 'देखे चर अरु अचर सिन्धु कानन सरि सरवर'[7] में ब्रह्माण्ड

१ कृष्णचन्द्रिका, प० १३०
२ वही, प० २०१, २०३, २३३, १६३, १६६
३ वही, पृ० १८५
४ भवर गीत, पृ० १५
५ कृष्णचन्द्रिका, प० ७०, ८२, ८३, १०२
६ वही, प० ५२, ६२, ९४, २२९ २७, ३४, ६१, १०८ १२१, २१२
७ वही प० ६६

इनमें सूर तथा परमानन्ददास में कृष्ण की भाँति ही करा। [illegible] यहाँ वात्सल्य रस का दर्शन प्रचुर है। इस प्रकार सभी रस [illegible] तरंगायित हैं। वात्सल्य [illegible] प्रचुर [illegible] इसमें [illegible] तथा [illegible] मिलता है।

उद्देश्य की ज्योति

कृष्णचन्द्रिका का उद्देश्य जन जन को पापों से मुक्त करना तथा सासात्मक ब्रह्म का आनन्द देना से लोक कल्याण है। मानव मात्र के प्रमादाचार का विनाश तथा आत्म-बोध के लिए ही रचित इस कृष्ण-कथा के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति की है। कृष्ण-कथा कृष्ण कथा तथा कृष्ण भक्ति की इतना महत्त्व केवल स्थापित किया गया है कि लोग मगन हो सकें। कारण यह है कि उनकी आत्मा ब्रह्म की आनन्द लीला में लीन होती हुई भगवत् स्मरण कर सके। मानस अध्यात्म रामायण की भाँति ही कथा कलि-युग के पापों से मुक्ति हेतु कही गई है। कृष्ण इसी कारण अपनी भक्ति में अजय हैं —

> मल्लन वज्र समान, त्रियन मनसिज परिपूरन।
> जोगिन महाविराट दण्डधारी नृप सूरन॥
> जोगिन जाति स्वरूप सिद्ध मुनि ब्रह्म बखानहिं।
> निगम तत्त्व बुध कहहिं प्रजा प्रभु प्रभु सनमानहिं॥[1]

कवि ने इस कथा को गंगा की भाँति पवित्र तथा निर्मल कहा है—

> मोरि भनिति दूषन सहित हरिजस भूषन संग।
> साधु आदरैं जानि इमि, मिलि पावन रज गंग॥[2]

भगवान राम की भाँति ही कृष्ण गो, ब्राह्मण धर्म तथा धरती के कल्याणार्थ अवतार धारण करते हैं—

> हौं धरो अवतार लदुज दीन गोकुल पालि हौं।
> भूरि भरन भूमि को खल मारि सन सहारि हौं॥[3]

भक्ति का अथाह कल्याणकारी सागर होने के कारण ही 'कृष्णचन्द्रिका साधुओं का गीता है। जनता को यह कथा गा गा कर सुनाई जाती है। इस कृति का प्रचार पढ़े लिखे लोगों में कम है। इस कृति को 'मानस तथा 'सूर सागर ने

---

१ कृष्णचन्द्रिका, पृ० २४४
२ वही, पृ० ६
३ वही, पृ० २५

अपनी छाया से धुंधला बना दिया है, अन्यथा यह बहुत ही महत्त्व की रचना है। मध्ययुग में श्रेष्ठ रचनाओं की दृष्टि से मानस तथा सागर के बाद इसी का नाम आना चाहिए। यह रचना एकान्तिक, वैयक्तिक अथवा साम्प्रदायिक रचना नहीं है यह तो जन जन के मन का रमान का सिद्धि-मणि है।

अभिव्यंजना शिल्प में शक्ति

कृष्णचन्द्रिका के कवि ने भक्ति का महनीय भूमिका में कृष्णमय संसार को जन्म दिया है। नायक कृष्ण लोक-सौन्दर्य में अद्वितीय रत्न है। नायक के साथ पूर्णतादात्मीकरण करते हुए कवि ने साहित्यिक ब्रजभाषा में अपने को अभिव्यक्त किया है। रीतिकालीन वातावरण में जीते हुए भी कवि ने बाह्य आडम्बर प्रदर्शन तथा झूठे चमत्कारवाद को आदर नहीं दिया। अभिव्यंजना के क्षेत्र में कवि के आदर्श तुलसी, सूर रहे हैं केशव अथवा पद्माकर नहीं। प्राकृत जनों के मनोरंजन का मार्ग छोड़ कर उसने भगवान का आश्रय ग्रहण किया तथा सुबोध सरस सरल तथा सहज शैली में कृष्णचन्द्रिका की रचना की। उसने अत्यन्त अलंकृत तथा चमत्कार की पद्धति से अपने को बचाकर अलंकृतकाल में ही प्रतिष्ठित किया है। सूर की तरह जटिल दृष्टिकूट की पद-शैली भी इसमें नहीं है तथा सूदन लाल आदि वीर-काव्यों की भांति शब्दों का घनाघन तथा दनादन भी नहीं है। वर्ण्य-वस्तु के अनुकूल ही कवि ने शिल्प का चयन किया है। छन्दों के प्रयोग में बहुरंगी कवि गुमान दूरागत कल्पनाओं झूठे आलंकारिक प्रदर्शनों, भाषा में पाण्डित्य का बोझ तथा जटिल वर्ण्य के वर्णनों से मुक्त हैं। कवि ने वर्ण्य भाव, रस, प्रकृति काव्य-गुण चतुर्वर्ग फल भाषा आदि की दृष्टि से कलात्मकता का परिचय दिया है।

भाषा सूर की भाँति ही ब्रजभाषा है। भाषागत लालित्य को घनानन्द की भांति अपनाया गया है। यथा—

> भकुटनि भकुटी मरोर, मुख तट पर चटक कोर,
> लटक मटक नचत मोर मिलि मिलि अधरगे।[1]

भाषा भाव की अनुसारिणी है तथा वर्ण्य को व्यक्त करने में कवि के पास शब्दों की गरीबी नहीं है। माधुर्य तथा प्रसाद गुणों से युक्त भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली भी मिलती है। कवि बुन्देलखण्डी था अतः भाषा में अनजान ही 'बगिया', दखिबी आदि के प्रयोग में बुन्देलखण्डी प्रभाव आ गया है। कभी-कभी अरबी फारसी के लोक प्रचलित शब्द-दर्द, गद, दिल आदि भी जीवन्त रूप में प्रयुक्त हुए हैं। भाषा में लोकोक्ति तथा मुहावरों के प्रयोग में अर्थविष्णुता बढ़ा है तथा

---

१ कृष्णचन्द्रिका, पृ० १८१

अभिव्यक्ति म ब्रजी की क्रियाओं से मधुरता तथा कोमलता आ गई है। यह भाषा भाव को दीप्त करने वाला चित्र भाषा है। ध्वनि तथा नाद का कवि न भाषा म आदर किया है—

घ म घ म घ म घ मन घ ग दि नि नि नि नि नि दि नि टनग।
भन धुनि झन धुनि, झन धुनि धुनग बजन गति मृदग ॥[1]

शब्दों का अनुरणन कला ध्वनिमय वातावरण की सष्टि करती हुई सफल बिम्बों को जन्म देती है। थपरात थपरात[2] आदि शब्दों से भयकर प्रसगों म भी कवि न प्राण डाल दिए हैं। कवि ने भाषा के मधुर तथा भयकर दोनो स्वरूपों में अपनी निष्णातता का परिचय दिया है। अलकारों का प्रयोग भी सयत तथा सहज है, व भावों के सौन्दय वद्धि म सहायक हैं। कृत्रिम अलकारों की नाद बाजी का इस कृति मे एकान्त अभाव है। अनुप्रास रूपम उपमा उत्प्रेक्षा के प्रति कवि को विशेष लगाव दृष्टिगोचर होता है।

छन्दों म कवि केशव का अनुवर्त्ती है। उसने कृष्ण चन्द्र की चन्द्रिका रची समति बहु छन्द[3] कहकर अनक छन्दों का प्रयोग किया है तथा भाव का एकरसता को नष्ट करत हुए काव्य म सौन्दय की वद्धि की है। कवि न मात्रिक तथा वर्णिक दोनो प्रकार के छन्दों को अपनाया है। छन्दो म तोमर, चौपाई पद्धटिका अरिल्ल चौपाई रोला रूपमाला हरिगीतिका झूलना, दोहा, सोरठा छप्पय कुण्डलिया, वशस्थ, त्राटक इन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता शिखरिणी आदि अनेक प्राचीन तथा नवीन छन्दों का प्रयोग किया है।

कृष्णचन्द्रिका का शिल्प पक्ष बहुत रमणीय तथा प्रभावशाली है। महा काव्यात्मक शिल्प का नाद प्रवाह इसमे मिलता है।

निष्कष मे यह कहना बहुत समीचीन है कि कथय नायक रस उद्देश्य तथा अभिव्यजना की दृष्टि से 'कृष्णचन्द्रिका' सफल महाकाव्य की सभी शर्तों को पूरा करती है। कृष्ण के मधुर पक्ष का प्राधान्य तथा विराट पक्ष का रूप कम होने पर भी इनम प्रभाव की दृष्टि से कोई बाधा नही है। राक्षसो का वध तथा इन्द्र मान मदन म नायक का शौय व्यक्त है। अत भक्तिपरक पौराणिक तथा साहित्यिक इस कृति को महाकाव्य कहना ही उचित है।

---

१ कृष्णचन्द्रिका, प० १८१
२ वही प० ४३
३ वही, पृ० १०

'कृष्णचन्द्रिका' में कृष्ण का नायकत्व

कृष्णचन्द्रिका' के कृष्ण प्राचीन परम्परा के अनेक मूल्यों से निर्मित कृष्ण हैं। प्राचीन साहित्य में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व की अपार महिमा देखते हुए उन्हें ऐतिहासिक व्यक्तित्व मानने में आज सन्देह नहीं रह गया है। प्राचीन साहित्य में प्राप्त अनेक कृष्ण, वैदिक साहित्य से लेकर भागवत तक एक कृष्ण में कैसे घुलमिल गये, यह प्रश्न आज भी जटिल बना हुआ है। वैदिक कृष्ण, उपनिषद् कृष्ण, महाभारत कृष्ण, द्वारिका कृष्ण तथा गोकुल कृष्ण का ऐक्य महान सांस्कृतिक समन्वय का ही परिणाम लगता है। पौराणिक कथाओं में वासुदेव कृष्ण तथा गोपाल कृष्ण का एकत्व भी साम्प्रदायिकता में भी उदारता का रूप है। प्रेम-देवता के रूप में उनका व्यक्तित्व इतना मधुर बनाया गया कि कृष्ण प्रेममय ब्रह्म की आनन्दलीला के अवतार प्रतीक बन गये। महाभारत के कृष्ण राजनीति योग तथा मर्यादा के कारण एक ऐसा व्यक्तित्व पा गये, जो पीछे से रसेश्वर, रसिया कृष्ण में समाविष्ट नहीं हो सका। यही कारण है कि 'महाभारत के कृष्ण का ब्रज के लीलापुरुष कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं मिलता है। कृष्णचन्द्रिका' में 'महाभारत के कृष्ण' का रूप बिलकुल नहीं है भागवत में प्रतिष्ठित रसेश्वर कृष्ण का रूप यहाँ सूर की भांति मिलता है।

कृष्णचन्द्रिका' में अवतारवाद का प्राबल्य है। अवतारवाद की दृष्टि से मध्यकालीन कवियों में प्रायः दो प्रकार के श्रीकृष्ण मिलते हैं, उनमें से प्रथम विष्णु के अवतार कृष्ण तथा द्वितीय उपास्य ब्रह्म के प्रतीक श्रीकृष्ण।[1] कृष्ण धर्म की स्थापना-हेतु अवतार धारण करते हैं। डा० दीनदयाल गुप्त ने कृष्ण के इन रूपों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'धर्म संस्थापन के लिए जो अवतार होता है, वह चतुर्व्यूहात्मक है। संसार को आनन्द देने के लिए जो अवतार होता है वह उसका रसरूप है। कृष्णावतार में कृष्ण ने चतुर्व्यूहात्मक और रसात्मक दोनों रूपों से युक्त अवतार लिया था।'[2] मध्यकाल में कृष्ण इतने व्यापक हुए कि विष्णु कृष्ण का अवतार असुरों तथा दुष्ट राजाओं के संहारक रूप में हुआ। भागवत, सूरसागर तथा कृष्ण चन्द्रिका तीनों में विष्णु का अवतार रूप एक ही है। तीनों में पृथ्वी गाय का रूप धारण कर भूमि भार ढोने में असमर्थता प्रकट करती है तथा

१ डा० कपिलदेव पाण्डेय—मध्ययुगीन साहित्य में अवतारवाद पृ० ५३०

२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ६०४ (भाग २)

नारायण या विष्णु अवतार की सूचना देते हैं।[1] यह अवतारी कृष्ण ही 'कृष्ण चन्द्रिका' के नायक हैं। उनके नायकत्व के स्वरूप का निर्धारण पूर्व निर्धारित मानदण्डों के आधार पर यहाँ करने का प्रयास करेंगे।

कथा का सूत्रधार

'कृष्णचन्द्रिका' नाम से ही स्पष्ट है कि इस कृति में कृष्ण के यश का गान है। कृष्ण ही इस कथा के मूल केन्द्र-बिन्दु हैं तथा समस्त घटनाएं उन्हीं पर आधारित हैं। यह कृष्ण अनन्त शक्तियों से युक्त पृथ्वी पर देवताओं के सहित नरभूमि में मानव-शरीर धारण कर लीला करते हैं। काव्य के आरम्भ में ही कृष्ण आश्वासन देते हैं कि—

निजरा सब होहु निभय कस त्यागहु जाइ कै।
लोक लोकनि मे रमो यह भोग मे सुख पाइ कै॥
हौं धरौं अवतार ले दुज दीन गोकुल पाति हौं।
भूरि भारत भूमि को खल मारि सैन सहारि हौं॥[2]

यह कृष्ण चतुर्भुज रूप में राम की भाँति ही जन्म लेते हैं। वासुदेव कृष्ण को यशोदा के धाम पहुँचाते है। बालक कृष्ण पूतना, तृणावर्त तथा शकटासुर का वध करते हैं।[3] मिट्टी खाते हुए कृष्ण यशोदा को मुँह में ब्रह्माण्ड दिखाकर चकित करते हैं।[3] साधारण तथा वत्सासुर बकासुर आदि राक्षसों का वध करते हैं तथा कृष्ण ब्रह्मा का मोह भंग करते हैं। जन त्राण के लिए कालीदह में कूदते हैं, नाग नाथते हैं दावानल पान करते हैं।

चमत्कारिक कृष्ण गोपियों के साथ रास लीला करते हैं। यह कथा कवि ने यहाँ बहुत विस्तार से कही है। कृष्ण, इन्द्र पूजा का विरोध करते हुए गोवर्द्धन पूजा का आरम्भ कराते हैं। कृष्ण द्वारा इन्द्र पूजा का विरोध देख कर लगता है कि बड़ा ही प्रतापी इन्द्र यहाँ तक आते महत्वहीन हो गया था तथा कृष्ण ने उसके व्यक्तित्व को पूरी तरह से पराजित किया होगा।

कृष्ण दुष्ट कंस का वध करते हैं तथा उग्रसेन को राजा बना देते हैं। यह कथा भी कवि ने साधारण पद्धति से आगे बढ़ा दी है। व्रजविलास में भी कथा

---

१ (क) भागवत—१०, १, १६, २३

(ख) धनु रूप धरि बहुनि पुकारी धरि नरतन अवतारा।

सूरसागर, पद ६२२

(ग) कृष्णचन्द्रिका तृतीय प्रकाश।

२ कृष्णचन्द्रिका पृ० २८

३ वही, पंचम प्रकाश।

वहन म कवि रमा है, ऐसे ही कवि यही भी कथा वहने मे जम गया है। इसका प्रभाव बहुत अच्छा नही पडता है, पाठक कस को कमजोर पाकर बहुत प्रसन्न नही होता, कस ऐसे आततायी को भयकर खलनायक दिखाना चाहिए था। तुलसी ने 'मानस' म रावण के चरित्र मे खलनायक की सभी विशेषताओ को दिखाते हुए भी अद्भुत बलशाली रूप दिया है। ऐसे रावण के वध मे राम का महत्त्व बढा है। लेकिन कृष्ण के समक्ष कस बडा हीन पात्र है। कवि ने उसका उचित चित्रण नही किया। कृष्ण को कवि लीला पुरुष चित्रित करने मे ही उलझा रहा है।

परब्रह्म हरि

गुमान कवि के कृष्ण परम ब्रह्म-हरि हैं। ये अन्तर्यामी निगुण-सगुण अनन्त अनुपम, अविनाशी, पूर्ण पुरुष पुरुषोत्तम तथा प्रकट ब्रह्म हैं। यह ब्रह्म अपने गोलोक म निवास करता है तथा उसकी लीलाए गोकुल, वन्दावन तथा मथुरा तक फैली हुई हैं। यही ब्रह्म असुर-सहारन, भूमि उधारन तथा चतुर्भुज विष्णु है, जो लीलात्मक अवतार के कारण मानव बन गया है।

सासारिक-कृष्ण

मानव जीवन का अन्तरग पक्ष कृष्ण म अधिक उपलब्ध होता है वेद जिन्ह नेति नेति कह कर गाते हैं शिव ब्रह्मा, सनकादि जिनका पार नही पाते हैं, वही वे ही इस ब्रज म गोप-गोपियो के साथ धूल म खेलता है। 'भागवत' म अवतारी कृष्ण का जो रूप है, 'कृष्ण चन्द्रिका' मे वसा ही लक्षित होता है। यही रूप सूर, नन्ददास मे भी मिलता है। कृष्ण बाल क्रीडा करते हुए मुह खोलकर ब्रह्माण्ड-दर्शन से मा को चमत्कृत करते हैं। यशोदा देखती है कि अखिल ब्रह्माण्ड तथा विश्व उन्ही म स्थित है। यही ब्रह्म कृष्ण सामान्य बालको की भाँति माखन चुराते मुरली बजाने, गोपियो को रिझाते हैं। गोपिया ऋचात्मक तथा कृष्ण प्रणवात्मक हैं।

प्रतीक कृष्ण

कृष्ण को गुमान कवि ने लीला प्रतीक या आध्यात्मिक पुरुष का प्रतीक माना है। इस लीला विस्तार के मूल म 'ब्रह्म इच्छा' ही है। लीला अहतुकी है। इस लीला का प्रकट रूप ही ब्रजलीला है। कथा के आलम्बन रसिकेश्वर कृष्ण प्रकट तथा अप्रकट लीला मे माधुर्य घोलते हैं।

अवतरण प्रतीक

कृष्ण असाधारण परिपाश्व म अवतारी, अगा अशी तथा पूर्ण पुरुष पुरुषोत्तम माधव हैं। लीला सहचर नित्य-लीलाओ से आनन्द का प्रसार तथा पापो का नाश करता है। कारागार म जन्म लेकर भी वे मुक्ति का सन्देश लाये हैं। गुमान ने बाल कौमार पौगण्ड और कैशोर चारो लीलात्मक रूपो को अपनाया है।

पुरुष-पुरातन जप तप, सयम से योगियो के लिए परे हान पर भी यशोदा के आँगन म दौड रहा है। सृष्टि का कर्त्ता, पालक, सहारक गायें चरा रहा है। गुणातीत ब्रह्म रासलीला करता है शिव जिसे समाधि लगाकर नही प्राप्त कर पात, वह राधा के परा पर लोट रहा है। भक्ता क हतु अवतारी कृष्ण लीलारत है। अत यह कृष्ण लीलाप्रतीक आध्यात्म प्रतीक अवतार प्रतीक, काम प्रतीक आदि अनक रूपो म प्रकट है।

इस प्रकार रसेश्वर कृष्ण इस कथा के प्राणवान सूत्रधार हैं तथा उनकी अदभुत लालाओ का गान ही अनक कृष्ण भक्तिधारा के कवियो की भाँति यहाँ मिलता है।

महत्त्वपूर्ण व्यक्ति

महाकाव्य का नायक शाश्वत महत्त्व का व्यक्ति हो। इस कसौट पर कृष्ण बहुत सफल उतरत हैं। सम्पूर्ण भारतीय जीवन मे व प्रेम सौन्दर्य एव आध्यात्मिक लीला के प्रतीक हैं। उनके व्यक्तित्व म अनेक जीवन मूल्यों का सामाजिक योग है। राम लोकमर्यादा के महान प्रतीक हैं तथा कृष्ण लोक सौंदर्य से मण्डित रास लीला म काम क प्रतीक हैं। ये दाना सास्कृतिक व्यक्तित्व ही भारतीय सस्कृति के दो शाश्वत स्तम्भ हैं जिनसे जन जन का जावन का विश्वास मिलता है। मानव की मूल वत्ति आनन्द है तथा जीवन स्वय आनन्द के खोज की साधना है। कृष्ण जीवन का इन्ही आनन्द शक्तियो के अक्षय कोश हैं। राम मर्यादाओ का आदश भूमि स डिगने नही है कृष्ण का जीवन मर्यादा भग मे ही महत्त्वपूर्ण बा पाया है। सीमित मर्यादाओ को ललकार कर कृष्ण ने लोक जावन म उ मुक्त विलास का स देश दिया। शरद की ज्योत्स्ना रजित रजनी म मुक्त क्रीडा का एक उदाहरण देखिए—

स्यामा अरु स्याम रग निरतत मिलि सगे।
मन्द निसा चारुचन्द्र कुमुदिनि मुदि उदित व द।
आवत आनन्द मन्द पौन की उमग।
मुकुटनि भकुटी मरोर, मुरतट पर चढत कोर,
लटक मटक नचत जोर मिलि मिलि अधरगें॥[1]

कृष्ण की मुरला मोहन की माया है जिसे सुनते ही गोपिया घरो मे उनकी ओर भागन लगती हैं।

सुनि धुनि वन बसी चौंकती चित्त प्यारी,
अभक भभक डोल लोल ललनावारी॥

---

१ कृष्णचन्द्रिका पृ० १८१

दसदिसि प्रवलोक राजती स्वरण प्रगी
मग ढिग विछर तहेरती ज्यो कुरगी ।।[1]

धीर ललित नायक का शाश्वत रूप यहाँ इन लीलाम्रा मे प्रकट है । कृष्णमर्यादाम्रो के स्थान पर सहज मानवीय मूल्यो को प्रतिष्ठित करते हैं । जा मानवीय प्रतिमानवीय प्राकृतिक-पराप्राकृतिक विरोधी शक्तिया जीवन मे बधी हैं, कृष्ण उन्हें ध्वस्त करने हैं । मर्यादा के प्रावरण को चीर कर कृष्ण मन की मूल इच्छाम्रा को प्रकाश मे दते हैं । रासलीला, चीर हरण, स्वकीया-परकीया, का यही सत्य है । कृष्ण जीवन म मुक्त भोग का सन्देश लाते हैं वे मानव को रसात्मक जीवन पद्धति म ढालते हैं । मध्ययुगीन सम्पूर्ण कृष्ण काव्य धारा मे कृष्ण धम के साथ भोग का मन्त्र फूक रह हैं । कृष्ण के इस रूप को अपना कर 'कृष्ण चन्द्रिका' ने उन्ह शाश्वत महत्त्व का व्यक्ति बना दिया है ।

दृढ प्रात्म शक्ति

बाल लीलाओं से ही जा दुष्ट असुरा का सहार करता है बिना किसी चिन्ता के जा कालीन्ह मे कूद जाता है, जा इन्द्र का ललकार कर उन्ह पराजित करता है, जो दावानल पान कर सकता है, जो कस का पछाडन मे घबराहट का कोई सकत नहीं देता, जो दानवो के दगल म सर्वाधिक भक्तिशाली है, ऐसे कृष्ण को अपराजेय प्रात्म शक्ति स युक्त नायक नहीं कहेंग, तो फिर किसे कहा जा सकेगा, पल भर के लिए भी सम्पूर्ण कृष्णचन्द्रिका मे कृष्ण कहीं भी भयाकुल नही दिखाय गये हैं । परमब्रह्म की मानवीय लीलाएं इतनी विचित्र हैं कि उनकी प्राध्यात्मिकता की आभा भक्ता का श्रद्धानवत कर दती है ।

प्रतिनिधि चरित्र

कृष्णजीवन के प्रवत्यात्मक रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं । राम तथा कृष्ण ने अपनी कथाम्रो के द्वारा हजारा वर्षों से भारतीय जीवन को प्रभावित किया है । दोनों का चरित्र ही करोडो व्यक्तिया के बीच विस्तत प्रार्यावत्त म पूजनीय तथा अनुकरणीय रहा । धम साधना के ग्रथ तथा काव्य दोना मे ही वे जीवन के सभ्य अश का उद्घाटन करते हैं । भारतीय सस्कृति म जो भी भव्य विराट तथा मधुर था, राम तथा कृष्ण के लीलामय व्यक्तित्व म समाहित हो गया । राम तथा कृष्ण के जीवन मूल्यों न ऊँच-नीच धनी निधन सब के हृदय मे अपना प्रासन जमाया है । गहस्थ, दाशनिक, योगी, विरक्त साधु ज्ञानी आदि सभी ने अपना साधना से इन चरित्रो को विकसित किया तथा प्रत्येक युग के प्रादश मूल्य इनम व समाविष्ट करते

[1] कृष्णचन्द्रिका, पृ० १६६

गय । राम का चरित्र आदर्श की दृष्टि से जनता के हृदय पर अधिकार रखने वाला विराट चरित्र है । राम के द्वारा स्थापित प्रतिमान सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं । लेकिन कृष्ण के द्वारा स्थापित प्रतिमान युगानुकूल परिवर्तित होते रहे हैं ।

कृष्णचन्द्रिका' में महाभारत के योगी कृष्ण का रूप नहीं है । कवि ने अगर महाभारत कृष्ण तथा ब्रज-कृष्ण को मिला कर यदि इस महाकाव्य की रचना की होती तो यह भी 'मानस' की भाँति एक अमर महाकाव्य होता । कवि ने कृष्ण भक्ति धारा में प्रचलित कृष्ण कथा के मधुर पक्ष को अपनाया है । कृष्ण का यह रूप सूरदास परमानन्ददास नन्ददास ब्रजवासीदास आदि कवियों में लगातार मिलने के कारण 'कृष्णचन्द्रिका' के कृष्ण मात्र उनकी पुनरावृत्ति ही बनकर रह गये । ब्रजविलास के नायक कृष्ण तथा कृष्णचन्द्रिका के नायक कृष्ण में सामान्य रूप से कोई अंतर नहीं है ।

कृष्ण ने अपनी मधुर लीलाओं से मानवीय अंतःकरण को अभिभूत किया है तथा ब्रह्मत्व के द्वारा पापियों का वध किया है । वे पापों से मुक्ति के साथ आनन्दवादी जीवन दर्शन को प्रस्तुत करते हैं अतः उन्हें इस कृति में जीवन का प्रतिनिधि चरित्र मानने में कोई बाधा नहीं है ।

दिव्य शक्ति से अलंकृत

कृष्ण-चन्द्रिका के कृष्ण दिव्य शक्तियों से अलंकृत ही नहीं स्वयं पूर्ण ब्रह्म हैं । सम्पूर्ण संसार उन्हीं की इच्छा का लीलात्मक प्रसार है । ब्रह्मा विष्णु महेश उन्हीं की आराधना करते हैं । कृष्ण अपनी दिव्यता में असीम अनन्त तथा अपरिमेय हैं । उनकी दिव्यता का अलग चर्चा करना यहाँ विषयान्तर ही होगा । अतः उन्हें राम की कोटि का दिव्य व्यक्तित्व मान लेना चाहिए ।

विचारों की व्यापकता तथा कार्यों की उदात्तता

गुमान मिश्र ने कृष्ण को साम्प्रदायिक रंग नहीं दिया है उनके व्यक्तित्व का निर्माण युग-युग से प्राप्त होने वाले रूपों से हुआ है । इनमें व्यक्ति, इतिहास कला संस्कृति, युग चेतना जातीय कार्यकलाप जनश्रुतियाँ परम्पराएं तथा सांस्कृतिक साधना उपासना का अंतर्भाव मिलता है । कृष्ण की सामाजिक चेतना धार्मिक भावना से आक्रान्त है तथा वे प्रत्येक जन का कल्याण चाहते हैं । शत्रु मित्र पर अपनी करुणा प्रदर्शित करते हुए वे व्यापक हैं । वे सभी देवताओं के प्रति भक्ति भाव रखते हैं नानियों तथा संतों का आदर करते हैं सुदामा को समान मानकर राजा बना देते हैं गुरु के मृत पुत्र को जीवन देकर वे गुरु भक्ति प्रकट करते हैं । उनके विचारों में गो ब्राह्मण तथा धर्म की रक्षा का लोकहितकारी भाव है ।

कारागार म ज म लेकर वे अपनी अद्भुत लीला का आरम्भ करते हैं। गोपियों के साथ रास-लीला मे रत रहते हुए भी वे उन्हें पतिव्रता बनने तथा कामोन्मयन के आदश को दिखलाते रहते हैं। जन मगल के लिए ही वे असुरों से टकराते हैं, कस का वध करत हैं पाप को हटा कर पुण्य की प्रतिष्ठा बढाते हैं।

कृष्ण का प्रेम उन्नत है। यह प्रेम लौकिक नही, लोकोत्तर या अलौकिक चेतना का प्रकाश है। उनकी लीला आनन्द का पर्याय है वे जीवन म आनन्द के साधक हैं। गुमान न कृष्ण को रीतिकालीन वातावरण से बचाकर भक्ति तथा भगवान के सम्बन्ध मे पवित्रता रखी है। उनके कार्यों म सामाजिक गौरव की रक्षा तथा जन नायक की महानता है। यथा—

जाको अज ईस जु ध्यावत हैं। जोगीन्द्र जिन्हे मन ल्यावत हैं॥
लीला प्रभु की जू अपार महा। खेलै मिलि सग सखानि तहा॥[1]

कृष्ण के कार्यों म उन्नतता तथा विचारा मे व्यापकता क्या न हो जब निर्गुण निराकार ब्रह्म ही कृष्ण के रूप म अवतरित हुआ है। देवता उनकी विनय करते हुए उनकी महानता का सकेत देत हैं—

अगुन गुनामय अवष प्रभु, अज गोतीत बखान।
विनय करत सक्रादि सुर, कृपा करो भगवान॥[2]

यह कृष्ण अपने रूपो म बहुत उदात्त है—

मल्लन वज्र समान त्रियन मनसिज परिपूरन।
जोनित महा विराट दण्डधारी नप क्रूरन॥
जोगिन जाति स्वरूप सिद्ध मुनि ब्रह्म बखानहि।
निगम तत्तु बुगल दृष्टि प्रजा प्रभु प्रभु सन मानहि॥
वसुदेव देवकिहि पुन सम परम पियारे प्रान इमि।
जदुकुलहि वस अवतम से कसहि काल कराल जिमि॥[3]

देवता तक उस दिव्य-पुरुष को नही पहिचान पाते तब सामान्य व्यक्ति के लिए तो उन्हें पहिचानना और भी कठिन है—

तुम माया मोहित ब्रह्मादिक हम किहि विधि पहिचाने।
नारदादि सनकादिक लोमस सेस महेस भुलाने।[4]

कृष्ण के काय भी उनके व्यक्तित्व के अनुकूल ही हैं—

---

१ कृष्णचन्द्रिका, प० ६०
२ वही, प० १५८
३ वही, प० २५४
४ वही पृ० ~

सरद इन्दु राकेश विनिन्दक वदन इन्दु निधि साहै।
कोटिक कोटि मनोज मनोहर त्रिभुवन ललित छवि मोहै ॥[1]

अनंत सौन्दर्य के सागर कृष्ण शील एवं शक्ति के भी पुंज हैं। कृष्ण के कार्यों की उदात्तता के कारण ही 'कृष्णचन्द्रिका' महाकाव्य बन सकी है।

कथा का मूल भाव या रस का आधार

आचार्यों के मत से नायक को मूल भाव का आधार होना चाहिए, चूंकि महाकाव्य महामानव के कार्यों का प्रतिफल होता है, अतः कथा का मूल भाव नायक पर ही आधारित न हो, यह सम्भव भी नहीं है। अपवाद हो सकते हैं, जैसे कामायनी में नायक का नहीं नायिका के मूल भाव को आदर मिला है। कथा ही नायिका प्रधान है। इस दृष्टि से कृष्णचन्द्रिका की कथा नायक प्रधान है। नायिका राधा यहाँ कृष्ण वियोग में ही दुःखी दिखाई देती है शेष काव्य में उसकी सत्ता ही नहीं है। इस कथा का समस्त ढाँचा भक्तिपरक है। भाव पद्धति के मधुरतम रूप में यह मधुरा भक्ति का काव्य है। भक्तों के अनुराग से वशीभूत होकर ही भगवान शरीर धारण करते हैं, नर लीला करते हुए अधर्म का नाश तथा धर्म की स्थापना करते हैं। इसी कारण इस काव्य का अंगीरस भक्ति रस को मानना चाहिए। यह कथा भी शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को पापों की मुक्ति के लिए सुनाई है। इस कथा के श्रवण या नायक के नाम श्रवण मात्र से पाप नष्ट होते हैं अतः भक्ति की अबाध कल्लोलिनी इस कृति में प्रवाहित है। रसिकेश्वर कृष्ण ही भक्तों के आलम्बन तथा लीलाधर हैं। एक ओर वे कंसारि हैं दूसरी ओर भक्तों के परम आराध्य। कवि ने भगवान के यश का गान भक्ति रस में डूब जाने के लिए ही किया है।

अन्य पात्रों द्वारा नायक के महत्त्व की स्वीकृति

श्रीकृष्ण के दिव्यतेज से शत्रु तथा मित्र सभी अभिभूत हैं। कृष्ण द्वारा इन्द्र पूजा का विरोध तथा गोवर्द्धन पूजा का आदेश मिलने पर इन्द्र क्रोध धारण करता है तथा घनघोर वृष्टि करता है। कृष्ण गोवर्द्धन उठाकर ब्रज की रक्षा करते हैं। इन्द्र कृष्ण के तेज से अभिभूत हो उनसे क्षमा-याचना करता हुआ उनकी स्तुति करता है। वरुण के दूतों द्वारा नन्द के अपहरण पर कृष्ण को क्रोध आता है, वरुण उनके पर पकड़ लेते है। ब्रह्मा तथा शिव इस आनन्द देव की सेवा करते हैं।[2] गोपी गोप कृष्ण की कीर्ति का गान करते हैं। शत्रु पक्ष के सभी योद्धा कंस सहित उनसे थर थराते हैं। इस काव्य में ऐसा कोई पात्र नहीं है, जिस पर कृष्ण का रंग नहीं है।

---

१ कृष्णचन्द्रिका, पृ० ७६

कृष्णचन्द्रिका, षर्डावंश प्रकाश।

अधिकांश पात्र कृष्णमय हो गये हैं, शेष असुरों को भी भक्त बनाकर मुक्ति दी गई है। सम्पूर्ण कथा के नर नारी पात्र कृष्ण-महात्म्य के कारण ही उनके यश का कीर्तन करते हैं।

प्रतिनायक

प्रतिनायक जितना सामर्थ्यवान एव प्रचण्ड होगा, नायक की उस पर विजय उतना ही अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। राम के तेज का निखार रावण जसे प्रतिनायक को पछाड़ने से ही निखरा है। इस काव्य का प्रतिनायक कस है, लेकिन कवि ने उस पर ध्यान ही नहीं दिया। कस रावण की भाँति ही बहुत समय प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया जा सकता था, अगर कवि ने कृष्ण-पक्ष से थोडा इधर भी मोड़ लिया होता। अपार अत्याचारी कस से सभी पीडित थे। पृथ्वी उसी के अत्याचारों से थक कर भगवान के समक्ष गाय का रूप धारण करती है। पृथ्वी कहती है कि—

> बस दानव अ स ते प्रगटे जु कस कराल से।
> धम दूपक जानिये सुर सन्त अन्तक काल से॥
> विघ्न कर्मनि मग्न धर्मनि पाप कीरति कौं लई।
> नवट बुद्धि अरिवट जे जग हौं कलिष्टित कौं भई॥[1]

कस का वध करने का कृष्ण आश्वासन देते हैं, ऐसा प्रबल प्रतिनायक कृष्ण के द्वारा बिना लड़े ही कायर की भांति मर जाता है तब उसकी असुरी शक्तियों पर सन्देह होना स्वाभाविक है।

कस यहाँ आदर्श भाई के रूप मे अपनी भगिनी का विवाह तथा विप्र राजाओं की भाँति वभव-दान के द्वारा करता है।[2] कस मे कवि ने दयापूर्ण व्यवहार के चित्र भी दिखाए हैं जस वसुदेव द्वारा नारी-वध की चर्चा करने पर वह दया-वश उसे छोड़ देता है।[3] नारद उसकी बुद्धि का नाश करते हैं। उसके चरित्र की क्रूरता पर कवि ने दवी परदा डाल दिया है। यह दवी परदा कथा की विसगति है। एक ओर तो कवि उसके अत्याचारों की पृथ्वी से शिकायत कराता है, दूसरी ओर उसके कार्यों पर परम सत्ता की शक्तिवशता का आवरण डाल देता है। कवि ने कस को बिना युद्ध किए मरवा डाला है इससे नायक के प्रभावशाली व्यक्तित्व के महत्त्व को ठेस लगी है।

१ कृष्णचन्द्रिका पृ० २५
२ वही, पृ० २६
३ वही, पृ० २२

जिस कंस के लिए इतना विराट् देवताओं ने स्वाँग रचा वह इतना खाली होगा, इस पर मन सहसा विश्वास नहीं करता है। कृष्ण जैसे नायक के लिए कंस जैसा प्रति नायक बिलकुल औचित्य नहीं रखता है। लगता है कि कवि ने कंस को प्रतिनायक मानने की परम्परा मात्र का पालन किया है। उसके चरित्र के साथ न्याय करने की कोशिश नहीं की है। सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य में कंस ही प्रतिनायक बन कर आया है, लेकिन उसका चरित्र किसी भी कवि ने उभारा नहीं है यह बहुत खटकने वाली बात है।

नायक कोटि का निर्धारण

कृष्ण के नायकत्व में असीम विस्तार है। उनका महान सांस्कृतिक व्यक्तित्व किसी सीमित दृष्टि से परखा नहीं जा सकता है। दक्षिण नायक धीर ललित, धीरोदात्त नायकों के लक्षणों की पूर्ण झलक मिलने पर भी उन्हें ऐसा कोई नाम नहीं दिया जा सकता है। ये कृष्ण युगों-युगों की साधना के विकास रूप हैं। यह कृष्ण पुराण परम्परा के सर्वस्व हैं तथा समस्त कृष्ण काव्य धारा के लालित्य ही लालित्य में डूब चुके हैं। सूरदास के कृष्ण ब्रजवासीदास के कृष्ण तथा गुमान त्रिपाठी के कृष्ण भागवत के कृष्ण होने के कारण एक जैसे ही हैं। वे पूर्ण ब्रह्म, अविनाशी लीलावतार तथा लोक उद्धारक हैं। लोक विधियों का वे अतिक्रमण करते हैं। अद्भुत चमत्कारों से युक्त कृष्ण साहित्य शास्त्र में निर्धारित किसी भी मानदण्ड से बड़े हैं। इस काव्य में उनकी दिव्यता को देखते हुए उन्हें जन-नायक कहना ही समीचीन लगता है।

तुलनात्मक दृष्टि

सूरदास, नन्ददास, ब्रजवासीदास तथा गुमान त्रिपाठी इन सभी के काव्य का आधार भागवत पर टिका है। इन सभी ने भागवत की घटनाओं को इतना अधिक ग्रहण किया है कि ये कृतियाँ कभी-कभी भागवत का अनुवाद सा आभास देती हैं। मध्ययुगीन कृष्ण-काव्यधारा भागवत से ही प्रभावित है। भागवत के माधुर्य नायक का ही वर्णन भक्त करते रहे हैं। अनेक सम्प्रदायों के चक्र-व्यूह में फँस कर भी कृष्ण से वे भागवत प्रभाव नहीं हटा सके। इस प्रकार का एक कारण यह भी है कि भागवत में प्रेम कथाओं के द्वारा कृष्ण को बहुत आकर्षक रूप दे दिया गया। उनकी लीलाओं में आनन्द-लीलाओं की भरमार तथा सौन्दर्य की अपूर्व छटा मिलती है। भागवत के कृष्ण का कवि ने महाभारत के कृष्ण से समन्वय करते हुए एक नवीन कृष्ण का विकास नहीं किया, जो बहुत बड़ा कार्य होता। कृष्ण में भक्ति कवियों ने माधुर्य भाव का अतिरेक किया, परिणामस्वरूप रीतिकाल के कृष्ण रसिक

विहारी होकर छेड़छाड करने लगे। उनके सौन्दय म वासना की दुगन्ध आने लगी। फिर भी 'कृष्णचन्द्रिका' के कृष्ण इस पाप से मुक्त हैं तथा रीतिकालीन कोई कलक उन पर नहीं है।

कृष्ण के व्यक्तित्व मे अनेक भावनाए थी, जिनका मध्यकाल म विकास नहीं हुआ। आधुनिक काल म हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास' म कृष्ण को लोक-सुधारण रूप म प्रस्तुत किया। द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने 'कृष्णायन' म कृष्ण को युग का राजनीति नेता बनाकर उनका प्राचीन स्वरूप ही बदल डाला है। आधुनिक काल म हुए कृष्ण स्वरूप के परिवर्तित प्राचीन जडता को चुनौती देते हैं। 'रश्मिरथी' म गीता कृष्ण का विराट रूप खुल कर व्यक्त हुआ है। 'अन्धायुग' म कृष्ण सच्चे अर्थों म लोक-नायक हैं तथा युग के दद को झेल रहे हैं।

कृष्ण का अनेकमुखी व्यक्तित्व कवियो को निरतर प्रेरणा देता रहा, फिर भी भक्त कविया न उस लीलावतारी रूप मे ही समेटा है। भक्तो के कृष्ण प्रेम और आनन्द के प्रतीक बन रह जिन पर पुराण-परम्परा का गम्भीर प्रभाव पडा है। मध्य युग म कृष्ण की प्रधानता रही, लेकिन उनका विकास दो रूपो म ही हो सका है। आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि 'श्रीकृष्णावतार के दो रूप मुख्य हैं। एक म वे यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, राजा हैं, कसारि हैं दूसरे म वे गोपाल हैं गोपीजनवल्लभ हैं, राधाधर-सुधापानशालि-वनमाली हैं। प्रथम रूप का पता बहुत पुराने ग्रन्थों से चल जाता है, पर दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है। धीरे धीर यह दूसरा रूप ही प्रधान हो गया और पहला रूप गौण।''[१] सूरदास, गुमान त्रिपाठी तथा ब्रजवासीदास ने कृष्ण की वीरता के स्थान पर उनके विस्मयकारी क्रीडा कौतुक का ही प्रधानता दी, जिसमे अलौकिक ब्रह्म का आनन्द कला का प्रसार है। वास्तव मे तथ्य यही है कि कृष्ण चरित जीवन के वास्तविक चित्रण अथवा आदश चित्रण के रूप में रचा ही नहीं गया, उनका चरित्र वास्तव म परम ब्रह्म का लीला मात्र है, जिसका प्रयोजन लीलानन्द के अतिरिक्त अन्य कुछ नही। उसका उद्देश्य अखण्ड आनन्द मे जीवन की आध्यात्मिक परिपूर्णता की व्यजना करना ही है।''[२] सूरदास के कृष्ण की मध्य-युग के प्रबन्ध-कविया पर छाये रहे, तथा उनके चरित्र का विकास सूर से आगे नहीं हो सका। 'ब्रजविलास' तथा कृष्णचन्द्रिका मे कृष्ण म कुछ भी नया नहीं है, वे सूर के कृष्ण का पुनरावृत्ति मात्र ही हैं।

---

१ मध्ययुगीन धर्म-साधना पृ० १२६

२ हिन्दी साहित्य-कोश, भाग २, पृ० ९६

निष्कर्ष

ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यांकन करने पर कृष्ण के चरित्र में मानवीय मन्तव त्तियों की उदात्त अभिव्यक्ति मिलती है। गुमान त्रिपाठी ने दिव्य, आध्यात्मिक, गूढ, लीलानागर, रसेश्वर तथा भक्तवत्सल भगवान के रूप को ही प्रतिष्ठित किया। युग के महावीर नेता, योद्धा असुर सहारक, सास्कृतिक महापुरुष कृष्ण मासल व्यक्तित्व तथा लीलात्मक सौन्दय के द्वारा औदात्य की सष्टि करते हैं। बुद्ध के व्यक्तित्व की उदासीनता विरक्ति, निष्क्रियता पर कृष्ण ने विजय प्राप्त की। कृष्ण अपनी सक्रियता, सचेष्टता प्रयत्न, महान सघर्ष, महान दायित्व, महान् लक्ष्य और महान् सास्कृतिक निर्माण में बहुत गौरवपूर्ण हैं। कृष्ण में वीरोदात्त प्रकृतियों के द्वारा सघर्षशील तथा मधुरोदात्त प्रवृत्तियों के द्वारा सौन्दर्ययुक्त उदात्त कार्यों का मिश्रण हो गया है।



सहायक ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

१ अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड
२ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल
३ अग्निपुराण का शास्त्रीय भाग—श्री रामलाल वर्मा
४ अवध के प्रमुख कवि—डा० ब्रजकिशोर मिश्र
५ अरस्तू का काव्यशास्त्र—स० डा० नगेन्द्र
६ अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजी—डा० किशोरीशरण लाल
७ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—डा० दीनदयाल गुप्त
८ आचार्य केशवदास—डा० हीरालाल दीक्षित
९ आधुनिक साहित्य—आ० नन्ददुलारे वाजपेयी
१० आधुनिक हिन्दी साहित्य—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
११ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डा० श्रीकृष्णलाल
१२ आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान—डा० श्यामनन्दन किशोर
१३ आस्था के चरण—डा० नगेन्द्र
१४ इस्लाम के सूफी साधक—निकल्सन—अनु० श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
१५ कवितावली—तुलसीदास
१६ कविताकौमुदी (भाग १)—स० रामनरेश त्रिपाठी
१७ कविवर जायसी और उनका पद्मावत—डा० सुधीन्द्र
१८ कामायनी—जयशंकर 'प्रसाद'
१९ कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ—डा० नगेन्द्र
२० काव्य के रूप—बाबू गुलाबराय
२१ काव्य-दर्पण—पं० रामदहिन मिश्र
२२ काव्य में उदात्त तत्व—डा० नगेन्द्र
२३ काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दुबे
२४ काव्यशास्त्र—डा० भगीरथ मिश्र
२५ कुमारसंभव—अनु० मुरारि
२६ कृष्ण चरित—बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (अनु० जगन्नाथ चतुर्वेदी)
२७ कृष्णचन्द्रिका—गुमान त्रिपाठी—सं० श्री उदयशंकर भट्ट
२८ केशव की काव्यकला—पं० कृष्णशंकर 'शुक्ल'
२९ केशव और उनका साहित्य—डा० प्रतिपालसिंह

३० केशव-ग्रन्थावली (भाग ३)—सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
३१ केशवदास—श्री चन्द्रबली पाण्डेय
३२ केशवदास, जीवनी कला और कृतित्व—डा० किरणचन्द्र शर्मा
३३ खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास—श्री ब्रजरत्नदास
३४ खिलजीकालीन भारत—स० स० अतहर अब्बास 'रिजवी'
३५ गीता रहस्य—लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक
३६ गोरखनाथ और उनका युग—डा० रांगेय राघव
३७ गोरखबानी—आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
३८ गोस्वामी तुलसीदास—आ० रामचन्द्र शुक्ल
३९ चित्रावली—उसमान
४० चिन्तामणि (भाग १)—आ० रामचन्द्र शुक्ल
४१ जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य—डा० सरला शुक्ल
४२ जायसी ग्रन्थावली—आ० रामचन्द्र शुक्ल
४३ जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त—श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र सुधांशु
४४ तसव्वुफ अथवा सूफीमत—श्री चन्द्रबली पाण्डेय
४५ तुलसी ग्रन्थावली—आ० रामचन्द्र शुक्ल
४६ तुलसी दर्शन—आ० बलदेवप्रसाद मिश्र
४७ तुलसी दर्शन मीमांसा—डा० उदयभानुसिंह
४८ तुलसीदास—डा० माताप्रसाद गुप्त
४९ देव और उनकी कविता—डा० नगेन्द्र
५० नाथ सिद्धों की बानियाँ—आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
५१ पदमावत—सं० डा० माताप्रसाद गुप्त
५२ पदमावत का काव्य सौन्दर्य—डा० शिवसहाय पाठक
५३ पद्मावत का अनुशीलन—श्री इन्द्रपाल नारंग
५४ पदमावत में लोक-तत्व—डा० रवीन्द्र 'भ्रमर
५५ पृथ्वीराज विजय—जयानक
५६ प्रेमरस—शेख रहीम
५७ ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में

अभिव्यंजना शिल्प—डा० सावित्री सिन्हा

५८ ब्रजविलास—ब्रजवासीदास
५९ बारकरी सम्प्रदाय का इतिहास—एस० वा० दाण्डेकर

६० वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस
का तुलनात्मक अध्ययन—डा० विद्यामिश्र
६१ बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य—डा० प्रतिपाल सिंह
६२ वृहत हिन्दी कोश—स० कालिकाप्रसाद
६३ भ्रमरगीतसार—ग्रा० रामचन्द्र शुक्ल
६४ भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य—डा० कमल कुलश्रेष्ठ
६५ भारतीय दर्शन—डा० बलदेव उपाध्याय
६६ भारतीय साधना और सूर साहित्य—डा० मुन्शीराम शर्मा
६७ भूषण ग्रन्थावली—स० लाला भगवानदीन
६८ मध्ययुगीन बोध का स्वरूप—ग्रा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
६९ मध्ययुगीन धर्म साधना—ग्रा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
७० मध्ययुगीन प्रेम साधना—श्री परशुराम चतुर्वेदी
७१ मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डा० श्याम मनोहर पाण्डेय
७२ मध्ययुगीन साहित्य का लोक तात्त्विक अध्ययन—डा० सत्येन्द्र
७३ मध्ययुगीन साहित्य में अवतारवाद—डा० कपिलदेव पाण्डेय
७४ मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण भक्तिधारा और चैतन्य सम्प्रदाय—डा० मीरा श्रीवास्तव
७५ मधुमालती—स० डा० माताप्रसाद गुप्त
७६ मराठा हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डा० र० श० केलकर
७७ महाकवि सूरदास—ग्रा० नन्ददुलारे बाजपेयी
७८ मानस—वियोगी हरि
७९ मानस-दर्शन—डा० श्रीकृष्णलाल
८० मानस में राम कथा—डा० बलदेव प्रसाद मिश्र
८१ मिश्रबन्धु विनोद (भाग १, २, ३)
८२ मुगलकालीन भारत—डा० ग्राशीर्वादीलाल
८३ मेघनाद वध की भूमिका—रवीन्द्रनाथ ठाकुर
८४ रत्नावली नाटिका—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र
८५ रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण—डा० ग्रानन्दप्रकाश दीक्षित
८६ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य—डा० विजयेन्द्र स्नातक
८७ रामकथा उत्पत्ति और विकास—डा० कामिल बुल्के
८८ रामचन्द्रिका—स० डा० श्यामसुन्दरदास
८९ रामचन्द्रिका—स० लाला भगवानदीन
९० रामचरित मानस—(गीता प्रेस, गोरखपुर)
९१ रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन—डा० राजकुमार पाण्डेय

९२ रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन—डा० गार्गी गुप्त
९३ रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय—डा० भगवतीप्रसाद सिंह
९४ रीतिकाव्य की भूमिका—डा० नगेन्द्र
९५ रीतिकाल के प्रमुख प्रबन्ध काव्य—डा० इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'
९६ रीतिकालीन कवियो की प्रेम व्यंजना—डा० बच्चनसिंह
९७ ललित ललाम—मतिराम
९८ लीलावती कथा—स० डा० आदित्यनाथ प्रेमनाथ
९९ वाङमय विमर्श—प्रा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
१०० विद्यापति ठाकुर—डा० शिवप्रसादसिंह
१०१ विदेशो के महाकाव्य—अनु० श्री गोपीकृष्ण 'गोपेश
१०२ विश्व साहित्य की रूपरेखा—डा० भगवतशरण उपाध्याय
१०३ विश्व साहित्य मे रामचरित मानस—श्री राजबहादुर लमगोडा
१०४ वैदिक कोष—श्री सूर्यकान्त
१०५ वैष्णव धर्म—परशुराम चतुर्वेदी
१०६ श्रीराधा का क्रमिक विकास—डा० शशिभूषणदास गुप्त
१०७ सचारिणी—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी
१०८ सक्षिप्त पृथ्वीराज रासो—स० प्रा० हजारीप्रसाद द्विवेदी डा० नामवरसिंह
१०९ समसामयिक जीवन और साहित्य—डा० रामरतन भटनागर
११० समीक्षालोक—भगीरथ दीक्षित
१११ संस्कृति के चार अध्याय—रामधारीसिंह 'दिनकर
११२ साकेत—मैथिलीशरण गुप्त
११३ साहित्यालोचन—डा० श्यामसुन्दरदास
११४ सिद्धान्त और अध्ययन—बाबू गुलाबराय
११५ सुबोधिनी—प्रा० वल्लभाचार्य
११६ सूफी काव्य सग्रह—स० श्री परशुराम चतुर्वेदी
११७ सूफी मत और हिन्दी साहित्य—डा० विमलकुमार जैन
११८ सूफी मत साधना और साहित्य—डा० रामपूजन तिवारी
११९ सूर और उनका साहित्य—डा० हरवशलाल शर्मा
१२० सूरदास—डा० ब्रजेश्वर वर्मा
१२१ सूर साहित्य—प्रा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१२२ सूर साहित्य का मूल्याकन—डा० चन्द्रभान रावत
१२३ सूर सौरभ—डा० मुन्शीराम शर्मा

१२४ १६ वीं शती के हिंदी और बंगाली वैष्णव कवि—डा० रत्नकुमारी
१२५ हंस जवाहिर—कासिम शाह
१२६ हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन—डा० वीणा पाणि
१२७ हिन्दी काव्य और उसका सौंदर्य—डा० ओमप्रकाश
१२८ हिंदी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल
१२९ हिंदी काव्य में प्रतीकवाद का विकास—डा० वीरेन्द्रसिंह
१३० हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र
१३१ हिंदी के आधुनिक महाकाव्य—डा० गोविन्दराम शर्मा
१३२ हिन्दी भक्ति रसामृत सिंधु—स० डा० नगेन्द्र
१३३ हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
१३४ हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विकास—डा० शम्भूनाथसिंह
१३५ हिंदी रीति साहित्य—डा०भगीरथ मिश्र
१३६ हिंदी साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास
१३७ हिंदी साहित्य (भाग २) —स० डा० धीरेन्द्र वर्मा
१३८ हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास—आ०हजारीप्रसाद द्विवेदी
१३९ हिंदी साहित्य का अतीत (भाग २)— आ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
१४० हिंदी साहित्य बीसवीं सदी—आ०नन्ददुलारे वाजपेयी
१४१ हिंदी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१४२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा
१४३ हिंदी साहित्य का इतिहास—आ० रामचन्द्र शुक्ल
१४४ हिंदी साहित्य का इतिहास और विकास—श्री रामबहोरी शुक्ल
डा० भगीरथ मिश्र
१४५ हिन्दी साहित्य का नूतन इतिहास—विश्वप्रसाद दीक्षित 'बटुक'
१४६ हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास (भाग १)—डा० प्रतापनारायण टंडन
१४७ हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (भाग १)—डा० राजबली पाण्डेय
१४८ हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास—स० डा० नगेन्द्र
१४९ हिंदी साहित्य की भूमिका—आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१५० हिंदी साहित्य के विकास की रूपरेखा—डा०रामअवध द्विवेदी
१५१ हिंदी साहित्यकोश (भाग १ २)—स० डा० धीरेन्द्र वर्मा
१५२ हिन्दी साहित्य में कृष्ण—डा० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ
१५३ हिंदुई साहित्य का इतिहास—गार्सां द तासी (अनु० डा० लक्ष्मीसागरवार्ष्णेय)
१५४ रस सिद्धान्त—डा० नगेन्द्र
१५५ सूर सागर—आ० नन्ददुलारे वाजपेयी

अंग्रेजी

१ अलगजाली दि मिस्टिक—मार्गरेट स्मिथ
२ अर्ली हिस्टरी आव वष्णव सक्ट—डा० आर० जा मजूमदार
३ अर्ली हिस्टी आव दि वष्णव सक्ट—राय चौधरी
४ आउटलाइन्स आव इस्लामी कल्चर—ए०एम०ए० शुस्त्री
५ आर्कियालाजीकल सर्वे रिपोर्ट भाग ७, १९१६ १७
६ आन दि सब्लाइम—लांजाइनस
७ अरिस्टाटल्स पायट्री एण्ड फाइन आर्टस—एस० एच० बुचर
सम्पादक टी० ए० मक्सन
८ इंडियन एंटीक्विटी १९०४
९ इन्फार्मेशन इन्साइक्लोपीडिया आव रिलीजियन—एच०याकावी
१० इंग्लिश एपिक एण्ड हीरोइक पोयट्री—डिक्सन
११ इन्ट्रोडक्शन आव सब्लाइम एण्ड ब्यूटीफुल—एडमण्ड बर्क
१२ इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका—वाल्यूम १८
१३ इन्सक्रिप्शन आव बंगाल—एन०सी० मजूमदार
१४ एपासल जान वष्णव नामक—एम० एस० रामास्वामी अय्यर
१५ ऐपिक एण्ड रोमान्स—वी० पी० कर
१६ एन्टडा आव एपिक डवलपमण्ट—आई०टी० ममस
१७ एंशियण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन—एफ०ई० पार्जीटर
१८ इन्साइक्लापीडिया आव रिलीजियन एण्ड एथिक्स—स० हेस्टिंग्स
१९ इन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम—हारसमा तथा विंसेन्ट खण्ड ४
२० एस्थटिक्स—क्रोचे
२१ ए हिस्ट्री आफ इंडियन लिट्रेचर—विन्टर नित्स
२२ एसेन्स आफ वैष्णविज्म—जे० गार
२३ एसे आन ड्रामेटिक पोयट्री—ड्राइडन
२४ कलक्टेड वर्क्स—डा० भण्डारकर
२५ कुशफुल महजूब—निकल्सन (१९११)
२६ कैटालग आफ दि गुप्ता क्वायन्स—एलन
२७ गुजरात एण्ड इटस लिटरेचर—क०एम०मुंशी
२८ डिक्शनरी आव इस्लाम—टी० ह्यूज
२९ दि ग्लोरी दैट वाज गुर्जर देश—क०मुन्शी
३० दि गोल्डन रोड इन इंग्लिश लिटरेचर—एम० कूसा
३१ दि आवर—पासबास

३२ दि नम्बर श्राफ रसाज—ना० वी० राघवन्
३३ दि पर्शियन मिस्टिक—अत्तार
३४ दि रिलीजियन्स ग्राफ इण्डिया—ए० पी० करमरकर
३५ दि रिलीजियन्स ग्राफ इण्डिया—मक्स वेबर
३६ दि विजन ग्राफ इडिया—शिशिर कुमार मित्र
३७ दि हीरोइक एज ग्राफ इंडिया—एन० के० सिद्धान्त
३८ दि एपिक—लेसलस एबरक्राम्बी
३९ फ्राम वर्जिल टु मिल्टन—सी० एम० बावरा
४० फिलासफी ग्राफ फाइन ग्राट स—खण्ड ४—हीगल
४१ फिलासफी ग्राफ दि कुरान—हफीज गुलाम सरवार
४२ भक्ति कल्ट इन एन्शियण्ट इण्डिया—वी० के० गोस्वामी
४३ मिस्टिक ग्राफ इस्लाम—ग्रार० ए० निक्लसन
४४ रिप्रजण्टटिव मेन—एमसन
४५ विष्णु इन दि वेदाज—ग्रार० एन० दाण्डेकर
४६ वदिक इण्डक्स—मक्समूलर
४७ वष्णविज्म एण्ड शविज्म—डा० ग्रार० जी० भण्डारकर
४८ सस्कृत लिटरेचर—मक्डूनल
४९ स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिज्म—ग्रार० ए० निक्लसन
५० हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म—इलियट
५१ हिस्ट्री ग्राफ क्रिटिसिज्म—जार्ज सेण्टसबरी
५२ हीरोइज्म—ग्रार० डब्लू० एमसन
५३ हीरोइक पोयट्री—सी० एम० बावरा
५४ हीरो एण्ड हीरोवर्शिप—कार्लाइल
५५ कल्चरल हैरीटेज ग्राव इण्डिया—हरिदास भट्टाचार्य

सस्कृत

१ ग्रभिज्ञान शाकुन्तलम—कालिदास स० डा० कपिलदेव पाण्डेय 'ग्राचार्य'
२ ग्रादि पुराण—(गोरखपुर)
३ ऋग्वेद—(वदिक साहित्य)
४ एतरेय ब्राह्मण—
५ कामसूत्र—वात्स्यायन
६ काव्यादर्श—दण्डी
७ काव्यालंकार—भामह
८ काव्यालंकार—रुद्रट

९ काव्यानुशासन—वाग्भट्ट द्वितीय
१० काव्यानुशासन—हेमचन्द्र
११ गीता (गोरखपुर)
१२ गीत गोविन्द—जयदेव
१३ तैत्तिरीय संहिता (वैदिक साहित्य)
१४ तैत्तिरीय ब्राह्मण (वैदिक साहित्य)
१५ दशरूपक—धनंजय
१६ न्या भागरा (भाष्यकार—हरिन्द्र नाग)
१७ ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धन—लोचन टीका—आ० विश्वेश्वर
१८ नाटक लक्षण कोश—सागर नन्दी
१९ नाट्य दर्पण—रामचन्द्र गुणचन्द्र
२० नाट्यशास्त्र—भरतमुनि
२१ नारद भक्ति-सूत्र (गोरखपुर)
२२ ब्रह्म वैवर्त्त पुराण (कलकत्ता)
२३ ब्रह्म-सूत्र—हिन्दी टीका (गोरखपुर)
२४ भागवत पुराण (गोरखपुर)
२५ महाभारत (गोरखपुर)
२६ योग उपनिषद—स० महादेव शास्त्री
२७ रस गंगाधर—प० राज जगन्नाथ
२८ रामायण—वाल्मीकि (प्रयाग)
२९ शतपथ ब्राह्मण—वैदिक साहित्य
३० शृंगार प्रकाश—भोजराज
३१ सरस्वती कण्ठाभरण—भोजराज
३२ साहित्य-दर्पण—विश्वनाथ
३३ हरिवंश पुराण (गीता प्रेस)

अभिनन्दन-ग्रन्थ

१ सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ—स० डा० नगेन्द्र बाबू गुलाबराय (दिल्ली)
२ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ—स० वासुदेवशरण अग्रवाल (मथुरा)

पत्र-पत्रिकाएँ

१ आलोचना जनवरी १९५४ नवम्बर १९५५
२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५ अंक ? वर्ष १४ अंक १, वर्ष ५६ अंक १६
३ वीणा वर्ष २५ अंक ६ ७ (१९५२)
४ साहित्य अंक ७ १९५५